शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

चरित्रहीन



चरित्रहीन

शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय के उपन्यास

अपने पराये
अकेली
चन्द्रनाथ
अनुराधा
परिणीता
बिन्दु का बेटा
बैकुण्ठ का दानपत्र
बड़ी दीदी
बिराज बहू
ब्राह्मण की बेटी
पंडित मोशाय
मझली दीदी
देवदास
नया विधान
देहाती समाज
शुभदा
श्रीकान्त भाग-१
श्रीकान्त भाग-२
विप्रदास
देना-पावना
गृहदाह
शेष प्रश्न
पथ के दावेदार
अंतिम परिचय

सुबोध पब्लिकेशन्स

चरित्रहीन

शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

Rs 35.00

प्रकाशक : **सुबोध पब्लिकेशन्स**, २/३ बी, अंसारी रोड, नई दिल्ली-२ /
संस्करण : १६६१ / मुद्रक : अजय प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२

CHARITRAHEEN by Sharat Chandra

चरित्रहीन

एक

पश्चिम में एक बड़ा शहर है। सर्दी का मौसम आने को है। परमहंस रामकृष्ण के एक चेला किसी सत्कर्म हेतु सहायता पाने की आशा से शहर पधारे हैं। वहाँ वे चन्दा इकट्ठा करेंगे। इसके लिए एक सभा का आयोजन किया गया जिसमें उपदेश होना था। सभापति पद हेतु उपेन्द्र बाबू का चुनाव हुआ। इसकी सहमति के लिए एक दिन कॉलेज के छात्र सुबह-सुबह ही उनके घर आ पहुँचे।

उपेन्द्र ने जिज्ञासा की, "कौन-सा सत्कर्म है, सुनूं तो।"

उन्होंने कहा, "इसका अभी ठीक से पता नहीं है। स्वामी जी ने कहा है कि विषय को आयोजन के समय विस्तार से बताएँगे। सभा का प्रयोजन भी यही है।" उपेन्द्र ने और कोई प्रश्न नहीं किया। वे राजी हो गए। ऐसा उनका स्वभाव था। विश्वविद्यालय की परीक्षाएँ उन्होंने इतने अच्छे ढंग से पास की थीं कि सारा छात्र-वर्ग उनकी श्रद्धा और सम्मान करता था। यह भी वे जानते हैं। इसी कारण काम-काज पड़ने या आपदा पड़ने पर उपेन्द्र ममतावश इन्कार नहीं करते। सरस्वती की कृपा होने के बावजूद भी वे लक्ष्मी के लिए अदालत में जाने लगे। फिर भी बच्चों के कसरत के अखाड़े से लेकर फुटबाल, क्रिकेट और वाद-विवाद प्रतियोगिता में उन्हें शीर्ष स्थान पर बैठना ही पड़ता था।

परन्तु आज जिस आसन पर बैठना था, वहाँ बोलना भी था।

एक व्यक्ति की ओर संकेत करके वे बोले, "सभा में कुछ बोलना तो पड़ेगा और बोलना बिना उद्देश्य जाने कहाँ तक संभव है। इस तरह

अंधकार में रहकर सभापतित्व करना क्या ठीक रहेगा ? बोलो भाई।"

यह बात ठीक थी किन्तु उनमें से कोई कुछ नहीं जानता था। बाहर प्रांगण में पुष्पित जावा के वृक्ष के नीचे छात्रों का समूह उपेन्द्र के चारों ओर बैठकर संसार के सत्कर्मों के समस्त आयोजनों के बारे में सोच रहा था, उसी समय दिवाकर के कमरे से कोई व्यक्ति सबकी आँख बचाकर निकलना चाहता था।

उपेन्द्र का दिवाकर ममेरा भाई है। बचपन में माता-पिता का देहान्त हो जाने के कारण मामा के ही घर पला था। बाहर एक छोटी कोठरी थी, उसमें दिन को पढ़ता और रात को सोता था। आयु उन्नीस वर्ष की थी। एफ० ए० पास कर बी० ए० में पढ़ रहा था।

उपेन्द्र की दृष्टि इस तरह भागने वाले पर पड़ते ही उन्होंने पुकारकर कहा, "सतीश, खूब, चुपके-चुपके भागे जा रहे हो, इधर आओ—आओ न।"

सतीश पकड़े जाने पर लजाता हुआ समीप आकर खड़ा हो गया।

उपेन्द्र ने पूछा—"इतने दिन कहाँ थे भाई ?"

सतीश ने मुस्कराते हुए कहा—"यहाँ नहीं था। इलाहाबाद चाचा के यहाँ चला गया था।" वह कुछ और कहना ही चाहता था कि इतने में एक फ्रेंचकट दाढ़ी और अल्बर्टफैशन के बालों वाला चश्माधारी युवक एक आँख मींचकर और दाँतों को बाहर निकालकर बोल उठा, "क्यों ? क्या इस बार मन को कुछ गहरी चोट लगी है ?"

वह एण्ट्रेंस में इस साल भी नहीं भेजा गया था, यह बात सभी जानते थे। इसी से वह बात बड़ी भद्दी और बेढंगी लगी। सबने लज्जा से सर नीचा कर लिया। उसका यह व्यंग्य किसी को भी अच्छा न लगा। कहीं से जरा भी सहारा न पाकर चुटकी लेने वाले को चुप हो जाना पड़ा। पर सतीश ने उसके बदले मुस्कराते हुए कहा, "भूपति बाबू, जिसके मन होता है, उसे ही चोट भी लगती है। पर पास करने की आशा कहिए या इच्छा, मैंने तो तभी छोड़ दी, जब अपना होश सँभाला, केवल पिताजी नहीं छोड़ सकते थे। इसी से यदि मानसिक क्लेश के कारण किसी को घर-बार छोड़ने की आवश्यकता थी, तो उन्हीं को थी, पर वे तो आनन्द से बैठे

वकालत करते हैं। किन्तु भैया उपेन्द्र; चाहे कुछ कहिए, अबकी उनकी भी आँखें खुली हैं।"

सारे लोग हँस पड़े। वैसे इसमें हँसी की कोई बात न थी, लेकिन भूपति बाबू की भद्दी हँसी सतीश बाबू का मन नहीं दुखा सकी, इससे सबको बड़ी प्रसन्नता हुई।

उपेन्द्र ने पूछा, "तो तुमने इस वार पढ़ना-लिखना बिल्कुल छोड़ ही दिया?"

सतीश ने कहा, "मैंने उसे कब पकड़ा था जो आज छोड़ दिया? सच कहता हूँ भैया, मैंने किसी दिन लिखने-पढ़ने के झमेले को मोल लेना नहीं चाहा, और अब तो उस बवाल से मेरा पिण्ड एकदम ही छूट गया। अब ऐसे स्थान पर जाकर रहूँगा, जहाँ स्कूल-पाठशाला का कोई चिह्न तक न हो।"

उपेन्द्र ने कहा, "परन्तु कुछ तो करना चाहिए, आदमी बिल्कुल बेकार नहीं रह सकता और न वेकार रहना ठीक ही है।"

सतीश ने कहा, "ना, बेकार नहीं रहूँगा। इलाहाबाद से एक नया विचार लेकर आया हूँ। एक बार अच्छी तरह से प्रयत्न करूँगा, देखूंगा कहाँ तक सफलता मिलती है।"

वह कौन-सा विचार लेकर आया है, यह जानने के लिए सब उसकी ओर देखने लगे। वह लज्जा से सिर नीचा कर बोला, "मेरे गाँव में मलेरिया की तरह हैजा भी महामारी रूप में फैला करता है। कभी-कभी तो पाँच-सात गाँवों तक में एक भी डॉक्टर नहीं मिलता। मैं वहाँ जाकर होमियोपैथिक डॉक्टरी शुरू कर दूंगा। मेरी माँ मृत्यु के पहले ही मुझे कई हजार रुपये दे गई है। उन्हीं से अपने घर पर ही एक डिसपेन्सरी खोल दूंगा। भैया, हँसी की बात नहीं है। तुम देखते रहना, मैं अवश्य करूँगा। बाबा को भी मैंने मना लिया है। उनसे मैंने कहा है कि महीने-दो महीने बाद कलकत्ते जाकर होमियोपैथिक स्कूल में भर्ती हो जाऊँगा।"

उपेन्द्र ने पूछा, "महीने-दो महीने बाद क्यों?"

सतीश ने कहा, "कुछ काम है। दक्खिन टोले के नव नाट्यसमाज में से कुछ आदमियों ने निकलकर एक पृथक् दल स्थापित किया है। हमारे

विपिन बाबू उसके मुखिया हैं। तार पर तार भेजकर उन्होंने ही मुझे बुलाया है। मैंने उन्हें वचन दे दिया है कि उनकी कंसर्ट पार्टी का पूरा प्रबंध कर-कराके ही मैं दूसरे किसी काम में हाथ डाल सकूँगा।"

यह सुनकर सभी जोर से हँस पड़े। सतीश भी हँसने लगा। जब हँसी कुछ धीमी पड़ी, तब सतीश ने कहा, "बंशी बजाने वाले की कमी थी, उसी के लिए दिवाकर के पास आया था, यदि वह थियेटर का रात का काम चला दे, तो फिर मुझे अधिक भटकना न पड़े।"

उपेन्द्र ने पूछा, "वह क्या कहता है?"

सतीश ने कहा, "वह तो बस परीक्षा का रोना रोता है। मेरी समझ में यह बात नहीं आती कि लोगों की दो साल की पढ़ाई एक ही रात न पढ़ने से कैसे नष्ट हो सकती है? वास्तव में जिनकी पढ़ाई एक रात में नष्ट हो जाती है, उनको पढ़ना-लिखना ही छोड़ देना चाहिए। इस प्रकार पास होने में जो मान समझते हों, समझें, मैं तो कुछ नहीं समझता। भैया! तुम नाराज नहीं होगे। मैं तुम्हें जितना जानता हूँ, उसका चौथाई भी ये लोग नहीं जानते। जिमनास्टिक के अखाड़े से लेकर फुटबाल और क्रिकेट के मैदान तक बहुत दिन तुम्हारा शिष्य रहा हूँ, तुम्हारे साथ घूम-घूमकर बहुत दिन, बहुत प्रकार तुम्हारा समय नष्ट होते देखा है, बहुत-सी परीक्षाएँ देते भी तुम्हें देखा और भली-भाँति पास कर छात्रवृत्ति पाते भी देखा, लेकिन किसी दिन तुम्हें परीक्षा की दुहाई देते नहीं देखा।"

उपेन्द्र ने उस बात को समाप्त करने की इच्छा से कहा, "लेकिन सतीश, मैं तो बंशी बजाना नहीं जानता।"

सतीश ने कहा, "मैं भी कई बार सोचता हूँ कि तुमने इस कला को नहीं सीखा, इसका मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। खैर, यह तो बताओ कि तुम्हारी इस दोपहर की सभा का उद्देश्य क्या है?"

जाड़े की धूप। सिर पर चादरें। सभा खूब जमी थी। दिन कितना चढ़ चुका है, इस ओर किसी का भी ध्यान नहीं था। सतीश की बात सुन, समय की ओर देख, सबके सब चौंककर खड़े हो गए।

भूपति ने पूछा, "हाँ तो उपेन्द्र बाबू, क्या कहते हैं?"

उपेन्द्र ने कहा, "मुझे कोई आपत्ति नहीं है। लेकिन स्वामी जी का

उद्देश्य यदि पहले से ज्ञात हो जाता, तो बड़ा अच्छा होता। बिल्कुल मूर्ख के समान कहीं जाते संकोच-सा मालूम होता है।"

भूपति ने कहा, "उन्होंने तो कुछ भी नहीं बताया, बल्कि कहा कि जटिल और दुर्बोध विषय को जब तक भली-भाँति समझाकर कहने का अवसर न मिले तब तक उस विषय में कुछ न कहना श्रेयस्कर ही है। इस का परिणाम अच्छा न होकर अधिकांश अवसरों पर ठीक नहीं होता।"

चलते-चलते बातें हो रही थीं। बाहर आकर सब लोग सड़क के एक किनारे खड़े हो गए।

सतीश ने पूछा, "आखिर बात क्या है भैया?"

भूपति ने कहा, "सतीश बाबू, आपको भी चन्दे की लिस्ट में नाम लिखाना पड़ेगा। आपके प्रश्न का उत्तर इस समय हम लोग ठीक-ठीक नहीं दे सकेंगे। परसों संध्या समय कॉलेज-हाल में आइएगा, वहीं स्वामी सब बातें बतलाएँगे।"

सतीश ने कहा, "भूपति बाबू, मैं समझने से क्षमा चाहूँगा। परसों हम लोगों का पूरा रिहर्सल होने वाला है। मेरे बिना काम नहीं चलेगा।"

भूपति ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा, "यह, आप क्या कहते हैं! नाटक-थियेटर की एक साधारण-सी हानि के भय से आप ऐसे महान् कार्य में सहयोग नहीं देंगे? भाई, कोई सुनेगा तो क्या कहेगा?"

सतीश ने कहा, "लोग तो बिना सुने भी बहुत कुछ कहा करते हैं। औरों की बात जाने दीजिए, अपने को ही देखिए। बिना कुछ जाने-बूझे इस अनुष्ठान को आप लोग व्यर्थ में ही कितना महत्त्व दे रहे हैं? यदि मैं उतना महत्त्व न दे सकूँ, तो क्या मैं इसके लिए दोषी कहलाऊँगा, उसकी उपेक्षा करके, उसको नष्ट करके, एक अनिश्चित-काल्पनिक महत्त्व के पीछे दौड़ना पसन्द नहीं करता।"

छात्र-मण्डली में आयु और शिक्षा के विचार से भूपति बाबू ही सबसे बड़े थे।

सतीश की बात पर हँसकर वे बोले, "सतीश बाबू, स्वामी जी जैसे महान् व्यक्ति अच्छी ही बात कहेंगे। उनका उद्देश्य अच्छा ही होगा, इस पर विश्वास किया जा सकता है।"

सतीश ने कहा, "संभव है। देखिए न, मैट्रिक पास करना कोई कठिन नहीं है; फिर भी पास करना अलग रहा, तीन-चार वर्षों से मैं उसके पास तक भी फटक न सका। अच्छा यह तो बताइए, क्या आपने इन स्वामी जी को पहले कभी देखा है, अथवा इनके सम्बन्ध में कभी कुछ सुना है ?"

सबने स्वीकार किया कि कोई कुछ नहीं जानता। सतीश ने कहा, "लीजिए, गेरुए वस्त्र के सिवा उसके पास और कोई भी सर्टिफिकेट नहीं है फिर भी आप लोग उसके लिए व्यग्र हो रहे हैं। मैं अपना काम बिगाड़कर उनका भाषण सुनना नहीं चाहता, इसलिए आप मुझ पर दया करें।"

भूपति ने कहा—"सतीश बाबू, क्यों नाहक भाग रहे हो। इन गेरुए कपड़े वालों ने संसार को बहुत कुछ दिया है। खैर, आप इसमें योग देना नहीं चाहते, इससे मैं अप्रसन्न नहीं हूँ। केवल मुझे दुःख है संसार की सारी चीजें सफाई और साक्षी को साथ लेकर नहीं आतीं, इसीलिए यदि उन्हें व्यर्थ समझकर छोड़ दिया जाए, तो हमें बहुत-सी चीजों से वंचित रह जाना पड़ेगा। अच्छा आप ही कहिए जब संगीत में सा, रे, गा, मा साधते थे तब आपको उसमें कितना रस मिलता था? उसकी कितनी भलाई-बुराई समझते थे ?"

सतीश ने उत्तर दिया, "यही तो मैं कहता हूँ कि यदि संगीत का कोई उन्नत आदर्श मेरे सामने न होता, यदि मधुर रसास्वादन की आशा मुझे न होती तो इतना कष्ट उठाकर सा, रे, गा, मा कभी न साधता। वकालत में अगर आपको रुपये की इतनी तेज गन्ध न मिली होती तो एक बार फेल होकर ही आप उसके प्रयत्न से बाज आते। बार-बार यों कठिन परिश्रम कर कानून की पुस्तक कभी न रटते और संभव था कि उपेन्द्र भैया भी इतने दिनों तक किसी स्कूल की मास्टरी पाकर संतुष्ट हो गए होते।"

उपेन्द्र हँसने लगे, पर भूपति का मुँह लाल हो गया। ईंट का उत्तर मशीनगन से दिया गया था। यह बात उपस्थित सभी लोग समझ गए।

भूपति ने क्रोध दबाकर कहा, "आपके साथ तर्क करना व्यर्थ है। आप शायद यह भी नहीं जानते, कि किसी वस्तु की भलाई-बुराई कितनी प्रकार से सिद्ध हो सकती है।"

सब लोग बातों ही बातों में धीरे-धीरे सड़क के किनारे बैठ गए थे।

सतीश खड़ा हो गया और हाथ जोड़कर बोला, "भूपति बाबू, क्षमा कीजिए। छः प्रकार के 'प्रमाणों' और छत्तीस प्रकार के 'प्रत्यक्षों' की चर्चा इस कड़ी धूप में नहीं सही जाएगी। इससे अच्छा तो यह हो कि आप शाम के बाद बावूजी की बैठक में पधारें। वहाँ आधी रात तक वाद-विवाद कर सकते हैं। वहाँ नित्य ही प्रोफेसर नवीन बाबू, प्रधान गोविंद बाबू और पुरोहितजी तक इसी प्रकार के विषयों पर लम्बी चर्चाएँ किया करते हैं। उसके बगल वाले कमरे में मैं रहता हूँ। तर्क-वितर्क के दाँव-पेंच और दार्शनिक चालों की बातें सुनते-सुनते मेरे कान पक से गए हैं। कानों के साथ-साथ मुझ पर भी कुछ-कुछ रंग चढ़ने लगा है। पर असमय में पककर और पृथ्वी पर टपककर मैं सियार और कुत्तों के पेट में नहीं जाना चाहता, इसलिए इस विषय को छोड़कर यदि और कुछ कहना हो तो कहिए, नहीं तो आज्ञा दीजिए, चलता हूँ।"

सतीश के विदा माँगने का ढंग देखकर सब लोग खिलखिलाकर हँस पड़े। भूपति बावू जले हुए तो थे ही, सबकी इस हँसी ने मानो जले पर नमक डाल दिया। क्रोध के मारे तर्क की डोर हाथ से जाती रही और जो मुँह में आया बक गए, "इसका मतलब है कि आप ईश्वर को भी नहीं मानते।" बात विल्कुल व्यर्थ थी, एकदम बच्चों जैसी, जो भूपति बावू को भी खटके विना न रही।

भूपति के तमतमाते हुए चेहरे पर सतीश ने एक तीक्ष्ण दृष्टि डाली और फिर उपेन्द्र की ओर देखकर खिलखिलाकर हँस पड़ा। बोला, "भैया, इस बार भूपति बावू सही लक्ष्य पर पहुँच गए हैं। मेरे जैसे दस-वारह कुत्ते भी अब इनके पास नहीं फटक सकते।" फिर भूपति की ओर देखकर बोला, "शाबाश, भूपति वावू शावाश! चोर-चोर, के खेल में दौड़ा न जाए तो 'घूही' छू लेना ही अच्छा है।"

भूपति इन तीखे व्यंग्य-वाणों की चोट से जलकर उठ खड़े हुए। उपेन्द्र ने उनका हाथ पकड़ लिया, कहा "भूपति, तुम जरा ठहरो, मैं अभी इसे ठीक करता हूं। क्यों रे सतीश! घूही छूना, लक्ष्य पर पहुँचना, इन सब बातों का क्या अर्थ है? वास्तंव में तेरी आदत जैसी है, उससे यह सन्देह होना स्वाभाविक है कि तू ईश्वर तक को नहीं मानता।"

आश्चर्य का नाट्य दिखाते हुए सतीश ने कहा—"हाय रे मेरी तकदीर ! मैं ईश्वर को नहीं मानता ? शत-प्रतिशत मानता हूँ। देर रात को जब नाटक-थियेटर के अखाड़े से अवकाश पाकर घर लौटता हूँ तब मुझे श्मशान के पास से होकर आना पड़ता है। कहीं कोई आदमी नहीं दिखता। उस शून्य श्मशान को पार करते समय मारे भय के मेरी नसों का खून जम-सा जाता है। तुम भले आदमियों को इसका क्या पता ? हँसते क्या हो ! भूत-प्रेत मानता हूँ और ईश्वर नहीं ? भला यह सम्भव है ?"

भूपति उसकी बातों से क्रुद्ध हँस पड़े। बोले, "सतीश बाबू, क्या भूत से डरने का अर्थ ईश्वर को मानना है ? क्या आपकी दृष्टि में दोनों बातें एक ही हैं ?"

सतीश ने कहा, "हाँ एक हैं। साथ-साथ रख दीजिए, तो पहचान न पड़े। केवल मेरे लिए नहीं, आपके लिए भी, उपेन्द्र भैया के लिए भी और जो शास्त्रकार हैं उनके लिए भी यही बात है। हाँ, जो दोनों में से किसी एक को भी न माने, तो उसका कहना ही क्या है। लेकिन जहाँ एक को मान लिया कि बस फिर पिण्ड छुड़ाना कठिन हो जाता है। दुःख में, संकट में, आपद में कई ओर से सोचकर देखा है, भाषण भी बहुत सुने हैं, पर जो अन्धकार पहले था, वही अब भी है। छोटा-सा एक निराकार ब्रह्म मानो या हाथ-पैरों वाले तैंतीस करोड़ देवता मानो, चाहे कुछ भी करो, एक को मानते ही दूसरे भी आ उपस्थित होते हैं। जैसे एक जंजीर में बँधे हुए हों। एक पर जोर डालो या एक को खींचो तो सबकी सब कड़ियाँ खिच आएँगी। स्वर्ग-नर्क आ जाएगा, अमर आत्मा भी आ जाएगी, फिर तुम श्मशान के उपदेवताओं को धोखा कैसे दोगे ? कालीघाट के कंगालों में से एक को चुपके से कुछ देकर क्या तुम अपना पिण्ड औरों से छुड़ा सकते हो ? पल भर में अनगिनत भिखारी आकर घेर लेंगे। भूपति बाबू, ऐसी हालत में आप ही बताइए, भूत से डरूँ और ईश्वर को न मानूँ क्या यह कभी सम्भव है ?"

उसने ऐसा मुँह बनाया कि उसे देखकर सबके सब ठठाकर हँस पड़े। कुछ दूर खड़े दो छोटे-छोटे बच्चे भी जोर से हँस पड़े। रविवार की उदास फीकी दोपहरी इन सबकी हँसी से गूँज उठी।

उपेन्द्र की स्त्री सुरबाला का भेजा हुआ नौकर, जो दूर खड़ा इतनी देर

से बड़बड़ा रहा था, मुँह फेरकर मुस्कराने लगा।

कलह के जो बादल घिर आए थे, इस हास्य की आँधी में वे ऐसे उड़े कि उनका पता ही न चला।

सबके सब बातों में इतने लीन हो रहे थे कि किसी को पता तक नहीं चला कि दोपहर कब बीत गई।

उधर घर में नौकर-दाइयों ने मारे भूख-प्यास के बहुत देर तक कुड़-बुड़ाते रहने के बाद अब चिल्ल-पों मचानी शुरू कर दी। रसोइया महा-राज तो अब ऐसी नौकरी को छोड़ आज ही कहीं चले जाने की घोषणा कर रहे हैं। सारे भूख के कारण रोश से भर आए थे।

दो

तीन महीने बाद।

कलकत्ते का एक मकान।

एक दिन सवेरे-सवेरे नींद टूटने पर सतीश ने बिछौने पर इधर-उधर करवट बदलते हुए अचानक यह निश्चय किया कि आज स्कूल नहीं जाऊँगा। वह होमियोपैथिक स्कूल में पढ़ता था। आज अवकाश मनाने के इस संकल्प ने उसके मन में अमृत की वर्षा की और क्षण भर में उसके शिथिल शरीर को बलशाली बना दिया। वह प्रसन्नता से उठ बैठा और चिलम भर लाने के लिए शोर करने लगा।

सावित्री घर में आई। वह थोड़ी दूर पर फर्श पर आकर बैठ गई और हँसकर बोली, "नींद टूट गई सरकार की?"

इस घर की सावित्री नौकरानी है और घर के सारे प्रबन्ध की स्वामिनी भी। वह ईमानदार थी, इसलिए खर्च के रुपये-पैसे उसी के हाथ में रहते थे। इकहरा बदन था, रंग गोरा और अंग-अंग साँचे में ढले हुए से थे। आयु लगभग बाईस-तेईस वर्ष की होगी। लेकिन देखने से इससे भी कम आयु की मालूम होती थी। सावित्री स्वच्छ वस्त्र पहनती, होंठ दोनों ओर पान और तम्बाकू के रस से दिन-रात लाल बनाये रहती थी। वह हँसकर

बातचीत करना तो जानती ही थी, उस हँसी का मूल्य भी ठीक उसी प्रकार समझती थी। गृह-सुख से वंचित घर के सभी लोगों पर उसके मन में एक आन्तरिक स्नेह-ममता थी। फिर भी, कोई उसकी प्रशंसा करता तो वह कहती, 'काम न करने पर भी आप लोग मुझे रखेंगे, क्यों बाबू? इसके अलावा घर जाकर स्त्रियों की निन्दा करके कहेंगे, घर पर ऐसी दाई है कि भरपेट दोनों समय खाने को भी नहीं देती। उस लांछना की अपेक्षा थोड़ा-सा परिश्रम अच्छा है।' यह कहकर वह हँसती हुई अपने काम पर चली जाती थी।

घर में एक सतीश ही ऐसा था जो उसका नाम लेकर पुकारता था। कभी-कभी उसके साथ हँसी-मजाक करता था और मन में आता तो कभी पुरस्कार भी दे देता था। उसका भी सतीश पर स्नेह कुछ अधिक ही था। सारा दिन सभी काम-काजों में व्यस्त रहने पर भी इसीलिए सदा एक आँख और एक कान इस सुगठित सुन्दर युवक की ओर लगाये रहती थी। घर पर सभी लोग इस बात को जानते थे।

कोई-कोई कौतुक के साथ इसका संकेत करने से भी बाज नहीं आते थे। सावित्री मुस्कराती हुई काम में लग जाती थी।

सतीश ने कहा, "हाँ, नींद खुल गई।" इतना कहकर उसने तकिये के नीचे से एक रुपया निकालकर उसकी ओर फेंक दिया।

सावित्री ने रुपया उठाकर कहा, "सुबह ही सुबह किस वस्तु की आवश्यकता हो गई?"

सतीश ने कहा, "सन्देस! लेकिन मेरे लिए नहीं। अभी तुम रख लो, रात को अपने बाबू के लिए सन्देस ले जाना।"

सावित्री ने अप्रसन्न होकर रुपये को बिछौने पर फेंककर कहा, "यह लीजिए अपने रुपये को। मेरा बाबू सन्देस नहीं खाता।"

सतीश ने रुपये को फिर फेंककर अनुरोध के स्वर से कहा, "मेरी सौगन्ध सावित्री, इस रुपये को तुम किसी प्रकार भी वापस न कर सकोगी। मैंने सचमुच ही तुम्हारे बाबू को सन्देस खाने के लिए दिया है।"

सावित्री ने उदासी से कहा, "जब-तब आप स्त्रियों के समान सिर की सौगन्ध खिलाते रहते हैं, यह बड़ा अन्याय है। बाबू मेरे पास नहीं है।

मेरे बाबू आप लोग हैं।"

सतीश ने हँसकर कहा, "अच्छा, दे दो रुपया। लेकिन बताओ, मेरे सिवा यदि कोई और बाबू हो तो मैं उसका सिर खाऊँ।"

सावित्री हँसकर बोली, "मेरा बाबू क्या आपकी सौत है जो सिर खा रहे हैं।"

सतीश ने कहा, "मैं उनका सिर खा रहा हूँ या वे ही मेरा सिर खा रहे हैं? बल्कि मैं तो उनको सन्देस खिला रहा हूँ।"

अपनी हँसी को रोककर सावित्री ने कहा, "नौकर-नौकरानियों के साथ इस प्रकार बातचीत करने से उन्हें बढ़ावा मिल जाता है, फिर वे मुँह लग जाते हैं, फिर भी लोग निन्दा करते हैं।" यह कहकर रुपया उठा लिया और कमरे से बाहर चली गई।

थोड़ी ही देर बाद फिर लौटकर बोली, "इस समय क्या बनेगा?"

सतीश भोजन सम्बन्धी सभी बातों में एक गुणवान आदमी है, इसका परिचय सावित्री पहले ही पा चुकी थी। अतः प्रतिदिन प्रातःकाल वह एक बार आ जाती थी और सतीश की आज्ञा लेकर चली जाती थी और स्वयं ही खड़ी रहकर महाराज से सभी कामों को खूब अच्छी तरह पूरा करा लेती थी।

इसी समय नौकर तम्बाकू दे गया था, सतीश फिर एक बार करबट लेकर बोला, "जो मन हो वही बनवालो।"

सावित्री बोली, "देखती हूँ क्रोध भी है।"

सतीश दीवार की ओर मुँह फेरकर तम्बाकू खींचते हुए बोला, "पुरुष ही ठहरा, क्रोध क्या नहीं रहेगा? आज मैं भोजन भी नहीं करूँगा।"

सावित्री बोली, "शायद और कहीं न्यौता मिल गया है। किन्तु कुछ भी हो सतीश बाबू, स्कूल आपको जाना ही पड़ेगा, कहे देती हूँ।"

नियमित रूप से स्कूल जाने का धन्धा सतीश को भार-सा बनकर दबाता जा रहा था और तरह-तरह के बहाने, तरह-तरह के कारण निकालकर उसने अनुपस्थित होना शुरू कर दिया था। आज उस बहानेबाजी की पुनरावृत्ति का सूत्रपात होते ही वह समझ गई।

सतीश बड़बड़ाकर उठ बैठा और कृत्रिम क्रोध में बोला, "तुम कार्य

के आरम्भ में ही टोको मत ।"

सावित्री ने कहा, "यह तो आप कहेंगे ही । लेकिन एण्ट्रेन्स पास करने में चौबीस साल बीत गए, यह डॉक्टरी पास करने में चौंसठ साल बीत जाएँगे ।"

सतीश ने क्रोध से कहा, "सावित्री, झूठी बात मत कहो । मैंने एण्ट्रेन्स पास नहीं किया ।"

सावित्री हँसने लगी । बोली, "इसको भी पास नहीं किया ?"

सतीश ने गरदन हिलाकर कहा, "ना । ईर्ष्यालु मास्टरों ने मुझे पास करने के लिए परीक्षा में बैठने नहीं दिया ।"

सावित्री ने हँसकर कहा, "तो क्या इसकी भी वही दशा होगी ?"

"किसकी ?"

"इस डॉक्टरी की ?"

सतीश ने कहा, "अच्छा सावित्री, गधों के समान जितने लोग हैं वे परीक्षा पास करके क्या करते हैं, क्या तुम बता सकती हो ?"

सावित्री हँसी के वेग को दबाकर बोली, "गधों के समान भार ढोते हैं लेकिन गधे हैं नहीं । जो लोग वास्तव में गधे हैं वे पास ही नहीं कर सकते ।"

सतीश ने दरवाजे से झाँककर एक बार देख लिया । फिर स्थिर भाव से बैठ गया और गम्भीर होकर बोला, "यदि कोई सुन लेगा तो सचमुच ही निन्दा करेगा । मेरे मुँह पर ही मुझे गधा कह रही हो ।"

कर्मों के दोष से आज सावित्री घर की नौकरानी है । इसी कारण वह इस आघात को सहकर बोली, "ठीक ही तो है !"

वह चली गई ।

सतीश फिर आलसी के समान बिछौने पर पड़ गया । उसके मन में कर्महीन समूचे दिन का जो चित्र चमका था, सावित्री की बातों की चोट से मलीन हो गया और मन की जिस व्यथा को लेकर सावित्री स्वयं चली गई, वह भी उसकी छुट्टी के आनन्द को बढ़ाकर नहीं गई ।

यद्यपि वह मन-ही-मन समझ गया, आज फिर छुट्टी करने से लाभ नहीं होगा, तो भी कुछ न करने का लोभ भी वह छोड़ न सका ।

ठीक समय पर स्नान का तकाजा आ गया। लेटे-लेटे बोला, ''जल्दी क्या है ? आज तो मैं बाहर जाऊँगा नहीं।''

सावित्री ने कमरे में घुसकर कहा, ''ना-ना। आपको स्कूल जाना ही पड़ेगा—जाइए स्नान करके भोजन कीजिए।''

सतीश ने कहा, ''तुमको क्या मेरा संरक्षक नियुक्त किया गया है जो हठ कर रही हो ? आज मैं पदमेकं न गच्छामि।''

सावित्री तनिक हँसकर बोली, ''नहीं जाना है तो स्नान तो कर लीजिए। आपके आलस्य से नौकर-नौकरानियों को दुःख होता है, इसे क्या आप नहीं जानते ?''

सतीश ने कहा, ''ये कैसे नौकर-नौकरानियाँ हैं जो नौ बजते-बजते ही दुःख पाने लगते हैं। इस घर को मुझे बदल ही देना पड़ेगा।''

सावित्री ने हँसकर कहा, ''तब तो मुझे भी बदलना पड़ेगा। इसी घर का नियम मानकर चलना पड़ेगा। स्कूल जाना पड़ेगा। उठिए, दिन चढ़ता जा रहा है।'' वह सतीश की धोती और अंगोछा स्नानघर में रख आने के लिए चल पड़ी।

सतीश नियमित रीति से सन्ध्या-वन्दन किया करता था। आज वह स्नान करके आया और पूजा के आसन पर बैठकर देर करने लग। दो-तीन बार सावित्री आकर देख गई और दरवाजे के बाहर से पुकारती हुई बोली, ''अब देर क्यों, परोसा हुआ भात ठण्डा होकर बर्फ हो रहा है। स्कूल जाना नहीं पड़ेगा। दो कौर खाकर हम लोगों को तो जरा छुट्टी दीजिए।''

सतीश पाँच मिनट और भी चुपचाप बैठा रहा। फिर खड़ा होकर बोला, ''सन्ध्या-पूजा के समय गड़बड़ी मचाने से जानती हो क्या होता है ?''

सावित्री ने कहा, ''गंगाजली और पँचपात्र सामने रखकर ढोंग रचाने से क्या होता है ?''

सतीश ने आखें फैलाकर कहा, ''मैं ढोंग रच रहा था ? ना-ना।''

कुछ कहते-कहते सावित्री फिर रुक गई। उसके बाद बोली, ''इसे तो आप ही जानते हैं। लेकिन आपको भी तो पहले किसी दिन इतनी देर नहीं

होती थी। जाइए, भात परोस दिया गया है।" यह कहकर वह चल दी।

जाड़े की सुन्दर दोपहर। पर निर्जन और निस्तब्ध। इस घर में रहने वाले सभी नौकरी करते हैं। वे लोग दफ्तर चले गए हैं। रसोइया घूमने गया है, बिहारी बाजार से सौदा लाने गया है। सावित्री की भी कोई आहट-आवाज नहीं सुनाई पड़ती।

सतीश ने अपने कमरे में पहले दिवा-निद्रा का व्यर्थ आवाहन किया। फिर उठकर बैठ गया और कुछ सोचने लगा। सिरहाने की खिड़की बन्द थी। उसको खोलकर सामने की खुली छत की ओर देखते ही उसी क्षण उसने उसको बन्द कर लिया।

छत के एक छोर पर बैठकर सावित्री अपने बाल सुखा रही थी और झुककर कोई किताब देख रही थी। खिड़की बन्द करने की आवाज से उसने चौंककर माथे पर आँचल डालकर खड़ी होकर देखा—खिड़की बन्द हो गई थी।

थोड़ी देर बाद उसने कमरे में प्रवेश करके कहा, "बाबू, आप मुझे बुला रहे थे?"

सतीश ने कहा, "ना।"

"आपके लिए पान और जल ले आऊँ?"

सतीश ने सिर हिलाकर कहा, "ले आओ।"

सावित्री ने पान और जल लाकर बिछौने पर रख दिया और फर्श पर बैठते हुए कहा, "अब, आपके लिए तम्बाकू भर लाऊँ!"

सतीश ने पूछा, "बिहारी कहाँ है?"

"बाजार गया है।" कहकर सावित्री चली गई और थोड़ी देर में तम्बाकू भरकर ले आई। "आज व्यर्थ में आपने छुट्टी कर दी।"

सतीश ने कहा, "सही है। मेरा स्वभाव कुछ अस्त है, इसलिए बीच-बीच में ऐसा न करने से बीमार हो जाता हूँ। इसके अलावा मैं विधिवत् डॉक्टर बनना भी नहीं चाहता। इधर-उधर की कुछ बातें सीखकर अपने गाँव के मकान पर एक बिन पैसे वाला मुफ्त दवाखाना खोल दूंगा। चिकित्सा के अभाव से गाँव के दीन-दुःखी हैजे की बीमारी से उजड़ते जाते हैं, उन लोगों की चिकित्सा करना ही मेरा उद्देश्य है।"

सावित्री ने कहा, "बिना पैसे की चिकित्सा में शायद अच्छी तरह सीखने की आवश्यकता नहीं है ? अच्छे डॉक्टर केवल बड़े आदमियों के लिए होते हैं और गरीबों के लिए गंवार। लेकिन ऐसा भी होगा कैसे ? आपके चले जाने से विपिन बाबू बड़ी कठिनाई में पड़ जाएँगे।"

विपिन बाबू की चर्चा होने से सतीश लज्जित होकर बोला, "मेरी तरह के मित्र उनको बहुत मिल जाएँगे। इसके अलावा अब मैं वहाँ जाता भी नहीं।"

सावित्री ने आश्चर्य के साथ पूछा, "जाते नहीं हैं ! तो फिर उनको गाना-बजाना कौन सिखाता है ?"

सतीश ने कहा, "गाना-बजाना क्या मैं सिखाता हूँ ?"

सावित्री बोली, "क्या मालूम बाबू, लोग यही कहते हैं।"

"कोई नहीं कहता, वह केवल तुम्हारे मन की उड़ानें हैं।"

"आपको विपिन बाबू का मुसाहिब कहते हैं यह भी क्या मेरी मन की गढ़ी बात है ?"

सतीश यह बात सुनकर आपे से बाहर हो उठा। इसका कारण था विपिन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध ; बाहर के लोगों के चर्चा का विषय होने पर उस चर्चा का फल साधारणतः क्या हो उठता है, इसकी जानकारी उसको थी। कलकत्तावासी विपिन की सांसारिक अवस्था और उसके आमोद-प्रमोद की अत्यधिक सजावट-बनावट के बीच परदेशी सतीश का स्थान नीचे ही उतर आएगा, सतीश के मन का यह तीव्र सन्देह सावित्री के तीक्ष्ण प्रहार से बिल्कुल ही उग्र हो करके बाहर निकल आया। वह गरज उठा, "क्या मैं मुसाहिब हूँ ? कौन कहता है, बोलो।"

"किसका नाम बताऊँ, जाऊँ राखाल बाबू का बिछौना धूप में डाल आऊँ।"

"बिछौना छोड़ो, नाम बताओ।"

"कुमुदिनी।"—सावित्री ने हँसकर कहा।

सतीश ने आश्चर्य से कहा, "तुम कैसे जान गईं ?"

सावित्री बोली, "उन्होंने मुझे काम करने के लिए बुलावा भेजा था।"

"तुमको ? साहस तो कम नहीं है। तुमने क्या कहा ?"

"अभी मैंने कुछ कहा नहीं है—सोच रही हूँ, वेतन अधिक है, काम कम है, इसलिए प्रलोभन जाग रहा है।"

सतीश की आँखों से आग की चिनगारियाँ निकलने लगीं। उसने कहा, "यह है विपिन की करतूत? तुम्हारा नाम वह अक्सर ही लेता रहता है।"

हँसी को रोककर सावित्री ने कहा, "नाम लेते रहते हैं? तब तो मालूम पड़ता है मेरे ऊपर मन आ गया है?"

क्रूर दृष्टि डालकर सतीश बोला, "सौ रुपये फाइन देने के बाद से लोगों को मैं दबाता नहीं—फिर देख रहा हूँ, कुछ देना पड़ेगा। अच्छा, तुम जाओ।"

सावित्री चल दी। राखाल के बिछौने को धूप में डालकर झटपट वापस आकर खिड़की से झाँककर उसने देखा—सतीश कुरता पहन चुका है और बक्स में से एक बण्डल नोट जेब में रख रहा है।

सावित्री दोनों चौखटों पर हाथ रखकर रास्ता रोककर खड़ी हो गई, बोली, "कहाँ जाएइगा?"

"काम है, हट जाओ।"

"क्या काम है, सुनूँ तो?"

सतीश नाराज होकर बोला, "हटो!"

सावित्री हटी नहीं। हँसकर बोली, "भगवान् ने आपको किसी गुण से वंचित नहीं रखा है। इसके पहले भी आप जुर्माना दे चुके हैं।"

सतीश क्रोध में कुछ बोला नहीं।

सावित्री बोली, "यह तो आपका बड़ा अन्याय है। कहीं मैं काम करूँ या न करूँ, यह मेरी इच्छा है—आप क्यों झगड़ा करना चाहते हैं?"

सतीश बोला, "मैं झगड़ा करूँ या न करूँ, यह मेरी इच्छा की बात है, तुम क्यों रास्ता रोक रही हो?"

सावित्री ने हाथ जोड़कर कहा, "मेरे आने पर जाइएगा।"

सतीश ज्यों ही लौटकर खटिया पर बैठा, त्यों ही सावित्री ने बाहर आकर दरवाजे की जंजीर चढ़ा दी। धीरे-धीरे कहती गई, "जब तक आप शान्त न होइएगा, दरवाजा नहीं खोलूँगी।"

वह चली गई। बाहर न जा सकने के कारण सतीश अपने कुरते

को जमीन पर फेंककर लेट गया।

उसका परिचय विपिन के साथ इलाहाबाद में हुआ था। कलकत्ते जाकर यथेष्ट घनिष्ठ हो जाने पर भी इस घर में उसका जब-तब आना-जाना बढ़ता चला जा रहा था। आज सावित्री की बातों से वह कारण बिल्कुल ही सुस्पष्ट हो उठा। सतीश का मित्र और बड़ा आदमी होने से इस घर में उसका बहुत सम्मान था। सतीश की अनुपस्थिति में भी उसके प्रति आदर था, जिससे त्रुटि न होने पावे, इसका भार सतीश ने सावित्री को सौंप दिया था। इस आदर-सत्कार को विपिन बाबू पूरी मात्रा में वसूल करते जा रहे थे, यह समाचार घर पर लौट आने पर सतीश जब-तब पा रहा था। अपने मन की इस सरल उदारता की तुलना में विपिन की उस भद्दी क्षुधा ने गम्भीर कृतघ्नता की भाँति आज उसको बाँध दिया और सभी निमंत्रण-आमंत्रण, सौहार्द्र-घनिष्ठता एक ही पल में उसके लिए विष के समान बन गईं। बाहरी तौर से वह चुपचाप बना रहा, लेकिन मर्मान्तक क्रोध पिंजड़े के बन्द पशु के समान उसके हृदय में इस कोने से उस कोने तक घूमने लगा।

सावित्री ने एक घण्टे के बाद वापस आने पर खिड़की के बाहर से धीरे-धीरे पूछा, "क्रोध शान्त हो गया बाबू?"

सतीश मौन।

दरवाजा खोलकर सावित्री कमरे में आकर बोली, "अच्छा, यह कैसा अत्याचार है, बताइए न?"

सतीश ने किसी ओर भी न देखकर पूछा, "अत्याचार?"

सावित्री ने कहा, "सभी अपनी भलाई खोजते हैं, मैं भी यदि कहीं कोई अच्छा काम पाऊँ तो उसमें आप नाराज क्यों होते हैं?"

सतीश ने उदास भाव से कहा, "नाराज क्यों होऊँगा? तुम्हारी इच्छा होगी तो अवश्य जाओगी।"

"फिर मेरे नये मालिक को मारने-पीटने की तैयारी आप क्यों कर रहे हैं?"

"यदि तुम्हारी वस्तु कोई धोखा देकर ले जाय तो तुम क्या करोगी?"

"लेकिन मैं क्या आपकी वस्तु हूँ?" कहकर सावित्री हँस पड़ी।

सतीश ने लजाकर कहा, "धत् ! यह बात नहीं है, लेकिन···।"

सावित्री ने कहा, "लेकिन की अब आवश्यकता नहीं है, मैं जाऊँगी ही नहीं।"

सतीश का कुरता जमीन पर पड़ा था, सावित्री ने उसको उठा लिया और जेब से नोट का बंडल निकाल लिया। बक्स में चाभी लगी हुई थी, नोटों को अन्दर रखकर ताला वन्द करके चाभी अपने रिंग में पहनती हुई बोली, "मेरे ही पास रहेगी। रुपये की आवश्यकता पड़ने पर माँग लेना।"

सतीश ने कहा, "यदि तुम चोरी करो तो ?"

आँचल से बँधे हुए चाभियों के गुच्छे को पीठ पर फेंककर सावित्री बोली, "मैं चोरी करूँगी तो आपको कोई चोट न पहुँचेगी।"

सावित्री के चेहरे की ओर सतीश ताकता रहा। उस क्षण की दृष्टि से उसने क्या देख लिया, वही जानता है। चौंक उठने पर वह बोल उठा, "सावित्री, तुम्हारा घर कहाँ है ?"

"बंगाल में।"

"इससे अधिक और कुछ न बताओगी।"

"ना।"

"घर कहाँ है, भले ही न बताओ, जाति क्या है, यह तो बताओ ?"

जरा हँसकर सावित्री ने कहा, "यही जान लेने से क्या होगा ? मेरे हाथ का पकाया भात तो आप खाएँगे नहीं।"

सतीश थोड़ी देर तक सोचकर बोला, "सम्भव नहीं है। पर जोर लगाकर बिलकुल 'ना' भी नहीं कह सकता।"

अपनी चमकीली आँखों को सतीश के चेहरे पर जमा करके क्षण के बाद ही वह हँस पड़ी। बालिका के समान सिर हिलाकर अपने स्वर में अनिर्वचनीय अपनत्व से बोली, "ना कह सकते, क्यों बताइये न ?"

सतीश के सिर पर मानो भूत सवार हो गया। उसकी छाती का रक्त उथल-पुथल करने लगा। वह बोल उठा, "क्यों, मैं जानता नहीं हूँ सावित्री, लेकिन तुम पकाकर दोगी तो मैं खाऊँगा, यह कह देना कठिन है।"

"कठिन है ? अच्छा, यह एक दिन देख लिया जाएगा। ओह ! छोड़ो-छोड़ो, राखाल बाबू का तकिया धूप में डालना भूल गई।" कहकर वह तीर

की तरह निकल गई।

"एक बात सुनती जाओ।" सतीश एकाएक सामने की ओर झुक पड़ा और उसके आँचल का छोर उसने पकड़ लिया।

अपनी आँखों से बिजली की वर्षा करके बोली, "छिः ! आ रही हूँ..." और झटके से आँचल छुड़ाकर ओझल हो गई।

एक काण्ड हो गया। उसका अचानक त्रासयुक्त पलायन, दबे हुए कंठ की 'आ रही हूँ' की आवाज और आँखों की बिजली ने वज्राग्नि के समान सतीश की समस्त दुर्बुद्धि को एक ही पल में जलाकर भस्म कर डाला। क्षुद्र लज्जा से उसका सारा शरीर शूल से बिंधे हुए साँप की भाँति मरोड़-मरोड़-कर उठने लगा। उसके मन में यह ध्यान आया कि इस जन्म में वह फिर सावित्री को अपना मुँह न दिखा सकेगा। किसी कारण से वह फिर न आ जाय, इस भय से वह उसी क्षण एक रैपर खींचकर तूफान के वेग से बाहर निकल गया। तीन-चार सीढ़ियाँ बाकी ही थीं कि उसी समय सतीश ने सावित्री के कण्ठ की आवाज फिर सुन ली। वह रसोईघर से दौड़कर चली आई थी और पुकारकर बोल रही थी, "खाना खाकर घूमने जाइए बाबू; नहीं तो वापस आने में देर होने से सब कुछ गड़बड़ हो जाएगा।"

मानो सुनाई ही नहीं पड़ा, इस रुख से सतीश बाहर चला गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल जिस समय सावित्री रसोई के बारे में पूछने के लिए आई, सतीश ने धीरे से कहा, "मन में कुछ सोच मत करना।"

सावित्री ने आश्चर्य के साथ पूछा, "सोच मैं न करूँगी ?"

सतीश सिर झुकाकर चुप ही रहा।

सावित्री ने मीठी हँसी हँसकर कहा, "अच्छा मेरे पास समय नहीं है—क्या रसोई बनेगी, बताइए न ?"

"मैं नहीं जानता—तुम्हारी जो इच्छा हो।"

"अच्छा !" कहकर सावित्री चली गई, उसने फिर नहीं पूछा।

लौटकर बोली, "कैसा काण्ड मचा रखा है, बताइये तो ! आज भी 'पादमेकं न गच्छामि' ही रहेगा !"

सतीश फिर भी चुप रहा।

सावित्री ने कहा, "नौ बज चुके हैं।"

सतीश समय बीत जाने की सूचना से रत्ती-भर भी घबराया नहीं। वह बोला, "बज जाएँ, मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है।"

सावित्री आलस्य में व्यर्थ समय नष्ट करना बिलकुल नहीं सह सकती थी। इसी कारण वह कुछ दिनों से आंतरिक रूप से कुपित और असहिष्णु होती जा रही थी। जरा रूखे कण्ठ से उसने पूछा, "क्या अच्छा नहीं लग रहा है ? पढ़ने जाना ?"

मन-ही-मन सतीश चिढ़ता जा रहा था। उसके चेहरे की ओर देखकर सावित्री यह समझ गई और एक क्षण चुप रहकर अपने स्वर को कोमल बनाकर बोली, "लिखना-पढ़ना अच्छा नहीं लग रहा है। अब शायद किसी औरत का आँचल पकड़कर खींचातानी करनी अच्छी लग रही है। स्कूल जाइए ! व्यर्थ झगड़ा-टंटा मत कीजिए।"

उसके अपमान में हार्दिक स्नेह और कल्याण के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था किन्तु बातों के तरीके ने सतीश के समूचे अंग में मानो काँटे-दार लता को लपेट दिया। देखते-देखते उसकी आँखें और चेहरा क्रोध से लाल हो उठा। वह बोला, "जो बात मुँह से निकल पड़ती है तुम वही कह डालती हो। आश्रय पा लेने पर केवल कुत्ते ही सिर पर नहीं चढ़ जाते, मनुष्य को भी यह बात याद दिलानी पड़ती है।"

सावित्री पल भर चुप रही, फिर स्वर को और धीमा करके बोली, "पड़ती तो अवश्य ! नहीं तो आपको ही याद दिलाने की क्यों आवश्यकता पड़ती कि यह है भले आदमियों का मकान, वृन्दावन नहीं है।"

वह तुरन्त वहाँ से चली गई।

सतीश आश्चर्य से स्तम्भित हो रहा।

सावित्री उसको इस प्रकार बींध सकती है, इस बात को तो वह अपने मन में स्थान भी नहीं दे सकता था। कुछ देर एक ही दशा में बैठा रहकर वह हठात् उठा और किसी प्रकार स्नान-भोजन करके पढ़ने के बहाने वह बाहर चला गया।

उसका अपमान से आहत मन स्वयं पर शासन करने लगा। वह जितना ही अपने अद्भुत व्यवहार का कारण खोजने की चेष्टा करता उतनी ही मन में एक ही बात बार-बार चक्कर काटने लगी। किसलिए उसने

आँचल पकड़ लिया था ? कौन-सी बात उसको कहने की आवश्यकता पड़ी थी और सावित्री इस तरह भागकर न चली जाती तो वह क्या कहता ? क्या करता ? इसी प्रकार सारा दिन वह अपने ही हथियार से स्वयं ही घायल होकर संध्या समय गंगा तट पर जाकर निर्जीव की भाँति एक पत्थर पर बैठ गया।

सावित्री के सामने मन की दुर्बलता अचानक प्रकट हो जाने पर वह लज्जा के मारे मकान से लम्बी साँस भरता हुआ भाग गया था, तब लज्जा में मानो कुछ मिठास मिली हुई थी। मानो ओट में रहकर किसी ने उसमें भाग ले लिया था। लेकिन आज सावित्री के व्यंग्य-वचन की आग से उस रस की अन्तिम बूँद तक सूख गई और लज्जा बिलकुल ही शुष्क-कठिन होकर उसके हृदय में बद्धमूल होकर बैठ गई। उस दिन उसके आत्म-सम्मान ने केवल सिर झुका दिया था, आज वह उसके कन्धे पर टूट पड़ा और सबसे बढ़कर यह दुःख चोट पहुँचाने लगा कि इस स्त्री से उसने इतने दिन जितने परिहास किये हैं, उन सभी का आज एक गन्दा अर्थ निकाला जाएगा। कल प्रातःकाल तक सचमुच ही उसके परिहासों में व्यंग्य के अलावा कोई दूसरा अर्थ नहीं था। निर्जन दोपहर के इतने ही असमय के बाद उस बात को तो मुँह में लाने का भी अब उपाय नहीं रहा। आसक्ति बहुत दिनों से छिपी हुई दशा में प्रतीक्षा नहीं करती थी, इस बात पर तो सावित्री किसी प्रकार भी विश्वास न करेगी। वह अकेली—इनके मन में यही बात थी।

लेकिन उसके मन में तो कुछ नहीं था। इस सत्य को समझाकर बता देने का सुअवसर उसको कब मिलेगा ? वह अच्छा लड़का नहीं है, इसकी लज्जा भी उसको खूब अधिक नहीं थी, लेकिन पाखंड की निन्दा वह कैसे सहेगा ? उसने मन-ही-मन कहा—'यदि वह चोर है तो चोर के समान सेंध काटते समय ही हाथोंहाथ क्यों न पकड़ लिया गया ?'

सावित्री मानो मन-ही-मन हँसकर कहेगी—यह साधु जटा-कमण्डलु पीठ पर बाँधकर त्रिशूल से सेंध काट रहा था, पकड़ा गया है। इस अपवाद की कल्पना उसको जलाने लगी। इसी प्रकार बैठे रहने पर रात कितनी बीत गई, इसको वह जान भी न सका। शीत का कोप होने से जब उसको जाड़ा लगने लगा और उस पार चटकल की घड़ी में जब बारह बज गए,

तब सतीश उठ पड़ा और अपने घर की तरफ रवाना हो गया। कुछ क्षण के लिए मानो वह अपने काल्पनिक अंश को भूल गया था, लेकिन चलते-चलते मकान की दूरी जितनी घटने लगी, उसका मन फिर उसी अनुपात से छोटा होने लगा। अंत में गली के मोड़ के पास आ जाने पर उसके कदम उठ ही नहीं रहे थे, ऐसी दशा हो गई।

धीरे-धीरे किसी प्रकार वह मकान के सामने आकर चुपचाप खड़ा रहा। कहीं भी कोई जाग रहा है ऐसा मालूम नहीं हुआ और यद्यपि वह जानता था कि इतनी रात को सावित्री अवश्य ही अपने घर लौट गई होगी तो भी दरवाजा खटखटाने-पुकारने का साहस उसको नहीं हुआ। भय होने लगा कि कहीं वही आकर दरवाजा न खोल दे। ठीक उसी समय किवाड़ अपने आप खुल गया।

सतीश चुप रहा। फिर बोला—"बिहारी है ?"

"हाँ बाबू।"

"सब खा चुके ?"

"जी हाँ।"

"नौकरानी चली गई ?"

"जी हाँ, मुझे बैठे रहने को कहकर वह अभी चली गई।"

सतीश मानो यह सुनकर बच गया। प्रसन्न होकर उसको दरवाजा बन्द करने को कहकर ऊपर चला गया।

बिहारी आकर बोला, "बाबू, आपका खाना ?"

"मैं खाकर आया हूँ।"

बिहारी ने कहा, "आपके लिए पान और जल मेज पर रखा है।"

"ठीक—तू जाकर सो जा।"

बिहारी चला गया। सतीश बिस्तर पर लेटकर सो गया।

सावित्री का मन झगड़ा कर चुकने के बाद अच्छा नहीं था। सतीश की कटुक्ति का उत्तर देना उचित काम नहीं हुआ है, यह बात सारे दोपहर उसको क्लेश देती रही। इसलिए दिन में किसी समय एकान्त में क्षमा-याचना कर लेने की आशा में प्रतीक्षा करते-करते जब सन्ध्या बीत गई, तब उसकी आशा भय में परिणत होने लगी।

वह जानती थी इस कलकत्ते में विपिन के यहाँ जाने के सिवा सतीश के लिए और कोई स्थान नहीं है। इसीलिए सबसे पहले यह भय उत्पन्न हो गया कि वह उसी दल में सम्मिलित हो गया होगा। क्रमशः रात बढ़ने लगी। सतीश नहीं आया। वह और कहीं जा सकता है, ऐसा विचार भी उसके मन में नहीं आया। सन्देह दृढ़ होकर जब विश्वास में परिणत हो उठा, तब प्रतीक्षा करना भी उसके लिए असम्भव हो उठा। वास्तव में उसको घृणा होने लगी कि क्षमा माँगने के लिए वह ऐसे आदमी की बाट देख रही है। इस कारण बिहारी को बैठने को कहकर सावित्री वड़ी रात को घर लौट गई। अपने घर जाकर वह बिस्तर पर लेटी तो रही, लेकिन आँखों में नींद नहीं आई। प्रतीक्षा न कर सकने पर अंधेरा रहते ही वह चल दी। मारवाड़ी स्त्रियाँ रास्ते में उस समय गाते-गाते गंगा स्नान करने जा रही थीं।

सावित्री ने कहा, "गंगा मैया, जाकर सब अच्छा ही देखूं।"

उसके होंठ काँपने लगे। आँसू से आँखें भर गईं, और इस कल्पित आशंका से अपने सम्पूर्ण मन को परिपूर्ण बनाकर वह राह में तेज कदमों से चलते-चलते हजारों बार मन-ही-मन उच्चारण करने लगी—'सकुशल रहे, जो ही मन करे लेकिन अच्छा रहे।' मकान पर पहुँचने पर पुकारने के बाद बिहारी ने दरवाजा खोलने के साथ ही कहा, "सतीश बाबू वड़ी रात को आए थे, और मालूम नहीं कहाँ से खाना खाकर आए थे।" यह सूचना पहले ही दे देने की आवश्यकता है यह बात उस बूढ़े से छिपी नहीं थी।

सावित्री ऊपर जा रही थी, ठिठककर खड़ी हो गई। माथे को सिकोड़कर उसने पूछा, "शायद बाबू ने खाया नहीं?"

"ना, उनका खाना तो ढका हुआ रखा है।"

सावित्री एक 'हूँ' कहकर ऊपर चली गई। उसका दुश्चिन्ता से ग्रस्त मन निर्भय होने के साथ ही फिर ईर्ष्या से जल उठा।

दिन चढ़ आने पर जैसे ही सतीश की नींद टूटी वैसे ही सावित्री आ खड़ी हुई। उसके मुँह की ओर देख लेने के साथ ही सतीश ने सिर झुका लिया।

कुछ देर बाद सावित्री ने कहा, "क्या रसोई बनेगी, यह जान लेने

के लिए आई हूँ।"

"जो रोज बनती है।"

"अच्छा!" सावित्री जाते-जाते ही फिर खड़ी हो गई। बोली, "लिखने-पढ़ने की तरह ही क्या खाना-पीना भी अब अच्छा नहीं लगता बाबू को?"

धीरे से सतीश ने कहा, "मैं खा आया था।" उसने भय से झूठी बात कह दी। लेकिन कहाँ? इस बात को भी सावित्री ने घृणा के कारण नहीं पूछा। थोड़ी देर चुप रहकर बोली, "आज दो दिन से आप भाग रहे हैं। किस भय से, जरा सुनूँ तो? मेरे कारण यह असुविधा होती हो तो आप मुझे जवाब दे सकते हैं।"

मुँह ऊपर उठाकर सतीश ने कहा, "तुम्हारा अपराध क्या है? इसके अलावा मैं जवाब देने वाला कौन हूँ, यह मकान तो केवल मेरा अकेले का नहीं है।"

सावित्री ने कहा, "अकेले का होता तो शायद जवाब दे देते! अच्छा तो मैं स्वयं ही चली जा रही हूँ।"

सतीश चुप। सावित्री मन-ही-मन और भी जल उठी। बोली, "मेरे जाने से आप प्रसन्न होते हैं? आपके पैरों पर गिरती हूँ सतीश बाबू, हाँ या नहीं, एक उत्तर दीजिए।"

फिर भी सतीश चुप, सावित्री इस मकान पर अपने लिए कितना अधिकार रखती है इस बात को वह जानता था और इस प्रकार उसके चले जाने से कोई भी बात छिपी न रहेगी। तब सब बातें एक मुँह से दूसरे मुह में बढ़ते-बढ़ते कैसी घृणित आकृति धारण कर लेंगी, इसका निश्चित अनुमान करके वह डर गया। क्षण-भर चुप रहकर उसने मीठे स्वर से कहा, "मुझे क्षमा करो सावित्री! जब तक मैं यहाँ हूँ, कम-से-कम तब तक तो तुम कहीं भी मत जाओ!"

कोई और समय होता तो वह तुरन्त क्षमा कर देती, लेकिन सतीश के सम्बन्ध में वह शायद एक सन्देह मन-ही-मन पोषण कर रही थी, इसलिए इस मृदु कण्ठस्वर को कपटाचरण समझकर वह निर्दय हो उठी। वह उसी क्षण तिक्त स्वर में बोली, "आप इतना आडम्बर करके क्षमा माँगकर

साधु बनने जा रहे हैं, किसलिए ? मुझ जैसी नीच स्त्री का आँचल क्या आपने नया खींचा है कि लज्जा से बिलकुल ही मरते जा रहे हैं ? इससे अच्छा यह है कि आप अपने घर चले जाइए। लिखना-पढ़ना आपके बस का नहीं है।"

जो सतीश उग्र स्वभाव के कारण किसी की भी परवाह नहीं करता था, वातों को सह लेना जिसका स्वभाव नहीं था, वह इस समय इतने बड़े अपमान की बात से चुप बैठा रहा।

उसका अपराधी मन भारी बोझ से दबे हुए बोझ ढोने वाले पशु के समान इस प्रकार निरुपाय दशा में राह में पड़ा हुआ था कि सावित्री के निष्ठुर आघात से भी वह किसी प्रकार विचलित न हो सका।

सावित्री चौंक उठी। उसकी स्पर्धा क्रोध को भी पार कर गई।

वड़ी देर तक वह मौन रही। फिर धीरे-धीरे बाहर चली गई।

तीन

सावित्री आज समस्त काम-काज तो सामान्यतः करती रही। उसके मन में एक उत्कण्ठा दिन-भर बनी रही। सतीश यदि कल के समान आज भी क्रोध करता अथवा एक भी बात का उत्तर देता तो अच्छा था, लेकिन उसने कुछ भी नहीं कहा। गम्भीर, उदास मुख से नित्य की भाँति भोजन कर पढ़ने चला गया और ठीक समय पर वापस आ, मौन होकर घर में बैठा रहा।

ओट से सावित्री सब-कुछ देखती रही, कोई वहाना लेकर भी उसके कमरे में जाने का आज उसे साहस नहीं हुआ। नित्य संध्या के पहले वह अपने हाथों से उसका कमरा झाड़-बुहार आया करती थी, आज उसने विहारी को भेज दिया।

संध्या को बिहारी रोशनी जला आया।

इसी समय राखाल बाबू के कमरे में शतरंज जमती है, इसलिए वह आज भी जमा और रह-रहकर बात-बात पर हँसी के फौव्वारे छूटने लगे। सामने की खुली छत पर कोई न था। सावित्री ने इधर-उधर देखा। अपने

सारे संकोच को उसने बरबस घसीटकर निकाल फेंका और दबे पाँवों सतीश के कमरे में आकर खड़ी हो गई।

सतीश बिस्तर पर चित पड़ा हुआ मानो छत की कड़ियाँ गिन रहा था। वह उठ बैठा, सावित्री ने क्षण-भर चुप रहकर पूछा, "संध्या-वन्दन का सामान ठीक कर दूँ ?"

सतीश ने कहा, "कर दो।" फिर सावित्री मौन। फिर दो-चार क्षण बाद वह बोली, "भला सोचिए तो सही। लोग क्या कहेंगे ?"

सतीश निरुत्तर।

सावित्री ने कहा, "आपने मुझे तो रहने को कहा लेकिन आप स्वयं यह क्या कर रहे हैं ?"

सतीश ने गम्भीर भाव से कहा, "मैं क्या कर रहा हूँ ? कुछ तो नहीं —हाँ, केवल मौन हूँ।"

सावित्री ने कहा, "यह मौन ही तो बुरा है। जब और कोई चुप नहीं है, तब आपके चुप रहने पर ही तर्क होगा। क्या आप यही चाहते हैं ?" क्षण-भर स्थिर रहकर बोली, "व्यर्थ मुसीबत मोल लेने की कहावत क्यों चरितार्थ करना चाहते हैं ? कोई दोष नहीं, कोई बात नहीं, फिर अपराधी का स्वाँग क्यों बनाए हुए हैं ? इसी पर पाँच आदमी कानाफूसी करेंगे, हँसी उड़ाएँगे। हो सकता है कि आप इसे सहन कर लें पर मेरे लिए तो सहना असम्भव होगा। मैं समझती हूँ, मुझे यहाँ से शीघ्र ही विदा हो जाना चाहिए।"

सतीश ने मन-ही-मन बेचैन-सा होकर कहा, "क्या सचमुच ही मैंने कोई अपराध किया है ?"

सावित्री ने कहा, "ना-ना। जरा सोचिए भी तो आप ही मन साफ हो जाएगा। मेरे साथ आपने जो कुछ किया है, वह तो···" इतना कहकर सावित्री एकाएक रुक गई। जैसे दौड़ता हुआ घोड़ा अचानक किसी गहरी खाई के किनारे पहुँचकर अपने दोनों पाव उठाकर अड़ जाता है, ठीक उसी प्रकार सावित्री की चलती हुई जीभ भी एकाएक अड़ गई। उसकी अचानक इस चुप से विस्मित होकर सतीश के सिर उठाते ही आँखें चार हुईं, सावित्री मर-सी गई। वह कहने चली थी कि उस जैसी स्त्री के प्रति ऐसा अपराध

करना कोई लज्जा की बात नहीं है—किन्तु मारे लज्जा के उसका रोम-रोम सिहर गया।

कुछ कहना चाहता था सतीश।

सावित्री ने रोककर कहा, "चुप रहिए। जाने दीजिए। झूठ-मूठ तिल का ताड़ बनाकर कष्ट न उठाइए। अरे ओ बिहारी! बाबू की पूजा का स्थान जरा जल्दी से धो दे। मैं बड़ी देर से आसन लिए खड़ी हूँ।"

बिहारी किसी काम से इसी ओर आ रहा था। तुरन्त ही जल लाने वापस चला गया। सावित्री ने रूठकर कहा, "आपके रंग-ढंग और बात-व्यवहारों से दो दिनों से मैं कितनी परेशान हूँ, पर आपको एक बार मेरी इस दशा पर आँख उठाकर देखने तक का अवकाश नहीं।"

सतीश को उसकी इतनी शीघ्रता से कही हुई इन बातों को भली-भाँति समझने का अवसर नहीं मिला। हाँ, उसकी भीतरी ग्लानि मानो साफ हो चली।

उसने व्यग्र स्वर में कहा, "पर क्या मैंने तुम्हारा अपमान नहीं किया, सावित्री?"

सावित्री ने घबराकर कहा, "आप समझते नहीं तो मैं कैसे समझाऊँ? सौ बार—हजार बार कहती हूँ, कि आपके उस व्यवहार से मेरा जरा भी अपमान नहीं हुआ। कृपा कर आप मन को स्थिर कीजिए। बस, हाथ जोड़-कर मेरी आपसे यही विनती है।"

सतीश कुछ कहना ही चाहता था, किन्तु सावित्री भौंहों के इशारे से मना कर झट बोल उठी, "बिहारी, आ गया, ला!" बिहारी लोटे में जल लाया था। सावित्री ने उससे लोटा लेकर कमरे का एक कोना अच्छी प्रकार धो, आँचल से पोंछकर सतीश से कहा, "अच्छा, अब आप जाइए, हाथ-पैर धोइए और कपड़े बदलकर संध्या-वन्दन कर लीजिए। अर्घा और आचमनी उस ओर रखी है।" हाथ से दिखा और बातों से सतीश के हृदय के असह्य भार को एकदम हल्का कर सावित्री बिहारी को साथ लेकर धीरे-धीरे बाहर चली गई।

स्वस्थ मन से संध्या-वन्दन समाप्त कर सतीश ने उठते ही देखा कि इसी बीच में कोई चुपचाप आसन बिछाकर भोजन की थाली रख गया है।

यद्यपि कमरे में और कोई नहीं था, तो भी उसने समझ लिया कि वह अकेला नहीं है। आसन पर बैठकर उसने धीरे-धीरे कहा, "अभी इतना अधिक खा लूँगा तो फिर रात को न खा सकूँगा।" बाहर से उत्तर आया, "खाने की आवश्यकता भी न होगी। विपिन बाबू के यहाँ का निमन्त्रण आया हुआ है।"

सतीश हँस पड़ा, बोला, "जाओ, तंग न करो। मैं कहीं न जा सकूँगा।"

सावित्री ने ओट से कहा, "क्या यह सम्भव है? बेचारे कह गए हैं। आप तो जानते ही होंगे। आपके न जाने से सारे किये-कराये पर पानी फिर जाएगा। शायद गाने-बजाने की···।"

कुछ भी हो। उसकी बातों पर कोई विशेष टीका-टिप्पणी न कर सतीश चुपचाप खाने लगा। खा-पीकर मुँह-हाथ धो, सिरहाने बत्ती रख, चारपाई पर लेट भले विद्यार्थी के समान डाक्टरी की एक पुस्तक हाथ में ले पन्ने उलटने लगा, किन्तु पढ़ने में उसका मन न लग सका। उसका चिन्ता-रहित चित्त बन्धनमुक्त घोड़े के समान व्यर्थ दौड़ने लगा।

ब्राह्मण देवता ने उस समय रसोईघर में चूल्हे पर चावल-दाल की हँडिया चढ़ा दी थी और बिहारी से गाँजा मलवा रहे थे। राखाल बाबू के कमरे में चौपड़ के पासे की खड़खड़ाहट के साथ शोरगुल बढ़ता जा रहा था।

सतीश ने पुकारा, "सावित्री!" सावित्री उस समय भी चौखट के बाहर बैठी हुई थी, बोली, "कहिए।"

सतीश ने कहा, "विपिन बाबू के निमन्त्रण में जाना महापाप है। बिना समझे जो पाप किया, वह तो किया ही, अब समझ-बूझकर पाप नहीं करूँगा।"

सावित्री ने बाहर से पूछा, "बात क्या है?"

सतीश ने कहा, "मुझे मालूम है कि उसके गाने-बजाने का प्रबन्ध कहाँ हो रहा है, उस स्थान पर जाना ही पाप है।"

सावित्री, "तो ऐसी जगह मत जाइए।"

सतीश ने उत्तेजित होकर कहा, "निश्चय ही नहीं जाऊँगा, लेकिन वह सहज ही मुझे छोड़ देगा? ना-ना। इसी से तुम्हें पहले से चेताये देता हूँ। यदि कोई आए भी तो टाल देना। कह देना मैं घर में नहीं हूँ, रात को आऊँगा भी नहीं। समझ गई न?"

सावित्री ने कहा, "समझ गई।"

सतीश ने एक आवश्यक कर्तव्य का पालन कर निश्चिन्त भाव से साँस लेकर कहा, "बड़ी तेज ठण्डी हवा आ रही है। सावित्री, जरा खिड़की बंद कर दो।" सावित्री कमरे में आकर खिड़की बन्द करने लगी। सतीश एक-टक उसकी ओर देखता रहा। देखते-देखते कृतज्ञता से उसका हृदय भर गया। प्यार से बोला, "अच्छा सावित्री ! तुम अपने को नीच स्त्री क्यों मानती हो ?"

सावित्री मुड़कर बोली, "जो सच है, वह क्यों नहीं कहूँगी ?"

सतीश ने कहा, "यह तो सच नहीं है। तुम गंगाजी में गर्दन भर पानी में खड़ी होकर कहो तब भी मैं इसे नहीं मानूँगा।"

सावित्री ने मुस्कराकर कहा, "क्यों नहीं मानेंगे ?"

सतीश ने कहा, "यह मैं नहीं जानता। शायद इसीलिए कि यह सच नहीं है। न तो नीचों के समान तुम्हारा व्यवहार है, न वैसी बातचीत और न सूरत-शक्ल ही···हाँ, तुमने इतना लिखना-पढ़ना कहाँ सीखा ?"

सावित्री सहमकर बैठ गई और हँसकर बोली, "कितना ? जरा सुनूँ भी तो।"

सतीश उसको समझाने के लिए प्रस्तुत हुआ। खुली पुस्तक उसने एक ओर रख दी, फिर ठहर गया। कान खड़े कर वह आहट लेने लगा। जूतों की चरमराहट सुनाई पड़ी। क्षण भर में उसके कमरे के बहुत ही निकट मदभरे कण्ठ की गम्भीर पुकार आई, "सतीश बाबू !"

सतीश समझ गया कि विपिन के दल वाले आ पहुँचे हैं। उसे ले जाएँगे। आगे-पीछे की कोई बात न सोच उसने झट मुँह से फूंक मारकर रोशनी बुझा दी और सारा शरीर एक कम्बल से ढककर सो रहा। थोड़ी दूर पर बैठी हुई सावित्री व्याकुल होकर बोली, "अरे ! यह क्या किया आपने ?"

क्षण भर में अँधेरे द्वार के सामने दो मूर्तियाँ आकर खड़ी हुईं। एक ने कहा, "यही तो सतीश बाबू का कमरा है।"

दूसरे ने कहा, "नौकर ने तो कहा था कि बाबू कमरे में ही हैं।"

पहले ने झुंझलाकर कहा, "कमरे में तो अँधेरा है। भला कोई भला-

मानस शाम को अँधेरे में बैठा रहता है ? तुम भी बस···।"

दूसरे ने उत्तर में उसके कान में कुछ कहा। पाकेट से दियासलाई ढूंढ़ निकाली और काँपते हुए हाथ से रोशनी जलाने लगा।

इधर बिछौने पर सतीश के शरीर का खून पानी हो गया। वह सिर से पैर तक पसीने-पसीने होने लगा। इधर सावित्री मारे लज्जा और घृणा के काठ हो गई।

पहला आदमी घर में घुसकर ज्यों ही दियासलाई जलाने लगा, त्यों ही सावित्री उठ खड़ी हुई।

दूसरे आदमी ने जरा हटकर पूछा, "सतीश बाबू कहाँ हैं ?"

सावित्री चुपचाप बिस्तर की ओर संकेत करके बाहर चली गई। उस के जाते ही दोनों ने ठठाकर हँसना शुरू कर दिया। उस हँसी का शब्द और अर्थ सावित्री के कानों में जा खटका। सतीश कम्बल के भीतर बार-बार अपने लिए मृत्यु बुलाने लगा।

उन लोगों ने कम्बल खींचकर अलग फेंक दिया और सतीश को जबर-दस्ती पकड़कर ले चले।

जब तक उनकी विकट हास्य-ध्वनि एकदम घर से बाहर निकल वायु-मण्डल में न मिल गई, तब तक सावित्री एक अँधेरे कोने में दीवार से सिर लगाकर इस प्रकार खड़ी रही, जैसे उसके सिर पर वज्रपात हुआ हो।

किन्तु घर में किसी को कुछ मालूम न हो सका। रसोईघर में महा-राज अभी गाँजे का दम लगाकर बिहारी को यह समझा रहे थे कि वेदों ने किस प्रकार इसे मुक्ति देने वाला बतलाया है और एक कमरे में राखाल बाबू का दल इस बात की मीमांसा कर रहा था कि हड्डी का पासा आदमी की चिल्लाहट सुन सकता है या नहीं।

तीनों मार्ग में आकर एक गाड़ी में बैठ गए। उनकी हँसी असह्य हो जाने पर सतीश ने बहुत ही रूखे स्वर में कहा, "या तो आप लोग चुप रहिए, नहीं तो मुझे क्षमा कीजिए, मैं उतर जाता हूँ।"

उसकी बात सुन, एक तो "अच्छी बात है" कहकर ठठाके हँस पड़ा और दूसरा अपने साथी को चुप रहने के लिए डाँट बताते हुए जोर से हँस उठा। इन शराबियों को समझाना व्यर्थ समझकर सतीश निष्फल क्रोध से

खिड़की से मुँह निकाल मार्ग की ओर देखने लगा।

रात को, अँधेरे बरामदे में सावित्री चुपचाप बैठी थी। मालूम होता है, शाम को जो लज्जाजनक घटना हो गई थी, उसका मन अब भी उसकी आलोचना कर रहा था।

उसी समय बिहारी पास आकर बोला, "सब लोग खा-पी चुके। महाराज तुम्हें जलपान करने को बुला रहे हैं।"

सावित्री ने सिर उठाकर दु:खी मन से कहा, "बिहारी, आज मैं नहीं खाऊँगी।" बिहारी सावित्री को प्रेम की दृष्टि से देखता था। वह उसे मानता भी था। चिन्तित होकर पूछा, "खाओगी क्यों नहीं? तबियत तो अच्छी है?"

"हाँ, तबियत ठीक है, लेकिन खाने को जी नहीं चाहता। जाओ, तुम लोग खालो।"

बिहारी ने कहा, "तो चलो, तुम्हें पहुँचा आऊँ।"

सावित्री ने कहा, "अच्छा चलो। लेकिन हाँ, बिहारी, एक बात है, सतीश बाबू अभी तक लौटे नहीं हैं; तब तक तुम जागे रह सकोगे?"

कुछ चौंककर बिहारी ने कहा, "मैं! लेकिन मेरी कमर में तो आज फिर दर्द का दौरा पड़ गया है।"

"तब क्या होगा बिहारी?"

जरा सोचकर बिहारी ने कहा, "यदि आज तुम महाराज को बुलाकर कह दो तो···।"

सावित्री बोली, "ना, यह न होगा। बेचारे बाबाजी को इस सर्दी में कष्ट न दूँगी।"

इच्छा न रहने पर भी बिहारी कुछ देर तक इच्छा-हीन चुप रहकर बोला, "अच्छा, न सही, मैं ही रहूँगा चलो, तुम्हें पहुँचा आऊँ।"

सावित्री उठ खड़ी हुई। दो-एक कदम चलकर ठहर गई, बोली, "बिहारी, रहने दो। तुम जाओ, खाओ। उसके बाद ही जाऊँगी।"

सावित्री वापस आकर वहीं बैठ गई और चुपचाप अंधकारमय आकाश की ओर देखने लगी।

आज सतीश के लिए उसे बड़ा भय था। उसे शराबियों के हाथों में

पड़ते उसने अपनी आँखों से देखा था। इससे उसका मन घर जाने को तैयार न हो सका। सतीश के व्यवहारों से सावित्री ने मन-ही-मन अपमान और लाँछन सहे थे, आज सवेरे तक उसने यही निश्चय कर रखा था कि अब मैं यहाँ का काम छोड़ दूँगी, पर अभी सतीश की अवश्यम्भावी दुर्गति के भय से भयभीत हो वह वेचैन-सी हो उठी।

सतीश के सारे अपराधों को भूले विना और उस पर आने वाली भावी विपत्ति को कोई मार्ग दिए विना, वह घर जाने को किसी प्रकार तैयार न हो सकी। बिहारी के खा-पीकर आने पर उसने कहा, "बिहारी, तुम जाओ, और सो जाओ, मैं यहीं रहती हूँ।"

बिहारी ने आश्चर्य से पूछा, "घर न जाओगी ?"

"बावू को लौट आने दो। क्या तब तुम मुझे घर पहुँचाने न जा सकोगे ?"

"क्यों नहीं ? अवश्य पहुँचा सकूँगा।"

"तो फिर वही ठीक है। मैं बैठी हूँ, तुम जाओ, सोओ।"

प्रसन्न होकर बिहारी चला गया।

सावित्री एक चादर ओढ़कर बैठ गई। वे दोनों शरावी जो कुछ देख गए हैं, उसे अवश्य लोगों के सामने गाते फिरेंगे। इसमें उसे लेशमात्र भी संशय नहीं था; और कोई भी इस घटना का दूसरा अर्थ नहीं लगाएगा—इस वात में उसे सन्देह नहीं रह गया।

विपिन को वह जानती थी। वह इस बात को अवश्य सुनेगा और जब उसका यहाँ आना-जाना होता है तब यहाँ के लोग भी यह बात जाने बिना न रहेंगे। इसके वाद फिर सतीश कौन-सा मुँह लेकर एक घड़ी भी यहाँ रह सकेगा ! इस झूठे कलंक की लज्जा वह कैसे सहेगा ? संयोगवश जो हुआ वह तो हो ही गया, अपने विषय में वह यहीं तक सोचकर रुक गई। लेकिन सतीश के सम्बन्ध में उसकी बुद्धि ने कुछ काम न किया।

रात बढ़ने लगी।

फिर भी सतीश का पता नहीं। पास ही किसी पड़ोसी की घड़ी में टन-टन करके दो बज गए। सुनसान गहरी रात में घड़ी की आवाज स्पष्ट सुन पड़ी। छत से ठण्डी-ठण्डी हवा का झोंका-सा आकर उसकी आँखों को

नींद से दबाने लगा, तो भी वह दरवाजे पर कान लगाए जागती बैठी रही।

जब रात बहुत थोड़ी शेष रह गई, तब एक गाड़ी उसी दरवाजे पर आकर लगी।

सावित्री चुपचाप नीचे उतरी और सावधान होकर दरवाजे के पास आ खड़ी हुई। यदि कोई दूसरा ही हो इस भय से उसने सहसा द्वार खोलने का साहस नहीं किया। देर होने लगी, किसी ने दरवाजा नहीं खटखटाया। जो गाड़ी आई थी, वह भी वापस चली गई।

सहसा सावित्री का हृदय भय से भर गया और तुरन्त सारी दुविधाएँ छोड़कर उसने फुर्ती से किवाड़ खोल दिए।

सतीश चौखट के सहारे बैठ गया था—लुढ़का हुआ-सा पड़ा था। उसका चेहरा पीला पड़ रहा था, आँखें मुँदी हुई थीं। उसके कपड़े के कीचड़ और ललाट के एक ओर रक्त की रेखा पास के गैस की रोशनी में स्पष्ट देखते ही सावित्री रो पड़ी।

वह उसके सामने आ, घुटने टेक और दोनों हाथों से सतीश का मुँह ऊपर उठाकर बोली, "बाबूजी, ऊपर चलिए।"

सतीश ने सिर हिलाकर कहा, "ना, मजे में हूँ।"

सावित्री आँखें पोंछकर बोली, "कहीं चोट लगी है?"

"ना, मजे में हूँ। छोड़ दो मुझे।"

"यह तो रास्ता है, घर में चलिए।"

सिर हिलाकर सतीश ने कहा, "ना, न जाऊँगा, मजे में हूँ।"

चलिए की फटकार सुनते ही सतीश की लाल विह्वल आँखें खुलीं। वह कुछ देर देखता रहा फिर उसकी ओर हाथ बढ़ाकर बोला, "चलो!"

उसी के कन्धे का सहारा लेकर सतीश उठ खड़ा हुआ। उसी के सहारे बड़े कष्ट से, बड़ी देर तक झूमता हुआ अँधेरी सीढ़ियों से ऊपर कमरे में आकर लेट गया। लड़खड़ाती हुई आवाज से कहने लगा, "सावित्री! तुम्हारा ऋण मैं किसी जन्म में न चुका सकूँगा।"

सावित्री ने कहा, "ठीक है, आप अब सोइए।"

सतीश तुरन्त उठकर बोला, "क्या? सोऊँ? कभी नहीं।"

सावित्री ने फिर डाँट बताते हुए कहा, "फिर वही बात!"

सतीश लेट गया। क्षण भर चुप रहकर बोला, "लेकिन तुम्हारा ऋण···।"

सावित्री 'अच्छा' कहकर उठी, लालटेन लाकर उसने घाव को धोकर पोंछा, "वहाँ कैसे गिर पड़े ?"

सतीश ने सिर हिलाकर कहा, "ना, गिरा नहीं।"

सावित्री रुँधे हुए कण्ठ से बोली, "फिर यदि किसी दिन आपने शराब पी तो मैं आपके पैरों में सिर पटककर जान दे दूँगी।"

सतीश ने कहा, "अब कभी न पीऊँगा।"

"मुझे छूकर कसम खाइए।" कहते हुए सावित्री ने अपना दाहिना हाथ बढ़ा दिया।

सतीश ने अपने दोनों हाथों में उसका भीगा हुआ ठण्डा हाथ लेकर कहा, "लो सौगन्ध खाता हूँ, अब कभी न पीऊँगा।"

सावित्री ने हाथ खींच लिया, कहा, "याद रहेगा ?"

"न रहे तो याद करा देना।"

"अच्छा, मैं जाती हूँ, आप सोइए"—कहकर सावित्री धीरे से किवाड़ बन्द करके बाहर जा खड़ी हुई। शुक्रतारे की ओर देखकर सावित्री अपने दोनों हाथ जोड़कर रोती हुई बोली, "देवता ! तुम साक्षी हो।"

सावित्री नीचे उतरकर रसोईघर के एक कोने में चादर ओढ़कर सो गई।

चार

दिन।

दस बजा। किसी प्रकार स्नान-पूजा से निवृत्त हो दिवाकर रसोईघर के सामने खड़ा होकर पुकारने लगा, "महाराज जी, जल्दी भात परोसिये, बहुत दिन चढ़ आया है।"

उसकी आवाज सुनकर उनकी ममेरी बड़ी बहन महेश्वरी भण्डार-घर से बाहर आकर बोली, "दादा, मैं तेरी ही प्रतिक्षा कर रही हूँ, ठाकुरजी

की पूजा तो कर आओ।"

इस घर की बड़ी लड़की महेश्वरी है और मालकिन भी। वह चार वर्ष से विधवा होकर पिता के घर आ गई है।

दिवाकर मौन। कुछ देर चुप रहकर बोला, "मैं यह काम न कर सकूँगा। मेरे कॉलेज का पहला घण्टा मिस हो जाएगा।"

महेश्वरी हँसकर बोली, "तेरा पहला घण्टा जाता रहेगा, इसलिए क्या ठाकुरजी की पूजा नहीं होगी?"

दिवाकर ने पूछा, "भट्टाचार्यजी कहाँ हैं? उनका क्या हो गया है?"

महेश्वरी बोली, "वे बाबूजी के साथ चौसर खेलने के लिए बैठे हुए हैं। अब कितना दिन चढ़ने पर वे उठेंगे इसका कोई पता नहीं है।"

दिवाकर ने कहा, "मँझले भैया से कह दो, आज कचहरी बन्द है।"

महेश्वरी ने कहा, "कल से धीरेन्द्र की तबियत ठीक नहीं है। वह स्नान करेगा नहीं, फिर वह पूजा किस प्रकार करेगा?"

"तब तुम छोटे भैया से कहो। वे बारह बजे के बाद कचहरी के लिए निकलते हैं, अभी उनको कुछ देर है।"

महेश्वरी ने दुःखी होकर कहा, "तू कैसा तर्क करने लगता है इसका कोई ठिकाना नहीं। कल रात को वह थियेटर देखने गया था, अभी तक वह सोकर नहीं उठा। रात भर जागते रहने से क्या उसकी तबियत ठीक है? इसके अलावा, वह क्या किसी दिन पूजा करता है जो आज करेगा?"

इधर रसोइया भात परोसकर पुकार रहा था।

दिवाकर ने कहा, "किसी न किसी काम में एक न एक बाधा आ पड़ने से प्रायः नित्य ही मेरा पहला घण्टा जाता रहता है, मैं परीक्षा कैसे दूँगा?"

महेश्वरी क्रोध से बोली, "परीक्षा न देने से भी काम चल सकता है, देवता की पूजा न होने से काम नहीं चल सकता। तुम्हारे साथ तर्क करने का समय मेरे पास नहीं है, और भी काम है।"

रसोइया जोर से बोला, "दिवाकर बाबू, भात परोसकर मैं खड़ा हूँ, जल्दी आइए।"

महेश्वरी ने झिड़ककर कहा, "तुमको भी समझ नहीं है महाराज! मैं इसको पूजा के लिए भेज रही हूँ, तुम शोर मचा रहे हो। भात ले जाओ;

पूजा करके आने पर देना।" कहती हुई वह भण्डार-घर में चली गई।

कुछ देर दिवाकर चुप रहा। फिर धीरे-धीरे ऊपर चला गया। वहाँ पूजा की सामग्री तैयार थी। घर में शालिग्राम-शिला की प्रतिष्ठा हुई थी। उनकी नित्य पूजा के लिए एक पुजारी नियुक्त है। वे इसी घर में रहते हैं। स्वामी शिवप्रसाद के समान उनकी भी चौसर की ओर दिलचस्पी है। कुछ दिन हुए शिवप्रसाद सरकारी नौकरी से पैंशन लेकर अपने पश्चिमी प्रदेश के मकान पर आकर रहने लगे हैं। सवेरे चाय पी लेने के बाद ही पुजारी जी की बुलाहट होती है, "भूतो, भट्टाचार्य जी को एक बार बुलाओ। एक बाजी हो जाए।"

फिर एक बाजी, दो बाजी करते-करते दिन चढ़ जाता है। पुजारीजी को पूजा करने का समय नहीं मिलता। महेश्वरी नौकर को भेजा करती थी लेकिन 'उठता हूँ' 'उठता हूँ' करते-करते भी उठना नहीं होता था। पूजा का समय बहुत बीत जाता था, किसी को होश नहीं रहता था।

इन दिनों पिताजी की तबियत ठीक नहीं है, फिर भी खेल के झोंके में अच्छी तरह रहते हैं। इस विचार से आज महेश्वरी पुजारीजी को नहीं बुलाती। जिस किसी से, अर्थात् दिवाकर से पूजा करा लेती है।

सुबह चाय पीने की आदत और समय दिवाकर के पास नहीं था। क्योंकि उस समय उसको नौकर के साथ बाजार जाना पड़ता था। आज बाजार से लौटकर नित्यकर्म पूरा करके वह भात खाने के लिए आया था।

दिवाकर पूजा करने के लिए चला गया। आसन पर बैठकर सोचने लगा—दूसरे के घर में रहने का यही सुख है। वैसे होश सँभालने के बाद से वह दूसरे के घर में रहता आया है और उसे अनेक दुःखों को सह लेने का अभ्यास भी पड़ गया है, लेकिन मनुष्य की जो वस्तु किसी दुःख से भी नहीं मरती—वही भविष्य की आशा—आघात खाकर उसके हृदय से बाहर निकल सिर उठाकर खड़ी हो गई। क्रोध से उसकी सारी देह जल रही थी, सिंहासन से ठाकुरजी को उतारकर ताम्रकुण्ड के ऊपर फेंक दिया, और मन्त्र पढ़े बिना शरीर पर जल डालकर भीगे हुए देवता को उठाकर रख दिया। फूल चढ़ाने, तुलसी पत्र सजाकर रखने, घण्टी बजाने आदि हाथ के काम अभ्यास के अनुसार होने लगे किन्तु विद्वेष की जलन से उसके कंठ

से एक भी मन्त्र नहीं निकला।

पूजा का नाटक समाप्त करके जब उठ खड़ा हुआ, तब यह ध्यान आया कि पूजा तो बिलकुल नहीं हुई, फिर से पूजा करने बैठ जाऊँ या नहीं, यह दुविधा एक बार उसके मन में जाग उठी, किन्तु उसके साथ ही उसको यह बात याद पड़ गई कि कॉलेज का पहला घण्टा बीत रहा है। फिर वह तेज कदमों से सीढ़ियों से नीचे उतरकर बाहर जा रहा था। महेश्वरी ने भण्डार-घर से उसे देखा तो बुलाकर कहा, "बिना भोजन किए जा रहा है?"

"भोजन करने का समय नहीं है।"

महेश्वरी ने कहा, "तो कॉलेज से कुछ समय पहले ही लौट आना।"

दिवाकर मौन। वह अपनी बाहरी कोठरी में आकर कपड़े पहनने लगा तो नेत्रों में जल भर आया।

दिवाकर ने पीछे घूमकर देखा, नौकरानी खड़ी है। नेत्र पोंछकर उसने पूछा, "क्या बात है?"

नौकरानी बोली, "छोटी बहू ने आपको बुलाया है।"

"चलो, मैं आ रहा हूँ।"

सुरबाला अपने कमरे के सामने ही दिवाकर की प्रतीक्षा कर रही थी। दिवाकर ने आकर कहा, "क्या बात है?"

सुरबाला प्रकट रूप से नहीं, ओट में होकर बातें करती थी। सिर के कपड़े को जरा और खींचकर बोली, "जरा कमरे में आओ।"

फ़र्श पर आसन बिछा हुआ था। एक कटोरा दूध, तश्तरी में दो-चार सन्देस रखे थे।

सुरबाला ने कहा, "खाकर ही कॉलेज जाना।"

दिवाकर स्तब्ध हो खाने के लिए बैठ गया।

तब बिछौने पर उसके भाई उपेन्द्रनाथ निद्रित मनुष्य की भाँति लेटे हुए थे। दिवाकर के खाना खाकर चले जाने के पश्चात् ही सिर ऊपर उठाकर पत्नी को बुलाकर कहा, "यह फिर क्या?"

सुरबाला ने चौंककर पूछा, "क्या तुम जाग रहे हो?"

"दो घण्टे से जाग रहा हूँ, ग्यारह बजे तक कोई मनुष्य सो सकता है?

सुरबाला हँसकर बोली, "तुम सब कर सकते हो। वर्ना कोई मनुष्य क्या ग्यारह बजे तक पड़ा रह सकता है?"

उपेन्द्र ने कहा, "सभी नहीं कर सकते, लेकिन मैं कर सकता हूँ। इसका कारण यह है कि लेटकर सोये रहने की तरह से अच्छी वस्तु मैं कुछ भी संसार में नहीं देख पाता। कुछ भी हो, दिवाकर के···।"

सुरबाला ने कहा, "क्रोध ठीक ही होता है। उस बेचारे को प्रात: पढ़ने का समय नहीं है। बाजार जाना, लौटकर ठाकुरजी की पूजा करनी पड़ती है। किसी दिन ग्यारह-बारह बज जाते हैं। बताओ तो किस समय वह खाना खा ले और किस समय पढ़ने जाए?"

"बात ठीक समझ में नहीं आई? भट्टाचार्य जी को बुखार है क्या?"

सुरबाला ने कहा, "बुखार क्यों होगा! बाबूजी के साथ चौसर पर बैठे हैं! और उनका भी क्या दोष है? बाबूजी के बुलाने पर वे मना तो नहीं कर सकते।"

उपेन्द्र ने कहा, "यह तो वे नहीं कर सकते, लेकिन पहले वे नौकर के साथ सवेरे बाजार जाया करते थे न?"

सुरबाला बोली, "कुछ दिनों तक चाव से जाया करते थे, नहीं तो बबुआजी को ही बराबर जाना पड़ता है।"

ठाकुरजी की पूजा नहीं हुई। यही सोचते-सोचते दिवाकर दु:खी मन से धीरे-धीरे कॉलिज जा रहा था। मकान में अभी-अभी जो सब घटनाएँ हो गईं, उस आलोचना को छोड़कर उसे बड़ी चिन्ता यह थी कि ठाकुरजी की पूजा आज नहीं हुई। बहुत दिनों की बहुत असुविधाओं के रहते हुए भी इस काम की उसने अवहेलना नहीं की, करने की बात भी मन में किसी दिन उठी नहीं थी। यद्यपि युक्ति-तर्कों से वह बराबर अपने मन को शान्ति देने लगा कि भगवान् केवल एक ही स्थान में बँधे हुए नहीं हैं, इसलिए एक स्थान में भोग न लगा तो भी अन्यत्र लगा होगा। लेकिन वही भगवान् उनके बिना खाए हुए गृहदेवता अपनी नित्य पूजा और भोग से वंचित होकर क्रोधयुक्त मुख से सिंहासन पर बैठे रह गए, उनकी प्रति-हिंसा का भय उसके मन से किसी प्रकार दूर होना नहीं चाहता था।

प्रोफेसर की तबीयत खराब हो जाने के कारण पहले घण्टे में क्लास

नहीं लगी—सुनकर दिवाकर को प्रसन्नता हुई। परीक्षा निकट आ रही है इस कारण छात्रों ने हाजिरी के हिसाब के लिए कॉलेज के क्लर्क को तंग कर डाला है। आज दूसरे छात्र जब इसी उद्देश्य से ऑफिस के कमरे की ओर जाने की तैयारी कर रहे थे, तब दिवाकर भी तैयार हो गया। लेकिन ऑफिस के सामने आकर ठाकुरजी की पूजा न करने की बात याद करके वह ठिठककर खड़ा हो गया।

एक ने उससे पूछा, "खड़े क्यों हो गए?"

दिवाकर ने उत्तर दिया, "रहने दो आज।"

"रहने क्यों दो, चलो, आज देख लें।"

"ना रहने दो"—कहकर वह लौट गया। हाजिरी के सम्बन्ध में उसके मन में बहुत सन्देह था, उस सन्देह की मीमांसा करने का साहस आज उसे नहीं हुआ।

उसको घर लौटने की कोई जल्दी नहीं थी। हालाँकि उसने केवल नाश्ता किया था। छुट्टी के बाद कॉलेज के फाटक के पास आकर उसने देखा, बी० ए० क्लास के छात्रों का दल दूर खड़ा रहकर कोलाहल कर रहा है। दिवाकर दूसरी ओर मुँह फेरकर हट गया और जो रास्ता सीधा गंगाजी की ओर गया है, उसी ओर चल दिया। टूटा हुआ पक्का घाट मुर्दे के कंकाल की भाँति पड़ा हुआ था। किसी दिन इसका शरीर था, सौन्दर्य था, प्राण था, जगह-जगह पड़ी हुई टूटी-फूटी ईंटों के ढेर यही बता रहे थे। कब किसने बँधवाया था, कौन लोग आकर बैठे थे, कौन लोग स्नान करते थे, कहीं भी कोई साक्षी नहीं है।

जाड़े के दिनों की पतली गंगा, उसी का एक किनारा। धूप की गर्मी और गंगा की वायु। उसी के एक किनारे बालू के तंग मार्ग से दिवाकर घाट पर आ खड़ा हुआ।

एक ओर ईंटों के छोटे से ढेर पर जूता उतारकर रख दिया। कुर्ता उतारकर उसे किताबों के बण्डल के नीचे दबा दिया फिर जल में बैठ, हाथ-मुँह धो, सिर पर गंगाजल के छींटे दे, भूखे गृहदेवता का स्मरण किया। आदि से अन्त तक सब मन्त्रों को सावधानी से पढ़कर भगवान् को अंजलि दे, प्रणाम कर जब वह उठ खड़ा हुआ तब उसके हृदय का भार बहुत कुछ

हल्का हो गया। कुरता-जूता पहन और पुस्तकें उठा जब वह चला तब भी दिन कुछ शेष था। उस समय भी स्त्रियाँ घाट के एक किनारे बैठी सिर में सज्जी मल रही थीं और नहाने का उपक्रम कर रही थीं।

पाँच

ठेकेदारी के काम से सुरबाला के पिता बहुत धन कमाकर अपने बक्सर वाले मकान में रहते थे। उनके दो लड़कियाँ थीं। सुरबाला बड़ी थी, शची छोटी। अभी शची का विवाह नहीं हुआ था। वह पिता के पास बक्सर में ही रहती थी। पिता के यहाँ सुरबाला को लोग 'पशुराज' कहते थे। मुहल्ले-टोले के अन्धे-काने कुत्ते-बिल्ली, विलायती चूहे, कबूतर, गौरैया आदि सैकड़ों जीव उनके आश्रम में पले थे। किसी का उसने कभी भी त्याग नहीं किया।

आज भी वे शची की देख-भाल में आनन्द से जीवन बिता रहे हैं। सुरबाला के नाम का रहस्य महेश्वरी जानती थी। यहाँ भी उसके नाम का प्रचार हो गया था। जो बड़े थे, वे संक्षेप में 'पशु' कहते तथा नौकर-चाकरों में कोई 'पशु-बहू' कहता तो कोई छोटी बहू कहता था।

रात को गृहस्थी के काम-काज से फुर्सत पाकर जब सुरबाला शयनगृह में आई तब उपेन्द्र ने कहा, "पशु, तुम्हारे पिताजी ने शची के लिए कोई वर ठीक करने के लिए फिर चिट्ठी लिखी है। जानती हो, शची तुमसे कितनी छोटी है?"

सुरबाला ने व्यंग्य से कहा, "क्या खूब! मैं यह भी नहीं जानती? उसके पहले एक भाई हुआ था, वह साल-भर ही जिया। उसके बाद शची ने जन्म लिया। वह मुझसे छः-सात साल छोटी है।"

"इस हिसाब से तो वह बारह-तेरह वर्ष की हुई।"

"शायद इतनी ही होगी! बीमार रहने के कारण इतने दिन उसका विवाह नहीं किया गया। मेरे समान लम्बे-लम्बे हाथ-पाँवों वाली होती तो बड़ी कठिनाई थी।"

उपेन्द्र ने हँसकर कहा, "कठिनाई कैसी ? तुम्हारे पिताजी को रुपयों की तो कमी है नहीं। रुपया रहने से सभी काम आसान हो जाते हैं। जैसे मैं जा फँसा था, वैसे ही कोई और आ जाएगा, संसार में कोई कमी नहीं है।"

सुरबाला बोल उठी, "क्या तुम पिताजी के रुपये देखकर फँसे थे ?"

उपेन्द्र, "भलाई तो तुम्हारे सामने न कहने में ही है, लेकिन झूठ कैसे कहा जाए ?"

सुरबाला, "पर यह बात तो सरासर झूठ है।"

उपेन्द्र, "कैसे ?"

सुरबाला तुनककर बोली, "कैसे क्या ? क्या झूठ का कोई प्रमाण होता है ? तुम जब-तब यह बात कहा करते हो, लेकिन तुम पिताजी के रुपये देखकर नहीं गए। पिताजी के पास रुपये होते या न होते, तुम्हें जाना ही पड़ता। मैं जहाँ, जिस घर में जन्म लेती, वहाँ तुम्हें अवश्य जाना पड़ता— समझे ?"

उपेन्द्र ने कृत्रिम गम्भीरता से कहा, "हाँ, कुछ-कुछ। लेकिन मान लो, यदि तुमने कायस्थ के घर जन्म लिया होता तो ?"

सुरबाला खिलखिलाकर हँस पड़ी, बोली, "वाह ! क्या खूब ! कहीं ब्राह्मण के घर की लड़की कायस्थ के घर जन्म लेती है ? इसी बुद्धि के बल पर वकालत करते हो ?"

उपेन्द्र ने और अधिक गम्भीर होकर कहा, "बात तो ठीक ही कहती हो। इसी से मालूम होता है, मेरी वकालत खूब नहीं चलती।"

सुरबाला अपनी बात से आप ही दुःखी होकर सन्तोष के स्वर में त्वरा से बोली, "चलेगी क्यों नहीं, खूब चलेगी। इतना ही है, कि कुछ समय लगेगा। हाँ, एक बात और है। तुम्हें अधिक वकालत चलाने की आवश्यकता ही क्या है ?" हँसकर बोली—"बारह से चार तक मेरे सामने हाजिर रहा करो, मैं तुम्हें पाँच सौ रुपए का वेतन दे सकती हूँ। पिताजी मुझे हर महीने ढाई सौ रुपए तो देते ही हैं, ढाई सौ उनसे और ले लिया करूँगी।"

उपेन्द्र ने कहा, "मान लो, मैंने स्वीकार कर लिया, लेकिन मुझे करना क्या पड़ेगा ?"

सुरबाला ने कहा, "मेरे पास खड़े रहना पड़ेगा। हाँ, खड़े-खड़े थक

जाने पर बैठने की आज्ञा मिल जाएगी।"

उपेन्द्र, "और बैठे-बैठे थक जाने पर सोने की नहीं ?"

सुरबाला मुस्कराकर बोली, "ना, सोने नहीं पाओगे। बैठकर थक जाने पर फिर खड़ा होना पड़ेगा। अफसर के समाने शरारत करोगे तो फाइन भी होगा।"

उपेन्द्र, "फाइन न दे सकने पर ?"

सुरबाला, "कैद भुगतनी पड़ेगी। चार के बाद भी बाहर जाने का अवकाश नहीं मिलेगा, समझे ?"

उपेन्द्र ने सिर हिलाकर कहा, "समझ गया। अफसर जरा स्वभाव का कड़ा है, नौकरी बनी रहे तो बहुत है।"

सुरबाल अपनी दोनों कोमल भुजाएँ स्वामी के गले में डालकर बोली, "अजी साहब, हाकिम कड़े स्वभाव का ही है, बिल्कुल भी कड़ा नहीं है। नौकरी अवश्य बनी रहेगी, न विश्वास हो तो एक दिन के लिए ही कर देखो। क्या हानि है ?" क्षण भर के बाद सुरबाला ने प्रेमालिंगन से अपने को छुड़ाकर पूछा, "पिताजी के पत्र का क्या उत्तर दोगे ?"

उपेन्द्र ने कहा, "लिख दूँगा, खोजने-खाजने की आवश्यकता नहीं, वर आपसे आप चला आएगा।"

"राम! राम! यह क्या कह रहे हो? उनसे हँसी करना क्या ठीक होगा ?"

"इतनी देर क्या तुम मुझसे हँसी नहीं कर रही थीं ?"

सुरबाला ने शर्माते हुए कहा, "देखो, हँसी नहीं करती थी, लेकिन पिताजी को यह बात लिखने की आवश्यकता नहीं। मेरा विश्वास है कि शची के लिए वर ठीक हुआ-हवाया है और उसके अलावा उसके लिए दूसरा उपाय भी नहीं है, लेकिन तुम्हारे मुँह से यह बात सुनकर पिताजी नाराज होंगे।"

उपेन्द्र ने हँसकर कहा, "परन्तु, शची के लिए वर ठीक है। उसे मैं तो जानता ही हूँ, तुम भी जानती हो।"

सुरबाला ने उत्सुक होकर पूछा "अच्छा, बतलाओ तो सही, वह कौन है ?"

उपेन्द्र ने कहा, "अभी नहीं। सब बातें पक्की करके तुम्हें बतलाऊँगा।"

सुरबाला कुछ देर चुप रहकर बोली, "अच्छा, एक बात तुम्हें बताती हूँ। शची में एक ऐब है, उसे छिपाकर बात ठीक करना उचित नहीं। उसका परिणाम अच्छा कभी नहीं होगा।"

उपेन्द्र ने व्यग्र होकर पूछा, "क्या ऐब है ?"

सुरबाला बोली, "बताती हूँ। पिताजी की नीयत उसे छिपा रखने की है, नहीं तो वे स्वयं तुम्हें बतला देते। शची देखने-सुनने, लिखने-पढ़ने—सबमें अच्छी है, पिताजी के पास रुपये भी अवश्य हैं, लेकिन शची को क्या तुमने अच्छी तरह देखा नहीं है ?"

उपेन्द्र ने व्यंग्य से कहा, "देखा तो अवश्य है पर अच्छी तरह देखने का साहस ···!"

"तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ। पहले मेरी बात सुन लो, फिर जो जी में आए, कहना। तुम्हें मालूम ही है कि शची बचपन से ही रोगिणी है। दो-तीन बार बड़ी-बड़ी बीमारियों से मरते-मरते बची है। एक बार वह अच्छी तो हुई, लेकिन उसका बाँया पैर सूजकर पक गया। डॉक्टर ने चीरकर उसकी जान बचाई, लेकिन उसका वह पैर सीधा न हुआ। तभी से जरा लँगड़ाकर चलती है। डॉक्टर का कहना है कि बड़ी होने पर यह दोष मिट भी सकता है, लेकिन इस भरोसे कौन विवाह करने को राजी होगा ? जो सचमुच योग्य लड़का है, उसे योग्य लड़की भी मिल जाएगी। जो केवल रुपयों के लोभ में पड़कर विवाह करने पर राजी होगा, वह नालायक ही होगा।"

उसकी बातों को बड़े ध्यान से सुनने के बाद उपेन्द्र ने कहा, "मैंने शची को बहुत बार देखा है, लेकिन किसी दिन लंगड़ाकर चलते तो नहीं देखा।"

सुरबाला ने मीठी हँसी हँसकर कहा, "मर्दों को तो कुछ सुझाई नहीं पड़ता। लेकिन औरतों की आँख बचाना कठिन है। पलक मारते ही वे दोष परख लेती हैं।"

उपेन्द्र ने कहा, "पर उसकी शादी तो किसी मर्द से होगी, जो औरतों की आँख का भय किया जाए ?"

"तो अन्धी लड़की भी ब्याह दी जा सकती है, लेकिन बाद में ?"

उपेन्द्र कुछ सोच रहा था।

सुरबाला ने फिर कहा, "पिछली बार दुर्गा पूजा के समय हमारे यहाँ बक्सर में ठीक ऐसी ही बात हुई थी। बुआ और माँ दोनों ने कह दिया कि ब्याह के पहले इन आलोचनाओं की आवश्यकता नहीं। पीछे जमाई को समझाकर कह दिया जाएगा, सब ठीक हो जाएगा।"

उपेन्द्र ने कहा, "ठीक है।"

"ना-ना, यह ठीक नहीं है। मैं कहती हूँ कि केवल जमाई की परवाह करने से ही काम नहीं चल सकता। शची का जो पति होगा, वह उसे अवश्य प्यार करेगा, लेकिन जरा-से दोष के लिए आरम्भ में ही यदि वह सास-ननद आदि की आँखों में खटक जाएगी, तो फिर किसी दिन सुख से गृहस्थी नहीं कर सकेगी।"

उपेन्द्र ने कुछ देर चुप रहकर पूछा, "तो क्या तुम शची का ऐसे घर में विवाह करना चाहती हो जहाँ सास-ननद न हों?"

सुरबाला व्यग्र होकर बोली, "ना-ना! यह तो बहुत ही अशुभ बात है। मैं ऐसा क्यों चाहूँगी?"

उपेन्द्र ने ऊबकर कहा, "तो फिर तुम चाहती क्या हो? सास-ननद रहें, जान-सुनकर लंगड़ी-पंगु लड़की को घर लावें, प्यार करें, ऐसा हो जाए तो काम बहुत अच्छा हो। लेकिन तुम ही बतलाओ, ऐसा मूर्ख कौन होगा, जो जान-बूझकर अपने लड़के का किसी कानी-खोड़ी लड़की से विवाह कराएगा?"

सुरबाला चुप रही। फिर धीरे से बोली, "लेकिन तुम तो कहते थे कि वर ठीक कर रखा है?"

उपेन्द्र ने कहा, "हाँ।"

सुरबाला ने पूछा, "उसे यह बात नहीं बताओगे?"

उपेन्द्र ने कहा, "नहीं होगा। कारण, दिवाकर तुम्हारी बहिन के दोषों के कारण उपेक्षा न कर सकेगा। तुम और दीदी भी शची को बुरी आँखों से न देखोगी।"

यह बात सुनकर सुरबाला स्तब्ध हो गई। कुछ देर चुप रहकर बोली, "उनके साथ ब्याह?"

उपेन्द्र ने कहा, "हाँ।"

"लेकिन पिताजी तो स्वीकार नहीं करेंगे।"

"क्यों?"

"न उनके माँ-बाप हैं, न घर-द्वार, कुछ भी तो नहीं है।"

उपेन्द्र ने संक्षेप में कहा, "सब है, इसलिए कि मैं हूँ।"

सुरबाला ने कहा, "तब भी पिताजी स्वीकार नहीं करेंगे।"

उपेन्द्र ने जरा कड़ककर कहा, "और तुम भी स्वीकार नहीं करोगी, शायद वास्तविक बात यही है।"

सुरबाला मौन।

उपेन्द्र भी कुछ देर चुप। फिर अचानक करवट बदलकर रूखे स्वर में बोले, "अच्छा, बहुत रात हो गई, अब सोओ।"

सुरबाला बड़ी रात तक जागती रही। एकाएक एक बार जब उसे निश्चय हो गया कि पति निश्चित सो रहे हैं, तब उसकी दोनों आँखें गर्म आँसुओं से भर गईं। स्वामी के असीम स्नेह में उसे सन्देह नहीं था, लेकिन रोते-रोते वह यही बात सोचने लगी कि सात-आठ वर्षों के घनिष्ठ मिलन से भी उसने इस पुरुष की गहराई क्यों नहीं पाई? पहले-पहल उसने बहुत बार सोचा था कि उसके स्वामी कठोर स्वभाव के हैं। कब किस बात पर इन्हें क्रोध आ जाता है, इसका कोई निश्चय नहीं। लेकिन अन्त में बहुत पूछताछ करके उसने इतना जान लिया कि उन्हें पूरी तरह से समझने की शक्ति मुझमें किसी दिन हो या न हो, इनका कोई काम व्यर्थ और अनिश्चित प्रकृति के मनुष्यों का-सा नहीं है। खासकर इसलिए उसके भय और भावनाओं का अन्त न था। चोट खाकर वह जब-तब दुःखी हो जाती और कहती, 'भगवान्! जब ऐसा अच्छा भाग्य दिया, तब उसी के अनुसार चलने की बुद्धि भी क्यों न दी?' आज भी वह मन-ही-मन इस बात की जितनी ही आलोचना कर भीतर-ही-भीतर इसका कारण ढूंढ़ने लगी, अपना कोई दोष न पाकर वह उतनी ही दुःखी होने लगी। किसी प्रकार यह बात उसकी समझ में न आई, कि बहिन के सम्बन्ध में बहिन की यह आशंका किस कारण से बुरी है?

बाहर जाड़े की सुनसान रात्रि। दूर सरकारी कचहरी का घण्टा क्रमशः टन्-टन् टन्........

छः

दूसरा दिन।

दोपहर। जब महेश्वरी भोजन करने बैठी तब उपेन्द्रनाथ वहीं पहुँचे और पास ही बैठ गए।

महेश्वरी ने कहा, "मँझली बहू, उपेन्द्र के लिए एक आसन तो लगा दो।"

उपेन्द्र ने कहा, "ना, दीदी, तुमसे केवल एक बात पूछने आया हूँ।"

महेश्वरी उसके मुँह की ओर देखने लगी।

उपेन्द्रनाथ ने कहा, "परसों ससुर जी की शची के लिए वर ढूँढ़ने के विषय में एक आवश्यक चिट्ठी आई है। तुम उनके यहाँ की जितनी बातें जानती हो उतनी और कोई नहीं जानता। इसीलिए तुमसे पूछ रहा हूँ; कि क्या शची के शरीर में कोई दोष भी है?"

महेश्वरी के स्वामी ने बीमार हो जाने पर अन्तिम चार-पाँच वर्षों तक बक्सर में ही प्रैक्टिस की थी। वहाँ रहते समय उन्होंने सुरबाला के पिता का ही एक मकान किराये पर लिया था। वह उनके धर के बहुत ही पास था, इसीलिए दोनों परिवारों में खूब मेल-जोल बढ़ गया था। सुरबाला का विवाह-सम्बन्ध महेश्वरी ने ठीक किया था। महेश्वरी कुछ समय तक उपेन्द्र की ओर देखने के बाद बोली, "पशु क्या कहती है?"

"वह कहती है—शची लंगड़ी है।"

महेश्वरी ने जरा हँसकर कहा, "लंगड़ी नहीं है। बचपन में उसके पैर में चीरा लगा था, इससे बाएँ पैर पर जरा जोर लगाकर चलती है। मैं समझती हूँ, इतने दिन हो गए, अब बिलकुल अच्छी हो गई होगी।"

"और तो कोई ऐब नहीं है?"

"ना।"

"ससुरजी के पास बड़ा माल है—तुम क्या समझती हो दीदी?"

"मेरा भी यही विचार है।"

तब उपेन्द्र और कुछ पास खिसककर आ गया और अपने स्वर को कुछ धीमा बनाकर बोला, "तो मैं तुमको एक बात कहता हूँ बहिन। शची और

उसकी बहिन दोनों ही जब भविष्य में समस्त सम्पत्ति की स्वामिनी होंगी तब इतनी बड़ी सम्पत्ति हाथ से निकल जाने देना तो बुद्धिमानी का काम नहीं है।"

"बात तो तुम्हारी ठीक ही है, लेकिन ऐसा उपाय ही क्या है, सुनूँ तो ?" इतना कहकर वह हँस पड़ी।

उपेन्द्र बोला, "हँसने की बात नहीं है। पशु के चिढ़ने के लिए यह बात मैंने नहीं कही। मैंने दिवा के विषय में सोच लिया है।"

सहसा महेश्वरी का चेहरा उतर गया। वे दिवाकर को देख नहीं सकती थी। उपेन्द्र ने कहा, "क्या कहती हो दीदी ?"

महेश्वरी मुँह झुकाए किसी चिन्ता में रहने का स्वाँग दिखाकर भात परोस रही थी। मुँह ऊपर उठाकर हँसकर बोली, "अच्छी बात तो है।"

उपेन्द्र ने कहा, "केवल अच्छी बात कह देने से तो काम नहीं चलेगा दीदी, यह काम तुम्हारा ही है। पशु की शादी तुमने ही की थी, अब वह कहती है, उसके समान सौभाग्यवती सभी हों। मेरा विश्वास है, तुम जिसमें हाथ डालोगी, उसमें ही सोना फलेगा।"

महेश्वरी ने कहा, "लेकिन शची में जरा-सा दोष तो है ?"

उपेन्द्र ने कहा, "है, इसीलिए तुमसे हाथ डालने के लिए कह रहा हूँ। तुम्हारे पुण्य से सब दोष मिट जाएँगे।"

उपेन्द्र की बातों से महेश्वरी का हृदय पसीजता जा रहा था, उन्होंने कहा, "लेकिन उपेन्द्र, दिवाकर का स्वभाव मेरी समझ में नहीं आता। घर में रहते हुए भी वह मानो घर छोड़ने वाला पराया है। इसी कारण भय लगता है, पीछे कहीं इतनी-सी त्रुटि को लेकर अन्त में एक भारी अशान्ति न खड़ी हो जाए। फिर एक बात और है, क्या दिवाकर मान जाएगा ?"

"मानेगा क्यों नहीं दीदी ! इस संसार में उसका अपना तो कोई भी नहीं है। यह सुविधा छोड़ देना केवल मूर्खता ही नहीं, पाप भी है।"

महेश्वरी हँसकर बोली, "यह क्या तेरा वकालत का पेशा है उपेन, कि केवल मुवकिल के रुपयों पर दृष्टि रखकर और सब ओर से मुँह फेर लोगे, इच्छा-अनिच्छा भी तो कुछ है।"

उपेन्द्र बोला, "है तो रहने दो, दीदी। जो लोग इसी को लेकर उलट-

फेर करना चाहते हैं वे भले ही करें, लेकिन हम लोग उस दल में नहीं जाना चाहते। और शची जैसी लड़की जिसे पसन्द न हो, उसका विवाह होना कठिन है।"

उपेन्द्र की उत्सुकता देखकर महेश्वरी ने कहा, "शायद वह आज कॉलेज नहीं गया! एक बार उससे पूछकर देख लो न, उसकी क्या राय है? शायद वह अपने कमरे में ही है।"

"कौन है रे वहाँ? भूतो है? एक बार दिवाकर बाबू को बुला दे, कहना कि दीदी बुला रही है।"

थोड़ी देर बाद ही दिवाकर के कमरे में घुसते ही उपेन्द्र बोल उठे, "तेरी शादी की बात मैंने तय कर दी है दिवा। परीक्षा के बाद ही तिथि निश्चित की जाएगी। दीदी, भट्टाचार्य जी से पत्रा देखने को कह देना, और बाबूजी से पूछकर एक बार उनकी राय भी जान लेना। शची के साथ ब्याह होगा, सुनकर बहुत प्रसन्न होंगे। तू मुँह बनाये क्या देख रहा है? तेरी छोटी भाभी की छोटी बहिन शची---उसको तूने देखा नहीं है? देखा नहीं तो शची को देखने की आवश्यकता भी नहीं है। अभी थोड़ी ही देर पहले मैं दीदी से कह रहा था कि वैसी लड़की को जो पसन्द नहीं करता, उसको शादी ही नहीं करनी चाहिए। बचपन में बाएँ पैर की चीर-फाड़ हुई थी, इसीलिए उस पैर को जरा खींचकर चलती थी। उस बात पर अभी-अभी मैं दीदी से कहने जा रहा था कि जरा-सा दोष, यदि आत्मीय होकर दिवाकर क्षमा नहीं कर सकता तो, दूसरा कोई कैसे करेगा? फिर छोटी-मोटी बात को लेकर शोर मचाना तो उच्च शिक्षा का फल नहीं है, वह तो नीचता है। इस संसार में कोई चीज त्रुटिहीन मिलती ही नहीं, ऐसी चीज की आशा करके बैठे रहना और पागलपन एक ही बात है, दिवा इसको समझता है। और तुमसे कहना ही क्या है दीदी, दिवाकर के साथ शादी होगी, सुन लेने पर सुरबाला के आनन्द की सीमा ही नहीं रहेगी। ओह! शायद तेरा समय नष्ट हो रहा है? इस समय तू जा, मैं भी ससुरजी को पत्र लिखता हूँ।"

सात

उपेन्द्र उठे और महेश्वरी को संकेत करके चले गए।

दिवाकर स्तब्ध होकर खड़ा रहा। भयंकर तूफान जैसे खर-पतवार, धूल-बालू सब उड़ाकर ले जाता है, उपेन्द्र वैसे ही विघ्न-बाधा, आपत्ति-अस्वीकृति को अपनी इच्छा के अनुसार कर लेते गए। मौन होकर दोनों यही सोचने लगे। बहुत देर तक भी जब कोई बात नहीं उठी, तब दिवाकर बोला, "यह सब क्या है दीदी ?"

महेश्वरी ने कहा, "तूने सुन ही लिया।"

दिवाकर ने पूछा, "इतनी जल्दी क्यों ?"

महेश्वरी ने कहा, "शची के विवाह की आयु बीत रही है और अगले वर्ष बिल्कुल ही लगन नहीं है।"

फिर दिवाकर के मन में खालीपन; किन्तु उसको याद आया कि उपेन्द्र इस समय पत्र लिख रहे हैं और थोड़ी देर बाद ही इस आवश्यक पत्र को लेकर डाकखाने दौड़ जाएगा। वह कभी भी विवाह न करेगा, यही उसके जीवन का संकल्प है। यह संकल्प इस प्रकार एकाएक एक खिचाव से उड़ता चला जा रहा है, यह स्मरण आते ही वह घबराकर उपेन्द्र के कमरे की ओर चला गया। कमरे में घुसते ही सुरबाला अपने अप्रसन्न मुँह पर सिर का कपड़ा खींचकर आलमारी के किनारे हट गई। उपेन्द्र मेज के पास कागज-कलम लेकर बैठे हुए थे।

उन्होंने पूछा, "फिर क्या दिवा ?" दिवाकर जो कुछ कहने आया था, उसको अच्छी प्रकार सोचने-विचारने का समय भी नहीं मिला, और उसे आँचल का एक छोर आलमारी के एक ओर दिखाई देने लगा, वह मौन खड़ा रहा।

उपेन्द्र ने पूछा, "क्या है रे ?"

दिवाकर ने कुछ न कहकर आलमारी की ओर दृष्टि फेरी।

उपेन्द्र ने उस संकेत को देखते हुए भी नहीं देखा, बोले, "मेरे पास समय नहीं है दिवा···।"

दिवाकर ने पास आकर कहा, "इतनी जल्दी किसलिए ?"

उपेन्द्र बोले, "ना, शीघ्रता तो नहीं है। अब भी जैसे ही हो अनुमानतः दो महीने का समय है, तेरी परीक्षा हो जाने पर···।"

"तो फिर आज ही पत्र लिखने की क्या आवश्यकता है? कुछ दिन बाद लिखने से भी तो काम चल सकता है।"

"चल सकता है। लेकिन कुछ दिन बाद लिखने से क्या सुविधा कोई विशेष होगी?"

दिवाकर ने धीरे से कहा, "सोच-विचारकर देख लेना उचित है।"

उपेन्द्र ने कहा, "उचित तो है ही! तुम ब्याह की चिन्ता पर सोच-विचार करो, तुम्हारी परीक्षा की चिन्ता मैं करूँ···।"

"लेकिन ऐसा उत्तरदायित्व ग्रहण करने के पहले···।"

"विद्वान् व्यक्ति की भाँति कुछ कहना आवश्यक है। अच्छा, तुम कुर्सी पर बैठ जाओ। सोच-विचार करके क्या कहना चाहते हो, मैं भी तो सुनूँ?"

दिवाकर चुप हो रहा।

उपेन्द्र ने कहा, "देखो दिवाकर, कोई बात क्यों न ली जाए, अन्त तक सोच-विचार करना मनुष्य की शक्ति में नहीं है। कोई कितने बड़े विद्वान् पण्डित क्यों न हों, अन्तिम फल भगवान् के हाथ से ही लेना पड़ता है। फिर भी, पहले से जो कुछ सोच-विचार करके देख लिया जा सकता है उसके लिए तो आधा घण्टा से अधिक समय नहीं लगता, तुम कुछ दिनों का समय चाहते हो?"

दिवाकर बोला, "सभी क्या इतना शीघ्र सोच-विचार कर सकते हैं?"

"कर सकते हैं, लेकिन यह स्मरण रखने की आवश्यकता है, इधर-उधर की फैली हुई चिन्ताओं का अन्त भी नहीं है और उसकी मीमांसा भी नहीं होती। दो-चार दिनों में ही क्या होगा, दो-चार वर्षों में भी निश्चय नहीं होता। फिर भी, इस सम्बन्ध में मोटे तौर से जो कुछ लोग सोच-विचार करके देखते हैं, वह यही है कि प्रतिपालन कर सकूँगा या नहीं। लेकिन शची से ब्याह कर लेने पर यह चिन्ता तो तुमको किसी दिन भी नहीं करनी पड़ेगी। दूसरी बात है इच्छा-अनिच्छा की, क्या तू यही बात सोच रहा है?"

शची की सुन्दरता का संकेत होने से दिवाकर को बहुत ही लज्जा मालूम हुई। वह बोल उठा—"ना-ना।"

"तब तो ठीक ही हुआ। क्योंकि यह बात कितनी ही अन्तःसार शून्य क्यों न हो, बाहरी आडम्बर तो है ही। पहले ही सुन्दरता की जो बात आ जाती है, वह मनुष्य के भीतर और बाहर, ऐसा जादू जगा देती है कि उसकी अच्छाई-बुराई का अत्यन्त सावधानी से निर्णय करना ही मुख्य वस्तु हो जाती है। जिस वस्तु को न पाकर लोग सारा जीवन हाय-हाय करते हैं, वह आड़ में ही रह जाती है। पसन्द करने की जो सारी सामग्री है, उस वस्तु को प्राप्त न करने से संसार असफल हो जाता है, उस पर तो जोर नहीं चल सकता, इसलिए बिना परीक्षा के ही, बिना विचार के ही भगवान् की दोहाई देकर लोग ग्रहण करते हैं। दो-चार दिनों में ही जो वस्तु नष्ट हो सकती है, नेत्र उठाकर देखने से ही जिसके दोष-गुण पकड़े जा सकते हैं, उसकी परीक्षा का फिर कोई अन्त नहीं रहता। दिवाकर, साढ़े पन्द्रह आने की ओर से यदि आँखें बन्द कर सकते हो, तो शेष दो पैसे के लिए गुरुजनों का दोषी बनकर विद्रोह मत करो। मैं आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारा भविष्य उज्ज्वलतर से उज्ज्वलतम हो। किसी दिन इस बात को मत भूलना कि सुन्दरता ही मनुष्य के लिए सब कुछ नहीं है, या केवल सुन्दरता की चर्चा करना ही विवाह का उद्देश्य नहीं है।"

दिवाकर सिर झुकाकर चुप रहा।

उपेन्द्र भी बड़ी देर तक चुप रहकर बोले, "तो अब तू यहाँ से चला जा।"

दिवाकर ने सिर झुकाकर धीरे-धीरे कहा, "मेरी रुचि नहीं है छोटे दा, मुझे क्षमा करो। बड़े आदमी की लड़की···।"

इस प्रकार स्पष्ट उत्तर ने उपेन्द्र को पल-भर के लिए स्तब्ध कर दिया। वे अल्पभाषी दिवाकर की बातों का गुरुत्व समझते थे। लेकिन किसी विषय में असफल होना भी उनका स्वभाव नहीं है। सामने के कागज-कलम को एक ओर हटाकर बोले, "रुचि नहीं है! वह भी नहीं रह सकती है, लेकिन बड़े आदमी की लड़की का दोष क्या है?"

दिवाकर ने कहा, "दोष नहीं है, लेकिन मैं दरिद्र हूँ।"

उपेन्द्र ने कहा, "इसका अर्थ तो यह है कि दरिद्र के घर की लड़की तुम्हारा जैसा सम्मान या भक्ति करेगी, धनवान की लड़की वैसा न करेगी।

लेकिन मैं पूछता हूँ, स्त्री से सम्मान या भक्ति पाने की कितनी धारणा तुमको है ? यदि हठ करोगे कि ब्याह करोगे ही नहीं, तो वह दूसरी बात है, लेकिन दोष का भार दूसरे के कंधे पर रखकर अपनी गरीबी का प्रत्युत्तर करना मत चाहो। पुराण-इतिहास में तो पढ़ चुके हो। उनमें सीता, सावित्री प्रभृति साध्वी स्त्रियों का जो उल्लेख है, वे राजा-महाराजा के घर की लड़कियाँ होते हुए भी किसी दरिद्र घर की लड़की की अपेक्षा गुणों में कम नहीं थीं। बड़े लोगों के घरों की लड़कियों के विरुद्ध एक कहावत प्रचलित है, इसीलिए उसको बिना विचार के ही मान लेना पड़ेगा, इसका कोई कारण मुझे दिखाई नहीं देता।"

दिवाकर के अलावा एक और श्रोता अत्यन्त ध्यान लगाकर, ओट में रहकर सुन रही थी। उसके आँचल के छोर पर दृष्टि पड़ने के साथ ही उपेन्द्र बोल उठे, "बड़े आदमी के घर की एक और लड़की इस मकान में ही है, इसका आधा रूप-गुण लेकर भी यदि शची आ जाएगी, तो किसी भी पति को अपना सौभाग्य ही समझना चाहिए।"

कुछ देर चुप रहे। वे फिर बोले, "रुचि नहीं है। तूने कहा था !"

उसी समय आलमारी के पीछे से चूड़ियों की आवाज सुनकर चकित होकर दिवाकर उठ खड़ा हुआ।

सुरबाला के पास जाकर बोला, "भाभी, तुम कहो तो मैं छोटे भैया को पत्र लिखने को कह दूँ।"

सुरबाला ध्यान से पति की बातें सुन रही थी। एक अनिर्वचनीय शान्ति और तृप्ति की लहर उसकी सब इच्छाओं, सब कामनाओं और स्वतन्त्रताओं को बहाकर पति की इच्छाओं के चरणों के नीचे आत्मसमर्पण करती जा रही थी। उसने कुछ भी निश्चय नहीं किया था, लेकिन आँचल से नेत्र पोंछकर पति को लक्ष्य करके एकाग्र मन से कहा, "वे झूठ कभी नहीं बोलते।"

दिवाकर ने उपेन्द्र की ओर ध्यान से देखा। खुली खिड़की से पर्याप्त प्रकाश उसके मुँह पर आ रहा था।

दिवाकर ने कहा, "तुम जो अच्छा समझो, वही करो। मेरा समय नष्ट हो रहा है, मैं जा रहा हूँ।" इतना कहकर वह धीरे-धीरे बाहर चला गया।

उसके चले जाने पर सामने की आरामकुर्सी पर आकर सुरबाला बैठ गई।

दोनों सजल नेत्रों से पति की ओर देखकर बोली, "तुम मुझे क्षमा करो। मैंने गलत समझ लिया था, तुम जो कुछ करना चाहते हो उससे शची की भलाई ही होगी।"

उपेन्द्र ने पत्र समाप्त करते हुए हँसकर कहा, "अच्छा !"

तत्पश्चात् दिवाकर केवल अपने विवाह की बात सोचने लगा। शची कैसी है, क्या करती है, क्या सोचती है, क्या पढ़ती है, उसके साथ विवाह होने से कैसा व्यवहार करेगी, यही सब। रात के समय पढ़ने-लिखने में बहुत-सी बाधाएँ पड़ने लगीं। आज उसका मन बेचैन हो उठा। किसी काम में मन न लगा। बार-बार अटक जाता था, शची पर।

परीक्षा के भय ने जितनी बार उसको पढ़ने में नियुक्त किया, उतनी बार ही वह उससे भागकर और दूसरे स्वप्नों की रचना करने लगा। बहुत देर तक इस विद्रोही मन के पीछे-पीछे दौड़-धूप करके कुछ भी न पा सकने पर दिवाकर अनुमान करने लगा कि उसका समय व्यर्थ नष्ट होता जा रहा है। क्या ही अनोखा परिवर्तन था। किस चीज के नशे ने उसको एकाएक मस्त बना दिया। उसका कारण ढूंढ़े जाने पर जो बात उसे याद पड़ गई, अत्यन्त लज्जा के साथ दिवाकर ने उसका प्रतिवाद करके, दृढ़ भाव से यही बात कही कि उसमें मेरी इच्छा नहीं है, अत्यन्त घृणा और अरुचि है।

उसने दुगुने आग्रह के साथ ऊँचे स्वर से पढ़ना शुरू कर दिया। लेकिन आज मन को संयम में रखना कठिन हो गया। जिस खेल के बीच से चला आ रहा है, जिस आकाश-कुसुम की आधी माला गूँथकर फेंक रखी है और लाचारी में पाठ याद कर रहा है, उसको समाप्त करने का सुअवसर वह प्रतिक्षण खोजता हुआ घूमने लगा। कहीं भी वह स्थिर न रह सका, कुछ ठीक प्रकार से हृदयंगम न कर सका, केवल आश्चर्य भरी प्रसन्नता से स्वप्नद्रष्टा की भाँति स्तब्ध होकर बैठ गया।

उसने पुस्तक में जो नर-नारियों के विषय में हाव-भाव पढ़े थे, उनके अधिकांश भाव उसके लिए अस्पष्ट थे, ठीक समझ में न आते थे, सब वे ही बातें एक-एक कर स्मरण होने लगीं और उनकी सुस्पष्टता और मधुरता

ने उसे मोहित कर डाला। इसी प्रकार कल्पना-सूत्र के सहारे वह कब अपने स्वतन्त्र विचार की सीमा पार गया, कब सब नर-नारियों के सुख-दुःख के इतिहास में मग्न होकर पढ़े काव्यों और साहित्य की आलोचना करता हुआ सो गया, इससे वह नितांत बेखबर था।

आठ

दूसरे दिन प्यास से सूखा कण्ठ लेकर सतीशचन्द्र की जब आँखें खुलीं, तब दस बजे थे। कमरे का दरवाजा उस समय भी बन्द था।

आज प्रातःकाल से ही आकाश से सूर्य की तीव्र किरणें अग्नि बरसा रही थीं। उस तीव्र धूप से सभी खिड़की-दरवाजे गरम हो गए थे और वह बन्द कमरा किस प्रकार तप रहा था, इसका पता स्वयं सतीश के न होने पर भी उसका सारा शरीर इसका प्रमाण दे रहा था।

बिस्तर पसीने से तर हो गया था और प्यास से व्याकुल होकर चेतना हाहाकार मचा रही थी। देह और मन की ऐसी विचित्र अवस्था लिए हुए सतीशचन्द्र सचेत हो उठ बैठा और व्यस्त होकर सिर की ओर का जंगला खोलते ही कड़ाके की धूप की लपटें उसके चेहरे और बदन पर पड़ीं। पल-भर में बदन को भस्म करने वाले क्रोधित शिव के तृतीय नेत्र से निकलने वाली प्रचण्ड अग्निराशि की भाँति दग्ध कर गईं।

समस्त रात्रि सोचते-सोचते दस बजे नींद टूटने की ग्लानि से सतीश 'बिहारी' 'बिहारी' करके चिल्लाने लगा। बिहारी दौड़कर आया।

सतीश बोला, "जा जल्दी से एक गिलास जल ला!"

बिहारी ने पूछा "तम्बाकू नहीं?"

"ना, जल ला।"

"नहाइएगा नहीं?"

"ना, तू अभी जल ला।"

बिहारी फिर भी नहीं गया, बोला, "संध्या-वन्दन···"

संध्या के नाम से सतीश जल उठा। डाँटकर बोला, "पाजी कहीं का,

तुझे इन बातों से क्या सरोकार ? जा, पानी ला।" डाँटे जाने पर बिहारी नीचे जल लाने चला गया।

रसोई-घर के बरामदे में बैठकर सावित्री सुपारी काट रही थी। मुस्कराकर पूछा, "सतीश बाबू तम्बाकू माँगते हैं ?"

बिहारी ने मुँह बनाकर कहा, "ना, जल माँगते हैं।"

"न स्नान किया, न संध्या-वन्दन—फिर जल क्या होगा ?"

बिहारी ने झुँझलाकर कहा, "मुझे क्या मालूम ? आज्ञा हुई 'पानी लाओ,' ले जा रहा हूँ।"

सावित्री सुपारी-सरौता रखकर उठ खड़ी हुई। बोली, "लाओ, मैं ही ले जाऊँ। तुम थोड़ी-सी बर्फ ले आओ।"

बिहारी पैसे लेकर बर्फ लेने चला गया।

सावित्री ने ऊपर जाकर कहा, "जाइए स्नान कर आइए, मैं तब तक संध्या के लिए चौका लगा रखती हूँ।"

सतीश ने मन-ही-मन झुँझलाकर कहा, "बिहारी कहाँ गया ?"

हँसी रोककर सावित्री ने कहा, "वह बर्फ लाने गया है। बाबू साहब, अपराध करके दण्ड भुगतना चाहिए। इससे प्रायश्चित हो जाता है। आप संध्या-वन्दन के बिना क्या किसी दिन जल पीते हैं, जो आज जल के लिए इतना हल्ला मचा रहे हैं ? जाइए, देर मत कीजिए।"

सावित्री की बातों का प्रतिवाद करना व्यर्थ था। सतीश उठ खड़ा हुआ और तौलिया कन्धे पर डालकर स्नान करने चला गया।

भोजन के बाद सतीश फिर एक बार सोने की तैयारी में था। इतने ही में सावित्री आ पहुँची। सतीश इस प्रकार दीवार की ओर मुँह फेरकर सो गया, मानो उसे देखा ही नहीं।

सावित्री ने मन-ही-मन हँसकर कहा, "जरा यह सुनने आई हूँ, कि रात की बात बाबू को याद है या नहीं ?"

सतीश मौन।

सावित्री ने कहा, "अच्छा, नींद टूटने पर कृपा करके एक बार बुला लीजिएगा। याद करा दूँगी।" यह कह, किवाड़ बन्द कर चली गई। सतीश को पिछली रात्रि की सारी घटनाएँ याद हों, यह सम्भव नहीं।

विपिन बाबू के जलसे से वह कब, कैसे और किसके साथ आया था, आकर क्या किया था, ये सारी बातें उसके मन से विश्रृंखल और धुँधली हो गई थीं। यह नहीं, कि अस्पष्टता को स्पष्ट करने की उसकी बिल्कुल ही इच्छा न थी, बल्कि एक अनिश्चित, एक उद्देश्यहीन लज्जा का भय उसको किसी प्रकार इस ओर आगे पैर बढ़ाने नहीं देता था। पर शाम को जो काण्ड उसने किया था, उसे वह भूल न सका। वही अब तक उसकी धुँधली स्मृति के मेघाच्छन्न आकाश में शुक्र की भाँति चमक रहा था। परन्तु सावित्री ने जब उँगली के संकेत से दिखा दिया कि उसकी अपेक्षा अधिक दुःखप्रद ग्रह बादलों की आड़ में छिपे हुए हैं तब तो उसकी आँखों पर से नींद उसी प्रकार लुप्त हो गई, जिस प्रकार मरुभूमि से जलधारा।

कल शाम को और कोई उपाय न सूझने पर उसने झट से दीपक बुझा दिया था, इसका फल क्या होगा, इस सम्बन्ध में मन-ही-मन वह अत्यन्त चिन्तित था। फिर भी उस घटना में नीयत की कोई खराबी नहीं थी। यह एक बुरी सायत थी; यह समझकर वह अपने मन को संतोष दे रहा था और दोष न करने में सत्य का जो बल छिपा रहता है, वही बल उसके चिंताकुल चित्त को आश्रय दे रहा था।

लेकिन सावित्री इस समय जो बात कह गई, जिस अन्धकार में मार्ग-निदर्शन कर गई, उसमें प्रवेश करने का साहस कहाँ ? उसे मतवाला होने की अभिज्ञता अवश्य थी; लेकिन अचेत होकर गिर पड़ने की अभिज्ञता कहाँ से लाता ? वह कैसे अनुमान करे कि उसने क्या किया था, क्या नहीं। कितने ही मतवालों को उत्पात मचाते उसने अपनी आँखों से देखा है। अब अपनी बार किस काम को किस साहस से असंगत बताकर टाल देगा। इससे उसके आगे सम्भव-असम्भव की समस्या जितनी ही कठोर होने लगी, उतना ही उसका दुःखी मन सम्भव-असम्भव के बीच में एक लकीर खींच देने के लिए उछल-कूद मचाने लगा। पुनः उसके मन में आग भभक उठी, वह उठ बैठा और जीवन में शराब न छूने की फिर एक बार प्रतिज्ञा करके उसने प्रायश्चित किया।

उसने खिड़की खोलकर पुकारा, "बिहारी !"

बिहारी राखाल बाबू के बिस्तर धूप में डाल रहा था। पुकार सुनकर

आ उपस्थित हुआ ।

सतीश ने कहा—"जा, तू अपना काम कर, सावित्री को एक गिलास जल लाने को कह दे ।"

बिहारी ने कहा, "मैं ही लाता हूँ, वह इस समय पूजा कर रही है ।"

सतीश ने चकित होकर पूछा, "पूजा ?"

"जी हाँ, वह तो नित्य करती है । एकादशी के रोज जल की बूँद तक नहीं लेती । हम लोग कितना ही कहते हैं, लेकिन वह कभी न तो मछली खाती है और न कभी रात को भात ही खाती है । आखिर वह कुलीन घर की ही तो लड़की है ।"

सतीश ने विस्मित होकर पूछा, "कुलीन घर की, क्या मतलब ?"

"हाँ, बाबू साहब, भले घर की हैं ।" कहकर बिहारी जल लाने जा रहा था कि सतीश ने रोककर पूछा, "सावित्री रात को भात नहीं खाती, तो फिर क्या खाती है ?"

"जलपान के लायक कुछ बचा रहता है, तो वही खाकर पानी ले लेती है, नहीं तो निराहार रह जाती है ।"

"घर का और कोई भी जानता है ?"

बिहारी ने कहा, "महाराज जी जानते हैं, मैं जानता हूँ और कोई नहीं जानता । उसने कहने को मना कर दिया है ।"

सतीश ने कहा, "अच्छा जा, जल ला ।"

बिहारी जरा आगे बढ़ा कि सतीश ने फिर पुकारा, "बिहारी ?"

"जी !"

"तूने कैसे जाना कि वह भले घर की है ?"

"बाबू साहब, कैसे क्या जाना, मैं अच्छी तरह जानता हूँ । बहुत ही अच्छे कुल की लड़की है, केवल समय के फेर से···।"

"अच्छा-अच्छा, जा जल ला ।"

बिहारी के चले जाने पर सतीश बिस्तर पर औंधे मुँह पड़ा रहा । सावित्री को साधारण दासियों की श्रेणी में समझने में उसके हृदय पर चोट-सी लगती थी । उसे ऐसा जान पड़ता था, मानो सावित्री को निम्न श्रेणी की स्त्री मानने के लिए उसका मन गुप्त लांछन और हीनता के बोझ से

अपना सिर आप ही झुका लेता है। परन्तु क्यों? यह आज तक सतीश जान न सका था। आज बिहारी के इस जरा से परिचय से केवल उसे ही आनन्द और आश्चर्य न हुआ, बल्कि उसका सम्पूर्ण हृदय मानो किसी अपरिचित व्यक्ति के पसीने से भीगे बाहुपाश से सहसा मुक्त होकर पवित्र हो गया। उसने बिहारी की बात शत-प्रतिशत सत्य मानने में जरा भी अविश्वास नहीं किया।

जल लाने में देर होने लगी। सतीश कुछ देर तक चुप रहा। फिर भी बिहारी का पता नहीं। प्यास उसे सताने लगी। उसने फिर बिहारी को एक बार बुलाने की इच्छा की तो देखा कि जल का गिलास लिए सावित्री आ रही है। इस आचारपरायणा हतभागिनी को आज उसने नई दृष्टि से ही देखा तो उसका हृदय करुणा और श्रद्धा से भर गया। पहले जो बात बोलने से उसका मुँह रुकता था, आज नहीं रुका। उसने हाथ से गिलास ले, सब जल पीकर उसे खाली कर दिया। गिलास फर्श पर रखकर बोला, "बहुत कुछ कहना है।"

सावित्री चुपचाप देखती रही।

सतीश ने कहा, "पहली बात है, मुझे क्षमा करना होगा।"

सावित्री ने शान्त स्वर से पूछा, "दूसरी बात ?"

सतीश ने कहा, "मैं कल कब और कैसे आया, बतलाना होगा।"

सावित्री ने उत्तर दिया, "रात को तीसरे पहर गाड़ी से आए।"

"उसके बाद ?"

"आप तो सड़क पर ही सोने का प्रबन्ध कर रहे थे।"

"अच्छा नहीं किया था। उठाकर कौन लाया ?"

"मैं।"

"और कौन था ? इतना बड़ा जड़ पदार्थ ऊपर कैसे लाया गया ?"

सावित्री ने हँसकर कहा, "घबराइए नहीं, घर में किसी को कुछ भी मालूम नहीं हो सका है।"

सतीश ने साँस लेकर कहा, "जान में जान आई। लेकिन तुम्हारे साथ किसी प्रकार का दुर्व्यवहार तो नहीं किया ?"

"ना।"

बहुत ही प्रसन्न होकर सतीश ने कहा, "हाँ, तुम कौन-सी बात याद दिलाना चाहती थीं ?"

"आपकी प्रतिज्ञा—'शपथ'। आपने शपथ ली थी, कि अब कभी शराब न पीऊँगा।"

"मैंने शपथ ली ? ऐसी दुर्बुद्धि मेरे मन में क्योंकर उत्पन्न हुई ?"

"शायद मेरे कहने से हो !"

सतीश ने स्वर को विनम्र करके कहा, "हाँ सावित्री ! मुझे याद आ गया। तुम्हें छूकर सौगन्ध ली थी न ?"

सावित्री चुप ही रही।

सतीश ने कहा, "यही होगा। लेकिन कल शाम की बात तुम्हें याद है न ?"

इस बार सावित्री हँस पड़ी, सिर हिलाकर बोली, "है।"

"सम्भव है, लोगों को यह बात मालूम हो जाए। इसका क्या प्रयत्न करना चाहिए ?"

सावित्री ने सहसा गम्भीर होकर कहा, "यही कि आप या तो किसी दूसरे घर में या अपने घर चले जाइए।"

"और तुम ?"

सावित्री के चेहरे पर किसी प्रकार की उद्विग्नता का चिह्न न था। वह शान्त भाव से बोली, "मेरे लिए आप चिन्ता न करें। इस घर वाले रखें, अच्छा ही है, न रखें तो और कहीं काम कर लूँगी। जहाँ काम करूँगी, वहीं दो रोटी पाऊँगी।"

पर्वत की चोटी से एकदम नीचे गिरकर सतीश का मन चूर-चूर हो गया। उसके यहाँ रहने न रहने में सावित्री का कुछ भी बनता-बिगड़ता नहीं है। इस विषय में वह पूर्णतः तटस्थ है।

सावित्री के इस निश्चित दो टूक उत्तर के बाद और कोई प्रश्न उसकी जीभ पर आया ही नहीं, यद्यपि पहले उसने न जाने कितनी ही बातें कहने के लिए सोच रखी थीं।

सावित्री गिलास लेकर चली गई।

सतीश चुपचाप बैठा रहा।

मनुष्य का मन काहे से बनता है और काहे से बिगड़ता, इसका कुछ पता नहीं चलता। यह किस हल्की-सी चोट से छटपटाने लगता है और प्रचण्ड चोट को भी हँसते हुए सह लेता है। इसी मन को लेकर मनुष्य कितना अभिमान करता है? जो मुट्ठी में नहीं किया जा सकता, जो पहचाना तक नहीं जा सकता, कैसे उसे अपना कहा जा सकता है और कैसे उसे लेकर निर्भय हो घर बसाया जा सकता है!

देर हो गई सावित्री को गये। सतीश पूर्ववत् बैठा रहा। उसका हृदय ठीक दुःख या शोक से नहीं, मानो एक प्रकार की ज्वाला से रह-रहकर जलने लगा। जिसे प्यार करूँ वह यदि प्यार न करे, बदले में घृणा करे तो घृणा सही जा सकती है, परन्तु जिसके सम्बन्ध में यह विश्वास हो कि मुझे उसका प्रेम प्राप्त हो चुका है, वहाँ यदि ऐसी बात हो तो उसका सहना बड़ा ही कठिन हो जाता है। पहली परिस्थिति दुःखी कर देती है, और दूसरी अपमान भी करती है। इस व्यथा का प्रतिकार नहीं है, इस अपमान की पुकार भी नहीं है। जिसके प्रेम की आशा नहीं करते, वह यदि प्रेम नहीं करता, तो इसमें कहना क्या है? परन्तु जहाँ कहने का पूरा अवसर है, वहाँ किसी प्रतिकार के न होने और अपमान की नालिश का मौका न पाने के कारण ही लांछना इतनी अधिक चोट करती है। व्यथा का कारण ढूँढ़ने पर भी जब उसका पता नहीं चलता तब वह भी असहनीय हो जाती है।

सावित्री के इस निश्चिन्त और सहज कर्तव्य-निर्धारण ने केवल उसी के हृदय के मानचित्र को ही प्रकट नहीं किया, उसने सतीश के हृदय के चित्र को भी बाहर के प्रकाश में लाकर खड़ा कर दिया। इन दोनों चित्रों को देखकर वह स्तम्भित हो गया। उसने निश्चित रूप से समझा था कि सावित्री उसे प्रेम करती है, वह नहीं करता। लेकिन आज उसे मालूम हुआ, कि बात बिल्कुल उल्टी है यानी वह प्रेम करता है, सावित्री नहीं करती। इस घृणित बात को स्वीकार करते केवल लज्जा से उसका सिर नीचा नहीं हुआ, बल्कि अपने मन की इस नीच प्रवृत्ति से उसे अपने ऊपर घृणा भी उत्पन्न हो आई। निस्सन्देह उसकी पिछली रात का कार्य लज्जाजनक था; उसके जीवन में ऐसी अनेक रातों की अनेक लज्जाएँ इकट्ठी हो चुकी हैं, लेकिन इस नीचता की तुलना में वे सब फीकी जान पड़ीं।

इस घर में तो अब एक दिन भी रहना कठिन है। इस बात को वह किसी तरह भी स्वीकार न कर सकेगा कि यहाँ रहने-न-रहने के सम्बन्ध में वह बिलकुल उदासीन है। उसने यह कठोर प्रतिज्ञा कर डाली कि दुःख के भारी बोझ से चाहे उसका हृदय टुकड़े-टुकड़े हो जाए, लेकिन वह किसी प्रकार इस नीचता को अपने मन में बढ़ावा देकर अपने आपको और भी गहरी खाई में न ढकेलेगा।

दिन ढलने लगा था।

भीतर बैठे हुए सतीश को इसका होश न था। सहसा घर में रहने वालों के अपने-अपने काम से लौटने की आहट पाकर वह चौंक उठा। खिड़की से झाँककर उसने एक बार देखा और उठ खड़ा हुआ। झट एक कुरता पहन और चादर कन्धे पर डाल वह छिपकर चुपचाप बाहर चला गया। अभी हाथ-मुँह धोने का प्रस्ताव लेकर सावित्री आ पहुँचेगी और खाने के लिए हठ करने लगेगी।

आज उसे जब भी भूख न थी। लेकिन सावित्री किसी प्रकार न मानेगी। अनुरोध करेगी, फिर दबाव डालेगी, अन्त में दुःखी होकर चली जाएगी। प्रेम के इस मौखिक आडम्बरों से अपने जीवन में आज ही पहले-पहल वह अपने को वास्तविक घृणा के साथ दूर हटा ले गया।

घूमता-फिरता रहा।

सन्ध्या से पहले दर्जीपाड़े की गली के मोड़ पर उसे पीछे से किसी परिचित ने पुकारा, "छोटे बाबू हैं क्या ?"

सतीश ने मुड़कर देखा और देखते ही खड़ा हो गया, बोला, "कौन मोक्षदा ?"

बहुत दिन पहले मोक्षदा सतीश के पश्चिम प्रदेश वाले घर में दासी का काम करती थी। छुट्टी लेकर कलकत्ते आई थी। फिर जा न सकी थी। बोली, "हाँ बाबू, मैं ही हूँ। छोटे बाबू, आप मेरी एक चिट्ठी पढ़ दीजिएगा ?"

सतीश ने हँसकर कहा, "इतने बड़े शहर में तुझे और कोई चिट्ठी पढ़ने वाला न मिला ? कहाँ है चिट्ठी, ला पढ़ूँ।"

दासी ने कहा, "चिट्ठी मेरे घर पर है बाबू। किसी अनजान आदमी

से पढ़ाने का साहस नहीं होता, न मालूम क्या लिखा हो। यों तो हमारे घर में ही एक लड़की है, वह लिखना-पढ़ना जानती है, लेकिन उसे भी आज दो दिन से नहीं देखा। इतनी रात गए घर लौटती है कि समय ही नहीं रह जाता।"

सतीश ने पूछा, "तुम्हारा घर कितनी दूर है ?"

दासी ने कहा, "यही तो, यहाँ से थोड़ी ही दूर है। एक गली में। बाबू जी, आप अपना ठिकाना बतला दीजिए, कल मैं ही किसी को साथ लेकर आऊँगी और चिट्ठी पढ़ा लूंगी ?"

सतीश ने 'अच्छा' कहकर अपना शोभा-बाजार का ठिकाना बतला दिया और किधर से होकर वहाँ जाना पड़ता है, यह भी बता दिया। कुछ दूर जाने के बाद दासी ने अचानक एक स्थान पर ठहरकर कहा, "कहने का साहस तो नहीं होता, लेकिन बाबू, एक बार आप पधारते, तो··मेरा घर यहाँ से दूर नहीं है।"

पल-भर सोचने के बाद सतीश ने कहा, "अच्छा, चलो।" आज घर लौटने की बिल्कुल इच्छा न थी। वह मन में यह विचार कर ही घर से निकला था, कि रात को देर तक इधर-उधर घूमता रहेगा। सावित्री के घर चली जाने के बाद वह लौटेगा। अतः सहज ही राजी हो गया। दो गलियाँ पार कर एक कच्चे दो तल्ले मकान के सामने आकर खड़ा हो गया।

'जरा ठहरिये' कहकर मोक्षदा भीतर गई और तनिक देर बाद मिट्टी के तेल की एक डिबिया हाथ में लिए लौट आई और सतीश को अपने साथ ऊपर ले गई। ऊपर कोने वाले कमरे में दीवार पर दीपक जल रहा था। उस कमरे की ओर संकेत करके विनय सहित बोली, "आप जरा बैठिए, मैं चिलम भर लाऊँ।" भीतर जाकर इस छोटे से कमरे की सफाई देखकर सतीश के मन को शान्ति-सी मिली। एक ओर तख्ते पर धोये-माँजे पीतल-काँसे के बर्तन चमक रहे थे और उसकी बगल में एक छोटी अरगनी पर कुछ कपड़े करीने से टँगे हुए थे, दीवार में ब्रूकेट पर एक टाइमपीस घड़ी रखी हुई थी, जिसमें आठ बजे थे।

सतीश ने चौखट के बाहर जूते खोल दिये और भीतर चौकी पर बिछे हुए दूध के समान सफेद बिछौने पर जाकर बैठ गया और कमरे के सामानों

को देखने लगा। सबसे पहले उसकी दृष्टि एक छोटी-सी आलमारी पर पड़ी, उसमें कुछ किताबें सजाकर रखी हुई थीं। सतीश ने एक पुस्तक उठाई और पहला पन्ना उलटते ही देखा, अंग्रेजी अक्षरों में भुवनचन्द्र मुखोपाध्याय लिखा हुआ है। वह पुस्तक रखकर उसने और तीन-चार पुस्तकें एक-एक कर उठाईं, सबमें एक ही नाम देख, पुस्तकों को ठीक-ठिकाने रख फिर आकर बिछौने पर बैठ गया।

मोक्षदा फरशीदार हुक्के पर तम्बाकू भर लाई।

सतीश ने हाथ में हुक्का लेकर कहा, "तुम्हारा यह कमरा तो बहुत ही साफ-सुथरा है। जाने को जी नहीं चाहता।"

मोक्षदा ने मुस्कराकर कहा, "जाने की क्या आवश्यकता है? बैठिए। लेकिन बाबू, यह कमरा मेरा नहीं है, एक दूसरी औरत का है।"

सतीश ने पूछा, "वह कहाँ है?"

मोक्षदा ने कहा, "वह बाबू लोगों के एक 'बासे' में काम करती है। लौटने में प्राय: बेचारी को रात हो जाती है। इसी से घर की कुंजी मेरे पास रहती है। वह मुझे मौसी कहती है।"

सतीश ने कहा, "खैर, लेकिन भुवन बाबू कब आयेंगे?"

दासी ने चौंककर पूछा, "भुवन बाबू कौन?"

"भुवनचन्द्र मुकर्जी को तुम नहीं पहचानतीं?"

अचानक दासी ने भौंहें तानकर कहा, "ओ हो हमारे मुकर्जी महाशय, ना-ना, अब वे क्यों आने लगे?"

"क्यों, क्या उनकी मृत्यु हो चुकी है?"

मोक्षदा ने आँखों में अहंकार भरकर कहा, "ना मृत्यु नहीं हुई, लेकिन हो जाती, तो ही अच्छा था। वे ब्राह्मण हैं, वर्ण में गुरु हैं, हम लोगों के मस्तक के मणि हैं। नारायण के समान हैं। उनके प्रति मैं कोई द्वेष रखकर कोप-भाजन बनना नहीं चाहती, उनकी चरणरज माथे चढ़ाती हूँ, लेकिन किसी दिन भेंट हो जाए, तो उनके मुँह पर गिन के तीन झाड़ू न लगाऊँ तो मेरा नाम मोक्षदा नहीं।"

सतीश हँस पड़ा। बोला, "क्रोध में आकर ब्राह्मण को बिना भाव-भक्ति के न मार बैठना। भक्ति के साथ गिन-गिनकर मारोगी तो कुछ पाप

न होगा। लेकिन वे हैं कौन ?"

मोक्षदा तमककर बोली, "बाबू साहब, उसका परिचय क्या दूँ ? वह ब्राह्मण नहीं, चमार हैं। इस बेचारी लड़की को यहाँ त्यागकर भाग गया। भला यही भले आदमी का काम है ? राम ! राम ! चुल्लूभर पानी में डूब मरने को पानी न मिला।"

सतीश ने बड़ी उत्सुकता से पूछा, "वे हैं कौन ? उन्होंने क्या किया है ?"

एकाएक दरवाजे के बाहर से उत्तर आया, "उन्हें आप नहीं पहचान सकते। उनकी बात सुनकर आपको क्या लाभ होगा ?"

सतीश चौंक पड़ा।

मोक्षदा ने मुँह फिराकर कहा, "आ गई सब्बो ?"

सावित्री ने कमरे में पैर रखकर कहा, "हाँ मौसी। बाबू साहब कहाँ मिल गये ?"

मोक्षदा ने कहा, "ये ही हमारे छोटे बाबू हैं, सावित्री। आज दो दिन हुए, बहूजी के यहाँ से एक चिट्ठी आई है। इसी से मैंने कहा कि बाबूजी दया करके घर चलकर पढ़ दें।"

सावित्री ने कहा, "तो यह दया तुम्हारे कमरे में न करके मेरे कमरे में क्यों ?"

मोक्षदा ने खिन्न होकर कहा, "क्रोध क्यों करती है सब्बो। मेरी कोठरी तो भलेमानसों के बैठने के योग्य नहीं है, इसी से तेरे कमरे में बैठाया है। ये बहुत बड़े लोग हैं। तुझे प्रसन्न होना चाहिए था न कि क्रुद्ध।"

सावित्री ने हँसकर कहा, "अप्रसन्न क्यों होऊँगी मौसी, अप्रसन्नता की कोई बात नहीं है। लेकिन यों ही खाली-खाली दया की भीख लेना क्या ठीक है ? बाबूजी को कुछ खिलाओ-पिलाओ भी। हाँ ब्राह्मण देवता, कहिए कुछ खाने की इच्छा है ?"

सतीश बहुत संकुचित होकर बैठा था, सिर हिलाकर बोला, "नहीं।"

सावित्री के प्रशन के विचित्र ढंग से मोक्षदा चकित हो गई, बोली, "अरी सावित्री ! यह बात करने का कौन-सा ढंग है ? बड़े आदमी के साथ क्या इसी प्रकार बातें की जाती हैं ?"

सावित्री ने वरबस हँसी रोककर कहा, "मैंने कोई बुरी बात तो नहीं कही मौसी ! जाने दो, अव इच्छा की बात न पूछूँगी। लेकिन तुम जाकर दूकान से कुछ ले तो आओ। मैं तब तक स्थान ठीक किये देती हूँ।"

मोक्षदा अस्पष्ट स्वर में बड़बड़ाती हुई शीघ्र ही वहाँ से चली गई। उसके जाने पर सावित्री ने कहा, "कल रात से ही अनशन चल रहा है, शाम को किस प्रकार भाग निकले, इसका भी पता नहीं चला। अब उठिए, सन्ध्या-वन्दन करके कुछ भोजन कीजिए। उस अरगनी पर धुला हुआ कपड़ा टँगा है, पहनकर मेरे साथ आइए, देर न कीजिए, उठिए।"

सतीश ने सिर हिलाकर कहा, "मुझे भूख नहीं है।"

सावित्री ने कहा "न सही, खाना अवश्य पड़ेगा। पहला कारण यह है कि आपको भूख नहीं है, इस बात को मैं नहीं मानती, दूसरा कारण···"

सतीश ने बड़ी रुखाई से कहा, "दूसरा कारण कुछ नहीं, रहने दो, लेकिन पहला कारण बहुत ठीक है। तुम सभी बातों में हठ और जबरदस्ती करती हो। तुम्हारी इस हठ के सामने किसी का कुछ बस नहीं चलता।"

सावित्री ने सिर उठाकर मुस्कराते हुए कहा, "फिर व्यर्थ की कोशिश क्यों कर रहे हो ?"

तब सतीश ने और भी गम्भीर होकर कहा, "यह बात नहीं है सावित्री, आज मेरा प्रयत्न व्यर्थ न होगा। या तो अपना दूसरा कारण बताओ, नहीं तो मैं तुम्हें सच कहता हूँ, मैं कुछ भी न खाऊँगा।"

सतीश का ढंग देखकर सावित्री हँसने लगी।

कुछ देर बाद धीरे-धीरे बोली, "मैं यह सोच रही हूँ कि आज आप क्यों आये ? आज मेरा जन्मदिन है इसी से आज आपने इस मजदूरिन का घर अपने चरणों की धूलि से पवित्र किया है। आपको आज यों ही बिना खाये न जाने दूंगी।" इतना कहकर सावित्री रुक गई। वह रुक तो गई, पर हृदय की व्यथा उसके कण्ठस्वर के मुक्त मार्ग से वाहर आकर सहसा इस प्रकार खड़ी हो गई, कि थोड़ी देर के लिए सतीश की सारी बोधशक्ति जड़ हो रही। चतुर सावित्री ने पलभर में यह अनुभव कर वात के सिलसिले को साधारण हँसी का रूप देकर, मुस्कराकर कहा, "भगवान् ने आज सौभाग्य से मेरा अतिथि बनाकर आपको भेजा है, इसलिए आपको खाना भी पड़ेगा

और दक्षिणा भी लेगी पड़ेगी। देखती हूँ, आज आपकी जाति-पाँति गई।"

अब तक सतीश अपनी स्वाभाविक अवस्था में आ गया था। उसने पूछा, "क्या सचमुच ही आज तुम्हारा जन्म-दिन है?"

सावित्री बोली, "हाँ।"

सतीश ने कहा, "फिर जब ऐसे अवसर पर आज आ पहुँचा हूँ, तब बाजारू मिठाई, पकवान या बासी पूरियाँ क्यों खाऊँ? दूसरे, मैं वह सब कभी खाता भी नहीं।"

सावित्री यह बात जानती थी। मन-ही-मन लज्जित होकर बोली, "आज तो रात हो गई है।"

सतीश ने कहा, "तो हानि ही क्या है? आज घर लौटकर किसी की झाड़-झपट तो सुननी नहीं है, फिर अधिक रात होने से क्यों डरूँ? तुम चाहे जो कहो, सावित्री, मैं वह सब नहीं खाऊँगा।"

"मैं तुमसे हार मानती हूँ।" कहकर सावित्री हँसकर उठ गई।

सतीश लेट गया। इस छोठी कोठरी को और इस निर्मल सफेद शय्या को छोड़कर जाने को उसका जी नहीं चाहता था। पर आत्मसम्मान और प्रतिष्ठा बनाये रखकर बैठे रहने का कोई अच्छा उपाय भी उसे न सूझता था। अब इस भोजन बनाने की देरी की सम्भावना से उसको मानो किसी कर्तव्य के कठिन भार से मुक्ति मिल गई। वह गाव-तकिये को हाथों में जोर से लपेट कर दीवार की ओर मुँह कर चुपचाप पड़ा रहा। जाते समय सावित्री बाहर से साँकल चढ़ा गई थी। यह सतीश जान गया था। इसके अलावा आज की बातचीत में 'तुम' के व्यवहार का भी उसने लक्ष्य किया था। एकान्त कमरे में ये दोनों नई बातें जादूगर और उसकी छड़ी की भाँति उसके मन में अपूर्व इन्द्रजाल की रचना करने लगीं।

आज ही दोपहर को प्रेम का सारा कूड़ा-करकट उसके मन से मानो भाटे के खिचाव में पड़कर बाहर बह गया था; पर इस समय ज्वार के उल्टे प्रवाह में पड़कर फिर सब उसके हृदय में आ-आकर जमने लगा। आत्माभिमान की चोट की तीव्र ज्वाला ने उसकी आँखों में उँगली गड़ाकर उसके मन की नीच प्रवृत्ति को दिखा दिया था, उसकी आँखें खोल दी थीं; पर उस ज्वाला के शान्त होने के साथ-साथ खुली हुई आँखें आप-ही-आप मुँद गईं।

अपने हृदय की इसी डाँवाडोल स्थिति की लहरों में जब वह डूबता और उतराता था, तभी उसे नींद की एक हल्की झपकी-सी आ गई—आँखें जरा लग-सी गईं।

सहसा दरवाजा खुलने के शब्द से जगकर पीठ फेरकर उसने देखा कि सावित्री मोक्षदा को लेकर कमरे में आ रही है। मोक्षदा ने चिट्ठी सतीश के हाथ में देकर कहा, "देखिए तो बाबू, बहूजी ने क्या लिखा है?"

सतीश ने जम्हाई लेते हुए कहा, "अभी उनके लौटने में दो महीने की देर है।"

मोक्षदा ने पूछा, "और कोई बात नहीं है?"

सतीश ने पत्र वापस करते हुए कहा, "ना, और कोई खास बात नहीं है।"

"बाबू साहब, मेरे वेतन की वात···"

"ना, यह तो उसमें नहीं है।"

रुपये की बात नहीं है, सुनकर मोक्षदा मन-ही-मन वहुत झुँझलाई और चिट्ठी के लिए हाथ फैलाकर बोली, "हाँ, यह बात क्यों रहेगी? दुनिया-भर की व्यर्थ की बातें लिख मारी हैं। लाइये चिट्ठी! सावित्री, कल मुझे इसका उत्तर लिख देना। हाँ, बाबू को खिलाओगी कब? क्या अब भी खाने का समय नहीं हुआ?"

सावित्री ने कहा, "ब्राह्मण देवता बिना सन्ध्या-वन्दन किए क्या यों ही खा लेंगे?"

मोक्षदा झुँझलाई हुई तो थी ही और भी झुँझलाकर बोली, "वाह री तेरी बुद्धि! ये क्या कोई पुरोहित जी हैं या पण्डा जी, जो पूजा-पाठ करेंगे?"

सतीश ने हँसकर कहा, "क्यों मोक्षदा, क्या तुम भूल गईं, मैं तो सदा ही सन्ध्या-वन्दन किया करता हूँ।"

मोक्षदा झेंपकर बोली, "हाँ-हाँ, ठीक है, मैं भूल रही थी।"

सावित्री की ओर देखकर बोली, "देख बेटी, जगह ठीक कर दे। तेरी कोठरी में वैसे तो सब ठीक ही है। उठ, अब देर न कर।" यों कहती हुई मोक्षदा वहाँ से चली गई।

घण्टे-भर बाद सतीश के भोजन के समय कोठरी में कोई न था। अँधेरे बरामदे में से मोक्षदा यह देखकर एकदम जल उठी। रसोई-घर में जाकर देखा, सावित्री चुपचाप बैठी है।

वह रुष्ट स्वर में बोली, "अरी सावित्री! क्या तेरी बुद्धि पर आज सचमुच पत्थर पड़ गया है? क्या किसी भिखमंगे को खिला रही है, कि जो मन में आया थाली में डाल आई और आप यहाँ निश्चित होकर बैठ रही?"

कुछ सोच रही थी सावित्री, चौंककर बोली, "आवश्यकता होगी तो माँग लेंगे।"

"ऐसी बुद्धि न होती, तो आज तेरी यह दशा ही क्यों होती! क्यों तुझे यों पराई नौकरी करनी पड़ती? तू तो स्वयं दो-चार नौकर-चाकर रखती।"

सावित्री ने हँसकर कहा, "क्यों मौसी, इसमें दोष क्या है? मैं परिश्रम करके खाती हूँ, क्या यह भी लज्जा की बात है?"

मोक्षदा जल उठी। बोली, "निस्सन्देह! कौन कहता है कि इसमें लज्जा की बात नहीं है? मेरी आयु में भले ही न हो, पर तेरी आयु में तो अवश्य है। खैर, अभी जा, बाबू को खाना दे आई है तो जा, बैठकर खिला। भाग्य फिरते देर नहीं लगती।"

सावित्री चलने को तैयार हुई, जरा ठिठककर बोली, "क्या बक रही हो मौसी, वे सुनते होंगे।"

मोक्षदा ने तत्काल ही स्वर को धीमा कर कहा, "नहीं सुनेंगे, तू जा बेटी। तुझे एक बात और बताये देती हूँ। भगवान् ने जो दो आँखें दी हैं वे बन्द किए रहने के लिए नहीं हैं, उन्हें खोले रहा कर। सोने की चेन और हीरे ही अँगूठी न देखकर किसी आदमी को मामूली न समझ लिया कर।"

सावित्री हँसती हुई जाने लगी। मोक्षदा ने फिर पीछे से पुकारकर कहा, "सावित्री, जरा सुन, इधर आ!"

सावित्री घूमकर खड़ी हो गई, बोली, "क्या?"

"ढाके की एक साड़ी निकाले देती हूँ, पहन कर जा।"

सावित्री ने हँसी रोककर कहा, "मौसी, तुम निकालो, मैं अभी आती हूँ।"

सतीश ने भोजन प्रायः कर लिया था।

सावित्री ने कमरे में आकर पूछा, "आँख मूँदकर खा रहे हो क्या?"

सतीश ने सिर उठाकर कहा, "ना-ना।"

"पर मैं तो देखती हूँ, तुम्हारी आँखों पर नींद की खुमारी नाच रही है।"

सचमुच उसे बड़े जोरों की नींद आ रही थी। गत रात्रि की उच्छृंखलता आज असमय में ही उसकी आखों के ढकनों को दबाये हुए थी। उसने लजाते हुए इसे स्वीकार किया, कहा, "हाँ, बड़ी नींद आ रही है।"

सावित्री ने पूछा, "और कुछ चाहिए?"

सतीश झटपट बोल उठा, "ना, अब बस करो, कुछ नहीं चाहिए। मैं बहुत खा चुका।"

सावित्री ने बाहर पैरों की आहट सुनी और समझ गई कि मोक्षदा आकर खड़ी है। उसे सुनाने के विचार से बोली, "बाबू, मुझे ढाके की एक बढ़िया साड़ी खरीद देनी होगी।"

उसने किसी दिन कुछ भी माँगा नहीं था। इसी से बात का अर्थ न समझकर सतीश को कुछ विस्मय हुआ। उसे, मोक्षदा के आने का पता नहीं था, सिर उठाकर उसने पूछा, "सचमुच?"

"और नहीं तो क्या—झूठ!"

"पहनोगी कब?"

"आज यदि भगवान् ने पहनने का समय नहीं दिया है, तो क्या हुआ? कभी वैसा समय नहीं आयेगा—ऐसी कोई बात नहीं। दूसरी बात यह है कि मैं मजदूरी करके पेट पालती हूँ, इसका मौसी को बड़ा रंज है। इसी से सोचती हूँ कि अब बैठी-बैठी खाऊँगी।"

सतीश ने कहा, "अच्छी बात है!"

"इतने से ही काम न चलेगा। एक मजदूरनी भी मेरे लिए रखनी पड़ेगी और यह सब आपको ही···" वह बात पूरी भी न कर सकी कि उसे मुँह में कपड़ा ठूँसकर हँसी के उत्कट वेग को रोकने की कोशिश करनी पड़ी।

मोक्षदा बच्ची तो थी नहीं। पल-भर में ही वह सारा मामला समझ

गई। घर के भीतर आकर बोली, "मालूम होता है, बाबू सावित्री को जानते हैं।" सावित्री की ओर घूमकर बोली, "समझ गई, मौसी के साथ यह चोंचलेबाजी ! जो हो, यह तो बड़ी अच्छी बात है, प्रसन्नता की बात है। पहले ही कह देने में क्या हानि थी ?" वह धीरे-धीरे चली गई ।

सतीश भोजन करके फिर एक बार बिस्तर पर आकर बैठ गया। सावित्री डिब्बी भरकर पान लाई। फरशीदार हुक्के में उसने तम्बाकू भरकर सतीश के पास ला रखा और पैरों के पास फर्श पर बैठकर जरा हँसकर चुपचाप सिर नीचा कर लिया ।

सतीश के हृदय में आँधी बहने लगी। नाभि की सारी नाड़ियाँ क्षण-क्षण में सिकुड़ने और फैलने लगीं, रोंगटे खड़े हो गए। भीतर-ही-भीतर एक कँपकँपी-सी दौड़ गई। थोड़ी देर के लिए हुक्के में दम लगाने की भी मानो उसमें शक्ति न रही। इसी प्रकार दो मिनट बीत जाने पर सावित्री ने सहसा सिर उठाकर कहा, "रात अधिक हो गई, घर न जाओगे ?"

सतीश ने सूखे हुए कण्ठ से कहा, "जाऊँगा नहीं तो रहूँगा कहाँ ?"

"क्यों ? यहीं रहो। न जा सको, तो जाने की आवश्यकता ही क्या है ? मौसी अभी तक जग रही है, मैं उसके साथ जाकर सो रहूँगी।" कहकर सावित्री सतीश की ओर देखती रही !

क्षणभर के लिए सतीश चुप रहा, प्रबल चेष्टा से अपने को रोककर वह उठ खड़ा हुआ, बोला, "ना, चलता हूँ।"

"अच्छी बात है, पर जरा और बैठो," कहकर सावित्री उठी, बाहर से सतीश का जूता ले आई और आँचल से पैर पोंछकर जूते का फीता बाँधती हुई धीरे-धीरे बोली, "घर के लोग यदि जान जाएँ तो ?"

"कैसे जानेंगे ?"

"मैं ही यदि कह दूं ?"

"कह क्या दोगी ? कोई बात भी हो।"

सावित्री ने फिर मुस्कराकर कहा, "क्या कुछ भी नहीं है ? सच कहते हो ?"

सतीश चुप ही रहा।

सावित्री ने मृदु स्वर से कहा, "यदि कुछ कहने की न होती, तो आज

मैं तुम्हें कदापि नहीं छोड़ती। अच्छा, तुम अब घर चले जाओ। लेकिन यह ओछी प्रवृत्ति—यह दुर्बुद्धि न छोड़ोगे, तो याद रखना एक दिन सब बातें खोल दूंगी।"

इसका कुछ अर्थ सतीश की समझ में न आया। कुछ देर तक वह चुप रहा, फिर बोला, "कह दोगी, तो मेरा क्या बिगड़ेगा? घर वाले कुछ मेरे अभिभावक तो हैं नहीं।"

सावित्री ने कहा, "वह तो मैं जानती हूँ लेकिन इस काम का भार मेरी मौसी सहज ही ले लेगी, उसकी जीभ को कैसे रोकोगे?"

सतीश मोक्षदा का नाम सुन मन-ही-मन जरा डर गया। फिर बोला, "रुपयों से।"

सावित्री ने कहा,, "बस? इससे तो केवल रुपयों की बरबादी होगी, काम कुछ न होगा। इसके सिवा मौसी को तो रुपयों से वश में करलोगे, लेकिन मुझे? मुझे कैसे वश में लाओगे?"

अनायास सतीश के मुँह से निकल पड़ा, "प्रेम से।"

सावित्री के होंठों पर बलपूर्वक रोकी हुई कठिन हँसी का आभास दिखाई दिया, बोली, "यह चौथी बार है।"

"मतलब?"

"मतलब यह, कि इसके पहले भी और तीन महाशयों ने मुझे यही चीज देनी चाही थी।"

"और तुमने नहीं ली?"

"ना, यह कूड़ा-करकट बटोरकर रखने का स्थान मेरे पास नहीं है।"

सतीश को दोपहर की सब बात याद हो आई और साथ-ही-साथ प्रेम नदी के ज्वार का जाना और भाटे का आना भी शुरू हो गया।

सावित्री की बातों को वह हँसी-मजाक समझ सका। एकाएक बहुत ही रुखाई के साथ वह बोल उठा, "मूर्ख थे वे। उन्हें ऐसी चीज देने का प्रस्ताव करना चाहिए था, जिसे लेकर बक्स में रखने में किसी को दिक्कत न जान पड़ती। मैं भी कम मूर्ख नहीं हूँ, क्योंकि मैं भी यह बात प्रायः भूल गया था कि प्रेम तुम लोगों के लिए बहुत ही निन्दा और घृणा की वस्तु है। इस आयु में मुझे इतनी बड़ी भूल न करनी चाहिए थी। अच्छा चलता हूँ।"

ये बातें सावित्री के हृदय में बर्छी के समान लगीं।

'तुम लोगों के लिए' कहकर सतीश ने उसे किन लोगों की श्रेणी में मिलाया, यह समझना सावित्री के लिए बाकी न रहा। लेकिन हँसी को, झगड़े में बदलते देखकर वह चुप हो गई। सतीश चुप न रह सका, फिर बोला, "शिकारी मछली फँसाकर जैसे ढील दे-देकर, खिला-खिलाकर तमाशा देखता है, मालूम होता है, इतने दिन तुम भी मुझे फँसाकर वैसे ही मेरे हृदय से खिलवाड़ कर रही थीं ! क्यों ?"

अब सहन न कर सकी सावित्री। तमककर बोली, "तुम तो बन्सी में फँसते ही खींच लेने के योग्य हो, तुम वैसी बड़ी मछली नहीं, जिसे खिलाकर तमाशा देखा जाए।"

सतीश ने ममताहीन व्यंग्य करके कहा, "ऐसी बात है ?"

सावित्री ने कहा, "और नहीं क्या ?" उसके होंठ सिकुड़ गए। सतीश के मुँह की ओर केवल एक बार तीव्र दृष्टि डालकर बोली, "चरित्रहीन के लिए प्रेम दिखाकर तुम मेरे आगे प्रेम की बढ़ाई कर रहे हो ? अभी यहाँ से चले जाओ, मेरे घर में खड़े होकर मेरा ही अपमान न करो !"

इस अपमान से सतीश और भी निर्दय हो गया। अत्यन्त कुत्सित व्यंग्य कर बोला, "चरित्रहीन ! लेकिन चाहे जो कुछ कहो सावित्री, माँ-बाप ने तुम्हारा नाम बहुत ठीक ही रखा था !"

चौखट पकड़कर सावित्री क्षण-भर निश्चल खड़ी रही, बोली, "जाओ !" उसका चेहरा उस समय बिल्कुल पीला पड़ गया था।

सतीश ने अपमान और क्रोध की ज्वाला में उसकी ओर आँख उठाकर देखा तक नहीं, बोला, "लेकिन जाने के पहले फिर एक बार आँचल से पैर न पोंछ दोगी या और कोई ढोंग न रचोगी ? और कुछ···"

अचानक ही दोनों की आँखें चार हुईं।

सावित्री एकदम आगे बढ़कर बोली, "तुम कसाई से भी निष्ठुर हो। जाओ; तुम यहाँ से चले जाओ, चले जाओ, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, तुम चले जाओ। न जाओगे तो मैं सिर पटककर जान दे दूंगी—तुम जाओ !"

उसके स्वर की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई तीव्रता से सतीश भयभीत हो गया और बिना कुछ बोले बाहर जाने लगा, लेकिन बरामदे के अन्त तक

जाना पड़ा। उधर अन्धकार इतना गहरा था कि उसे न तो सीढ़ियाँ सूझीं, न निकलने का मार्ग ही दिखाई दिया। पाकेट में हाथ ड़ालकर देखा, तो दियासलाई नहीं थी। इस निरुपाय अवस्था में वह पाँच मिनट तक खड़ा रहा। फिर उसे सावित्री के घर की ओर लौटना पड़ा। बाहर से देखा, सावित्री चटाई पर औंधी पड़ी है। धीरे-धीरे पुकारा, "सावित्री !" सावित्री की कोई आवाज न आई। फिर पुकारा, पर वह ज्यों-की-त्यों पड़ी रही।

सतीश ने कमरे में आकर उसके सिर पर हाथ लगाया, झुककर देखा कि आँखें बन्द हैं, मुँह में उँगली डालकर उसने मालूम किया कि वह मूर्छित हो गई है। क्षणभर के लिए उसके मन में भय और संकोच अवश्य पैदा हुआ, लेकिन उसके बाद ही सावित्री के अचेत शरीर को उठाकर उसने बिस्तर पर लिटा दिया और दुपट्टे का एक कोना घड़े के पानी में भिगो, उसके मुँह और आँखों पर छींटे देने और एक हाथ में पंखा लेकर झलने लगा। दो-तीन मिनट के बाद ही सावित्री ने आँखें खोलीं, सिर पर सरका हुआ कपड़ा ठीक किया, करवट बदली और बोली, "अभी तक तुम गए नहीं ?"

सतीश मौन हो पंखा झलता रहा।

सावित्री उठी, हाथ में दीपक लेकर बाहर आई, बोली, "चलो, तुम्हें दरवाजा खोल दूँ।"

इसके बाद वह रास्ता दिखाती हुई नीचे उतर गई और दरवाजा खोलकर किनारे खड़ी हो गई।

सतीश मूर्छित सावित्री को उठाकर विस्तर पर लिटाने के बाद ही कुछ अनमना-सा हो गया था। अब दरवाजे के बाहर निकलते ही वह फिर अपने में आ गया और सिर उठाकर कुछ कहना ही चाहता था, कि सावित्री बोल उठी, "रहने दो, कुछ मत बोलो। अपने शरीर को तो तुम पहले ही नष्ट कर चुके हो, वह तो खैर किसी दिन जलकर भस्म हो जाएगा, परन्तु एक चरित्रहीन से प्रेम कर भावना के दिए हुए मन पर भी कालिख न पोतो। हो सके तो तुरन्त वहाँ से घर चले जाना। यदि न गए तो मैं वहाँ अब नहीं जाऊँगी।"

उत्तर की प्रतीक्षा न करके सावित्री ने दरवाजा बन्द कर दिया।

नौ

सतीश हतबुद्धि हो रहा था।

सावित्री पास आने पर इस प्रकार निष्ठुर आघात करके दूर हटा देती है।

उस दिन सारी रात बराबर सोचते रहने पर भी, इसका एक स्पष्ट कारण खोजने पर भी वह न पा सका। पिछली रात की एक-एक बात अब तक उसके मस्तिष्क में झनझनाती हुई बज रही थी। इस कारण वह भोर होते ही निकल पड़ा। किराए का एक मकान ठीक किया। मजदूर बुलाकर अपना सामान लदवाने लगा। यह देखकर घर के सभी लोग आश्चर्य करने लगे। बिहारी अधिक आश्चर्य में पड़ा।

उसने पास आकर धीरे-धीरे पूछा, "बाबू, क्या घर जा रहे हैं?"

उसके हाथ में पाँच रुपये देकर सतीश ने कहा, "ना, स्कूल के पास ही एक मकान पा गया हूँ, इसलिए जा रहा हूँ बिहारी।"

बिहारी ने कहा, "किन्तु वह तो अभी तक आई नहीं बाबू?"

सतीश ने कहा, "आई नहीं? अच्छा, तू मेरे बिस्तर को बाँध दे, मैं तब तक राखाल बाबू के कमरे में होकर आ रहा हूँ।"

घर का देना-पावना चुका देने के लिए वह राखाल बाबू के कमरे में चला गया।

उस कमरे में बहुत से लोग उपस्थित थे। शायद यही आलोचना चल रही थी।

उसको देखते ही सभी चुप हो गए। राखाल ने जरा हँसने की चेष्टा करके कहा, "सतीश बाबू, इस प्रकार अचानक कैसे?"

सतीश ने हाथ के रुपयों को मेज के एक किनारे रखकर कहा, "एक दिन मैं अचानक आया भी था, एक दिन अचानक जा रहा हूँ। इन्हीं रुपयों से शायद आपका हिसाब चुकता हो जायेगा, यदि न हो, तो हिसाब हो जाने पर मुझे सूचना दीजिएगा, शेष रुपये भेज दूंगा।"

राखाल ने कहा, "सूचित कहाँ करूँगा?"

"मेरे स्कूल के पते पर एक कॉर्ड लिखकर भेज दीजिएगा।" यह कह

कर सतीश और कोई प्रश्नोत्तर की प्रतीक्षा न करके बाहर चला गया। कमरे के अन्दर से एक दबी हुई हँसी की आवाज सतीश के कानों में पहुँची।

बिहारी निकट ही खड़ा था। कमरे में घुस, हाथ की छोटी-सी पोटरी किवाड़ की आड़ में रख देने के बाद राखाल से बोला, "बाबू, मेरा सत्रह दिन का वेतन हिसाब करके दे दीजिए, मुझे इसी दम बाबू के साथ जाना पड़ेगा।"

राखाल ने चकित और प्रसन्न होकर कहा, "तू जाएगा? यहाँ काम कौन करेगा? जाऊँगा कह देने से ही तो जाना नहीं होगा।"

बिहारी ने कहा, "होगा क्यों नहीं बाबू? मुझे तो जाना ही पड़ेगा।"

अत्यन्त क्रोध से कहा, "जाना पड़ेगा कह देने से ही हो जाएगा? नियमानुसार नोटिस देना चाहिए, मालूम है?"

बिहारी ने कहा, "एक दिन समयानुसार आकर दे जाऊँगा। अभी वेतन दे दीजिए, मुझे सामान जुटाना पड़ेगा।"

राखाल तूफान की गति से बाहर आया। सतीश के कमरे में घुसकर बोला, "सतीश बाबू, यह सब क्या है?"

सतीश बिस्तर बाँधते हुए बोला, "समझा नहीं?"

राखाल ने क्रुद्ध भाव से कहा, "नौकरानी नहीं आई, वह तो पहले ही चली गई है, देखता हूँ, बिहारी को भी ले जाना चाहते हैं, क्यों? अपराध किया आपने दण्ड हम भोगेंगे?"

सतीश ने कहा, "आप की बात मेरी समझ में नहीं आई?"

राखाल ने स्वर ऊँचा करके कहा, "समझेंगे क्यों? न समझने में ही तो लाभ है। स्वयं न जाने से तो आपको निकाल बाहर करना ही पड़ता, लेकिन जो कुछ भी हो, एक सहज शिष्टता का बोध भी क्या मनुष्य को न रखना चाहिए?"

सतीश की दोनों आँखें जल उठीं। वह बोला, "आप यह सब क्या कह रहे हैं राखाल बाबू?"

राखाल को भी ईर्ष्या की आग जला रही थी। बोला, "ठीक कह रहा हूँ, आप भी ठीक समझ रहे हैं। सतीश बाबू, कोई भी बात हम लोगों से छिपी नहीं है। अच्छा जाइए आप—क्या काला साँप मकान में लाया

गया था ! ऐसे सुन्दर डेरे को इसने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया ।"

राखाल का एक हाथ थामकर सतीश ने कहा, "आप क्या कह रहे हैं राखाल बावू ?"

राखाल जबर्दस्ती अपना हाथ छुड़ाकर गरज उठा, "जाइए, ढोंग मत रचिए। जाइए आप, दूर हट जाइए ।"

बिहारी ने कमरे में आकर कहा, "सतीश बाबू, जाने दो उनको, कहाँ है उनका मोह, कहाँ है उनकी जलन, यह बात मैं एक दिन आपको बताऊँगा। मैं सब जानता हूँ, आइए, हमलोग चीज-सामान ठीक कर डालें ।"

राखाल अपने पैरों की आवाज से मकान कँपाकर बाहर चला गया। सतीश ने चौकी पर बैठकर कहा, "यह सब क्या है बिहारी ?"

बिहारी ने कहा, "मैं आपके साथ जाऊँगा, यहाँ रह न सकूँगा ।"

सतीश ने आश्चर्य में पड़कर कहा, "मेरे साथ ! यहाँ काम कौन करेगा ?"

बिहारी ने दृढ़ता से कहा, "जिसकी इच्छा हो करे, मैं साथ ही जाऊँगा। नौकर के बिना तो आपका काम चलेगा नहीं ?"

मामला समझकर सतीश पल-भर चुप रहकर बोला, "यह बात पहले कह देने से ही तो हो सकता था बिहारी ?"

मौन ! चीज-सामान बाँध-बटोरकर मजदूर के सिर पर उठाने लगा। वह जाएगा ही इसमें सन्देह नहीं रहा ।

सतीश नये घर पर आकर सोच रहा था, ऐसा कैसे हो गया ? जैसा-तैसा कोई भी मेरा अपमान करने का साहस करता है। यही नहीं, अपमान करके स्वच्छन्दता से परित्राण पा जाता है, क्यों ? मेरी असाधारण शारीरिक शक्ति एक तिल भी कम नहीं हुई है, फिर भी मैं क्यों जोर लगा कर बातें नहीं कर सकता ? क्यों मैं सिर झुकाए ही सब सह लेता हूँ ? अपने मन की यह सोचनीय दुर्वलता आज उसको बड़ी चोट पहुँचाने लगी और उससे भी अधिक चोट लगी इस दुःख की कि प्रतिकार करने की शक्ति भी मानो आज उसके हाथ से निकल गई है।

राखाल की क्रोध-भरी भाषा ने उस रात की घटना का ही उल्लेख किया है, इसमें सन्देह नहीं है। इसी को याद करके सतीश लज्जा से मिट्टी

के साथ मिल जाने लगा।

विपिन के आदमियों ने उसको किस प्रकार, किस भाव से पकड़ लिया था, अँधेरे कमरे में किस प्रकार वह डर से मुर्दे के समान पड़ा हुआ था ? वे लोग बुद्धिमान थे और किसी प्रकार सारी चालाकी समझ लेने पर ओढ़ने के अन्दर से उसे खींचकर ले गए थे। चिताग्राही दुर्लभ विवरण का सत्य-झूठ के अलंकार-आडंबर से लपेटकर जो वर्णन किया गया होगा, उपस्थित सब लोगों ने किस प्रकार उत्कृष्ट आनन्द, आग्रह और ऊँची हँसी के साथ उसका उपभोग किया होगा, उसकी आदि से अन्त तक कल्पना करके उसका चेहरा इतना अधिक मर्मान्तिक और वीभत्स होकर दिखाई पड़ा कि अकेले कमरे में भी सतीश का चेहरा वेदना से बदरंग हो उठा। फिर उन्हीं लोगों के सामने ही राखाल ने उसका अपमान करके विदा कर दिया, वह एक बात भी कह नहीं सका, ऐसी स्थिति में सावित्री क्या सोचेगी !

सब सह लेगी, कुछ न कहेगी, उत्तर तक भी न देगी। उसका आत्म-सम्मान व वोध कितना बड़ा है, इसको भी वह जैसे असन्दिग्ध भाव से समझ गया था, उसके व्यथित चेहरे को कल्पना में आज स्पष्ट देखने लगा। सतीश ने मन-ही-मन कहा कि मेरी दुर्बुद्धि से जो दुर्घटना हो गई है, असहाय सावित्री को उसके वीच छोड़कर चला आना उचित नहीं हुआ। लेकिन उचित क्या हो सकता था, इसको भी किसी प्रकार सोचने पर वह समझ नहीं सका। लेकिन सावित्री ने स्वयं ही उसको चले जाने को नहीं कहा ? उसने क्या गर्व के साथ ही नहीं कहा, इसमें वह कोई भी अपमान नहीं समझती।

बिहारी ने आकर कहा, "बाबू, आपके स्नान का समय हो गया है।"

सतीश शीघ्रता से उठा और तौलिया कन्धे पर रखकर स्नान करने चला गया।

जव उसका मन फट-फट गिर रहा था, फिर भी नियमित काम की अवहेलना करने का उपाय नहीं था। वह स्कूल गया लेकिन कक्षा में न जा सका। बाहर घूम-घूमकर ही समय पर डेरे पर लौट आया।

कमरे में घुसते ही किसी प्रकार की निराशा से मानो उसका पूरा हृदय भर उठा। इस नये कमरे को ठीक-ठाक करने में बिहारी ने खूब परिश्रम किया है, यह बात समझ में आ गई। लेकिन अनजान हाथ की प्रथम चेष्टा

कहीं दबी नहीं है, यह भी उसी प्रकार दृष्टि में पड़ गई।

बिहारी शरबत ले आया, तम्बाकू चढ़ाकर दिया और दुकान से पान का दोना खरीदकर ले आया। वृद्ध की अभ्यस्त इन सब सेवाओं की चेष्टा से सतीश मन-ही-मन हँसने जा रहा था, पर रुलाई आ गई और उसने नेत्र पोंछ डाले।

रात को बिछौने पर लेटकर सतीश सोचने लगा—जो कुछ होना था हो गया, इन सब बातों को अब वह मन में भी न लाएगा। लिखने-पढ़ने के लिए वह कलकत्ते आया था, तो इसी को लेकर रहेगा या घर लौट जाएगा। लेकिन उस दिन उस मूर्छिता नारी के गरम शरीर को छूकर वह लौट आया था, वह गरमी उसके समस्त संयम की चेष्टा को गलाकर समाप्त कर देने लगी।

बिहारी मन-ही-मन समझ रहा था, लेकिन सान्त्वना देने का साहस उसको नहीं था। इस कारण वह उदास चेहरे से चुपचाप दरवाजे के बाहर बैठा रहा। प्रायः दस बज रहे थे। उसने साहस करके कहा, "बाबू, बत्ती बुझा दूं?"

सतीश ने कहा, "बुझा दे, लेकिन तू सोयेगा कहाँ बिहारी?"

"मैं यहीं हूँ बाबू! मैंने अपनी चटाई दरवाजे पर ही बिछा ली है।"

सतीश ने पूछा, "क्या इस मकान में नौकरों के लिए सोने का स्थान नहीं है?"

बिहारी ने कहा, "नीचे एक खाली कमरा है, शायद आपको कोई आवश्यकता पड़ जाय, इसलिए यहीं रहूँगा।"

सतीश ने व्यस्त होकर कहा, "यह क्या रे, तू सोने चला जा। बूढ़े आदमी हो, ओस में मत रहो।"

"ओस कहाँ है वाबू!" कहकर बिहारी वहाँ पर चादर ओढ़कर सो रहा।

कुछ क्षण चुप रहकर सतीश ने पूछा, "रात कितनी हो गई रे?"

"अधिक नहीं हुई है बाबू, शायद दस बज गए हैं।"

सतीश फिर चुप हो रहा। कुछ क्षण बाद मृदु कण्ठ से उसने पूछा, "अच्छा, तू सावित्री का घर जानता है बिहारी?"

बिहारी उठकर बैठ गया, बोला, "हाँ बाबू।"

सतीश कुछ न बोला।

बिहारी ने कहा, "एक बार जाकर देख आऊँ क्या ?"

इस बार सतीश घबराकर बोल उठा, "ना-ना, तू कहाँ जाएगा ? वह तो बहुत ही दूर है !"

बिहारी ने कहा, "बिलकुल दूर नहीं है बाबू।"

सतीश कुछ सोचने लगा।

बिहारी ने धीरे-धीरे कहा, "बाबू, यदि एक घण्टे की छुट्टी दें तो देख आऊँ। सवेरे काम पर आई नहीं थी, शायद बीमार पड़ गई है।"

सतीश फिर भी मौन रहा।

बिहारी मन-ही-मन घबरा उठा। आज सारा दिन वह अपनी आदत के अनुसार बातें नहीं कह सका था, उस पर कहने के लिए विषय इतने अधिक जमा हो चुके थे कि वह एक बार फिर बोला, "नई जगह में नींद नहीं लग रही है बाबू, फिर एक बार तम्बाकू चढ़ा दूँ ?"

सतीश ने उत्तर नहीं दिया तो भी बिहारी कुछ देर तक उत्सुक होकर प्रतीक्षा करता रहा, अन्त में वह वहीं सो गया।

दूसरे दिन ठीक वक्त पर सतीश स्कूल गया। दोपहर को बिहारी सब काम-काज पूरा करके, हाल ही रखे गए पांडे महाराज के ऊपर डेरे की देख-भाल करने का भार देकर चला गया और सत्रह दिन का वेतन वसूल करने के बहाने पुराने डेरे पर पहुँचा। आफिस न चले गए हैं, इसीलिए मकान में घुसते ही नए नौकर से समाचार जान लेने पर वह निर्भय होकर रसोईघर के सामने चला गया, उसने कण्ठ-स्वर ऊँचा करके कहा, "महाराज जी प्रणाम !"

महाराज जी गाँजा पीकर दीवार पर ओठंग कर नेत्र बन्द किए ध्यान कर रहे थे, चौंक उठे। बोले, "कल्याण हो !" उसके बाद माथा सीधा करके नेत्र खोलकर बोले, "कौन है बिहारी, आ बैठा जा !"

बिहारी पास आकर पैरों की धूल सिर पर चढ़ाकर बैठ गया। चक्रवर्ती ने अँगोछे का खूँट खोलकर थोड़ा गाँजा निकाल बिहारी के हाथ में देकर कहा, "उस मकान में अब रसोई कौन बनाता है ?"

बिहारी उठकर चला गया, हथेली में दो-चार बूँद पानी लेकर लौट आया और बोला, "एक पछाँई गँवार ब्राह्मन ! एकदम जानवर है !"

प्रसन्न होकर चक्रवर्ती ने सिर हिलाकर कहा, "भगवान् उन लोगों को पूँछ देना भूल गए हैं, यही आश्चर्य की बात है।" इसके बाद डेरे के नए नौकर को लक्ष्य करके बोले, "हमारे यहाँ कल ही एक भूत को पकड़ लाया गया है। उसकी समझ कैसी है देखो बिहारी, आज सवेरे एक चिलम निकाल कर उसे मैंने दी और कहा, 'तैयार करके लाओ तो भैया !' मैंने सोचा इस की विद्या एक बार देख लेने से ठीक होगा। कहने से तू विश्वास ही न करेगा बिहारी, उल्लू ने चीज को मिट्टी में मिला दिया। पर तुम लोगों को वहाँ कष्ट न होगा। मेरी सावित्री चालाक लड़की है, दो ही दिन में सिखा-पढ़ा कर पक्का बना देगी।"

उसकी अपनी विद्या भी पन्द्रह आना उसी गुरु से सीखी हुई थी। उस बात को दबाकर वह झट बोला, "लेकिन मैं यह भी कहता हूँ बिहारी, हाँडी पकड़ने से ही नहीं होता, बाबू-भैया लोगों को खुश करना, उसकी थाली में परोस देना बहुत साधारण विद्या नहीं है। लेकिन यहाँ मेरा काम करना अब हो नहीं सकता, यह तुझे पहले से ही कहे देता हूँ। तू कह देना तो भला यह सब मेरा नाम लेकर सावित्री से। वह उसी क्षण कहेगी, जाओ बिहारी, चक्रवर्ती को बुला लाओ, भले ही वह दो रुपया वेतन अधिक ले। सतीश बाबू भी कभी 'ना' न कहेंगे। मैं उनका स्वभाव जानता हूँ। मैं दो रुपया अधिक पाऊँगा तो वह कुपात्र में नहीं पड़ेगा।" बस चक्रवर्ती महाराज हँसने लगे।

कुछ देर बाद बिहारी बोला, "महाराज जी, सावित्री तो वहाँ नहीं है।"

चक्रवर्ती ने अविश्वास की हँसी हँसकर कहा, "अच्छा, नहीं है ! तू मेरा नाम लेकर कह देना, उसके बाद जो कुछ होगा, मैं देख लूँगा।"

बिहारी बायें हाथ के पदार्थ को दायें हाथ में लेकर बोला, "छूकर, सौगन्ध लेकर कह रहा हूँ देवता, वह वहाँ नहीं जाती।"

चक्रवर्ती इतनी बड़ी सौगन्ध के बाद भी फिर सन्देह न कर सके। आश्चर्य से कहा, "तू क्या कहता है बिहारी ! वह तो यहाँ भी नहीं आती !

फिर चौबीसों घण्टे राखाल बाबू, बेचारे सतीश बाबू को जो···अच्छा तू जा, एक बार उसको देख तो आ, उसके बाद मैं हूँ और राखाल बाबू हैं। मुझे जैसा-तैसा ब्राह्मण मत समझ लेना!"

उनके ब्राह्मणत्व में बिहारी की अगाध श्रद्धा थी। उसने चक्रवर्ती के हाथ में चिलम देकर पूछा, "अच्छा, सतीश बाबू क्यों चले गए? वे कहते हैं स्कूल दूर पड़ता है, लेकिन काम की बात ही नहीं है।"

चक्रवर्ती ने कहा, "ना, इसमें बात कुछ और ही है।" इसके बाद दोनों ने मिलकर चिलम समाप्त कर दी। बिहारी उठ पड़ा और उद्विग्न-सा सावित्री के घर की ओर चल पड़ा। उसको विश्वास हो गया कि सावित्री बीमार हो गई है।

सावित्री के घर का मुख्य दरवाजा खुला हुआ था। बिहारी चुपचाप अन्दर चला गया। प्रायः सभी कमरों के दरवाजे बन्द थे। किरायेदार दिवा निद्रा में पड़े हुए थे।

बिहारी धीरे-धीरे सावित्री के कमरे के सामने खड़ा हो गया। किवाड़ का पल्ला उढका हुआ था। बिहारी ने देखा, उसकी ओट में सावित्री धरती पर चुपचाप बैठी हुई है और समीप ही एक चौकी पर बिछौने पर विपिन शराब पीकर मतवाला बना हुआ सो रहा है। पाँव की आहट से सावित्री मुँह बढ़ा कर अचानक बिहारी को देखकर एक ही क्षण में मानो बदरंग हो गई। पर दूसरे ही क्षण अपने को सँभालकर बाहर आकर हँसकर बोली, "आओ बिहारी, बैठो।" उसको अपने साथ ले जाकर रसोईघर के बरामदे में उसने चटाई बिछा दी और बड़े आदर से बिठाकर स्वयं पास ही फर्श पर बैठकर उसने पूछा, "समाचार सब अच्छा है बिहारी?"

बिहारी ने सिर हिलाकर बतलाया कि—अच्छा है। उसके बाद सावित्री के मुँह से फिर कोई बात नहीं निकली। दोनों ही चुपचाप बैठे रहे। कुछ देर बाद बिहारी एकाएक उठ जाने को प्रस्तुत होकर बोला, "मैं जा रहा हूँ, मुझे बहुत काम करने हैं।"

सावित्री ने पूछा, "अभी ही जाओगे? थोड़ा बैठो न!"

बिहारी ने उठकर कहा, "ना, जा रहा हूँ।"

सावित्री साथ-ही-साथ सदर दरवाजे तक जाकर बोली, "हाँ बिहारी,

बाबू लोग तो बहुत प्रसन्न हो गए होंगे !"

बिहारी ने चलते-चलते कहा, "मैं तो जाता हूँ, हम लोग वहाँ अब नहीं रहते ।"

सावित्री ने व्यग्र होकर प्रश्न किया, "नहीं रहते ? वह घर क्या टूट गया है ?"

बिहारी ने कहा, "ना, टूटा तो नहीं है । केवल सतीश बाबू उसे छोड़-कर चले आए हैं और मैं उनके साथ हूँ ।"

"तुम लोग क्यों चले आए बिहारी ?"

"ये लम्बी बातें हैं ।" कहकर फिर बिहारी चलने को तैयार हुआ तो सावित्री ने दोनों हाथों से उसका हाथ पकड़कर अनुनय के स्वर से कहा, "और एक बार चलकर बैठना पड़ेगा बिहारी ।"

बिहारी ने सिर हिलाकर कहा, "ना, मुझे समय नहीं है ।"

"कल एक बार फिर आओगे, वचन दो ।"

बिहारी ने पहले की भाँति कहा, "ना, मुझे समय नहीं मिलेगा ।"

सावित्री ने क्षण-भर उसके चेहरे की ओर तीक्ष्ण दृष्टिपात करके हाथ छोड़ दिया । अभिमान से छाती भरकर शान्त भाव से वह बोली, "अच्छा तो जाओ ! यह बात उनसे कह देना ।"

इस बात से बिहारी को चोट लगी । उसने कहा, "उन्होंने तो तुम्हारे सम्बन्ध में जानना नहीं चाहा ।"

"क्या ?"

"हाँ ।"

सावित्री स्थिर भाव से आघात सहकर रूखे स्वर में बोली, "किसी दिन जान लेना चाहेंगे तो शायद कह दोगे !"

बिहारी ने कहा, "ना, मैं स्त्री नहीं हूँ, मेरे शरीर में दया-माया है ।" फिर किसी प्रश्न की प्रतीक्षा न करके तेजी से छोटी गली को पार करके चला गया ।

उसी स्थान पर सावित्री चौखट पर स्तब्ध होकर बैठ गई । उसके अंदर-बाहर फिर एक बार आग धधक उठी ।

आज वह सवेरे कालीजी के दर्शन के लिए कालीघाट गई थी । इसी

बीच विपिन दो-चार दोस्तों को साथ लिए शराब पीए आ गया और मोक्षदा के हाथ में दो नोट देकर, सावित्री के कमरे का ताला खोलकर बिस्तर पर बैठ गया। शराब मँगाकर घर-भर के सभी लोगों को उसने पिलाई। सभी मतवाले हो गए। इन बातों को सावित्री कुछ भी जानती नहीं थी।

दिन में बारह बजे उसने अपने मकान में घुसकर देखा, इस मकान की दो पुरानी किरायेदारिन शराब के नशे में गाली-गलौज कर रही हैं और उसकी मौसी मोक्षदा सामने के बरामदे में करवट से पड़ी हुई टूटे-फूटे गले से मौज के मन से 'विद्यासुन्दर' के पद गा रही है। सारे मकान में, कहीं फरूहीं, कहीं उरद का दाना, कहीं बतख के अण्डों के छिलके, कहीं मछलियों के काँटे, कहीं केकड़ों की हड्डी बिखरी पड़ी हैं—पैर रखने तक का भी स्थान नहीं है। सावित्री को देखते ही मोक्षदा अपने ढीले कपड़े को कमर में लपेटती उठ खड़ी हुई और उसका गला पकड़कर रोने लगी, "बेटी, ऐसे-ऐसे बाबू जिसके हैं, उसको फिर कष्ट कैसा? उसको फिर दूसरे की नौकरी करनी चाहिए? पर मैं तेरी दरिद्र मौसी हूँ सावित्री···।"

उसके मुँह से शराब की गन्ध आ रही थी, गालों पर, माथे पर, कपड़ों पर, समूचे अंग पर हल्दी के पीले दाग पड़े थे। निःश्वास में कच्ची प्याज की तीव्र गन्ध थी। सावित्री असहनीय घृणा से उसको जोर से ठेलकर बोल उठी, "मौसी, तुम शराब पीती हो? तुम भी मतवाली हो रही हो?"

मोक्षदा रोना बन्द कर और आँखें लाल कर चिल्ला उठी, "मत-वाली? हाँ मतवाली! मुहल्ले के लोगों से जाकर पूछ ले—सब कहेंगे, मेरा भी एक दिन था रे, मेरा भी एक दिन था। जबकि चौबीसों घण्टे शराब में डूबी रहती थी। तू कैसे क्या जानेगी, कल की छोकरी है तू!"

सावित्री ने शान्त करने के अभिप्राय से कहा, "लेकिन तुम पीती नहीं हो, आज, एकाएक पीने क्यों गई?"

मोक्षदा ने और भी दुःखी होकर कहा, "एकाएक फिर क्या! मैं एकाएक पीने वाली नहीं हूँ। जाकर पूछ ले अपने बाबू से, जो एक गिलास पीकर औंधा पड़ा हुआ है। अरे मर जाऊँगी, तो भी अपनी मान-मर्यादा न खोऊँगी, आँचल में दो नोट बाँध दिए हैं, तभी मैंने गिलास पकड़ लिया है। जरा कह देने भर से पी जाऊँगी वैसी मोक्षदा मैं नहीं हूँ।"

चौंककर सावित्री ने पूछा, "क्या बाबू आ गए हैं ?"

मोक्षदा ने कहा, "नहीं तो इतना काण्ड करता कौन ? यह भी कहती हूँ, पी लो कह देने से क्यों पीऊँगी ? मान-इज्जत क्या नहीं है ?"

इसके पहले से ही बरामदे में जो औरतें आपस में झगड़ रही थीं, ऊँची आवाज सुनकर वे भी पास ही आ खड़ी हुईं।

विधु ने कहा, "अजी, मान-इज्जत हम लोग भी समझती हैं। फिर सावित्री तो लड़की के समान है, उसका बाबू मेरा हाथ पकड़कर अनुनय करने लगा, इसीलिए पीना पड़ा नहीं तो···"

उसकी बात पूरी भी नहीं हो पाई कि मोक्षदा गरज उठी, "सावित्री का बाबू भले ही हो। भले ही हो दामाद। बीस रुपये आँचल में बाँध लिए हैं, तभी हाथ में गिलास छू लिया है।"

ये बातें सुनकर सावित्री लज्जा और घृणा से मरती जा रही थी। बोल उठी, "चुप रहो मौसी !"

मोक्षदा ने कहा, "चुप क्यों रहूँगी ? जो कुछ कहूँगी, सामने ही कहूँगी। सब जानते हैं, साफ कहने वाली यदि कोई है तो वह है मोक्षदा।"

विधु ने भी स्वर ऊँचा बनाकर कहा, "साफ कहना केवल तू ही जानती है, ऐसी बात नहीं है, हम भी जानती हैं। दामाद से दो नोट लेकर शराब पी गई हो, तीन पा लेने से न जाने···।"

मोक्षदा उछलकर, बोली, "छोटे मुँह से बड़ी बात !" और बोल न सकी।

सावित्री ने हाथ से उसका मुँह बन्द कर दिया और जबरदस्ती उसे घसीट अपने कमरे में छोड़कर जंजीर चढ़ा दी। वहीं से मोक्षदा न सुनने योग्य भाषा लगातार बरसाने लगी।

सावित्री लौट आने पर विधु के दोनों हाथ पकड़कर बोली, "मौसी, मुझे क्षमा करो। सब दोष मेरा है।"

उसकी नम्र बातों से शान्त होकर विधु ने कहा, "तेरा दोष क्या है सावी ? मोक्षता को सदा से जानती हूँ, जरा-सी पी लेने के साथ ही फिर रक्षा नहीं, पैर पर पैर चढ़ाकर झगड़ा करने लगती है, यही उसका स्वभाद है। जा, तू अपने कमरे में जा।" यह कहकर वह चली गई।

सावित्री काठ के समान खड़ी रही।

रोष और क्षोभ से आत्मघात करने की उसकी इच्छा हो रही थी। सतीश बड़ा निर्लज्ज हो सकता है। खुले तौर पर दिन-दहाड़े ऐसा उन्मत आचरण कर सकता है, यह तो वह सपने में भी सोच नहीं सकती थी। इसी-लिए एक सच्ची वेदना उसके हृदय में लहर की भाँति लुढ़कती हुई घूमने लगी।

उसको मालूम होने लगा मानो उसका प्रियतम अकस्मात उसी के नयनों के सामने मर गया, जिसको केवल दो ही दिन पहले वह कड़ी बातों से अप-मानित करके विदा करने को बाध्य हुई थी, वही इतना शीघ्र, इतने सहज भाव से अपने समस्त आत्म-सम्मान को विसर्जन करके ऐसा हीन, ऐसा दीन होकर वापस आ गया, तब भरोसा करने का, विश्वास करने का उसका और कुछ भी नहीं रह गया।

उसकी आँखें जलने लगीं, लेकिन एक बूंद भी आँसू नहीं निकला। उस का सर्वस्व, उसका देवता, उसकी कल्पना का स्वर्ग, उसके भ्रष्ट जीवन का ध्रुवतारा, उसका इहकाल-परकाल सब कुछ एक ही उस क्षण में इधर-उधर बिखरी पड़ी हुई गन्दी चीजों, जूठन के ढेरों के बीच लेटने लगे।

सावित्री स्थिर होकर खड़ी रही, कमरे की ओर जाने के लिए किसी प्रकार भी उसके पैर नहीं उठे। उसे याद पड़ गया कि अभी उस दिन रात को उसको छूकर सतीश ने शपथ ली थी। आज ही इतनी जल्दी सब कुछ भूलकर, मतवाला बनकर उसके बिछौने पर पड़ा हुआ है, तब उसके मुँह की ओर देखेगी कैसे ?

उसी समय मकान मालकिन की आवाज सुनाई पडी। वे भी आज मकान में नहीं थीं। आते ही एक मुँह से मोक्षदा और विधु का विवरण और उसके साथ ही और जो कुछ भी हुआ था, सब सुन लेने पर क्रोध के साथ ऊपर चढ़ रही थीं कि एकाएक सामने जूठे काँटे देखकर स्थिर होकर खड़ी हो गई। सम्प्रति प्रयाग से सिर मुड़ा आने के बाद से उनके आचार-विचार का अन्त नहीं था।

सावित्री को उस अवस्था में देखकर वे बोलीं, "सावी, तुझे तो मैं अच्छी स्त्री ही जानती थी। यह सब कैसा अनर्थ का काम है बता तो बच्ची !"

सावित्री ने संक्षेप में कहा, "मैं घर में नहीं थी।"

मकान मालकिन ने कहा, "इस समय तो तू है । अब सफाई करे कौन ? मैं ? ना बच्ची, मेरे मकान में यह सब दुराचार नहीं चलेगा । अपने-अपने कमरे में बैठकर जिसकी जो इच्छा हो करो, मैं कहने न जाऊँगी । लेकिन बाहर बैठकर यह सब काण्ड नहीं होगा । मैं इस पर पैर रखकर चलूँगी, छूतछात करके जाति-जन्म बिगाड़ूँगी, यह मैं न कर सकूँगी ।" वह दीवार से सट-सटकर, लाँघ-लाँघकर किसी प्रकार अपने उस ओर के कमरे में चली गई। सावित्री फिर खड़ी नहीं रही । जूठन साफ कर सारी जगह धो-पोंछकर फिर स्नान करके आ गई और एक सूखे कपड़े के लिए कमरे में चली गई । बिस्तर की ओर देखते ही वह भय से, आश्चर्य से चिल्ला उठी, "माँ रे, यह तो विपिन बाबू हैं !"

शराबी गहरी नींद में डूबा हुआ था—वह जागा नहीं । बाहर का और कोई यह आवाज सुन नहीं सका । सावित्री दो कदम पीछे हट आई ! उसका सारा शरीर काँपने लगा और माथे में ठहात् मूर्छा का लक्षण अनुभव करके दरवाजे की आड़ में माथा रखकर निर्जीव की भाँति बैठ गई ।

कुछ देर तक सिर उठाकर सीधी होकर वह बैठ न सकी । इसके पहले जिस क्षोभ से, जिस दुःख से उसका हृदय टुकड़े-टुकड़े होता जा रहा था, जिसके निर्लज्ज आचरण की लज्जा से उसको मर जाने की इच्छा हो रही थी, वह लज्जा सच नहीं है, यह सतीश नहीं, दूसरा ही है; यह आँखों से देख लेने पर भी उसका वह क्षोभ, वह दुःख मानो और अन्धकार हो उठा ।

बिस्तर की ओर वह फिर देख भी न सकी । उसकी दोनों आँखों से आँसू टपकने लगे ।

हाय रे स्त्री का प्रेम ! इतने दुःख में किस समय अनायास चुपचाप सतीश के सारे अपराध उसने क्षमा कर दिए थे, उसकी सेवा करने के लिए स्वस्थ बना देने की प्यास से वह आर्त्त हो उठी थी । किस समय उसको देखने, उससे बातचीत की भूख से उन्मत्त हो उठी थी—इसकी सूचना शायद उसके अन्तर्यामी को भी नहीं होने पाई थी ।

अब उस ओर की समस्त आशाओं के एकाएक झूठ में विलीन हो जाने के साथ ही उसका अस्तित्व ही मानो दिशाहीन शून्यता के बीच डूब गया ।

तभी उसके द्वार के बाहर बिहारी आकर खड़ा हो गया ।

दस

एक अग्नि-शिखा दिन-रात सतीश के मन में जलने लगी। उस आग से जलता हुआ उसका इतना बलवान शरीर भी निस्तेज होता जा रहा है, इसका स्पष्ट अनुभव करके वह व्याकुल हो उठा।

बिहारी को बुलाकर कहा, "एक बार सामान फिर बाँधना पड़ेगा, आज शाम की ट्रेन से घर जाना चाहता हूँ।"

विहारी ने पूछा, "गाँव के घर या पश्चिम के घर पर ?"

"पश्चिम के घर पर।" सतीश आवश्यक सामान खरीदने का रुपया उसके हाथ में देकर स्कूल चला गया।

बिहारी का आनन्द समाता ही नहीं था। उसका मकान मैंदिनीपुर जिले में है, वह कभी पश्चिम की ओर नहीं गया था। आज उधर ही जाना होगा। बड़े उत्साह के साथ सब सामान इकट्ठा कर बाँधने लग गया।

पांडे ने आकर खाने के लिए पुकारा।

बिहारी ने हँसकर कहा, "महाराज, तुम जाकर खा लो। मेरी रसोई एक ओर रख दो, समय मिला तो देखा जाएगा, अभी तो मुझे मरने का भी समय नहीं है।" पांडेजी अपने मतलब-भर की बात सुन और समझकर चले गए।

अन्त की बात उनकी समझ में नहीं आई और न उसे समझने की उन्हें आवश्यकता ही थी।

बिहारी हाथ का काम समाप्त करके बाहर चला गया। बाजार जाना होगा। इसके अलावा पहले वाले डेरे में जाकर कम-से-कम महाराज से मिल लेना आवश्यक था।

सावित्री की चिन्ता को तो उसने उसी दिन घृणा से दूर कर दिया था। आज भी उसकी बात वह मन में नहीं लाया।

आज सवेरे-सवेरे सतीश का सिर दुखने लगा था। बारह बजने के बाद वह बुखार में चूर होकर लौट आया। बिहारी घर में न था। वही तीन बजे के लगभग अपने ओढ़ने-बिछौने का एक गट्ठर सिर पर लिए हुए पहुँचा। चारों ओर इन्फ्लुएंजा का प्रकोप फैला हुआ था, यह बात याद कर सतीश

को भय हुआ।

दूसरे दिन ज्वर और बढ़ा और साथ ही सारे शरीर में दर्द भी। संध्या के बाद सतीश ने चिन्तित मुख से बिहारी से पूछा, "यदि ज्वर जल्द न उतरा तो तू अकेला सेवा कर सकेगा न ?"

बिहारी ने डबडबाई हुई आँखों से साहस देते हुए कहा, "हाँ, कर सकूँगा बाबू !"

क्षण-भर सतीश चुप रहा। बोला, "मैं सोच रहा हूँ बिहारी कि एक बार सावित्री को सूचना क्यों न दे दी जाए ? मालूम होता है डाक्टर को भी बुलाना होगा !"

चाहे जिस कारण से हो, सावित्री को बुलाने की बिहारी की बिल्कुल इच्छा न थी, किन्तु उसने मन का भाव छिपाकर मधुर स्वर में कहा, "जी, अच्छा।"

ग्यारह

सतीश के रूखे-सूखे और उदास चेहरे की ओर देखकर उपेन्द्र ने कहा, "तुम्हारा चेहरा ही डाक्टरी पढ़ाई की साक्षी दे रहा है।"

सतीश ने हँसकर कहा, "ना, भैया, मेरे किए नहीं हुआ।"

उपेन्द्र ने आश्चर्य में पूछा, "क्या नहीं हुआ ?"

सतीश ने लज्जा से कहा, "डाक्टरी की पढ़ाई मुझसे सहन न हो पाई।"

स्निग्ध दृष्टि से क्षण-भर सतीश के सुन्दर शरीर की ओर देखकर उपेन्द्र ने कहा, "अच्छा ही हुआ। गाँव में जाकर व्यर्थ ही न जाने कितने जीवों की हत्या करते, उस पाप से भगवान् ने तुम्हें बचा लिया।"

महीने-भर के बाद।

एक दिन सतीश को बुलाकर उपेन्द्र ने कहा, "सतीश, मेरे साथ कलकत्ते चलोगे ?"

सतीश ने हाथ जोड़कर कहा, "मुझे क्षमा करो भैया ! कलकत्ता बड़ा शहर है, देखने योग्य नगर है, सब कुछ ठीक है, लेकिन; मुझे वहाँ जाने को

न कहो।"

सतीश ने बात कुछ गम्भीरता से कही थी। फिर भी उसके स्वर ने उसकी दबी हुई व्यथा को छिपाना अस्वीकार कर दिया। उसकी नकली हँसी व्यथा की विकृति में ऐसी रूपान्तरित होकर दिखाई दी, कि उपेन्द्रनाथ आश्चर्य में पड़कर उसकी ओर देखने लगे।

उन्हें विश्वास हो गया कि सतीश, वहाँ जाकर अवश्य कुछ कर आया है, अब उनसे छिपाता है।

क्षण-भर के बाद बोले, "अच्छा, जाने दो। तुम्हारा स्वास्थ्य भी ठीक नहीं है, मैं अकेला ही चला जाऊँगा।"

सतीश ने उपेन्द्र के मन का भाव ताड़कर कुण्ठित होकर पूछा, "कब जाओगे दादा?"

"आज।"

"आज ही? अच्छा चलो, मैं भी चलूँगा।" कहकर सतीश अपने घर आया। कुछ ही देर बाद वह कलकत्ता जाने के लिए व्यग्र हो उठा। बोला, "बिहारी, फिर एक बार बिस्तर बाँध लो, कलकत्ते चलना होगा।"

बिहारी ने कुछ चिन्तित होकर पूछा, "कब बाबू?"

सतीश ने हँसकर कहा, "कब क्या? आज ही रात की ट्रेन से।"

"अच्छा" कहकर बिहारी मुँह लटकाकर चला गया।

सतीश ने उसका अप्रसन्न मुख देख मन-ही-मन कहा 'बिहारी को कुछ काम-काज नहीं करना पड़ता है, इसी से परिश्रम के भय से वह वहाँ जाना नहीं चाहता।' लेकिन अन्तर्यामी ने कहा 'सतीश, तुम वृद्ध के मन की बात बिल्कुल न जान सके।'

एक दिन सतीश ने बातों ही बातों में बिहारी से कहा था, 'अच्छा बिहारी, अब तो सावित्री अवश्य लौट आई होगी, किन्तु क्या तू बता सकता है, कि तब कहाँ गई थी?'

बिहारी ने संक्षेप में कहा, 'ना बाबूजी।'

यदि चाहता तो वह बहुत-सी बातें कह सकता था, लेकिन एक दिन सावित्री के समक्ष वह अपने पुरुषत्व का अभिमान करके चला आया था, इसलिए किसी समय भी वह उस गर्व को नष्ट न कर सका।

कलकत्ते से लौटकर सतीश ने अपने कमरे में आते ही हाथ जोड़कर भरे हुए गले से कहा था 'भगवान्, तुम जो करते हो, भलाई के लिए करते हो।'

उस दिन उसने परमात्मा के कौन-से विशेष कार्य को याद कर धन्यवाद के शब्द कहे थे, वह बात पूछने पर शायद सतीश कुछ उत्तर न दे सकता। फिर कितने बड़े संकट के मुँह से वह निरापद निकलकर आ सका है। कितने मजबूत जाल के फाँस को कितने सहज में काटकर वह बच निकलने में समर्थ हुआ है, इसे उसकी बुद्धि समझती थी और सौभाग्य को उसने कृतज्ञता के साथ ग्रहण करना भी चाहा था, किन्तु आह ! उसके अज्ञान मन ने उस ओर आँख तक उठाकर देखना पसन्द न किया, वह तो औंधा पड़ा निरन्तर रो रहा था। विवेक की ताड़ना पा, सतीश पहले की तरह के ही समान अपने बचपन के बन्धु-बान्धवों से मिलकर, नाटक-थियेटर, गान-वाद्य, अखाड़े आदि में शामिल होकर अपने दिन बिताना चाहता था, पर मन की करुण पुकार सुनते ही वह अधीर हो उठता और जी खोलकर किसी काम में योग न दे सकता था।

सहसा कलकत्ते जाने की बात सामने आते ही विद्रोही मनोवृत्ति धूलि-शय्या छोड़कर उठ बैठी और आगे के भले-बुरे की ओर ध्यान न दे पैर बढ़ा कर खड़ी हो गई।

उसी रात को कलकत्ते के लिए उपेन्द्र और सतीश एक्सप्रेस गाड़ी के सेकेण्ड क्लास के एक डिब्बे में जा बैठे।

सीटी देकर गाड़ी के प्लेटफार्म छोड़ देने पर उपेन्द्रनाथ ने जंगले से मुँह खींच लिया और बिस्तर पर चित्त पड़कर सो रहे, किन्तु सतीश जंगले से बाहर ही देखता रहा।

एक्सप्रेस-गाड़ी सब स्टेशनों पर नहीं ठहरती। नदी, नाले, गाँव, रास्तों को काटती, हड़हड़ाती चली जा रही है और उसकी चाल की तेजी बताने के लिए ही बाहर के पेड़-पौधे पलक मारते अदृश्य हुए जा रहे हैं। सुदूर में वृक्षों और बाँसों ने मिलकर अन्धकार की एक काली टेढ़ी-मेढ़ी रेखा-सी खींच रखी है और उसके नीचे नदी की शुभ्र जल-रेखा जंगल के नीले काँच के भीतर से दिखाई पड़ रही है। बाहर वृक्ष-लताओं, खेतों, मैदानों, जंगल-

झाड़ियों और बड़े-बड़े जलहीन गड्ढों में—सर्वत्र धुँधली निःशब्द ज्योत्स्ना बिखरी पड़ी है। सतीश की आँखों में जल भर आया। इस मार्ग से वह कितनी ही बार आया-गया है, इस निस्तब्ध शांत प्रकृति को कितनी ही बार उसने इसी प्रकार मलीन ज्योत्स्ना में प्लावित देखा है, किन्तु किसी दिन वह इस तरह उसकी आँखों में समाई नहीं थी।

उसे जान पड़ने लगा, मानो सभी विच्छिन्न हैं, निर्लिप्त हैं और मृत हैं। कोई किसी के लिए व्याकुल नहीं, कोई किसी का मुँह ताकता हुआ बैठा नहीं है। सभी स्थिर, सभी उद्वेगशून्य, सभी अपने आप पूर्ण रूप में विराजमान हैं, इस निर्विकार, उदासीन धरिणी की ओर देखने में उसे दुःख-सा मालूम होने लगा। वह आँखें पोंछकर सरक आया और बैंच पर चित्त होकर सो रहा। लेकिन कुछ ही देर बाद ट्रंक खोल, एक बाँसुरी निकाल उपेन्द्र को लक्ष्य कर धीरे-धीरे बोला, "गाड़ी की गड़गड़ाहट यदि तुम्हारी नींद में बाधा नहीं डालती, तो बाँसुरी का स्वर भी न डालेगा। मुझे नींद नहीं आ रही है।" वह एक खिड़की के पास सरककर गया और बाँसुरी बजाने लगा।

चुपचाप सोता रहा उपेन्द्र। भगवान् ने सतीश को गाने को सुर और बजाने को हाथ दिए थे। इस विषय में उन्होंने कृपणता नहीं की थी।

बचपन से उसने यही विद्या सीखी थी। सतीश बाँसुरी बजाने लगा। उस शुद्ध, सुन्दर, अनिर्वचनीय संगीत को समझने वाला कोई आदमी नहीं था, पर बाहर आकाश का चाँद मानो उस पर मुग्ध होकर उसके पीछे-पीछे दौड़ता हुआ चलने लगा और पृथ्वी पर सोई हुई ज्योत्स्ना की नींद टूट गई।

धीरे-धीरे गाड़ी की चाल धीमी पड़ी। मालूम हुआ कि स्टेशन पास आ गया, उसने बाँसुरी रख दी।

उपेन्द्र जम्हाई लेकर उठ बैठे। बोले, "यदि कुछ सीखना ही होगा, तो बाँसुरी बजाना ही सीखूंगा। उस दिन तुम्हारा सितार बजाना सुनकर झूठ-मूठ एक सितार खरीद डाला, रुपया पानी में फेंक दिया।"

सतीश ने हँसकर कहा, "भैया, क्षमा करो, वस इतने से ही बाँसुरी भी मत खरीद लेना! घर में बैठकर बाँसुरी सीखने की चेष्टा करने से मुहल्ले भर के लोग ऊब उठेंगे।"

उपेन्द्रनाथ लेशमात्र भी कुण्ठित न हो, बोले, "अच्छी बात है, सीखूंगा

तो तुम्हारे ही घर बैठकर सीखूंगा ।"

दोनों जोर से हँस पड़े ।

दूसरा दिन । दोपहर के लगभग गाड़ी हावड़ा पहुँचने पर उपेन्द्रनाथ ने पूछा "तुम कहाँ जाओगे ?"

सतीश ने आश्चर्य में पूछा, "यह क्या ? ले तुम आए और पूछते हो मुझसे कि मैं कहाँ जाऊँगा ?"

"तो तुम्हारे जाने के लिए कोई स्थान नहीं है ?"

"स्थान क्यों नहीं है ? जहाँ तुम वहाँ मैं ।"

इस सम्बन्ध में और कुछ बातचीत न हुई ।

स्टेशन पर उतरते ही यूरोपियन पोशाक में एक बगाली साहब ने उपेन्द्र से हाथ मिलाया ।

ये उपेन्द्र के मित्र बैरिस्टर ज्योतिषराय हैं । तार पाकर लेने आए थे । बाहर उनकी गाड़ी खड़ी थी । जो थोड़ा सामान था, वह कुली के गाड़ी पर चढ़ा देने पर तीनों आदमी भीतर बैठे ।

बिहारी कोच-बक्स पर बैठ गया । कोचवान ने गाड़ी चलाई और बहुत देर बाद, बहुत से मार्ग और गलियों को पार कर एक आलीशान कोठी के सामने गाड़ी आ खड़ी हुई ।

तीनों आदमी उतर पड़े ।

बारह

संध्या होने वाली है ।

उपेन्द्रनाथ और सतीश पथरियाघाट्टा की एक लंबी तंग गली के मोड़ पर आ खड़े हुए ।

उपेन्द्रनाथ ने कहा, "मैं समझता हूँ, अवश्य यही गली है ।"

सतीश ने सन्देह प्रगट किया, "इस गली में वे नहीं रह सकते, यह कदापि नहीं है । फटी दीवार के कोने पर टीन का वह जो टुकड़ा लटक रहा है, संभव है इसमें किसी दिन गली का नाम लिखा हुआ हो, अब पढ़ा नहीं

जाता। ठीक जाने बिना इस पतली गली में जाना व्यर्थ है। यह गली मुझे तो पातालपुरी की राह-सी जान पड़ती है।"

उपेन्द्रनाथ ने हँसकर कहा, "अच्छा, तो तुम यहीं रहो, मैं जाकर देख आता हूँ।"

सतीश ने पहले बाधा देने का प्रयत्न किया, फिर उपेन्द्रनाथ के पीछे-पीछे चल पड़ा। बोला, "भैया, मेरे जैसा आवारा भी साँझ के बाद इसमें साहस नहीं करता, पर आप तो निश्शंक भाव से जा रहे हैं।"

हँसकर कहा उपेन्द्र ने, "आवारागर्दी में आयु बिताने वालों में भले-मानसों से अधिक साहस होता है?"

सतीश उस बात का प्रतिवाद न कर अत्यन्त सावधानी से मार्ग देखकर चलने लगा। पैरों के नीचे ही बदबूदार कीच से भरी खुली नाली थी।

सतीश को पग-पग पर उसमें गिर पड़ने का भय हो रहा था।

एक स्थान पर जाकर गली बहुत तंग और अँधेरी हो गई थी।

सतीश ने पीछे से उपेन्द्रनाथ के कपड़े का कोना खींचकर कहा, "भैया, कर क्या रहे हो? क्यों नाहक जान दे रहे हो?"

उपेन्द्र ने हँसकर कहा, "अब मुझे ठीक याद आ गया। बस, एक ही मकान के बाद १३ नम्बर का मकान है। आठ बरस हुए, एक दिन, केवल एक बार यहाँ आया था, इसी से पहले पहचान न सका था। अब ठीक याद आ गया, यही रास्ता है।"

सतीश ने अविश्वास से कहा, "रास्ता हो भी सकता है, लेकिन तुम्हारे-हमारे लिए नहीं। जिनके लिए यह मार्ग बना है, यदि उनमें से किसी के साथ हमें टकराने की नौबत आ गई, तो इस रात को भी हमें स्नान करना पड़ेगा। इस समय लौट चलें।"

उपेन्द्र ने उत्तर नहीं दिया।

वे सतीश का हाथ पकड़कर ले चले और जरा आगे बढ़कर एक मकान के सामने खड़े होकर बोले, "तुम सिगरेट पीते हो। दियासलाई जलाकर देखो, कितने नम्बर की बाड़ी है।"

सतीश ने दियासलाई जलाकर देखा—कहा, "ठीक तरह पढ़ा नहीं गया, लेकिन दरवाजे पर खल्ली से १३ नम्बर लिखा है। मालूम होता है,

तुम्हारी बात ठीक है। लेकिन मैं पूछता हूँ कि मकान का नम्बर १३ हो या ५३, यहाँ तुम्हें कौन-सा काम है ?"

उपेन्द्रनाथ उत्तर न देकर पुकारने लगे, "हारान ! हारानचन्द्र ! !" ऊपर-नीचे बाहर-भीतर चारों ओर अंधेरा छाया हुआ था, कोई आहट न थी। सतीश भयभीत हो उठा।

उपेन्द्रनाथ फिर पुकारने लगे।

बड़ी देर बाद ऊपर का जंगला खुला। किसी स्त्री की आवाज आई, "कौन है ?"

उपेन्द्र ने कहा, "द्वार खोलने को कह दीजिए। हारान भैया कहाँ हैं ?"

"आती हूँ, जरा ठहरिए।"

दरवाजा खुला।

धीमी रोशनी की रेखा पास में पड़ी। उपेन्द्र किवाड़ को दबा चौखट के अन्दर पैर रखते ही स्तम्भित हो गए। द्वार खोलने वाली मिट्टी के तेल की ढिबरी हाथ में लिए एक किनारे खड़ी है। सिर पर आँचल के बीच से यत्नपूर्वक बनाए हुए जूड़े का एक भाग दिखाई दे रहा है। उसका एक भी बाल इधर-उधर नहीं हुआ है। निर्दोष सुन्दर मुख पर, हाथ की रोशनी में दोनों भौंहों के बीच एक बिन्दी जगमगा उठी। इसी के कुछ नीचे की ओर झुके हुए चंचल नेत्रों से बिजली दौड़ गई, चारों ओर से उस घने अन्धकार में उसकी अनोखी ज्योति ने क्षण भर के लिए दोनों को चौंका दिया।

सतीश ने स्पष्ट देखा कि होंठों के छोरों पर हास्य की रेखा संकोच के धक्के से बराबर आकर लौट रही है। यह देख, उसने उपेन्द्र की पीठ को धीरे से छू दिया। उपेन्द्र के हृदय को ठेस-सी लगी। कुछ चौंककर, कुछ घबराकर उन्होंने पूछा, "हारान बाबू कहाँ हैं ?"

स्त्री ने कहा, "ऊपर हैं। चल-फिर नहीं सकते। माँ भी सात-आठ दिनों से खाट पर पड़ी हैं, घर में केवल मैं ही अच्छी हूँ। आप ही उपेन्द्रबाबू हैं ? हम लोगों को कल आपके आने की आशा थी, इसीसे तैयार न थी। रसोईघर में इधर की आवाज शीघ्र नहीं पहुँचती, बहुत पुकारना पड़ता

है। ऊपर आइए, बड़ी सर्दी है।" मार्ग दिखा वह सीढ़ियों पर चढ़ने लगी।

दो-तीन सीढ़ियाँ चढ़ मुँह फेर और हाथ की रोशनी नीची कर बोली, "देखिएगा, सीढ़ी की बहुत-सी ईंटें निकल गई हैं।" उन्होंने देखते ही जान लिया कि बात ठीक है और सावधानी से चढ़ने लगे।

दो मंजिला मकान।

पहले ऊपरी भाग में पाँच-छः कमरे थे, उनमें से दो तो गिर ही पड़े थे और एक आगामी वर्षा में गिरने को तैयार था। शेष तीनों में से सामने वाले कमरे में तीनों जनों ने प्रवेश किया। अन्दर जाते ही उन्हें असमय में रोगी के घर पहुँचने का कुछ पछतावा हुआ।

उस कमरे में चूहे फटे-पुराने तोशक-तकियों से रुई निकाल सारे कमरे में बिखेर मौज से दौड़ लगा रहे थे, एकाएक प्रकाश और आदमियों के आ पहुँचने से वे इधर-उधर छिपने लगे। कमरे में टूटी मेजें, कुर्सियाँ, चौकियाँ, पाटियाँ, फूटे कनस्तर, खाली शीशियाँ, बोतलें, और भी न मालूम क्या-क्या चीजें चारों ओर बिखरी थीं।

एक किनारे एक चौकी भी बिछी थी। फटे-पुराने गद्दे, तोशक और तकियों को मोड़-मोड़कर जबरदस्ती एक किनारे समेटकर चटाई बिछाई थी। वह कमरा आए-गए अतिथियों को बैठाने के लिए था।

स्त्री ने ढिबरी दीवट पर रखकर कहा, "जरा ठहरिए, मैं सूचना देती हूँ।" उसके यह कहकर जाते ही सतीश जूते पहने हुए अतिथियों के उस आसन पर उछलकर खड़ा हो गया।

उपेन्द्रनाथ संकोच से बोल उठे, "ऐ! ऐ यह क्या कर रहे हो?"

सतीश फुसफुसाता हुआ बोला, "जान बचाऊँ कि शिष्टाचार, बिच्छू उछलकर चौकी पर चढ़ गए।"

आदमियों के भी अच्छी तरह खड़े होने को स्थान उस चौकी पर नहीं था। वे दोनों अभी आपस में खड़े होने के लिए धक्कम-धुक्की कर रहे थे कि, इसी समय वह स्त्री लौट आई और किवाड़ के सामने खड़ी हो, खिलखिलाकर हँस पड़ी।

इनके भयभीत होने की बात वह समझ गई थी। बोली, "यह मेरे ससुरजी का बैठकखाना है, आप लोग इसका यों अपमान कर रहे हैं!"

उपेन्द्रनाथ सतीश पर झुँझलाकर कहने लगे, "इसने ऐसा डरा दिया कि..."

पर सतीश विनयपूर्वक बोला, "उपेन्द्र भैया, मैंने कुछ शौक से भय नहीं दिखाया! मैं जानता हूँ कि मेरी विद्या, चाणक्य के श्लोकों तक ही सीमित है, अधिक नहीं है, लेकिन इतना मैंने अवश्य सीखा है कि आत्मरक्षा सर्वप्रथम कर्म और सर्वश्रेष्ठ धर्म है।"

उस स्त्री की ओर देखकर बोला, "अच्छा, आप ही कहिए, आत्मरक्षा के लिए एक निरापद स्थान चुन लेना क्या अनुचित है? आपके ससुरजी की बैठक का अपमान करने का हमारा साहस नहीं, बल्कि यथेष्ट सम्मान करके ही आपके आश्रित प्रजाजनों के स्वच्छन्द विचरने के लिए सारा स्थान छोड़ मैं केवल इतने से स्थान में खड़ा हुआ हूँ।"

तीनों ही हँस पड़े।

इस हास-परिहास ने इस दरिद्र गृहलक्ष्मी को दुःखी नहीं किया, बल्कि इसके भीतर जो सरलता और समवेदना छिपी हुई थी, वह युवती सहज ही उसे समझ गई है, यह बात उसके हँसते हुए चेहरे को देखकर ही उपेन्द्र समझ गए। इससे उन्हें एक सन्तोष हुआ।

उसके मुख की ओर देख, वे मुस्कराकर बोले, "मैं समझता हूँ, आपके सामने आपके प्रजाजन उस पर अत्याचार करने का साहस कभी न करेंगे। वह अब नीचे उतर आए तो कोई हानि नहीं?"

"ना-ना"--कह डिबरी हाथ में उठा, वधु ने सतीश की ओर देख संसार को मोहित करने वाली हँसी हँसकर कहा, "अब निर्भय हो राजदर्शन को चलिए। प्रजाजन कुछ भी अत्याचार नहीं करेंगे।"

हलके हास-परिहास ने उस अपरिचित नारी को परिचित बनाने के रास्ते में बहुत ही आगे बढ़ा दिया और तीनों ही व्यक्ति प्रसन्नता से कमरे से बाहर निकले।

उपेन्द्र और सतीश हँसते हुए एक दूसरे कमरे में जाते ही काँपकर खड़े हो गए। क्रोधी गुरुजी की आकस्मिक चपत खाकर हँसते हुए बालक के मुँह का भाव जिस प्रकार सहसा बदल जाता है, इन दोनों आदमियों की हँसी भी उसी प्रकार क्षण भर में लोप हो गई और चेहरे पर स्याही पुत गई।

थोड़ी देर वाद उसने खाट के समीप जाकर पुकारा, "हारान भैया !"

हारान मुर्दे की तरह पड़े थे, स्फुट स्वर में बोले, "आओ भाई, आओ ! अब उठा-बैठा भी नहीं जाता, तुम्हें तकलीफ दी।" इतना कहकर वे हाँफने लगे।

उपेन्द्रनाथ बिछौने के एक किनारे बैठ गए। उनकी आँखों में आँसू भर आए और उनकी एक लम्बी गहरी साँस मानो कण्ठ तक आकर फँस गई। बात करने का साहस न हुआ—होंठ दाँत से दवा, कठोर बन, बैठे रहे। सतीश एक बड़ी-सी सन्दूक पर चुपचाप बैठ गया।

मैले और फटे-पुराने बिस्तर के सिरहाने की ओर मिट्टी का दीपक टिमटिमा रहा था, हारान का मृतप्राय शरीर स्थिर पड़ा था। सूर्य के उत्ताप और मुक्त आकाश की वायु से वंचित इस कमरे की नस-नस में जो अन्धकार धँसा हुआ था, वह जाड़े की उस रात में दीपक का क्षीण प्रकाश पाकर मानो कोढ़ के समान उसकी दीवारों पर फूट निकला था।

दिन-रात बन्द रहने वाले इस घर की दूषित, बँधी हुई, घिरी हुई वायु आत्मघाती के मुख से निकले हुए विषाक्त फेन की भाँति फैलकर मानो साँस बन्द किया चाहती थी। दरवाजे पर मानो यम के दूत खड़े थे। चारों ओर देख-देखकर सतीश बारम्बार काँपने लगा। उसे जान पड़ता था कि वह यदि चिल्लाकर बाहर न निकल भागेगा तो उसकी जान नहीं बचेगी। यहाँ आदमी जीवित कैसे रह सकता है ?

समीप ही बहू खड़ी थी। उसकी ओर देखते ही वह और भी डर गया। उनका वह अतुल रूप कहाँ गया ? वह हँसी कहाँ गई ? सतीश की आँखों में वह प्रेतलोक की पिशाचिनी-सी प्रतीत हुई। वह सोचने लगा, जिसके पति की यह दशा है, वह हँसती कैसे है, हँसी-मजाक में भाग कैसे लेती है, बाल क्यों सँवारती है ?

कुछ क्षणों के लिए उसका हृदय स्त्री-जाति के प्रति घृणा से भरने लगा था कि हारान ने पुकारा, "किरण, उपेन्द्र आए हैं, क्या यह माँ को मालूम है ?"

पास आकर, झुककर धीरे से बहू बोली, "माँ सो रही हैं ! डाक्टर साहब कह गए हैं, नींद से उन्हें जगाया न जाए।"

हारान ने मुँह बिगाड़ा, चिल्लाकर कहा, "भाड़ में जाए डाक्टर। तुम जाओ ! माँ से कहो।"

उपेन्द्रनाथ पास ही बैठे सब सुन रहे थे, व्यथित होकर बोल उठे, "हारान भैया, आज रात को उन्हें जगाने की क्या आवश्यकता है ? कल सवेरे कह दिया जाएगा।"

उपेन्द्र समझ गए कि बहुत दिनों तक बीमार रहने से हारान का स्वभाव चिड़चिड़ा हो गया है, अतः उस निरपराध, सेवापरायण स्त्री के अकारण अपमान से दुःख का अनुभव कर कुछ सन्तोष दिलाने की इच्छा से उन्होंने एक बार उसके मुँह की ओर देखा पर कुछ दिखाई न दिया। किरण-मयी के झुके हुए मुख पर दीपक का प्रकाश नहीं पड़ता था। कुछ देर तक यों ही रह, वह तेजी से घर के बाहर चली गई।

उपेन्द्र उदास होकर बैठे रहे और हारानचन्द्र हाँफने लगे। वह सुनसान कमरा सतीश को और भी भयंकर दीखने लगा। तत्पश्चात् ही हारान ने उपेन्द्रनाथ को छूकर पास आने का संकेत करते हुए अत्यन्त क्षीण कण्ठ से पूछा, "सात-आठ बरस के बाद भेंट हुई है। इस बीच में क्या एक बार भी तुम्हारा इधर आना नहीं हुआ ?"

अनेक बार उपेन्द्र को कलकत्ते आना पड़ा था, लेकिन इस समय वे इसे स्वीकार न कर सके। बोले, "भाई तुम्हें बीमारी क्या है ?"

हारान ने कहा, "बुखार, खाँसी—यही सब। अब उसकी चर्चा व्यर्थ है, अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा हूँ।"

उधर सन्दूक पर बैठे सतीश ने मन-ही-मन सिर हिलाया।

हारान ने कहा, "मुझे भी तुम्हारी बात याद न पड़ी, समय पर याद आती तो काम बनता।" कुछ देर चुप रहकर फिर बोले, "काम क्या होता है ? खैर, उन बातों को जाने दो। हाँ भाई ! एक काम करो। मेरा दो हजार का जीवन-बीमा है और यह टूटा-फूटा मकान। तुम वकील हो, एक ऐसी लिखा-पढ़ी कर दो कि जिसमें सब चीजें बिल्कुल तुम्हारे हाथ में रहें। उसके बाद तुम रहे और मेरी माँ।"

उपेन्द्र ने कहा, "और तुम्हारी पत्नी ?"

"मेरी पत्नी किरण ! हाँ, वह तो है ही। उसके माँ-बाप कोई जीवित

नहीं हैं, उसे भी देखना।"

उपेन्द्रनाथ स्थिर नेत्रों से हारान के मुख की ओर देखते हुए सोचने लगे।

सतीश ने जेब घड़ी निकाल खड़े होकर कहा, "भैया, रात के दस बज चुके हैं, वहाँ वे लोग घबराते होंगे।"

हारान ने उसकी ओर देखकर कहा, "उपेन्द्र, ये कौन हैं?"

"मेरे मित्र हैं, साथ ही कलकत्ते आए हैं। तो भाई, इस समय विदा होता हूँ, कल सवेरे फिर आऊँगा।"

"ना, कल नहीं, सब कागज ठीक करके परसों आओ। मेरे पास जो कुछ है, उसके बारे में मुझे जो कुछ कहना है उसी दिन कह दूंगा, यहाँ कहाँ ठहरे हो?"

"शहर में एक मित्र के यहाँ।"

हारान ने पुकारा, "किरण!"

उपेन्द्रनाथ ने झट रोककर कहा, "भाई रहने दो। सतीश की जेब में दियासलाई है। हम लोग मजे में चले जायेंगे। वे काम में लगी होंगी, क्यों कष्ट दे रहे हो।"

इस पर हारान ने क्या कहा, कुछ भी किसी की समझ में न आया। किवाड़ खोलते ही सतीश को मालूम हुआ, जैसे कोई अँधेरे में जल्दी से हट रहा हो। वह भय से दो कदम पीछे हट गया।

उपेन्द्रनाथ ने पूछा, "क्या हुआ सतीश?"

"कुछ नहीं, तुम आओ", इतना कह उपेन्द्रनाथ का हाथ पकड़कर वह बरामदे में खड़ा हुआ।

काली अँधेरी रात थी। एक तो वैसे ही आकाश में बादल छाए हुए थे, उस पर चारों ओर के ऊँचे मकानों ने उस अन्धकार को जबरदस्ती नीचे की तंग सीढ़ियों पर और टूटे-फूटे खुले बरामदे के भीतर एकदम से ठूँस-ठूँस कर भर दिया था।

दोनों आदमियों ने टटोलते हुए सीढ़ी के पास आते ही देखा, नीचे मिट्टी के तेल की वही ढिबरी लिए किरणमयी मौन होकर बैठी है। इनके आते ही खड़ी होकर बोली, "रोशनी दिखा रही हूँ, सावधानी से उतर आइए। आप ही लोगों के लिए बैठी हूँ।"

अँधेरी ठण्डी रात, कड़ाके की सर्दी। गीली ज़मीन पर अकेली उस बेचारी स्त्री को अपनी प्रतीक्षा में बैठी देख और उसके निश्चित वैधव्य की बात सोचकर उपेन्द्रनाथ की आँखों में आँसू भर आए।

तोरणद्वार उस समय भी बन्द न हुआ था। नीचे उतरते ही सतीश हठात् से गली में आकर खड़ा हो गया। उपेन्द्रनाथ ने पीछे मुड़कर देखा और वे खड़े हो गए। उन्होंने देखा कि किरणमयी अपने दोनों सकरुण नेत्र उनके मुँह पर गड़ाकर एक अजीब ढंग से खड़ी है। क्षण भर के लिए उपेन्द्रनाथ स्तब्ध होकर निश्चल खड़े रहे।

किरण ने पूछा, "उपेन्द्रबाबू, आप हम लोगों के कौन हैं?"

उपेन्द्र की समझ में न आया कि इस प्रश्न का क्या उत्तर दे।

उसने फिर समझकर कहा, "आप क्या मेरे स्वामी के कोई सगे-सम्बन्धी होते हैं? इस घर में आए इतने दिन हो गए, किसी दिन आपका नाम न तो उनसे सुना, न माँ से ही सुना था, केवल जिस दिन आपको चिट्ठी लिखी गई थी, उसी दिन सुना था, इसी से पूछ रही हूँ।"

सतीश ने बाहर से पुकारा, "उपेन्द्र दा, आओ भी।"

उपेन्द्र ने कहा, "ना, सम्बन्धी नहीं हूँ, विशेष मित्र हूँ। मेरे पिताजी जब नोआखाली में थे तब हारान भाई के पिता भी वहीं सरकारी स्कूल में मास्टरी करते थे और मुझे घर पर भी पढ़ाते थे। हम दोनों बहुत दिन एक साथ पढ़ते रहे हैं।"

जरा हँसकर किरणमयी ने कहा, "ओ—यह बात है! अच्छा, उपेन्द्र बाबू, आप तो सब कुछ अपने नाम लिख लेंगे न?"

देर होते देखकर सतीश फिर दरवाजे के पास आया। उसने कहा, "हाँ, यही तो निश्चय हुआ है।"

हारान के कमरे से बाहर निकलते समय कौन द्वार पर से हट गया था, यह उसने पहले ही समझ लिया था।

सतीश की ओर घूमकर देखा और बहू ने कहा, "अच्छा आप भी हैं! बहुत अच्छा! बहुत ठीक! इतने दिन इतना कष्ट सहकर भी ज्यों-त्यों दोनों समय दो मुट्ठी अन्न मिल जाता था—अब देखती हूँ कि भीख माँगनी होगी। अच्छी बात है, यही होगा, आप ही लोग सब कुछ ले लीजिए।"

उपेन्द्र स्तब्ध हो गए।

सतीश ने उत्तर दिया, "जिसकी चीज है, वही यदि दे जाए तो इसमें किसी और को कुछ बोलने का अधिकार ही क्या है?"

किरणमयी की आँखें आग के समान जल उठीं। बोली, "पर मुझे अधिकार है! मरते समय मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। मेरे स्वामी की भी यही दशा हुई है, लेकिन आप लोग लिखाकर ले लेने वाले कौन होते हैं?"

बिना किसी संकोच के सतीश तुरन्त बोल उठा, "यह तो नहीं मालूम, लेकिन हारान बाबू में आज भी बुद्धि है, मेरी आत्मा इस बात की साक्षी दे रही है।"

किरणमयी ने व्यंग्य से कहा, "वाह री साक्षी! क्या कहना है! लोग कहा करते हैं...खैर, लोगों की बात जाने दीजिए।" उपेन्द्रनाथ की ओर देखकर बोली, "लेकिन मैं यह पूछती हूँ कि मैं कैसे जानूं कि अन्त में आप भीख न मँगवायेंगे—कैसे विश्वास करूँ कि आप धोखा नहीं देंगे?"

उपेन्द्र को इतनी बड़ी चोट अचानक असह्य हुई। वे कुछ कहना चाहते थे लेकिन न कहकर चुपचाप अपने को सँभालने लगे।

सतीश ने मृदु स्वर में कहा, "अजी, भाभी जी, आपको वे सब बातें जानने की आवश्यकता भी नहीं।"

किरणमयी तुरन्त उत्तर न दे सकी। कुछ देर चुप रहकर बोली, "आवश्यकता क्यों नहीं है?"

सतीश ने कहा, "ना। अपना अधिकार आप नष्ट न करतीं तो हारान बाबू को, इतनी परेशानी ही क्यों उठानी पड़ती? इतनी रात को व्यर्थ का टंटा न बढ़ाइए, जरा सोचकर देखिए।"

तेज कार्बोलिक गन्ध से साँप जिस प्रकार फैलाया हुआ फन बात की बात में समेट, चोट करने के बजाय अपनी जान बचाने की चिन्ता करने लगता है, यह प्रतिमा, यह कौशलमयी, तेजस्विनी युवती पलक मारते उसी प्रकार सिमट-सी गई। सूखे मुख से विह्वल की भाँति देखकर बोली, "जरा सुनूं भी तो कि मेरे विषय में उन्होंने क्या कहा?"

उपेन्द्रनाथ अब चुप न रह सके। इस गर्विता नारी का सन्देह, भय,

मान उन्हें बरछी के समान बेधते रहने पर भी उनका उदार अन्तःकरण सतीश की इस जासूसी के विरुद्ध बिगड़ खड़ा हुआ। वह अनुचित उत्तेजना भरकर कुछ गुप्त रहस्य खोजकर बाहर निकालने की चेष्टा कर रहा था, यह उन्होंने समझ लिया।

सतीश को रोककर किरणमयी से बोले, "क्यों आप सतीश के पागलपन पर ध्यान देकर व्यर्थ घबरा रही हैं? स्वामी के धन से स्त्री को वंचित करने का अधिकार किसी को नहीं है। आप निश्चिन्त रहें। मेरी समझ में तो आप लोगों के विशेष सुभीते के विचार से ही हारान बाबू ने लिखा-पढ़ी की बात उठाई है, पर वे जो कुछ भी करेंगे, आपकी राय को लेकर करेंगे। इसके बिना तो कुछ हो ही नहीं सकता। रात बहुत हो गई है। दरवाजा बन्द कीजिए। चलो सतीश, देर न करो।" सतीश को ढकेल गली में खड़े हो, मुस्कराकर किरण से बोले, "कल-परसों फिर भेंट होगी। नमस्कार!"

तेरह

जनशून्य गली।

वे दोनों निकलकर किराए की एक गाड़ी में बैठ गए और उसकी खिड़कियों से सड़क पर आने-जाने वालों की ओर चुपचाप देखने लगे।

दोनों में से बातें करने योग्य अवस्था किसी के मन की न थी। उपेन्द्र व्यथित मन से सोचने लगा। कल ही घर लौट जाऊँगा। भला हो या बुरा, इस विषय में मुझे हाथ डालने की आवश्यकता नहीं। केवल लौटने के पहले यह देख आऊँगा कि हारान भाई का इलाज ठीक हो रहा है या नहीं। फिर कुछ नहीं, आठ साल तक जो आदमी मन के बाहर पड़ा था, वह बाहर ही पड़ा रहेगा। यह सोचकर देह पर उड़कर आ बैठने वाले कीड़े-मकोड़े के समान इस मोह बढ़ाने वाली चिन्ता को जोर से दूर फेंककर उपेन्द्र गाड़ी के अन्दर ही एक बार हिल-डुलकर बैठे।

सतीश की ओर देखा, वह चीनापुर रोड के दो मंजिले मकानों के अँधेरे बरामदे की ओर देख रहा है। बोले, "सतीश, एक चुरुट तो दो।

बड़ी सर्दी है।"

सतीश ने पाकेट से चुरुट और सलाई की डिब्बी निकालकर हाथ में दी और उसी प्रकार चुपचाप बाहर को देखता रहा।

उपेन्द्र ने चुरुट सुलगाकर धुआँ फेंकते हुए सतीश को सुनाकर कहा, "भीतर का अन्धकार इस धुएँ के समान ही उड़ जाए!"

सतीश हुँकारी तक न भर, पूर्ववत् बैठा रहा।

गाड़ी धड़धड़ाती हुई परिचित-अपरिचित राह, मकान, दूकान, बाजार पार करती हुई चलने लगी। चुरुट जलकर राख हो गई, उसका धुआँ शून्य में विलीन हो गया। फिर भी दोनों आदमी दो तरफ बैठे ज्यों के त्यों देखते रहे।

उपेन्द्र ने मन-ही-मन सोचा, सतीश अवश्य ये ही सब बातें सोच रहा है और हो न हो कुछ निश्चय भी कर रहा है, नहीं तो वह इतनी देर चुप रहने वाला जीव नहीं है। परन्तु वह क्या सोच रहा है, इसका अनुमान करने पर, प्रयत्न करने पर उपेन्द्रनाथ को शुरू से आखिर तक सारी बातें स्मरण हो उठीं।

वे भीतर ही भीतर काँप उठे और मन-ही-मन बोले—'आह! बेचारे के घर की कैसी शोचनीय दशा हो रही है?' उन्होंने वहाँ जो कुछ देखा-सुना था, सबका एक-न-एक कारण स्थिर किया, पर सतीश क्यों बेचारी स्त्री के साथ इस प्रकार कमर कसकर लड़ने को तैयार हो गया—इसका कुछ भी कारण उन्हें ढूँढ़े न मिला।

सतीश अशिक्षित है, पर नासमझ नहीं। सरस्वती देवी ने अगर उसे धोखा दिया है, तो चाणक्य महाराज ने उसकी कमी निकाल दी है। यदि उपेन्द्र न जानते होते, तो उसके व्यवहार से उतना दुःख नहीं मानते।

एक विचित्रता थी, एक विशेषता थी, हारान के प्रस्ताव में। इसीसे उपेन्द्र थोड़ी ही देर में बहुत बातों का निर्णय कर सके थे। लंगोटिया मित्र की जीवित मृत देह के पास बैठकर उन्होंने विचारा था कि इन दोनों अनाथ अबलाओं का जन्म-भर भरण-पोषण और रक्षा करूँगा। किसी अच्छे से तीर्थस्थान में एक छोटा-सा मकान ले लूँगा।

वह पेड़-पौधों से घिरा हुआ शान्त आश्रम के समान होगा और उसके

चारों ओर शिष्ट, सभ्य, भले आदमियों के घर होंगे । गायों की सेवा कर, अतिथि-ब्राह्मणों की पूजा कर, व्रत-उपवास आदि कर इन दोनों स्त्रियों के दिन जिस सुख-शान्ति के साथ बीतने लगेंगे उसका एक मधुर काल्पनिक चित्र उपेन्द्र ने अपने मन में बना लिया । उस कल्पित चित्र के एक कोने में, पेड़-पौधों की आड़ में उसने अनजाने में अपना भी चित्र अंकित कर दिया ।

इसी समय किरणमयी द्वारा आरोपित कुत्सित अभियोग और उसकी सन्तप्त क्रुद्ध श्वास-वायु बवण्डर के समान उस चित्र के चिह्न तक को न जाने कहाँ उड़ा ले गई ! उपेन्द्रनाथ अब मौन न रह सके । पुकारकर बोले, "सतीश, क्या सोच रहे हो ?"

सतीश ने उपेन्द्र की ओर देखकर कहा, "उपेन्द्र दा, क्या सोच रहा हूँ, जानते हो ? लड़कपन में एक बंगला-उपन्यास पढ़ा था, उसी को सोच रहा हूँ ।"

उपेन्द्र ने पूछा, "कौन-सा उपन्यास ?"

सतीश ने कहा, "नाम याद नहीं है, लेखक का नाम भी याद नहीं आता । पर लेखक था कोई बड़ा सुविख्यात । उपन्यास की एक घटना की ही बात मैं सोच रहा था । वह बड़ी सुन्दर घटना है—बड़ी विचित्र !"

उपेन्द्र आश्चर्यचकित होकर उसकी ओर देखने लगे ।

सतीश ने मन को चोट पहुँचाने वाले स्वर में कहा, "उपेन्द्र दा, तुम तो जीवन-भर अंग्रेजी ही पढ़ते रहे, किसी दिन बंगला की ओर देखा तक नहीं, पर देशी भाषाओं में भी ऐसी पुस्तकें हैं जिन्हें एक बार पढ़ने से बहुत कुछ ज्ञान हो जाता है ।"

उपेन्द्र ने झुँझलाकर कहा, "पहले तुम उस उपन्यास की कहानी तो बताओ, उसके बाद देखा जाय कि कितना ज्ञान उत्पन्न होता है ।"

सतीश हँसा, बोला, "वचन दो कि अप्रसन्न न होगे ?"

"ना, तुम कहो !"

सतीश ने कहा, "बड़ी सुन्दर कहानी है । एक बड़े जमींदार नाव पर सवार होकर कहीं जा रहे थे । एक दिन सन्ध्या के समय आसमान में बादल घिर आए । जोरों से आँधी-पानी भी शुरू हो गया । वे भय के मारे किनारे उतर गए । सामने ही एक बहुत बड़ा टूटा-फूटा मकान था । पानी से बचने

के लिए उसी में चले गए।

"उस मकान में सर्वत्र अन्धकार छाया हुआ था—कहीं कोई आदमी नहीं था। सारे मकान में घूमकर अन्त में उन्होंने देखा कि एक कमरे में दीपक टिमटिमा रहा है और फटे बिस्तर पर एक मुमूर्ष आदमी पड़ा हुआ है। और उसकी रूपवती स्त्री भूमि पर पड़ी रो रही है। उस स्त्री ने उस रात को एक भयंकर स्वप्न देखा था। अच्छा, उपेन्द्र भैया तुम स्वप्न पर विश्वास करते हो ?"

उपेन्द्र ने ना कहा और पूछा, "फिर ?"

सतीश ने कहा, "उसके बाद वह उसी रात को चल बसा। जमींदार ने उस रूपवती युवती विधवा को घर लाकर जबरदस्ती उससे विवाह कर लिया। चारों ओर से धिक्कार की वर्षा होने लगी और इसी दुःख से उनकी प्रथम स्त्री ने विष खाकर आत्महत्या कर ली।"

उपेन्द्र ने कथानक से समझ लिया कि सतीश 'विषवृक्ष' की छीछालेदर कर रहा है और सतीश की स्मृतिशक्ति का यह परिचय पाकर यदि कोई दूसरा समय होता, तो उपेन्द्र खूब हँसते पर इस समय उन्हें हँसी न आई। उपन्यास के इस कथानक का कुत्सित सत्य तेज तीर के समान आकर उनकी छाती में लगा। वे मन-ही-मन बोले, यह तो सतीश की स्मृति नहीं—यह उसकी आशंका है और यह आशंका क्या है, किस बात के आधार पर उसने 'विषवृक्ष' की डाल के पत्ते तोड़-मरोड़कर उसे अपने साँचे में ढाल दिया है, यह बात सोचकर उपेन्द्र गम्भीर लज्जा से संकुचित हो गए।

सतीश ने अँधेरे में यह नहीं देखा कि उस समय उपेन्द्र का मुँह पीला पड़ गया है।

सतीश ने जले पर नमक छिड़ककर फिर कहा, "खाई खोदकर मगर न बुलाओ, उपेन्द्र दा !"

उपेन्द्रनाथ कोई उत्तर न दे सके।

देर तक चुप बैठे रहे। धीरे-धीरे बोले, "यह उपन्यास की बात रहने दो। किन्तु यह बतलाओ कि तुम उपदेश क्या देना चाहते हो ?"

सतीश हँसकर बोला, "बस, देख लो, उपेन्द्र भैया, तुम अप्रसन्न हो गए। मैं तुम्हें उपदेश नहीं दे सकता—लेकिन पाँव पकड़कर तुमसे अनुरोध

कर सकता हूँ कि वहाँ तुम्हारे जाने की आवश्यकता नहीं है, वे लोग भले आदमी नहीं जान पड़ते।"

"कौन लोग ?"

सतीश ने कहा, "भैया, नाराज मत होना, बहुवचन का प्रयोग मैंने केवल सभ्यता के लिए किया है। मैं हारान बाबू की बात नहीं कहता। वे भलाई-बुराई से कोई सम्बन्ध नहीं रखते। उनकी माँ को भी मैंने आँखों से नहीं देखा, मेरा संकेत तीसरे व्यक्ति की ओर है।"

उपेन्द्र, "तीसरे व्यक्ति का क्या अपराध है? देखो सतीश, तुम्हारे पिता यदि अपनी सम्पत्ति किसी दूसरे आदमी को लिख देने का विचार करें तो शायद तुम प्रसन्न न होगे ?"

"नहीं उपेन्द्र भैया, आशीर्वाद करें कि पिताजी को ऐसा करने की आवश्यकता ही न पड़े। मैं जानता हूँ कि वे मुझे अच्छा नहीं समझते, मुझसे प्रसन्न भी नहीं रहते—मैं तो उनका नीच पुत्र हूँ, किन्तु नीच होकर भी मैं उनकी मृत्यु के समय सज-धजकर, सिंगार-बनाव कर, आँखों में सुरमा लगाकर और ठाठ से बात झाड़कर यों माथे पर बिन्दी नहीं लगा सकता। मैं बोलने में यदि कुछ ज्यादती नहीं कर रहा होऊँ, तो क्षमा करना भैया, तुमने यदि एक बार भी आँखें खोलकर देखा होता, तो समझ जाते कि हारान बाबू का संकोच बहम नहीं बल्कि वह उनकी बहुत दिनों की चिन्ताओं का परिणाम था।"

उपेन्द्रनाथ चुप।

सोचने लगे कि हारान बाबू ने कब और किस बात पर संकोच प्रकट किया ?

सतीश ने कहा, "उपेन्द्र भैया, तुम यह न सोचो, कि हारान बाबू तुम्हें सब भार अर्पण करने के समय अपनी पत्नी की बात ही भूल गए थे अथवा लज्जा से कह नहीं सकते थे, बल्कि मेरा विश्वास है कि यदि तुम स्वयं न चर्चा करते, तो वे अपनी इच्छा से उसके विषय में कुछ न कहते।"

उपेन्द्रनाथ मन-ही-मन बहुत खीझते रहने पर भी अब तक चुपचाप उसकी बात सुन रहे थे। पराई स्त्री के सम्बन्ध में ऐसी सन्दिग्ध और कुत्सित कल्पनाएँ अब उनकी सहनशक्ति के बाहर हो गईं।

वे कठोर स्वर से बोल उठे, "सतीश, तुम यहाँ तक नीचे गिर गए हो। मेरा ऐसा विचार नहीं था। जान पड़ता है, तुम वात समझने में वैसे ही हो।"

सतीश हँसकर वोला, "नीचे कैसे गिर गया? बुराई को बुराई कहता हूँ, इसलिए?"

"भला हो या बुरा, तुम्हें उसकी चर्चा करने का क्या अधिकार है?"

"अधिकार किसे कहते हैं? वह अंग्रेजी की बात है, बंगला में उसका कुछ अर्थ नहीं होता। समारे समाज में अधिकार-अनधिकार का इतना सूक्ष्म विचार नहीं चलता। अनेक लोग तो जेल के कैदी को चोर कहने में आपत्ति करते हैं, लेकिन उस बात को तो हर एक मानकर नहीं चल सकता।"

उपेन्द्र ने कहा, "वह दूसरी बात है। चोरी सिद्ध करके ही किसी को चोर कहा जाता है, चोर जेल जाता है, किन्तु इसके सम्बन्ध में तुम्हें क्या प्रमाण मिला है?"

सतीश ने उत्तर दिया, "बिना प्रमाण के भी अनेक मनुष्य जज की कृपा से जेल की हवा खाते हैं। हम लोगों की समझ में ज़ो बात नहीं आती, उसे वे समझते हैं और हम-तुम जिस चीज को जल के समान स्वच्छ देखते हैं, वह विचारक के लिए कभी-कभी पहाड़ बन जाती है। आज तुम्हारे सम्बन्ध में भी यह बात घटित होती है। यह मत समझना, कि मैं गलत कह रहा हूँ। इतनी बड़ी दुनिया आँखों के सामने देखते रहने पर भी बहुतों को ईश्वर का प्रमाण ढूँढ़ना पड़ता है और कितनों को तो ढूँढ़े भी कोई प्रमाण नहीं मिलता। मैं जानता हूँ कि तुम क्रुद्ध होगे, क्योंकि सदा से तुम भलों के साथ मिलते रहे हो, भलों को ही तुमने देखा है, और स्वयं भी भले ही बने रहे हो, किन्तु मेरे समान यदि तुम भला-बुरा दोनों देख चुके होते और देखकर पक्के हो गए होते, तो मुझे इतनी वातें कहने की आवश्यकता न होती, तुम्हारी अपनी ही आँखें बहुत कुछ समझ लेतीं।"

कुछ देर उपेन्द्रनाथ चुप रहकर बोले, "सब चीजें आँखें तले पड़ें, इसकी मुझे आवश्यकता नहीं है, और न पक्का होने के लिए मैं तुम्हारे समान नीच ही बन सकूँगा। अब इस प्रसंग को छोड़ो, गाड़ी फाटक के

भीतर आ पहुँची है। लेकिन देखो सतीश, एक बात याद रखना, कच्चे का दाम क्या है, यह उस समय मालूम होगा, जब तुम और भी पक्के हो जाओगे।"

उपेन्द्र को दूसरे दिन उठने में देर हो गई। सूर्य निकले बहुत देर हो चुकी है, यह बात खिड़की से आने वाले प्रकाश की ओर देखते ही उनकी समझ में आ गई।

उपेन्द्रनाथ अचकचाकर उठ बैठे। कमरे में सतीश न था। वह कहाँ गया है, पूछने पर नौकर ने आकर बताया, "सतीश बाबू सामने के बगीचे में कुश्ती लड़ रहे हैं, नीचे चाय तैयार है, साहब आपकी राह देख रहे हैं।"

उपेन्द्र झटपट तैयार होकर नीचे उतरा। ज्योतिष हाथ पकड़कर टेबुल पर ले गया। वहीं उसकी बहन सरोजिनी भी अतिथियों की राह देख रही थी। उसने समाचार-पत्र फेंककर हंसते हुए कहा, "कल रात को दस बजे तक हम आप लोगों की प्रतीक्षा करते रहे थे। अन्त में मँझले भैया बोले कि अवश्य कोई दयनीय मित्र उन्हें मार्ग से घसीट ले गया होगा और शायद आप लोग रात को नहीं लौट सकेंगे। कल रात को किस समय लौटे उपेन्द्र बाबू ?"

उपेन्द्र ने हँसकर कहा, "ग्यारह बजे। एक आवश्यक काम में फँस गया था, सबको कष्ट दिया।"

ज्योतिष ने कहा, "यह हमें मालूम है। हमने यह नहीं सोचा था कि तुम व्यर्थ रास्ते में फिर रहे होगे। सतीश बाबू कहाँ गए ?"

नौकर ने आकर निवेदन किया, "सतीश बाबू उधर बाग में कुश्ती लड़ रहे हैं। उन्हें सूचना दे दी गई है।"

नौकर के चले जाने पर, ज्योतिष ने उपेन्द्र की ओर देखकर कहा, "कुश्ती कैसी ! क्या वहाँ और भी कोई है ?"

उपेन्द्रनाथ ने कहा, "मैं नहीं जानता। मेरी समझ में कुश्ती नहीं, किसी प्रकार का व्यायाम होगा। उसे बचपन से व्यायाम का अभ्यास है। कुछ करता होगा।"

कल दोपहर को सरोजिनी म्यूजियम (अजायबघर) देखने गई थी। संध्या के बाद घर लौटकर उसने सुना कि उपेन्द्र बाबू अपने एक मित्र के

साथ आए हैं। किन्तु उस समय वे लोग पथरियाघट्टे की ओर चले गए थे। उसने अब पूछा, "उपेन्द्र बाबू, सतीश बाबू कौन हैं? मैंने तो उन्हें नहीं देखा।"

उपेन्द्र ने कहा, "कल जब हम लोग आए, तब आप उपस्थित नहीं थीं। सतीश मेरा बचपन का मित्र है, यद्यपि आयु में बहुत छोटा—यह लो, आ ही गया।"

सतीश ने घर में पैर रखा। वाह! क्या ही सुन्दर, सुग़ठित शरीर है—उस समय भी उसके माथे पर पसीने की बूंद झलक रही थी। सुन्दर, गोरे चेहरे पर व्यायाम के कारण एक हल्की लालिमा की झलक थी। उसे और भी सुन्दर बना रही थी वह। पल भर सरोजिनी ने देखा और आँखें झुका लीं।

ज्योतिष ने कहा, "नौकर कह रहा था, आप कुश्ती लड़ रहे थे, कुश्ती लड़िए या चाहे जो कुछ कीजिए, आपकी देह देखकर मुझमें ईर्ष्या होती है, शायद मेरे जैसे चार-पाँच आदमी भी आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकते।"

सतीश ने मुस्कराकर कहा, "बिना परीक्षा लिए इतना बड़ा प्रमाण-पत्र! दूसरे, केवल शारीरिक शक्ति का मूल्य ही क्या है? मुझमें और कोई शक्ति तो है नहीं।"

अन्तिम बात में व्यथा की झलक मालूम हुई। सरोजिनी ने प्यालों में चाय डालते हुए अनुमान किया, शायद सतीश बाबू की आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं है। ज्योतिष बाबू तो पहले ही उपेन्द्रनाथ से सब कहानी सुन चुके थे, वे चुप रहे। इसी बीच चाय तैयार हो गई। सतीश ने उस ओर आंख उठाकर भी न देखा और एकटक दीवार पर टँगे हुए एक चित्र की ओर देखता रहा।

ज्योतिष ने कहा, "आइए, सतीश बाबू, चाय तैयार है।"

सतीश निकट आकर, मुस्कराकर बोला, "आप लोग शुरू कीजिए, मैं स्नान किए बिना कुछ नहीं खाता।"

ज्योतिष, "वाह-वाह! मुझे तो मालूम ही न था, तो जाइए, देर न कीजिए। बोरा!..."

"ना-ना, आप शीघ्रता न करें। मैं समय पर स्नान कर लूंगा, दूसरे मुझे सवेरे कुछ खाने का अभ्यास भी नहीं है। हाँ, मेरा दोपहर का भोजन

मामूली आदमियों से कुछ अधिक होता है। चाय आदि व्यर्थ की चीजें खा-पीकर भूख को नष्ट करना मुझे अच्छा नहीं लगता। आप लोग चाय पीते रहें, तब तक मैं यह हारमोनियम लेकर दो भजन गाता हूँ।"

सरोजिनी गाने की बात सुनकर प्रसन्न हुई। सिर उठाकर सहसा बोल उठी, "हाँ, अवश्य गाइए।" लेकिन तत्काल ही झेंपकर सिर झुका लिया। उसको अपनी बात अपने ही कानों में असंगत-सी जँची।

ज्योतिष ने हँसकर कहा, "मेरी बहन को गाना मिल जाए तो और कुछ न चाहिए।"

"ना···ना···सतीश बाबू आप कुछ···"

उपेन्द्रनाथ बैठे-बैठे मन-ही-मन कुढ़ रहे थे। बोल उठे, "ना-ना, क्या? वह बिना स्नान किए कभी कुछ नहीं खाता।"

"हम उसकी मान-मनौती करते रहें और इधर चाय ठंडी हो जाए, यह मुझे पसन्द नहीं। सतीश भाई, तू अपना भजन-वजन समाप्त कर ले, मुझे और भी काम करने हैं।" इतना कहकर उन्होंने चाय का घूँट लिया।

ज्योतिष को उपेन्द्र की बात बहुत अच्छी लगी। वे मुस्कराने लगे।

सतीश पास ही एक कुर्सी पर बैठ गया। इसके बाद फिर गाने का उत्साह न रहा। सरोजिनी अनमनी होकर चाय डालने लगी।

उपेन्द्र ने चाय पीते हुए कहा, "कहीं भी इसके मारे मुझे शान्ति नहीं मिलती। ऐसी निराली तबियत का आदमी है कि कुछ-न-कुछ बखेड़ा खड़ा कर ही देता है। गनीमत समझो कि इसने सवेरे-सवेरे भजन गाने के बदले-बाँसुरी अलापने का प्रस्ताव नहीं किया।"

इस बात की सचाई का अनुभव किसी को न हुआ। सभी हँसी समझकर हँसने लगे।

इधर सतीश से चुपचाप बैठा न रहा गया। वह उठा और घूम-घूमकर दीवारों पर लगी हुई तस्वीरें देखने लगा।

सरोजिनी ने संध्या के बाद एक बार धीरे से उपेन्द्रनाथ से कहा, "सवेरे आपने गाना नहीं सुनने दिया, यह आपने बड़ा अन्याय किया।"

उपेन्द्रनाथ ने कहा, "अच्छा, इस समय उसकी कमी निकल सकती है, सतीश को आने दो।"

ज्योतिष ने कहा "हाँ-हाँ, इस सर्दी में बाहर निकलने को जी नहीं चाहता, कुछ गाना-बजाना हो तो बुरा क्या है?"

"पर सतीश बाबू कहाँ हैं, कहीं डाक्टरी करने तो नहीं गए?"

उपेन्द्रनाथ ने कहा, "हो सकता है। मैं समझता हूँ जान-पहचान वालों से मिलने गया होगा।"

सरोजिनी ने चकित होकर पूछा, "सतीश बाबू डाक्टर हैं?"

उपेन्द्र ने हँसकर कहा, "हाँ।"

ज्योतिष ने कहा, "ना उपेन्द्र, केवल स्कूल में पढ़ने से ही काम न चलेगा, किसी अच्छे होमियोपैथिक डाक्टर के साथ कुछ दिन रहे बिना व्यावहारिक ज्ञान नहीं होगा और ये भी तीसमार खाँ के समान लोगों की जान लेते फिरेंगे। तुम कहो तो मैं एक भलेमानस डाक्टर का साथ करा दे सकता हूँ। लेकिन दोनों की आपस में कहाँ तक पटरी बैठेगी, नहीं कह सकता। तुम जैसा सर्टिफिकेट दे रहे हो···।"

उपेन्द्र ने कहा, "वे होशियार होंगे, तो अवश्य पटरी बैठ जाएगी, नहीं तो सिर फूटने की नौबत आ सकती है।"

सरोजिनी चकित होकर देखने लगी।

ज्योतिष ने कहा, "ना, वे बहुत होशियार आदमी हैं।"

उपेन्द्र ने कहा, "तो ठीक है! उसे पहचानकर उसके सारे गुण-दोषों को समझकर जो उसके मन को वश में कर लेगा, उसे बड़ी ही अच्छी चीज मिलेगी लेकिन उसके मन को वश में करना बड़ा ही कठिन है। यह नहीं कि जटिल या दुर्बोध है, बल्कि बड़ा सीधा, बड़ा साफ है। मेरे विचार से मन की इस सफाई के कारण ही लोग उसे समझने में गलती कर जाते हैं। मन न मिलने पर भी हम जहाँ सभ्यता की दुहाई देते हैं और शिष्टभाव से, मन में मैल रखके चुपचाप चले जाते हैं, वहाँ वह हाथापाई कर, पूर्णतः निपटारा करके ही आता है। मन को भारी करके नहीं आता। मैं बचपन से उसे जानता हूँ, कि उसके मुँह से एक बात निकलती हो और मन कुछ और ही हो। इसी से तो मेरा उस पर अगाध प्रेम है।"

ज्योतिष हँसने लगे। बोले, "इसी से तो तुम शिकायत करते थे कि दस आदमियों के बीच इसे लेकर जाना-आना आफत है।"

उपेन्द्रनाथ का मन तब ज्योतिष की ओर नहीं था। इसी से उनकी बातें कानों में पहुँचने पर भी हृदय में न पहुँचीं। बाल बन्धु के विरुद्ध कल रात का व्यवहार और कठोर भाषण उन्हें भीतर-ही-भीतर मसोस रहा था, इसीलिए बातों-ही-बातों में उनका मन पिछले दिन की स्मृति के एक अत्यंत गूढ़ प्रदेश में प्रवेश कर गया था। किशोरावस्था के छोटे-बड़े झगड़ों में दूसरे मुहल्ले के समान या असमान आयु वालों को हाथापाई, मार-पीट, तर्क-वितर्क तथा और भी कितनी ही कठिन परिस्थितियों के समय सतीश अपना हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ शरीर लेकर उनका साथ दिया करता था। इन्हीं सब स्मृतियों के बीच में आकर उनका हृदय अनुतप्त हो उठा।

जब उपेन्द्रनाथ ने कहा, "इसीलिए तो मेरा उस पर इतना प्रेम है।" तब ज्योतिष और सरोजिनी ने चकित नेत्रों से उनकी ओर देखा। इस असम्बद्ध बात का ठीक-ठीक वे दोनों अर्थ न समझ सके। पर दूसरे प्रश्न का भी समय न रहा। चुपचाप पर्दा हटाकर सतीश ने भीतर प्रवेश किया।

पहले ही सरोजिनी की दृष्टि उस पर पड़ी। बड़ी प्रसन्नता से स्वागत करके बोली, "बड़ा अच्छा हुआ सतीश बाबू आ गए।"

सतीश ने चुपके से उसकी ओर देख मुस्कराकर कहा, "मालूम होता है मेरी ही बातें हो रही थीं। उपेन्द्र दा मुझे अब किसी के सामने मुँह दिखाने योग्य न छोड़ेंगे!" पास पड़ी एक गद्दीदार आराम-कुर्सी पर वह बैठने जा रहा था कि उपेन्द्रनाथ ने उँगली से हारमोनियम दिखाकर कहा, "जरा वहाँ, इस समय गाना-बजाना न हो सकेगा?"

सतीश बताये हुए स्थान पर बैठकर बोला, "भैया, इस समय तो गाना न हो सकेगा, यह तो मेरे बाँसुरी बजाने का समय है।"

उस रात को कुछ देर से सभा भंग होने के बाद खाट पर लेट सरोजिनी लम्बी साँस लेकर मन-ही-मन बोली, 'वे यदि हम लोगों के कोई अपने सगे होते, तो उन्हीं से सीखती।'

सरोजिनी को गाना सिखाने के लिए एक हिन्दुस्तानी प्रदेशीय उस्ताद जी नियुक्त थे। उनके स्थान पर सतीश को नियुक्त करने के लिए वह भाँति-भाँति के उपाय सोचती रही। न जाने उसे कब नींद आ गई, वह नहीं जान सकी।

चौदह

किरणमयी किवाड़ बन्द कर खड़ी हो गई। उपेन्द्र और सतीश के चले गए अँधेरे में उसकी आँखें हिंसक पशु के समान जलने लगीं। उसके जी में आ रहा था कि झपटकर किसी का कलेजा फाड़ डालूँ तो मुझे चैन पड़े।

पागल-की-सी चेष्टा करती हुई हाथ के दीपक को ऊँचा कर बोली, "आग लगा देने का उपाय होता, तो लगा देती। आग लगाकर जहाँ जी चाहता, चल देती। हाय-हाय करके, चीख-चिल्ला करके बुड्ढी भीतर ही जल मरती, तभी ठीक होता। मेरे साथ बैर बाँधने का अवसर ही न पाती।" इस जाड़े की रात में भी उसके गोरे गालों और माथे पर पसीने की बूंदें निकल आई थीं। हाथ से पोंछती हुई अचानक अपने आपको ही धिक्कार देकर बोल उठी; 'मैं निश्चय ही कह सकती हूँ कि यह सब उस अभागिन बुढ़िया का काम है। अपने लड़के के साथ मिलकर उसी ने ऐसी दशा उत्पन्न कर दी है।'

सतीश की बातें बिच्छू के डंक की भाँति जलाने लगीं। इन दोनों आदमियों ने कुछ बातें अवश्य सुनी हैं, यही ठीक प्रकार से समझ न सकने के कारण वह और भी छटपटाने लगी। उसको पति और सास दोनों ने ही मिलकर समझाया था कि उपेन के समान भला आदमी कोई नहीं है। उसके आ जाने पर फिर कष्ट न रहेगा। क्यों उसने विश्वास किया था? क्यों उसने अपने ही हाथ से पत्र लिखा था?

अँधेरे सीलदार आँगन में एक ओर खड़ी रहकर वह क्रोधित नारी इन लोगों को झूठे, षड्यन्त्रकारी, पैशाचिक स्वभाव के और न जाने क्या-क्या कहकर भी तृप्ति न पा सकी। क्रोध और हिंसा ने उसके हृदय में जो भयंकर तूफान उठा दिया था उसको जरा भी व्यक्त कर देने की भाषा भी जब उसे याद नहीं पड़ी। तब वह तन-मन से प्रार्थना करने लगी कि वह अर्धमृत प्राणी आज ही रात को समाप्त हो जाय।

दो दिन के पश्चात्।

सवेरे रसोईघर में बैठी किरण सब्जी काट रही थी। नौकरानी ने आकर खबर दी, "डाक्टर साहब आए हैं।"

किरण ने कहा, "उन्हें कह दे, माँ आज अच्छी हैं।"

दासी कुछ आश्चर्य में पड़ गई। कुछ देर तक देखती रहकर बोली, "वे उसी कमरे में बैठे हुए हैं।"

उसकी बात के विशेष अर्थ की ओर जरा भी ध्यान न देकर किरण ने सहज भाव से कहा, "उसकी दवा तो कोई खाता नहीं फिर भी वह क्यों आता हैं, मैं नहीं जानती। तू अपने काम पर जा, वह स्वयं ही चला जाएगा।"

इस डाक्टर की दवा काम नहीं आती। दासी के लिए यह कोई नई बात नहीं थी। किन्तु क्यों वह आता है, यह प्रश्न पूर्णतः नया था। वह आश्चर्य में पड़कर सोचने लगी, कल संध्या को मैं घर चली गई थी, इस बीच हठात् कौन-सी ऐसी घटना हो गई कि डाक्टर का इस मकान में आना तक अनावश्यक हो गया।

फिर भी साहस करके वह बोली, "अच्छा, मैं सब्जी काट देती हूँ, तुम एक बार हो जाओ न !"

किरणमयी अत्यन्त रूखे स्वर में बोली, "तू जा और अपना काम कर।"

दासी अत्यन्त आवश्यक उग्रता से एकदम सहम गई। इस घर में वह बिल्कुल ही पुरानी न होने पर भी नई नहीं थी। इसके पूर्व भी ऐसे अकारण रूखेपन का परिचय वह पा चुकी है, किन्तु ठीक इस प्रकार की बात स्मरण न कर सकी। कोई और समय होता तो वह भी शायद क्रोध करती, किन्तु आज उसने नहीं किया। अति आश्चर्य से मौन रह गई। थोड़ी देर चुप रहकर धीरे-धीरे उस कमरे के दरवाजे के पास जाकर बोली, "वे काम में लगी हुई हैं, इस समय आप जाएँ।"

डाक्टर पैरों के पास बैग रखकर उसी चौकी के पास बैठा हुआ था। बोला, "काम तो मुझे भी है।"

दासी ने कहा, "तो जाइए न बाबू !"

डाक्टर अवाक् रह गया, बोला, "एक बार जाकर कह दो। मुझे एक विशेष काम है।"

दासी ने कहा, "आप समझते क्यों नहीं बाबू ! मैंने बहुत कहा है, और अधिक न कह सकूँगी। आज आप जाइए।"

परन्तु डाक्टर पूर्ववत् बैठा रहा। लेकिन जाने का प्रस्ताव स्वयं ही करके खड़ा रहना भी कठिन हो गया।

दासी मुस्कराने लगी, बोली, "जाइए न !"

डाक्टर ने मुँह उठाकर क्रुद्ध होकर कहा, "तुम क्या समझती हो कि मैं जाना नहीं जानता ?"

"मैं क्या पागल हूँ कि समझूँगी कि आप जाना नहीं जानते। हाँ डाक्टर बाबू कितने ही रोगी आपकी प्रतीक्षा कर रहे होंगे, सुनूँ तो ?" और मुँह घुमाकर वह हँसने लगी।

डाक्टर ने क्रोधित हो पहले यही इच्छा की कि उसके मुँह पर थप्पड़ मारकर बन्द कर दे, किन्तु यह काम तो सम्भव नहीं था, केवल बोला, "तुम जाओ !"

"मैं कहाँ जाऊँगी ? मकान तो मेरा है, जाना होगा तो आपको ही जाना होगा !"

"मैं जा रहा हूँ।" ज्यों ही वह जाने को प्रस्तुत हुआ त्यों ही किरणमयी ने दोनों चौखटों पर हाथ रखकर मार्ग रोककर कहा, "जा रहे हो, किन्तु यह मानकर जाओ कि यही जाना अन्तिम जाना है।"

उसके कण्ठस्वर और चेहरे के अचानक परिवर्तन से डाक्टर भयभीत हो उठा। बोला, "अच्छी बात है, यही अन्तिम जाना है।"

किरणमयी ने कहा, "सचमुच ही अन्तिम जाना है। जबकि तुम आ गए हो, तब स्पष्ट रूप से सब जान जाओ। अच्छा, वहाँ उसी स्थान पर बैठ जाओ ! अब खोलकर कहती हूँ।" यह कहकर डाक्टर का बैग लेकर उसने स्वयं भूमि पर रख दिया और कुर्सी दिखाकर बोली, "रसोई बनानी है, समय नहीं है, संक्षेप में कहती हूँ।"

इसी समय दासी ने आकर सूचना दी, "दो बाबू आ रहे हैं। उसके साथ ही जूते की आवाज सुनकर किरणमयी भय से भयभीत हिरणी की भाँति दासी को जोर से ठेलकर कमरे से दौड़कर भाग गई। डाक्टर और नौकरानी आश्चर्य में पड़कर एक-दूसरे का मुँह देखने लगे।

थोड़ी ही देर के बाद जूतों की आवाज द्वार के पास आकर रुक गई।

डाक्टर ने देखा, दो अपरिचित सभ्य आदमी आए हैं। दोनों भले

आदमियों ने देखा, डाक्टर हैं, उनके कोट के पाकेट से हृदय-परीक्षा के चोगे ने अपनी गरदन बढ़ाकर परिचय दे दिया।

उपेन्द्र और सतीश ने देखा डाक्टर का चेहरा अत्यन्त सूखा है। दुर्घटना की आशंका करके पूछा, "आपने देखा कैसे हैं डाक्टर साहब ?"

डाक्टर चुप रहा। उसका चेहरा और भी काला हो गया।

उपेन्द्र ने और अधिक भयभीत होकर प्रश्न किया, "अब कैसे हैं ?"

डाक्टर ने तब भी बात नहीं कही। विह्वल की भाँति वह केवल देखता रहा।

दासी ने कहा, "आप जाइए न डाक्टर साहब, अभी तक खड़े क्यों हैं ?"

डाक्टर व्यस्त होकर बैग उठाकर बोला, "मैं जाता हूँ, मुझे बहुत काम है।" यह कहकर उपेन्द्र और सतीश के बीच से ही वह तेजी से नीचे उतर गया और उस महाजन का पदानुसरण करके दासी कहाँ चली गई, यह बात जानी भी नहीं गई।

उस सुनसान टूटे मकान के टूटे बरामदे में दिन के नौ बजे उपेन्द्र और सतीश चुपचाप आश्चर्य से एक दूसरे को देखने लगे।

सतीश कुछ देर बाद बोला, "उपेन्द्र भैया, हारान बाबू की माँ क्या पागल हैं ?"

उपेन्द्र बोले, "वह हारान भैया की माँ नहीं हैं और कोई है, सम्भवतः दासी है। किन्तु मैं सोचता हूँ, डाक्टर इस प्रकार क्यों चला गया ?"

सतीश बोला, "चोर की भाँति पकड़े जाने के भय से भाग गया।"

उपेन्द्र अनमने भाव से बोला, "यहाँ तो कोई भी दिखाई नहीं पड़ता। वही कमरा हारान भैया का है न ?"

सतीश बोला, "हाँ, चलो उसमें।"

किन्तु हठात् घुसने का साहस नहीं हुआ।

"मुझे भय लगता है, शायद कोई घटना घट गई है।"

सतीश बोला, "ऐसी बात होने से रोने-धोने के लिए आदमी जुट जाते।"

तभी दिखाई पड़ा कि किरणमयी उस ओर के बरामदे से घूमकर आ रही है। जान पड़ता था, मानो अभी-अभी वह रो रही थी। आँखें पोंछकर

चली आ रही है। कल दीपक के प्रकाश में जो मुँह सुन्दर दिखाई दे रहा था आज दिन के समय, सूर्य के प्रकाश में साफ समझ में आ गया, ऐसा सौन्दर्य और किसी दिन आँखों से दिखाई नहीं पड़ा था, ना जीवित और ना चित्रों में।

बहू ने कहा, "आज हम लोग प्रस्तुत नहीं थे। मैंने सोचा था 'आवेंगे' कह जाने पर भी शायद न आ सकेंगे।"

सतीश की ओर देखकर सहसा मुस्कराकर बोली, "बबुआजी भी हैं!"

आज सतीश ने सिर झुका लिया।

उपेन्द्र ने पूछा, "हारान भैया कैसे हैं?"

बहू ने उत्तर दिया, "वैसे ही हैं। चलिए, उस कमरे में चलें।"

हारान के कमरे में उनकी माँ अघोरमयी बिछौने के पास बैठी हुई थीं। उपेन्द्र के प्रणाम करते ही ऊँचे स्वर में रो पड़ी।

हारान थके स्वर से मना करके बोला, "चुप भी रहो, माँ!"

उपेन्द्र लज्जा से, दुःख से एक ओर बैठ गया।

सतीश इस प्रकार उस ओर देखकर मुँह को यथासाध्य भारी बनाकर उस काठ के सन्दूक पर जाकर बैठ गया।

बहू पल-भर खड़ी रहकर सतीश की ओर विद्युत् कटाक्ष फेंककर बाहर चली गई, मानो स्पष्ट धमका गई, 'तुम लोग यह काम अच्छा नहीं कर रहे हो।'

पन्द्रह

सतीश ने पूर्णतया तय कर लिया कि वह डाक्टरी पढ़ना नहीं छोड़ेगा।

दूसरे दिन संध्या समय किसी से भी कुछ न कहकर वह बिहारी को साथ लिए अपने पुराने मकान पर जा पहुँचा।

वह मकान उस समय भी खाली पड़ा था।

मकान मालिक से मिलकर उसने छः महीने का प्रबन्ध कर लिया और निकट ही के हिन्दू आश्रम में जाकर एक रसोइया ले आया और प्रसन्न

होकर बाहर निकल पड़ा ।

बिहारी से उसने कहा, "हम लोग कल ही चले आवेंगे, क्या कहते हो बिहारी ?"

बिहारी ने अपनी सम्मति प्रकट की ।

सतीश मार्ग में चलते-चलते बोला, "काम तो अच्छा नहीं हुआ बिहारी ! जो भी हो उसने मेरे लिए बहुत कुछ किया है, इसके सिवा माना जाए तो मेरे लिए ही उसका उस डेरे का काम छूट गया है । एक बार सूचना देनी चाहिए ।"

बिहारी समझ गया और चुप ही रहा ।

सतीश कहने लगा, "अरे कोई भी क्यों न हो, मार्ग का भिखारी होने पर भी दुःख में पड़ने पर उसकी खबर लेनी चाहिए, नहीं तो मनुष्य जन्म ही व्यर्थ है । किन्तु मैं उसके मकान के अन्दर न जाऊँगा—गली के अन्दर भी नहीं—मोड़ पर खड़ा रहूँगा, तू एक बार जाकर मालूम कर आना, कष्ट में पड़ी है या नहीं । कष्ट में तो अवश्य ही पड़ गई है—यह मैं अच्छी प्रकार समझ रहा हूँ, इसलिए किसी तरह कुछ दे आना चाहिए ।"

बिहारी चुपचाप पीछे चलने लगा ।

सतीश बोला, "किन्तु मुझसे यह सब बातें बतावेगी नहीं, फिर भी तुमसे कुछ भी न छिपावेगी । तू समझ गया बिहारी ?"

बिहारी ने फिर भी कोई बात नहीं कही ।

सावित्री के गली के मोड़ पर पहुँचकर सतीश खड़ा हो गया । बोला, "अधिक देर मत करना ।"

बिहारी ने गली में प्रवेश किया । सतीश आस-पास इधर-उधर टहलने लगा—दूर जाने का उसे साहस नहीं हुआ । पीछे मूर्ख बिहारी उसे न देखकर और कहीं चला न जाय ।

बिहारी दस मिनट बाद ही लौटकर बोला, "वह नहीं है ।"

सतीश ने व्यग्र होकर पूछा, "कब लौट आएगी ?"

बिहारी बोला, "वह अब नहीं आवेगी । दो महीने बीत रहे हैं, एक दिन भी नहीं आई ।"

सतीश गैस के खम्भे के सहारे खड़ा होकर नाराजगी से बोला, "झूठी

बात है। तेरे साथ छल किया गया है !"

बिहारी ने दृढ़ता से सिर हिलाकर कहा, "बाबू जी, यह बात नहीं है। सचमुच ही अब वह वहाँ नहीं आती, घर छोड़कर चली गई है।"

सतीश ने पूछा, "उसका सामान ?"

बिहारी ने बताया, "पड़ा है और वैसे सामान ही कौन-सा है कि जिसके लिए उसे बड़ा मोह होगा।"

सतीश ने झुँझलाकर कहा, "पर वह तो गरीब औरत ही है, जो कुछ भी सामान उसका था, उसकी क्या वह परवाह नहीं करती ! तू तो बना-बनाया मूर्ख है, किसी से सुनकर चला आया कि अब वह नहीं आएगी। भला बिहारी, यह कभी सम्भव है कि वह लापता हो जाए और कोई उसकी खोज तक न करे ? मैं पुलिस में रिपोर्ट करूँगा।"

बिहारी स्तब्ध हो खड़ा रहा।

सतीश ने कहा, "मोक्षदा क्या कहती है ? क्या उसे मालूम नहीं है ? वह जरूर जानती है, मैं अभी उसके पास जाता हूँ।"

बिहारी घबराकर बोला, "आप न जाइए बाबू साहब ?"

"क्यों न जाऊँ ? वे लोग छिपाते क्यों हैं ? क्या मैं किसी को खा जाऊँगा? मुझसे यह लुका-छिपी क्यों है ? मैं तुझसे कहे देता हूँ कि चाहे जैसे हो मैं उसका पता अवश्य ही लगाऊँगा।"

बिहारी डर गया। बोला, "इसमें उसकी मौसी का दोष नहीं है, बाबू-जी, सावित्री अपनी इच्छा से घर छोड़कर चली गई। झगड़ा करके चली गई है और किसी से कुछ कह भी नहीं गई है।"

सतीश ने धमकाया, "फिर कहता है, कुछ कह नहीं गई ? अवश्य कह गई है, अवश्य ही अपना पता बता गई है।"

बिहारी ने सिर हिलाकर कहा, "नहीं बता गई है। लेकिन है वह शहर में ही।"

"कहाँ ? किस जगह है ? गधे के समान चुपचाप देखता क्या है ? कहता क्यों नहीं कि क्या हुआ है ?"

बिहारी ने कुछ सोचकर कहा, "आपके मन में दुःख होगा। नहीं तो सभी जानते हैं—मैं भी जानता हूँ।"

सतीश अधीर होकर बोला, "कहता क्यों नहीं ? क्या जानता है ।"

बिहारी चुप रहा।

सतीश जोर से चीख उठा, "हरामजादे तेरे पैर पड़ता हूँ, जल्दी बता।"

बिहारी ने तुरन्त जमीन में सिर रखकर जूते की धूलि माथे पर लगा कर सिसकते हुए कहा, "बाबू, आपने मुझे नरक में ढकेल दिया । जरा आड़ में चलिए, कहता हूँ"—कहकर अँधेरी गली में जाकर पूछा, "क्या है ?"

बिहारी ने सूखे गले को गीला करके कहा, "सावित्री की मौसी समझती है कि वह आपके पास हैं । लेकिन मैं जानता हूँ कि यह बात नहीं है।"

सतीश अधीर होकर वोला, "तू बड़ा पंडित है, यह मैं भी जानता हूँ, आगे बता ।"

"सन्तोष कीजिए बाबू !" कहकर बिहारी एक बार और अच्छी तरह से गला साफ करके बोला, "मुझे पूरी आशा हो रही है कि···"

"क्या आशा हो रही है ?"

बिहारी ने विवश होकर कह डाला, "वह वहीं गई है, उन्हीं विपिन बाबू के पास···"

"किसके पास ? विपिन के···"

"हाँ, बाबू जी वहीं···अरे-अरे ! वहाँ न बैठिए, नहाना पड़ेगा । दुनिया भर के लोग वहाँ···"

सतीश ने उसकी बात सुनी-अनसुनी कर दी। उस ओर की दीवार पर पीठ लगा, सीधा हो सूखे कण्ठ से पूछा, "तब उसकी मौसी ने कैसे समझा कि वह मेरे पास है ?"

बिहारी ने कहा, "सावित्री ने उस दिन विपिन बाबू को अपमानित करके निकाल दिया । साफ शब्दों में कह दिया कि वह सतीश बाबू के सिवा और किसी के पास न जाएगी···घर के लोगों ने छिपकर यह झगड़ा सुना था ।"

सतीश उठ खड़ा हुआ । जैसे-तैसे होश जरा ठिकाने लाकर पूछा, "फिर तूने कैसे जाना कि वह विपिन बाबू के पास गई ?"

बिहारी कुछ न बोला ।

सतीश ने जोर से कहा, "बोलो !"

एक बार इधर-उधर बिहारी ने किया, सावित्री के सामने उसने पौरुष का जो अभिमान किया था, उसे भी याद किया। फिर एक बार थूक सटक कर बोल उठा, "मैं अपनी आँखों से देख आया हूँ।"

सतीश चुपचाप सुनने लगा। बिहारी बोला, "हम लोगों ने जिस दिन घर बदला था, उसके दूसरे दिन दोपहर को मैं आया था। उस समय विपिन बाबू सावित्री के बिस्तर पर पड़े हुए थे।"

सतीश ने बड़े जोर से धमकाकर कहा, "झूठ !"

बिहारी चौंक उठा, बोला, "ना बाबू जी, सच कहता हूँ।"

सतीश ने उसके चेहरे पर तीव्र दृष्टि डाल, कुछ देर चुप रहकर पूछा, "सावित्री कहाँ थी ?"

"सावित्री उसी कमरे में थी। बाहर निकल, चटाई बिछाकर उसने मुझे बैठाया। पूछने लगी, बाबू लोग अप्रसन्न हुए या नहीं ? हम लोगों ने डेरा क्यों बदला ? ये ही सब बातें।"

"उसके बाद ?"

"मैं खिसियाकर चला आया। उसी समय से वह उस बाबू के साथ चली गई।"

"इतने दिन क्यों नहीं कहा ?"

बिहारी ने कुछ उत्तर न दिया।

सतीश ने पूछा, "तूने अपनी आँखों से देखा है या किसी से सुना है ?"

"ना बाबू जी, मैंने अपनी आँखों से देखा है। अच्छी प्रकार आँखें खोलकर देखा है।"

"मेरे पैर छूकर कसम खा, अपनी आँखों से देखा है ? देख, यह याद रखना, ब्राह्मण के पैर छूता है !"

बिहारी ने तुरन्त झुककर सतीश के पैर छूकर कहा, "इस बात का स्मरण रात-दिन मेरे मन में बना रहता है।"

फिर कुछ देर चुप रहकर सतीश बोला, "अच्छा, अब तू घर जा। उपेन्द्र भैया से कहना कि आज रात को मैं भवानीपुर जाऊँगा, लौट न सकूँगा।"

बिहारी को विश्वास न हुआ, वह रोने लगा।

सतीश चकित होकर बोला, "यह क्या, तू रोता क्यों है ?"

बिहारी ने आँखें पोंछते हुए कहा, "बाबू जी, मैं आपके लड़के के समान हूँ, मुझसे कुछ भी न छुपाइए। मैं आपके साथ चलूँगा।"

सतीश ने पूछा, "क्यों ?"

बिहारी ने कहा, "बूढ़ा अवश्य हूँ, लेकिन जात का अहीर हूँ। एक लाठी हाथ में होने पर पाँच-छः का मुकाबला आसानी से कर सकता हूँ। मैं समय पर जूझ सकता हूँ और आवश्यकता पड़ने पर जान तक लड़ा सकता हूँ।"

सतीश ने शान्त भाव से कहा, "मैं क्या लड़ने जा रहा हूँ ?"

बिहारी बोला, "तो लौट जाऊँ ?"

"जा"—कहकर सतीश चला गया।

बिहारी आँखें पोंछता हुआ चला गया।

बिहारी के जाते ही सतीश सीधे मैदान की ओर तेजी से चल पड़ा। निश्चय नहीं था कि कहाँ जाएगा लेकिन उसे जान पड़ता था, मानो शीघ्र ही कहीं जाना होगा। इसे वह अच्छी तरह अनुभव कर रहा था कि उसके चेहरे पर भयंकर परिवर्तन हो गया है और वह परिवर्तन किसी परिचित को दिखाना उचित नहीं, क्योंकि उसे देखते ही सम्भव है, वह स्वयं भी डर जाए।

सुनसान मैदान। एक बेंच पड़ी हुई थी। सतीश उस पर बैठ गया। वहाँ की निर्जनता ने उसे बहुत शान्ति दी। उस पर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा है, यह उसने दृढ़ता के साथ मान लिया था। अँधेरे में पेड़ के नीचे बैठकर वह छुटकारा का उपाय खोजने लगा। पहले ही उसके मुँह से निकला—करना क्या चाहिए ? यह प्रश्न कुछ समय तक अर्थहीन प्रलाप के समान उसके कानों में चक्कर काटता रहा। अन्त में उत्तर मिला—कुछ भी नहीं किया जा सकता।

मन से पूछा, 'सावित्री ने ऐसा काम क्यों किया।'

उत्तर मिला, 'उसने ऐसा कुछ भी नहीं किया जिसके लिए उसके सिर नए सिरे से दोष मढ़ा जाए।'

प्रश्न, 'मेरे साथ ऐसा विश्वासघात क्यों किया ?'

उत्तर, 'पहले यह बताओ कि उसने तुम्हें विश्वास ही कौन-सा दिया था ?'

सतीश जान गया। सचमुच उसने कोई झूठी आशा नहीं बँधाई थी। एक दिन के लिए भी उसने सतीश के साथ धोखे-धड़ी का व्यवहार नहीं किया, कभी लोभ-लालच नहीं दिया बल्कि बार-बार सावधान किया है। हित-कामना की है और बहन से भी अधिक स्नेह किया है। उसने उस रात की बात स्मरण की। रोगी के प्रति दया और हित-कामना का भाव हृदय में होने पर भी जिस प्रकार वैद्य को निष्ठुर काम करना पड़ता है, उसी प्रकार सावित्री ने निष्ठुर होकर उसे घर से बाहर निकालकर उसकी रक्षा की थी। ऐसा कौन कर सकता था ? कौन अपनी छाती पर वज्र रोककर उसे बचा सकता था ?

सतीश की आँखें भर आईं, किन्तु उसका यह संशय किसी प्रकार दूर न हो सका कि इन प्रश्नोत्तरों में उससे कहीं कोई भूल अवश्य हो रही है।

उससे फिर प्रश्न किया, 'परन्तु मैंने तो उसे प्रेम की दृष्टि से देखा है।'

उत्तर मिला, 'क्यों देखा ? क्यों जान-बूझकर कीचड़ में फँसने गए ?'

प्रश्न किया, 'यह ज्ञान नहीं। कमल लेने जाने पर भी तो कीचड़ लगता है।'

उत्तर मिला, 'यह तो पुरानी बात है—अब काम में नहीं आती। कमल लेकर घर लौटते समय मनुष्य कीचड़ धो लेता है। पर तुम्हारा कमल क्या है और यह कीचड़ तुम कैसे धोकर घर जाते ?'

'मान लो, घर न लौटता ?'

उत्तर मिला, 'राम ! राम ! ऐसी बात मुख पर भी न लाना।'

फिर कुछ देर तक वह स्तब्ध हो तारों से भरे काले आकाश की ओर देखता रहा, फिर सहसा बोल उठा, 'मैंने तो उसकी आशा छोड़ ही रखी थी। उसे पाना भी नहीं चाहता, लेकिन उसने मेरा इस प्रकार अपमान क्यों किया ? एक बार भी कुछ पूछा क्यों नहीं ? किस दुःख से वह यह काम करने गई ? रुपयों के लोभ से किया है, यह बात तो किसी प्रकार ध्यान में

नहीं आती। विपिन जैसे अनाचारी को—शराबी को वह मन-ही-मन प्यार करती थी, यह मानने को हृदय साक्षी नहीं देता।

गंगा के ऊपर से आने वाली ठंडी हवा से सतीश को जाड़ा लगने लगा। ऊनी चादर से शरीर को अच्छी तरह ढककर वह आँखें बन्द कर बैंच पर लेट गया। लेटते ही उसके सामने सावित्री का मुख उज्ज्वल होकर खिल उठा। कहाँ ? पतिता होने का तो कोई भी चिह्न इस मुख पर नहीं है। गर्व से दीप्त, विवेक से शान्त, स्नेह से स्निग्ध, परिणत यौवन के बोझ से गंभीर साथ ही रस से चंचल—वह मुख, वह हँसी, वह दृष्टि, वह संयत परिहास, सबसे बढ़कर उसकी वह निस्वार्थ सेवा। एक साथ ये सव चीजें उसने अपने जीवन में कभी देखी नहीं थीं।

राख से ढँकी हुई आग के समान उसके आवरण को लेकर खिलवाड़ करने जाने पर जो आग भड़क उठी, उसकी ज्वाला से कैसे कहाँ भागकर वह जान बचाये ? जान बचाकर ही क्या करेगा ? उसकी आँखों से आँसुओं की धारा वह चली।

इन आँसुओं को उसने रोकना न चाहा—इन आँसुओं को पोंछने की भी उसे इच्छा न हुई। आँसुओं में इतनी मिठास है, इतनी सरसता है, इसका आज पहले-पहल अनुभव कर वह सुखी हुआ। जिसके कारण इतने बड़े सुख का आश्वादन जीवन में आज पहली बार करने का उसे अवसर मिला, उसके प्रति हाथ जोड़कर नक्षत्रभूषित दिगन्त विस्तृत आकाश की ओर सजल नेत्रों को स्थापित कर उसने बार-बार नमस्कार किया।

सतीश चाहे जैसा भी क्यों न हो, लेकिन इस बात पर वह पूर्ण विश्वास करता था कि भगवान् है, उन्हें कोई धोखा नहीं दे सकता, छोटे-बड़े सबको उसके सामने एक दिन उत्तर देना पड़ेगा। आँखें पोंछकर वह उठ बैठा, मन-ही-मन बोला, 'भगवान्, किसके हाथ तुम कब क्या भेज देते हो, यह कोई कह नहीं सकता। आज तुम्हारी ही कृपा से सावित्री दाता है, मैं भिक्षुक हूँ। अतएव वह भली है या बुरी, इसके निर्णय का भार और चाहे जिसे सौंपो पर भगवान् ! इस विचार का भार इस भिखारी पर न देना। मेरे हृदय से सम्पूर्ण राग-द्वेष दूर कर दो—जो व्यक्ति दाता के ही समान चुपचाप आँखों की ओट हो गया है, उसके प्रति मैं कृतघ्न न बनूं।'

फिर एक बार बेंच पर सतीश सो गया। किले की घड़ी में दो बज गए। उसके थके हुए नेत्र धीरे-धीरे मुँद गए। झपकियाँ लेते हुए उसने कहा, "ना, इस प्रकार भी नहीं। मैं कभी तुम्हारा विचार करने न बैठूंगा। आज से केवल प्रार्थना करूँगा कि अच्छी रहो, सुख में रहो।" इसके बाद वह सो गया।

उधर बैरिस्टर साहब के घर में सन्ध्या के बाद, बैठकखाने में सरोजिनी ज्योतिष, उपेन्द्रनाथ तथा और भी एक नवयुवक बैठा था। इनकी दाढ़ी-मूँछें घुटी हुई थीं—शरीर हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ था। इनका नाम शशांक मोहन है। ये भी विलायत हो आए हैं, अतः पूरे साहब हैं। थोड़े दिन से सरोजिनी की ओर झुके हैं और प्रेम प्रकट करने का यत्न पूरे रूप से करते हैं। वह यत्न कहाँ तक सफलता की ओर बढ़ रहा है, यह विधाता जानें।

आज सतीश की चर्चा चली थी। उपेन्द्र ने उसके असाधारण शारीरिक बल, अद्‌भुत साहस का परिचय देकर उसकी अपूर्व संगीत साधना का वर्णन करना शुरू किया। पास ही सोफे पर बैठी सरोजिनी बड़ी तन्मयता से वे बातें सुन रही थी।

इसी समय बिहारी ने बैठक में आकर सतीश के भवानीपुर चले जाने की सूचना दी।

कुछ विस्मत होकर उपेन्द्रनाथ ने पूछा, "वहाँ उसका कौन रहता है?"

बिहारी संक्षेप में 'मालूम नहीं' कहकर चला गया।

सब लोग सतीश की ही प्रतीक्षा कर रहे थे, इसलिए सभी लोग निराश हुए। सरोजिनी अब तक झुककर, हाथों पर गाल रखे बैठी थी। इस सूचना से वह सीधी हो बैठी। एक लम्बी साँस भरकर बोल उठी, "तो अब क्या होगा?"

ज्योतिष उसकी ओर देख प्रेमपूर्वक हँसे।

केवल शशांक मोहन निराश न हुए, बल्कि प्रसन्न होकर उन्होंने प्रस्ताव किया कि अब पतवार सरोजिनी के ही हाथ में दी जाये। संगीतसुधा का रसास्वादन करने में वे कितने पटु थे, यह वे स्वयं जानते थे।

सरोजिनी के आपत्ति प्रकट करते ही वे बोल उठे, "मैं तो कहता हूँ कि पुरुषों को गीत गाना ही अनुचित है। स्वभावतः उनका गला मोटा और

भारी होता है, अतएव वे चाहे जितनी भी उत्तम शिक्षा पाएँ, जितनी भी साधना करें, उनके गाने में वह लालित्य और माधुर्य आ ही नहीं सकता जो स्त्रियों के कण्ठ में होता है।"

किसी ने इस बात का प्रतिवाद नहीं किया। फिर भी सरोजिनी चुप न रह सकी। वह बोली, "आपको भले ही पुरुषकण्ठ में माधुर्य न मिलता हो, परन्तु स्वर का मोटा होना कोई दोष नहीं है। यदि यही बात होती तो हार्मोनियम और पियानो के शुरू के पर्दे मोटे और भारी क्यों बनते और फिर लोग ही क्यों उन्हें खरीदते ?"

शशांक मोहन के पास इस बात का उत्तर न था। फिर भी वे अपने गोरे मुँह को जरा लाल कर न मालूम क्या कहने जा रहे थे कि सरोजिनी एकाएक उठ खड़ी हुई, बोली, "माँ से कह आऊँ—वह भोजन की थाली लिए बैठी होंगी।"

उपेन्द्रनाथ ने चौंककर कहा, "ओ हो, मालूम होता है, उसका खाना-पीना माँजी के ही चौके में होता है।"

उपेन्द्रनाथ के कथन में आन्तरिक प्रेम के अलावा और कोई बात न थी और सतीश यदि उन्हें विशेष प्रिय न होता, तो मुँह से ऐसा शब्द निकाल भी न सकते, इस बात को सरोजिनी सम्पूर्ण रूप से समझ गई, हँसकर बोली, "यह आपकी जबरदस्ती है। उनकी रुचि यदि आपकी कुरुचि के साथ न मिले, तो दोष आपका है, उनका नहीं। अच्छा, माँ को कह आती हूँ।" कह कर सरोजिनी तेजी से अन्दर चली गई।

उसके जाते ही शशांक मोहन ने उपेन्द्रनाथ की ओर घूमकर कहा, "मेरी समझ में आपके मित्र महाशय सनातनी हैं।"

उपेन्द्रनाथ ने मुस्कराकर कहा, "ऐसा-वैसा नहीं, कट्टर सनातनी है। पूजा-पाठ भी करता है।"

सतीश बीच-बीच में छिपकर शराब पीता था, यह वे नहीं जानते थे। शायद स्वप्न में भी इस बात की कल्पना तक नहीं कर सकते थे।

शशांक मोहन ने पूछा, "वे करते क्या हैं ?"

उपेन्द्रनाथ, "कुछ भी नहीं और किसी को आशा भी नहीं है कि किसी दिन वह कुछ करेगा।"

इस संवाद से शशांक मोहन के मन पर से एक बोझ-सा उतर गया। प्रसन्न हो हँसकर बोले, "इसी पर?"

ज्योतिष अब तक चुप होकर सुन रहे थे।

उपेन्द्र को लक्ष्य करके बोले, "उपेन्द्र, मुझे यह बात ठीक न जँची। शारीरिक उत्कर्ष का क्या कुछ भी मूल्य नहीं है? इसके अलावा उनकी गानविद्या पर मैं एकदम मोहित हो गया हूँ। जो कुछ उन्होंने किया है, उसके योग्य सम्मान या आदर यदि हमारे देश में उन्हें न मिले तो निश्चय ही यह दुःख की बात है, पर इसमें दोष हम लोगों का ही है—उनका नहीं।

"जिसे मुकदमेंबाजी के कागजात की छानबीन न करनी पड़े, जिसे अटर्नी के साथ ले-दे और उठा-पटक न करनी पड़े, जिसे अफसरों की फटकार न सुननी पड़े, यदि वह भी इन ललित-कलाओं की ओर ध्यान न दे, तब तो यह संसार बिल्कुल नीरस दूकानदारी बन जाए। भाई, सच तो यह है कि मुझे तुम्हारे इन मित्र महोदय को देखकर ईर्ष्या होती है। हाँ, इनके पिता की आय कितनी है?"

इसी समय सरोजिनी ने चुपचाप कमरे में आकर अपने भाई की कुर्सी के सहारे खड़ी होकर पूछा, "किसकी भैया?"

ज्योतिष ने कहा, "सतीश के पिता की।"

उपेन्द्र ने कहा, "ठीक मालूम नहीं, पर मैं समझता हूँ कि दो लाख से कम न होगी।"

दोनों आँखें फाड़कर ज्योतिष बोल उठे, "दो लाख? तब तो राजा हैं!"

उपेन्द्रनाथ, "ना-ना, राजा नहीं—हाँ, एक पुराने बड़े जमींदार हैं। उस पर बुड्ढे ने अपने जीवन में बहुत बढ़ाया भी है।"

ज्योतिष कुर्सी पर लेट गये, एक लम्बी साँस लेकर बोले, "एकदम से सौभाग्यदेवी का वरद्-पुत्र ही है! स्वास्थ्य, शक्ति, रूप, ऐश्वर्य—मनुष्य जो कुछ चाहता है, सब एक साथ।"

उपेन्द्रनाथ हँसने लगे। फिर बोले, "एक भयंकर दोष भी है। दूसरे की विपत्ति में जान-बूझकर अपनी टाँग अड़ाना। इसी से भय लगता है कि

कहीं किसी की विपत्ति मोल लेकर जान न गंवा दे। इसके अलावा तुम जो कुछ कहते हो, सभी ठीक है।''

ज्योतिष सीधे बैठकर बोले, ''जान न खो बैठे.? इसका क्या मतलब ?''

उपेन्द्रनाथ ने कहा, ''पहले ऐसा कुछ काण्ड कर भी चुका है। क्रोध उसके शरीर में जितना ही अधिक है, प्राणों का मोह उतना ही कम है। इस कलियुग में रहकर भी जिसकी धारणा अन्याय, अत्याचार के सम्बन्ध में सतयुग की-सी होती है, और क्रुद्ध होने पर जिसे भले-बुरे का ज्ञान नहीं रहता, उसके जीवित रहने न रहने पर मैं पूरा भरोसा नहीं रखता। सह सकना भी एक प्रकार की शक्ति है। बिना बुलाए सहायता करने का लोभ सँभाल सकना भी कभी-कभी आवश्यक होता है, इन बातों को तो वह समझता ही नहीं है। वह मानो विलायत का पुराने जमाने का नाईट है, अब यहाँ बंगाल में आकर जन्मा है।''

क्षणभर चुप रह हँसकर ज्योतिष ने कहा, ''फिर भी सुनकर श्रद्धा होती है।''

उपेन्द्रनाथ ने कहा, ''और नहीं भी होती। संसार में रहकर बहुतेरी छोटी-मोटी चीजों की ओर से दृष्टि हटा लेनी पड़ती है, अभी तक उसने यह सीखा ही नहीं है। कभी सीख सकेगा या नहीं, पता नहीं। यदि न सीख सका तो अन्तिम फल अच्छा न होगा। न अपना और न उसके कुटुम्ब या इष्ट-मित्रों का।''

ज्योतिष ने कहा, ''तुम तो उसके अपने हो—मित्र हो, तुम्हीं क्यों नहीं सिखाते ?''

उपेन्द्रनाथ के मुँह से हँसी निकल पड़ी। बोले, ''मैं उसका मित्र अवश्य हूँ, लेकिन इस शिक्षा का भार मेरे जैसे मित्र पर नहीं है। जो सब मित्रों से बड़ा मित्र होगा, जो अन्य सभी इष्ट-मित्रों से बढ़कर अपना होगा, या तो वही उसे सीखा सकेगा अथवा वह सदा अशिक्षित ही रहेगा।''

सरोजिनी ने अब मुँह फेरकर जरा हँसी को छिपाने का प्रयत्न किया।

उपेन्द्रनाथ ने उकताकर कहा, ''सतीश की चर्चा आज यहीं तक। मुझे अब उठना पड़ेगा, दो पत्र लिखने हैं।''

ज्योतिष को भी जरूरी कागज-पत्र देखने थे, उन्हें बैठने का अवकाश न था। वे भी उठने को तैयार थे। लेकिन पहले सरोजिनी ही उठ खड़ी हुई। उपेन्द्रनाथ से वह कुछ कहना चाहती थी, पर कह न सकी।

किसी को विदाई का अभिवादन भी न किया। मौन अन्यमनस्क-सी हो, धीरे-धीरे बाहर चली गई। आज की सभा जैसी जमने की बात थी वैसी जम तो सकी ही नहीं, बल्कि भंग हुई, उससे भी कहीं बढ़कर बुरी तरह से।

उपेन्द्रनाथ न तो कछ जानते थे और न वे कुछ जान सके।

सोलह

अपूर्व मेधावी किरणमयी ने पति की बीमारी के दौरान उपेन्द्रनाथ के संग रहकर उन्हें पहचान लिया। इससे उसकी न केवल हानि की दुःखमयी आशंका ही निर्मूल हुई, बल्कि इस अपरिचित के लिए एक गम्भीर श्रद्धा के भाव से उसका हृदय सजल जलद का-सा बन गया। ऐसा आदमी उसने कभी देखा नहीं था। ऐसे आदमी की संगत में आने की किसी दिन उसने कल्पना भी न की थी। इस थोड़े समय के परिचय मात्र से उसने भविष्य का सारा सुख-दुःख इन्हीं के हाथों में निर्भय होकर सौंप दिया और निर्भय होकर भी निर्भर करना क्या वस्तु है, इस बात का ज्ञान होते ही उसके बँधे हुए प्राणों को मानो खुलकर मुक्त प्रकाश देखने का एक सुअवसर मिला।

उपेन्द्रनाथ, रात-दिन मृत्यु के किनारे पहुँचे हुए मित्र की सेवा करते रहे। इस सेवा का कुछ मूल्य न था। कारण, हारान के जीने की आशा बिल्कुल न थी, किन्तु इस सेवा ने किरणमयी की आँखों में अपने स्वामी की उन मुट्ठी-भर सूखी हड्डियों को भी मूल्यवान कर दिया। इस मरणासन्न शरीर पर ही वह बहुत मोहित हो उठी। उसके आचार-व्यवहारों में होने वाले इस परिवर्तन को मृत्यु के निकट पहुँचे हुए हारान बाबू ने भी देखा। बचपन में किरण पराये घर पाली-पोसी गई और बचपन में ही उससे भी अधिक पराये स्वामी के घर आई थी। सास अघोरमयी ने कभी उसको प्यार

नहीं किया, बल्कि जहाँ तक हो सका, उसे सताती रही। पति ने कभी उस पर प्रेम नहीं प्रकट किया। वे दिन में स्कूल में पढ़ाते और रात को स्वयं अध्ययन करते थे और अपनी स्त्री को भी पढ़ाया करते थे। विद्या-प्राप्ति के नशे ने उन्हें ऐसा दबा लिया था कि दोनों में गुरु-शिष्य के कठोर सम्बन्ध के सिवा पति-पत्नी के मधुर सम्वन्ध को विकसित होने या फूलने-फलने का कभी भी अवकाश न मिल सका।

इसी प्रकार वह परम सुन्दरी और तीक्ष्ण बुद्धि वाली स्त्री बालपन बिताकर परिपूर्ण यौवन के मध्य में पहुँची थी, इसी प्रकार संसार के सौंदर्य-माधुर्य से निर्वासित होकर शुष्क बन गई थी, और इसी प्रकार स्नेह और प्रेम से वंचित होकर ही वह नारी के श्रेष्ठ धर्म से हाथ धो लेने को तैयार हो बैठी थी।

अघोरमयी को सब कुछ ज्ञात था। वह भी समझती थी कि उसकी सुन्दर पतोहू आज-कल सतीत्व की मर्यादा को उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगी है। किन्तु पुत्र मृत्यु-शय्या पर पड़ा था, विकट दुःख के दिन निकट थे, शायद इसी से वह वधू के बेढंगे आचार-व्यवहारों की ओर से बहुत अंश में आँखें मूंद बैठी थी। जो डाक्टर हारान की चिकित्सा करता था, वह किस आशा से मूल्य लिए बिना दवा-दारू और पथ्य देता था और क्यों उसके घर का प्रायः आधा व्यय भी देता था, यह उससे छिपा न था, परन्तु बीमार लड़के की चिकित्सा के सामने और अपने कष्टों एवं अभावों के आगे किसी अन्याय को बड़े रूप से देखने का साहस उसमें न था, न शिक्षा ही थी। वैसे वह पतोहू को चाहती भी न थी। उसे यह विश्वास हो गया कि उपेन्द्र भी धीरे-धीरे इस जाल में फँस रहा है। उपेन्द्र के मुक्तहस्त होकर रुपये खर्च करने तथा निरन्तर सेवा करने के विषय में वह सोचती थी कि उपेन्द्र का उद्देश्य बाल-बन्धुत्व की सीमा को पार कर चुपके से एक और स्थान पर जड़ को फैला रहा है। पर इसमें उसे आपत्ति भी न थी। कल से उपेन्द्र क्यों नहीं आया—यही बात अघोरमयी अपने कमरे के बाहर बैठकर एक मैली-कुचैली फटी हुई रजाई ओढ़ें विचार कर रही थी।

शीतकाल का सूर्य उस समय भी डूबा न था।

इस घर के भीतरी भाग में अंधकार की छाया पड़ चुकी थी। सूर्य

भगवान् कब उगते और कब डूबते हैं, अच्छे दिनों में भी घर के लोग इसकी सूचना नहीं रखते, आजकल दुःख के दिनों में तो उसके साथ प्रायः सारा सम्बन्ध ही विच्छिन्न हो गया था।

अघोरमयी ने पुकारा, "बहू, दीया-बत्ती जलाकर जरा इधर तो आना, कुछ कहना है।"

उसी कमरे में किरणमयी काम कर रही थी। बोली, "माँ, अभी साँझ नहीं हुई, तुम्हारा बिस्तर बिछा आती हूँ।"

अघोरमयी ने कहा, "मेरा बिस्तर ? वह तो सोने के समय मैं स्वयं ही विछा लूंगी। ना-ना, तुम जाओ बहू दीये जला आओ, बैठो, जरा दम तो ले लो। दिन-रात परिश्रम करते-करते तुम्हारी देह आधी रह गई, उस ओर भी देखना चाहिए।" यह कह और एक लम्बी साँस भरकर वह चुप रही।

थोड़ी देर बाद जब बहू पास आकर बैठने लगी तो बोली, "पहले दीपक···"

बहू ने कुछ ऊबकर कहा, "माँ, तुम क्यों इतना घबरा रही हो ? साँझ होने में अब भी बहुत देर है।"

अघोरमयी ने प्रेम से कहा, "देर है तो होने दो, नीचे तो अँधेरा हो गया है, जरा दिन रहते ही सीढ़ी का दीपक जला देना ठीक है। शायद अभी उपेन्द्र आ जाए, कल से वह यहाँ नहीं आया। क्यों बहू, अभी तक तुमने हाथ-मुँह नहीं धोया, न बाल सँवारे ? देखती हूँ, अब तक तुमने कुछ भी नहीं किया, क्या कर रही थीं ?"

इस अचानक ममतानुरोध का आभास सास के स्वर में पाकर चकित बहू क्षण भर उसकी ओर देखती रही। जरा हँसकर बोली, "माँ···इस समय किस दिन हाथ-मुँह धोती और कपड़े बदलती हूँ ? अभी तो मेरा रसोईघर का काम भी खत्म नहीं हुआ। उसके पश्चात्···"

सास झुंझलाकर बोल उठी, "बाद का काम उसके बाद होगा" बहू बोली, "पहले तुम्हारे पास आकर बैठूंगी।"

अघोरमयी खीझ उठीं, "मेरे पास इस समय झूठ-मूठ बैठने की क्या आवश्यकता है, पहले काम देखना चाहिए कि बैठना। बहू, दिन-दिन तुम न जाने कैसी होती जा रही हो !"

उसकी स्नेहपूर्ण फटकार एकाएक तीव्र अपमान के रूप में बदल गई। किरणमयी के कानों में चुभ-सी गई।

उसने भी उत्तर दिया, "माँ, तुम्हीं लोगों ने तो मुझे ऐसा बनाया है। हर समय ऐसी उल्टी-पल्टी बातें करने से। वे समझ में भी तो नहीं आतीं। तुम्हारा तात्पर्य क्या है, साफ-साफ कहती क्यों नहीं।" कहकर वह तेजी से चली गई।

बहू के इस तरह जाने का तात्पर्य इस घर के सभी लोग जानते थे, अघोरमयी ने भी समझ लिया।

नीचे-ऊपर दीपक जलाकर जब किरणमयी अपनी सास की कोठरी में आई तब सास रो रही थी। उसके आँसू किसी भी थोड़े से कारण से उबल पड़ते थे।

किरणमयी ठिठककर खड़ी हो गई। बोली, "माँ, तुम्हारी राम नाम की माला ला दूँ?"

रजाई के कोने से आँख पोंछकर भरे हुए स्वर से बोली, "ला दो।"

वह दीवार पर टँगी हुई झोली उतारकर सास के हाथ में देने गई। सास ने झोली न लेकर बहू का हाथ पकड़ लिया और कहा, "जरा बैठो बेटी!"

उसका हाथ खींच, अपने पास बैठा, उसके मुँह और सिर पर हाथ-फेर दिया, ठुड्डी चूमी और बहुत देर तक स्तब्ध होकर रोने लगी। किरणमयी अटल भाव से बैठी हुई स्नेह का यह अभिनय देखती रही।

अघोरमयी ने कुछ देर बाद फिर एक बार चादर के कोने से आँख पोंछकर कहा, "शोक और दुःख से मैं पागल हो गई हूँ, मेरी जरा-जरा-सी बात पर तुम्हें इतना क्रोध न करना चाहिए!"

किरण ने अविचल भाव से कहा, "शोक और दुःख केवल तुम्हीं को तो नहीं है। मैं भी तो मनुष्य हूँ, जब तुम इसे भूल जाती हो, तभी मुझे दुःख होता है, नहीं तो हजार बातें कहने से भी क्रोध नहीं आता।"

अघोरमयी ने आँखें पोंछते हुए कहा, "यह क्या मैं नहीं जानती बेटी। लेकिन एक-एक कर मेरे सब चले गए, अब एक तुम्हीं मुझ अन्धी की लाठी हो, तुम्हीं मेरी बेटी या बेटा सब कुछ हो। हारान का शोक केवल तुम्हारा

मुँह देखकर ही सह सकूँगी, तुम्हें ही देखकर कलेजा पत्थर का कर सकूँगी।" इतना कह, वह फिर एक बार चादर आँखों में लगाकर रोने लगी लेकिन किरण इस कपट में अपने को न भूली।

वह मन-ही-मन जलकर शान्तिपूर्वक स्थिर भाव से वोली, "तुमने तो अपने लिए यह वात सोच रखी है, लेकिन माँ, मैं कैसे सहन करूँगी, इसकी तुम्हें कोई चिन्ता नहीं—और मैं यह भी कहती हूँ, अभी इन बातों की आवश्यकता ही क्या है? जब सचमुच वह बुरी घड़ी आ उपस्थित होगी, तब कलेजा कड़ा करने के लिए क्या समय की कमी रहेगी? पर अभी से ऐसा सोचना क्या ठीक है?"

वहू की बातें खूब मीठी न लगने पर भी उसमें कितना व्यंग्य छिपा हुआ था, अघोरमयी यह न जान सकी बल्कि बोली, "अब समय आने में देर ही क्या है बेटी? उपेन्द्र उस दिन जिस डाक्टर साहब को लाया था, वह भी अवस्था कुछ निराशाजनक ही बता गया। बहू, मैं तो केवल यही सोच रही हूँ कि उपेन्द्र यदि इस समय न आ पहुँचता, तो हम लोगों की कैसी दुर्दशा होती?"

बहू को चुपचाप सुनते देख, वह जरा उत्साहित होकर कहने लगी, "उसे बचपन से ही जानती हूँ। नोआखाली में तो हारान और उपेन्द्र दोनों ही भाइयों के समान ही मेरे पास आते-जाते थे, तभी से वह मुझे मौसी कहता है। जैसे इसके बाप बड़े उदार आदमी हैं, वैसे ही उनका यह लड़का भी बड़ा उदार है। उस दिन मुझे रोता देखकर बोला, 'मौसी, हारान भैया का छोटा भाई ही समझो, इससे अधिक मुझे कुछ नहीं कहना है।' मैंने कहा, 'बेटा, मुझे किसी तीर्थस्थान में रख दो, जिससे जितने दिन जीऊँ उतने दिन गंगा के किनारे ही रहूँ और अन्त में माता गंगा की गोद में जाकर अपने हारान के पास जा सकूँ'।" वह और अधिक न बोल सकी, व्याकुल होकर रोने लगी। बहू चुपचाप बैठी थी।

वह कुछ देर रोकर हृदय का बोझ हल्का कर अन्त में आँखें पोंछ गंभीर स्वर में बोली, "रह-रहकर मन में यही बात उठती है कि बहू, यदि उपेन्द्र न आता तो, ···बहू, नीचे कोई पुकार रहा है क्या?"

बहू ने कहा, "दासी नीचे बरतन माँज रही है, कोई आया होगा तो वह

खोल देगी।" सास ने व्यथित होकर कहा, "ना-ना बहू! तुम्हीं जाओ। मजदूरिन जब काम में लगी रहती है, तब वह किसी की कुछ सुनती नहीं है।"

किरण ने बिना किसी प्रकार का उद्वेग प्रकाशित किए धीरे से कहा, "माँ, मुझे भी काम है, भोजन बनाना···"

अचानक जलकर अघोरमयी बोली, "भोजन भागा नहीं जाता है बेटी, तुम कुछ भी नहीं समझती। जिनके बिना···"

किरण खड़ी होकर बोली, "मुझे समझाने की आवश्यकता नहीं है। सभी लोगों के चले जाने पर भी यदि हम लोगों के दिन कटे हैं, तो उपेन्द्र बाबू के बिना भी काम न रुकेगा।" कहकर वह रसोईघर की ओर चली गई।

अघोरमयी क्रोध से कोई बात न कह सकी और जब तक बहू आँख की ओट न हुई, तब तक उसकी दोनों आँखें मानो आग बरसाकर उसे ढकेलकर बिदा करती रहीं। इसके बाद वह बड़े क्रोध से दासी को बार-बार पुकारने लगी। उसकी भी आहट न मिली। वह शीत के भय से संध्या के पहले ही बड़ी झनझनाहट के साथ बर्तनों का माँजना-धोना समाप्त कर रही थी। उसे अघोरमयी की क्रोध भरी आवाज सुनाई न पड़ी।

अघोरमयी क्रुद्ध होकर स्वयं उठी। कमरे का दीपक हाथ में ले, बरामदे के पास आ चिल्लाकर बोली, "अरी, कान में डाट डाल लिया है क्या? सुनती नहीं उपेन्द्र बाबू घण्टे-भर से बाहर खड़े-खड़े चिल्ला रहे हैं।"

यह चिल्लाहट दासी ने सुनी और उपेन्द्र का नाम सुन झटपट गिरती-पड़ती दौड़कर किवाड़ खोल दिए। किन्तु कोई न था।

तब उसने बाहर सिर निकालकर अँधेरे में जितनी दूर दीख पड़ा, आँखें फाड़कर देखा, जब कोई न दिखाई पड़ा, तब लौटकर बोली, "ना माँजी, कोई भी तो नहीं है।"

दीपक हाथ में लिए अघोरमयी व्यथित होकर प्रतीक्षा कर रही थी। अविश्वास करके बोली, "ना कैसे? मैंने अपने कानों से उसकी आवाज सुनी है। तूने एक बार गली में उतरकर क्यों नहीं देखा?"

दासी ने कहा, "देखा तो पर कोई नहीं है।"

उपेन्द्र कल नहीं आया, क्या आज भी न आएगा ? इसी से झुँझलाकर अघोरमयी बोली, "तू जा, एक बार फिर अच्छी प्रकार देख आ, कोई है या नहीं ?"

अँधेरी गली में दासी जाना नहीं चाहती थी। उसने भी झुँझलाकर उत्तर दिया, "तुम भी कैसी बातें करती हो माँजी ? वे क्या आँख-मिचौली खेल रहे हैं कि अँधेरी गली में जाकर टटोलकर देखना होगा ?"

अघोरमयी अपने कमरे में जाकर चुपचाप बिस्तर पर पड़ रही। बीमार लड़के का हाल पूछने का भी उत्साह उसमें न था।

उसके मन में बार-बार यह बात उठने लगी—उपेन्द्र कल नहीं आया, आज भी नहीं आया। नाना प्रकार के सम्भव-असम्भव कारण सोचती रही पर उसके मन में एक बार भी न आया कि वह कलकत्ते का रहने वाला नहीं है, अन्यत्र उसके घर-द्वार, बाल-बच्चे हैं। वहाँ लौट जाना भी सम्भव है। उसके मन में अचानक ही विचार आया कि अप्रसन्न तो नहीं हो गया ? इस बात को मन में दुहराते ही उसका अन्तःकरण भय से भर गया। बहू के व्यवहार की बात के साथ मन-ही-मन अपनी इस नई आशंका को जोड़कर उसने कहा, "ठीक, यही बात है। बहू यदि अब···" वह पड़ी न रह सकी। रसोईघर की ओर चली।

किरणमयी जलते हुए चूल्हे की ओर दृष्टि किए चुप बैठी थी। जलती लकड़ियों की कुछ सफेद और कुछ लाल रोशनी उसके मुँह पर पड़ रही थी। सिर पर कपड़ा न था, आज उसने बाल भी नहीं बाँधे थे। बिखरे बालों को जैसे-तैसे लपेट लिया था, आँचल लटक रहा था।

अघोरमयी द्वार के सामने चुपचाप खड़ी रही।

आज जो वस्तु उसकी आँखों के आगे दिखाई दी, उसे सम्पूर्ण रूप से हृदय में बिठा लेने की भी शक्ति उसमें न थी। जिस शान्त मुखड़े पर आग की दीप्ति विचित्र तरंगों की भाँति थिरक रही थी, वह उसके तमाम ज्ञान के बाहर की वस्तु थी। इस मुखड़े में कोई दोष है या नहीं, इसके विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता। निष्कलंक-निर्दोष कहने से भी उस मुखड़े का ठीक-ठीक वर्णन नहीं होता। वह मुखड़ा बड़ा ही सुन्दर है, ऐसा कहने से भी जी नहीं भरता।

यह तो प्रत्यक्ष आश्चर्य है ! इसे पहले कभी नहीं देखा। यह अपूर्व है ! वड़ी देर तक देखने के बाद लम्बी साँस भरकर मन-ही-मन बोली, 'आहा ! यह क्या मनुष्य का मुखड़ा है ?'

सास के शब्द से वहू चौंक उठी। देखा, सास खड़ी है। धीरे से सिर का कपड़ा सँभालकर बोली, "माँ, तुम यहाँ क्यों आई हो ?"

अपनी बहू के मुँह से ऐसा शान्त, ऐसा करुण कण्ठस्वर उसने कभी नहीं सुना था। झट से बोली, "बेटी, तुम अकेली भोजन बना रही हो, इसी से एक बार देखने आ गई।"

उसकी ओर एक पीढ़ा बढ़ा दिया वहू ने और चूल्हे की ओर दृष्टि किए चुप साधे बैठी रही। उसके मन में फिर झुँझलाहट ने सिर उठाया। गन्ध जैसे वायु के सहारे फूल के बाहर आती है, वायु के झकोरे से उड़ जाती है, ठीक उसी प्रकार किरणमयी का उस समय का मनोभाव सास के अचानक आने से क्षण भर में बाहर आकर कपट स्नेह की आँधी से उड़ गया। इसमें सच्चापन, नहीं, केवल कपट है, इस विषय में उसे जरा भी सन्देह नहीं रह गया, पर व्यर्थ की वात बढ़ाकर लड़ना-झगड़ना अब उसे अच्छा नहीं लगता था, इससे वह ऊब-सी गई थी—थक गई थी।

अघोरमयी ने कुछ देर चुप रहकर कहा, "दासी को यहाँ भेजती जाऊँ ?"

किरणमयी ने अपने अन्दर उठे हुए विद्रोह को दबाकर शान्त भाव से कहा, "क्या आवश्यकता है माँ ! मैं नित्य ही अकेली रहती हूँ। कुछ भय नहीं लगता बल्कि वे वहाँ अकेले हैं—कोई उनके पास जाकर बैठता तो अच्छा होता !"

बीमार लड़के की चिन्ता से माँ आहत होकर बोली, "हाँ, ठीक है, मैं जाती हूँ बेटी ! तुम भी जल्दी ही काम समाप्त करके चली आओ !"

सत्रह

इसी बीच में उपेन्द्र कलकत्ते से घर लौट गया था। सतीश भी केवल

एक ही दिन उपेन्द्र के साथ हारान को देखने आया था, फिर नहीं आया। वह अपनी चोट से अलग छटपटा रहा था। उपेन्द्रनाथ ने भी उसका मनोभाव और इस घर में आने की अरुचि देखकर उसे आने के लिए नहीं कहा। वे अकेले ही दवा-दारू का तथा अन्य कामों का प्रबन्ध कर आते थे। उन्होंने, कलकत्ते से घर लौटने के दिन सतीश से कहा था, "कभी-कभी जाकर हारानचंद्र की सुध लेते रहना और मुझे उनके विषय में सूचित करते रहना।"

आज स्कूल से लौटते ही सतीश को उपेन्द्रनाथ का पत्र मिला। उन्होंने लिखा—"आशा है, तुम्हारी पढ़ाई चल रही होगी। कई दिनों से हारान भैया का समाचार नहीं मिला है, इससे चिन्ता हो रही है। यद्यपि मैं समझता हूँ, समाचार देने की वैसी कोई खास बात न होने के कारण ही तुमने सूचना नहीं दी, तथापि उनकी चिकित्सा ठीक हो रही है या नहीं, यह अवश्य लिखना।"

सतीश की पीठ पर मानो कोड़ा पड़ा। उसने एक दिन भी जाकर हारान की सुध न ली। इस बीच में न मालूम वहाँ क्या हो चुका हो! अपनी लापरवाही के कारण वह घबरा उठा। शीघ्रता से नीचे उतरा।

बिहारी जलपान ला रहा था। धक्के से उसके हाथ की तश्तरी और गिलास गिर पड़ा। सतीश ने घूमकर देखा तक नहीं। सड़क पर आकर एक खाली गाड़ी में चढ़ बैठा और तेजी से हाँकने की आज्ञा देकर मार्ग की ओर सतर्क होकर देखता रहा। उसे भय था कि कहीं वह गली भूलकर दूर न निकल जाए। बीस मिनट बाद जब वह गाड़ी से उतरकर उस छोटी गली में घुसा, तब भी दिन का प्रकाश था। पैरों के नीचे खुली नाली, चलने का मार्ग और सिर पर आकाश। ये सब अन्धकारों में मिलकर एकाकार नहीं हुए थे। तेजी से चलकर १३ नम्बर मकान के सामने आते ही किवाड़ खुल गए, मानो कोई आँखें बिछाए उसी का मार्ग देख रहा था। सतीश का अन्तःकरण काँप उठा। एकाएक भीतर जाने का उसे साहस नहीं हुआ।

किवाड़ की ओट में किरणमयी खड़ी थी। उसने अपना मुस्कराता हुआ मुखड़ा जरा बाहर निकालकर बड़े आदर से कहा, "आओ छोटे बाबू, आओ! वाह, ठिठक गए!"

फिर वही देवर का नाता? सतीश का चेहरा लज्जा से लाल हो गया,

किन्तु अपने को सँभालकर विनय सहित बोला, "मालूम होता है, आपने अब तक मुझे क्षमा नहीं किया।"

किरणमयी ने कहा, "ना, तुम तो क्षमा चाहते भी नहीं ! बिना चाहे, बिना माँगे क्या मैं जबरदस्ती क्षमा का तौक तुम्हारे गले में लटका देती ? इससे शायद तुम्हारी मान-हानि होती और तुम ऐसे सस्ते भी तो नहीं हो कि मैं अनायास तुम्हारी मान-हानि करूँ ?"

उसकी इस मीठी चुटकी और व्यंग्य में एक ऐसी गम्भीर कातरता की पुट थी कि सतीश तत्काल झुक गया और बड़ी नम्रता से बोल उठा, "कुछ भी मूल्य नहीं है भाभी, कोई मान-हानि न होगी, आप मुझे क्षमा करें।"

किरणमयी ने मुस्कराकर कहा, "ऐसी बहुत-सी बातें हैं देवर जी, क्षमा करते ही अन्त हो जाता है। आज तुम्हें क्षमा करने पर यदि फिर 'सतीश बाबू' कहकर सम्बोधन करना पड़े तो याद रखो, वह क्षमा तुम्हें कभी न मिलेगी। तुम्हें फँसा रखने की यह एक जंजीर तुमने स्वयं मेरे हाथ में पकड़ा दी है। उसे अपनी मीठी-मीठी बातों में भुलाकर मुझसे ले लोगे, ऐसी मूर्ख इस भाभी को न समझो।" यों कहकर उसने बड़ी अदा के साथ अपनी गर्दन हिलायी।

सतीश चौंक उठा। जंजीर से जकड़ने की बात उसे अच्छी न लगी। उसके मन ने कहा, 'कहीं सचमुच यह सुन्दर युवती अपनी सबल जंजीर में न जकड़ ले, सावधान !' सतीश वास्तव में अपनी रक्षा के लिए अपनी तमाम शक्तियों को केन्द्रीभूत करके प्रस्तुत हो गया। इस मकान में पैर रखते समय उसकी दृष्टि कर्त्तव्य-त्रुटि के धिक्कार से कुण्ठित और लज्जा से झुकी हुई थी, पर अब सहसा यह नई ठोकर खाकर वह आशंका और तीव्र हो उठी। उसका चेहरा सूखकर ऐसा हो गया कि किरणमयी ने विस्मित होकर पूछा, "क्या हुआ ? तुम्हारा मुँह यों सूख क्यों गया ? शायद तुमने अब तक कुछ जलपान नहीं किया है ? आओ ऊपर चलो, कुछ खा लो।"

सतीश मौन निमन्त्रण पूरा करने के लिए प्रस्तुत हो गया और इस हँसी-मजाक का कुछ अंश कोरा हास्य नहीं जान पड़ता, यह विचार करता हुआ इस रहस्यमयी सुन्दरी के पीछे-पीछे चल पड़ा।

दोनों ऊपर पहुँचे।

वह इधर-उधर देखकर बोली, "आज माँ दासी को साथ लेकर काली जी के दर्शन करने गई हैं। रसोईघर में बैठकर तुम मेरी पूरियाँ बेल देना, बेल तो सकोगे न?" इतना कहकर हँस पड़ी, बोली, "हुँः! तुम बेल सकोगे, यह तुम्हारी सूरत ही बता रही है, आओ।"

सतीश ने हृदय में होने वाले तर्क-वितर्क पर क्षणिक काबू पाकर पूछा, "भाभी, क्या मेरे चेहरे पर यह भी लिखा है कि मैं पूरियाँ बेल सकता हूँ या नहीं?"

किरणमयी ने कहा, "निःसन्देह, लेकिन उस लिखावट को पढ़ने की बुद्धि होनी चाहिए। उस रात को क्या मेरे चेहरे पर कुछ लिखा था, जिसे तुमने अनायास पढ़ लिया था?"

सतीश नत-मस्तक। रसोईघर में जाकर पहले इसी प्रकार की पैंतरे-बाजी होती रही। फिर दोनों मिल-जुलकर जब भोजन बनाने लग गए और जब कुछ सामान्य हो चला, तब किरणमयी ने पूछा, "तुम्हारी बहुतेरी बातें मैंने तुम्हारे उपेन्द्र भैया से सुनी हैं। अच्छा छोटे बाबू, वे शायद अब यहाँ नहीं हैं, घर चले गए?"

सतीश के 'हाँ' कहने पर किरणमयी ने फिर कहा, "मैं समझ गई थी कि वे यहाँ नहीं हैं, लेकिन माँ को विश्वास नहीं होता। वे कहती हैं उन्हें बिना बताए उपेन्द्र बाबू कभी घर न जाएँगे। जो हो, शायद उन्हें शीघ्रता में जाना पड़ा है।"

सतीश को इसका पता नहीं था। वह तो कुछ भी न जानता था। इसी बीच इन लोगों के कारण ही दोनों मित्रों में जरा मनमुटाव भी हो गया है, यह बात वह कहना नहीं चाहता था, अतः चुप रहा।

उपेन्द्र के बिना कुछ कहे-सुने चले जाने का कारण क्या हो सकता है, यह उसकी समझ में नहीं आया, किन्तु किरणमयी ने बात दबने न दी। बोली, "छोटे बाबू, तुम्हारे भैया का यह काम अच्छा नहीं हुआ। वे कहकर जाते तो न उनका कुछ बिगड़ता और न माँ ही इस प्रकार सोच-सोचकर मरतीं। मैंने माँ को लाख समझाया कि उपेन्द्र बाबू हमेशा यहाँ नहीं रहते, दूसरी जगह उनका घर है, इसके सिवा कोई कितने दिनों तक दूसरों के पीछे

पड़ा रह सकता है? किन्तु माँ मेरी एक नहीं मानतीं। माँ ही क्यों, बूढ़ा होते ही मनुष्य-मात्र किसी की कोई बात नहीं मानता, अपने स्वार्थ के सिवा उसे संसार में मानो और कुछ सूझता ही नहीं है।"

सतीश ने उस बात का स्पष्ट उत्तर न देकर कहा, "उपेन्द्र भैया इतने दिन यहाँ रह गए, यही विस्मय है। कहीं अधिक दिन रहने का उन्हें अभ्यास नहीं है। खासकर शादी के बाद से तो एक रात भी कभी बाहर नहीं रहते —हम लोग सिर पटककर रह जाते हैं। पहले सभी बातों में वे हम लोगों के साथ थे। हर काम में हमारे आगे-आगे रहते थे। अब उन्होंने एक-एक कर सब छोड़, घर का पल्ला पकड़ा है। कचहरी गए बिना काम नहीं चलता। मेरी समझ में; इसी से एक बार जाते हैं।"

बहू ने वाधा देखकर कहा, "बैठो छोटे बाबू, तुम्हारे खाने के लिए आसन-पानी ठीक कर दूँ। तुम खाते भी रहो और बातें भी करते रहो। क्यों, यही अच्छा होगा न?" आसन बिछा, थाली में भोजन की सामग्री परोसकर पास बैठ गई और बड़े आग्रह से बोली, "हाँ, फिर?"

सतीश ने एक कौर मुँह में डालकर कहा, "हाँ, तो एक बारात की बात सुनिए। हमारे उपेन्द्र भैया वर-वधू का जोड़ा मिलाने में बड़े उस्ताद हैं। उन्होंने कितनों की शादियाँ करायी हैं, इसका कुछ हिसाब नहीं। हमारे साथियों में से एक के विवाह का सारा आयोजन उपेन्द्र भैया ने अपने हाथों किया। परन्तु ऐन ब्याह की रात को ढूँढ़े न मिले। एकदम लापता! 'छोटी बहू की तबियत ठीक नहीं' का बहाना बनाकर वे किसी प्रकार घर से न निकले। हम सबने मिलकर कितना अनुरोध किया भाभी, किन्तु सब व्यर्थ। पत्थर का देवता होता तो पसीज जाता लेकिन उपेन्द्र भैया किसी प्रकार भी न पसीजे। अन्त में छोटी बहू के यह कहने पर कि 'मैं अच्छी हूँ, तुम जाओ' वे बोले कि 'तुम्हारे भले-बुरे का विचार करने का भार मुझपर है, तुम पर नहीं, तुम केवल चुप ही रहो'।"

किरणमयी चुपचाप बैठी सुनती रही। उसका सम्पूर्ण विगत जीवन मानो उसके हृदय की अँधेरी गुफा में उतरकर न जाने किस रत्न की खोज में उसकी दीवारों को खुरचता फिरने लगा, किन्तु सतीश कुछ भी न समझ सका। कौन-सी बात कहाँ चोट करती है, उसे इसका क्या पता? उसने

सिलसिला जारी रखा। उपेन्द्र की अनुपस्थिति से किसने कैसी निन्दा की, किसने क्या हँसी उड़ाई, किस प्रकार सबके साहस नष्ट हो गए, क्योंकर सारा मजा किरकिरा हो गया इत्यादि सारी बातें वह बताने लगा, पर उसकी बातें सुनता कौन था?

किरणमयी तो उस समय कहानी से बहुत दूर चली गई थी।

एकाएक सतीश ने हाथ रोका और बातों का सिलसिला भी। उसने पूछा, "आप सुनती हैं या कुछ सोचती हैं?"

चौंककर हँसती हुई किरणमयी बोली, "हाँ-हाँ, सुनती हूँ, लेकिन मेरा कहना यह है कि यदि कोई बीमार हो तो उसकी सेवा करना कुछ बुरा नहीं।"

सतीश ने आवेश में कहा, "सेवा करना तो उचित ही है, पर ज्यादती तो उसमें भी अच्छी नहीं होती। उस पर जब छोटी बहू को माता निकली थीं, तब उपेन्द्र भैया आठ-दस दिन तक उनके सिरहाने से न उठे। घर में इतने आदमी हैं, फिर उनको स्नान-भोजन बन्द करने की क्या आवश्यकता थी?"

किरणमयी चुपचाप देखती रही, कुछ देर तक उसके मुख की ओर। फिर बोली, "अच्छा छोटे बाबू, तुम्हारे उपेन्द्र भैया क्या अपनी बहू को बहुत प्यार करते हैं?"

सतीश ने कहा, "आवश्यकता से अधिक।"

कुछ देर चुप रहकर किरणमयी बोली, "छोटी बहू देखने में कैसी हैं?"

"बहुत सुन्दर हैं।"

किरणमयी ने मुस्कराकर कहा, "मेरी जैसी?"

सतीश ने सिर झुका लिया। कुछ देर के बाद सोचकर सिर उठाकर कहा, "क्या वास्तव में आप यह बात जानना चाहती हैं?"

"हाँ?"

सतीश ने कहा, "देखिए, मेरी बातों का कोई मूल्य नहीं, परन्तु यदि कुछ भी मूल्य हो, तो मैं कहूँगा कि मेरी समझ में आप जैसा रूप इस पृथ्वी पर भगवान् ने किसी और को दिया ही नहीं है।"

किरणमयी कुछ उत्तर देना चाहती थी कि तभी नीचे सास की पुकार सुनकर उठ खड़ी हुई। वह काली जी के दर्शन करके लौटी थीं।

सतीश जलपान कर ज्यों ही बाहर आया त्यों ही अघोरमयी सामने दिखाई पड़ी।

सतीश की ओर देखकर उसने पूछा, "बहू ! यह उपेन्द्र का भाई है न? वह कहाँ है ?"

किरणमयी ने बताया, "वे घर लौट गए।"

अघोरमयी ने कहा, "अच्छा।" कह अपने रोली और चन्दन से सुशोभित मुख पर ग्लानि की कालिख-सी पोतकर, उदास होकर अपने लड़के के कमरे में चली गई।

सतीश ने कहा, "भाभी, अब मैं जाऊँ ?"

किरणमयी ने अनमनी-सी होकर कहा, "अच्छा।"

सतीश दो-एक कदम जाकर ही वापस लौट आया, बोला "हाँ, उपेन्द्र भैया की चिट्ठी आई है। उन्होंने पूछा है कि हारान भैया की चिकित्सा ठीक प्रकार से हो रही है या नहीं ?"

किरणमयी ने कहा, "चिकित्सा बन्द है। जो डाक्टर देख रहा था उससे दिखाने की राय न हुई। अब किसकी दवा होनी चाहिए, इसका निश्चय किए बिना ही उपेन्द्र बाबू चले गए।"

सतीश विस्मित होकर बोल उठा, "यह क्या भाभी ? एकदम दवा-दारू बन्द करके बैठी हो, यह कैसी व्यवस्था है ?"

"बिना व्यवस्था किए ही वे चले गए। जहाँ तक मुझे स्मरण आता है, एक बार उन्होंने कहा था कि सतीश यहीं है, वही व्यवस्था करेगा, पर तुम भी तो नहीं आए। मैं कर ही क्या सकती थी ?"

सतीश कुछ देर स्तब्ध खड़ा रहकर बोला, "कल सुबह ही आऊँगा।" और वह तेजी से बाहर चला गया।

अठारह

सतीश के चले जाने पर बड़ी देर तक उस रात किरणमयी अँधेरे बरामदे में मौन बैठी रही, अन्त में उठकर रसोईघर में जाकर, रसोई चढ़ा-

कर फिर मन मारकर बैठी रही।

आज सतीश उसके हृदय में अनजाने में सुरबाला आदि अपरिचित नर-नारियों का दल लाकर यह जो एक अद्भुत नाटक का अपूर्ण अभिनय आरम्भ करके चला गया, शून्य कमरे में अकेली बैठकर उसको स्पष्ट रूप से देखने का लोभ एक ओर किरणमयी को जैसा प्रवल हो उठा।

दूसरी ओर कोई अनिश्चित आशंका उसके हाथ, पैर, नयनों की दृष्टि को उसी प्रकार बोझिल बनाने लगी। उसे ऐसा जान पड़ा मानो अँधेरी रात में भूत की कहानी की भाँति यह संस्मरण, उसको लगातार एक हाथ से खींचने और दूसरे हाथ से ठेलने लगा।

विचित्र स्वप्नजाल में पड़ी हुई वह जब अत्यन्त अभिभूत हो रही थी, उसी समय जूते की आवाज सुन चौंकी। दृष्टि उठाते ही उसने देखा, दरवाजे के बाहर ही डाक्टर अनंगमोहन खड़े हैं।

किरणमयी पल्लू को थोड़ा खींचकर उठ खड़ी हुई।

डाक्टर ने यह देखकर भौंहें तान लीं।

इसके पूर्व यह डाक्टर ठीक इसी स्थान पर अनेक बार आकर खड़े हुए हैं और उसके कर कमलों की बनी रसोई के लोभ के अतिथि बनने का आवेदन जताकर बार-बार हँसी-मजाक कर गए हैं। उसी पुरातन इतिहास की पुनरावृत्ति की कल्पना करके ही किरणमयी का मन खीझ उठा।

वह कठोर बनकर उसी की प्रतीक्षा करके खड़ी रही। लेकिन डाक्टर ने मजाक नहीं किया, क्रुद्ध-गम्भीर मुँह से कुछ देर तक चुप रहकर कहा, "दस-बारह दिन मुझे बाहर रहना पड़ा, इसलिए हारान बाबू के लिए मैं बहुत ही चिन्तित हो गया था, लेकिन आकर देख रहा हूँ चिन्ता का कुछ भी कारण नहीं था।"

किरणमयी ने गर्दन हिलाकर कहा, "ना, वे अच्छी तरह ही थे।"

"अच्छी तरह रहें, यही कामना है। अब तो मेरी कोई आवश्यकता है नहीं?"

किरणमयी ने इसके उत्तर में गर्दन हिलाकर कहा, "ना।"

डाक्टर ने कहा, "तुम लोगों को मेरी आवश्यकता न रहने पर भी मेरी आवश्यकता अभी तक समाप्त नहीं हुई है। यही बात कहने के लिए

मुझ इतनी दूर आना पड़ा है।"

किरणमयी ने मुँह न उठाकर ही धीरे-धीरे कहा, "अच्छी बात तो है, माँ अभी तक जाग रही हैं, उनसे कह देना आवश्यक है—मुझसे कहना व्यर्थ है।"

डाक्टर ने अत्यन्त गम्भीर होकर कहा, "मैं उनके पास से ही आ रहा हूँ। उनका भी कहना है, आवश्यकता नहीं है, आवश्यकता समाप्त हो गई है, यह मैं भी समझ गया हूँ, लेकिन डाक्टर की विदाई नामक एक बात है, उसको भूल जाने से काम नहीं चलता।"

किरणमयी मौन ही रही।

डाक्टर व्यंग्य से कहने लगे, "आज पाँच-छः महीने के बाद यह भार तुम ही लोगों अथवा तुम्हारी सास लेंगी, यह तुम लोगों की आपसी बात है। किन्तु जाओ यह देने से ही तो डाक्टर नहीं चला जाता किरण।"

डाक्टर के मुँह से अपना नाम सुनकर आज मानो उसको तीर की भाँति विंध गया। वह इस प्रकार सिहर उठी कि उस क्षीण प्रकाश में भी डाक्टर ने उसे देख लिया।

किरणमयी ने मधुर स्वर से पूछा, "क्या चाहते हैं आप, रुपया?"

डाक्टर ने हँसी का वहाना दिखाकर कहा, "आप क्यों कहती हो। यहाँ और कोई उपस्थित नहीं है, 'तुम' कहने से भी दोष नहीं होगा। लेकिन इतने दिनों तक मैं क्या माँगता रहा हूँ, सुनूँ? वह क्या रुपया था?"

किरणमयी का समूचा शरीर फिर काँप उठा।

डाक्टर बोले "रुपया नहीं चाहता, यह बात कहना बहुत कठिन है। अब तुमको जबकि उसका अभाव नहीं है, तब रुपया देकर ही विदा दो। मैं दोनों ही ओर से ठगा जाना नहीं चाहता। लेकिन तुमको इतने दिनों में मेरे मन की बात ज्ञात हो गई है, इसके लिए मैं तुमको धन्यवाद देता हूँ। आज अब मैं अधिक परेशान नहीं करूँगा। पूछता हूँ, कल एक बार आ सकता हूँ।"

यह मनुष्य भीतर-ही-भीतर किस प्रकार जल रहा था और यह सब उसका ही फेंका हुआ उत्तप्त भस्मावेष है इसे निश्चित समझकर भी किरणमयी ने शान्त दृढ़ स्वर से कहा, "ना। आप ठहरिए, मैं इसी समय ला

देती हूँ।" कह, पास का दरवाजा खोलकर वह शीघ्रता से चली गई।

सहसा डाक्टर भयभीत हो उठा। किरण को वे पहचानते थे। कहाँ क्या लाने के लिए गई है, हठात् इतनी रात को कैसा एक असम्भव काण्ड कर देगी? वह चोट खाकर गई है, लौटकर निर्दय प्रतिघात अवश्य करेगी। उसके सुनिश्चित प्रतिशोध की कठोरता की कल्पना कर अनंगमोहन भय से स्तम्भित हो रहा।

किरणमयी को लौट आने में देर नहीं लगी। उसने चुपचाप आँचल में बँधे हुए कुछ आभूषण डाक्टर के पैरों के निकट बिखेरकर धीरे-धीरे कहा, "यह लीजिए, आपका पावना कितना है, उसका हिसाब इतने दिनों के बाद करना व्यर्थ है, इतना समय भी मेरे पास नहीं है, धीरज भी न रहेगा—जो कुछ मेरे पास था, सब ही आपको लाकर मैंने दे दिया है, इसी को लेकर हमें मुक्ति दीजिए—आप जाइए!"

किरण ने फिर कहा, "देर क्यों कर रहे हैं? विश्वास कीजिए, मेरे पास और कुछ भी नहीं है। जो कुछ था, सब लाकर मैंने दे दिया है—रात हो रही है, अब आप विदा हो जाइए।"

अनंग भयग्रस्त होकर बोले, "मैंने तो तुम्हारे शरीर के गहने माँगे नहीं। केवल रुपया माँगा था। वह भी···"

किरण अत्यन्त उग्र भाव से बोली, "गहने भी रुपये ही हैं, यह बात समझने की आयु आपकी हो गई है। व्यर्थ ही बहाना करके क्यों झूठ-मूठ देर कर रहे हैं।"

इस बार अनंग जोर से सिर हिलाकर बोल उठे, "ना, मैं किसी प्रकार भी यह सब न ले सकूँगा।"

किरणमयी निकट ही बैठ गई थी। बिजली के समान तमककर बोली, "क्यों न ले सकेंगे? आप दया कर रहे हैं, किस पर? आपको जो कुछ मैंने दिया, उसे किसी प्रकार भी मैं वापस न ले सकूँगी, यह बात मैं निश्चित रूप से कहे देती हूँ।" एक क्षण मौन रहकर उसने कहा, "आप यदि न भी लेंगे तो कल यह सब ही गरीबों में बाँट दूँगी लेकिन घर में रखकर किसी प्रकार भी पति का अकल्याण न करूँगी।"—यह कहकर पैरों से उन सबको जरा ठेलकर उसने जोर से कहा, "लीजिए, उठाइए इन सबको!"

अन्तिम बात इतनी कड़ी सुनाई पड़ी कि हतबुद्धि अनंगमोहन झुककर उन सबको उठाने लगा।

क्षण-भर किरणमयी उस ओर ताकती रही, फिर अपनी उग्रता को सँभालकर घृणा के साथ उसने कहा, "ले जाइए, ये सब चिह्न इस मकान में जब तक रहेंगे, तब तक मेरे मुँह में अन्न न रुचेगा, न आँखों में नींद आएगी।"

डाक्टर सबको समेटकर उठ खड़ा हुआ। किरणमयी ने अधीर भाव से कहा, "रात तो बहुत हो गई!"

डाक्टर ने कहा, "जा रहा हूँ। लेकिन तुमने भी भूल की। ये गहने मैंने तो दिए नहीं, सब ही तुम्हारे अपने हैं। तो भी, क्यों मेरे न लेने से तुम गरीब-दुखियों में बाँट दोगी, यह मैं समझ न सका। मुझे तुम क्षमा करो किरण।"

किरणमयी धमकाकर बोली, "फिर मेरा नाम लेते हैं—हाँ, ये सब अवश्य मेरी ही वस्तुएँ हैं, लेकिन उन सबके मोह से ही मैंने आपसे सहायता ली थी। रात बहुत हो गई, डाक्टर साहब!"

डाक्टर ने अपने नाम का छपा एक कार्ड निकालकर कहा, "मैंरे मकान का यह ठिकाना···।"

"दीजिए!" कहकर किरणमयी ने हाथ बढ़ाकर ले लिया, और पीछे की ओर जाकर जलते हुए चूल्हे में उसे फेंककर कहा, "इससे अधिक मुझे आवश्यकता न पड़ेगी। आप अभी-अभी मुझसे क्षमा माँग रहे थे न? आपको पूर्णरूप से क्षमा कर सकूँगी, इसीलिए मैंने आपका सब ऋण, सब सम्बन्ध समाप्त कर डाला। किसी दिन किसी कारण से भी आपकी कोई बात मेरे मन में न आवे, जाते समय केवल यही बात आप कहते जाइए।" और किसी प्रकार के प्रश्नोत्तर की प्रतीक्षा न करके ही किवाड़ बन्द करके वह अपनी रसोई के स्थान पर वापस जाकर बैठ गई।

इस अवहेलना और लांछन ने पहले तो डाक्टर को गम्भीर आघात पहुँचाया, किन्तु दूसरे ही क्षण एक लज्जाजनक दुर्घटना की सम्भावना उनके मन में उठने के साथ ही वह भीतर बात क्या है, सुनने के लिए व्यग्र हो उठा। उसको प्रतीक्षा करने में आपत्ति नहीं थी और प्रतीक्षा करता ही रहा किन्तु

कोई भी लौटकर नहीं आया। तब खड़ा-खड़ा कितना क्या सोचकर चले जाने का विचार करके बैग उठाकर जब खड़ा हुआ और दृष्टि ऊपर उठाई तो देखा किरणमयी है।

डाक्टर ने अपने अभिमान को रोककर कहा, "जरा हटो, बड़ी देर हो गई और भी बहुत रोगी राह देख रहे हैं—माँजी अच्छी हैं न ?"

"अच्छी हैं" किरणमयी एक ओर हटकर खड़ी हो गई।

डाक्टर के पैरों की आहट जब उसके कानों के बाहर चली गई, तब उसने एक लम्बी साँस लेकर देखा, चूल्हा बुझ गया है। फूँककर उसे जला कर और एक लम्बी साँस लेकर वह फिर चुपचाप बैठ गई।

प्यास से गला सूख गया था, तो भी वह उठ न सकी। उसको ध्यान आने लगा, मानो बाहर के अन्धकार में तब भी कोई भय उसके लिए हाथ बढ़ाकर प्रतीक्षा कर रहा है। छाती के अन्दर ऐसा ही अशान्त हो उठा कि दोनों बाहुओं से जोर लगाकर उसने उसे दबा रखा।

विदाई के इस कार्य को एक दिन उसको पूरा करना ही पड़ेगा, यह बात वह निश्चय रूप से जानती थी। प्रयोजन आ पड़ने से उसने जिस पाप को अपने घर बुलाकर पाल-पोसकर बड़ा किया था, वह आज ही 'जाओ' कह देने से ही चला गया, असम्भव काम कैसे हो गया !

हठात् किवाड़ खुलने की आवाज से किरण ने चकित होकर देखा, दासी कह रही है, "चूल्हा बुझकर तो ठण्डा हो गया बहू ! रात भी कम नहीं हुई है।"

किरणमयी ने उसके पास जाकर चुपके-चुपके पूछा, "डाक्टर है या चला गया री ?"

हाथ के दीपक को तेज करते हुए वह बोली, "उसको गए लगभग दो घण्टे हो गए। लेकिन तुमसे कहे देती हूँ बहू जी···!" अचानक उसकी जीभ रुक गई। दीपक को ऊपर उठाकर आभूषणहीन बहू का सर्वांग बार-बार देखकर फर्श के ऊपर दीपक को रखकर वह बैठ गई और बोली, "यह सब कैसा काण्ड है बहू माँ !"

उन्नीस

दिवाकर के बड़े दुःख की रात्रि व्यतीत हो गई और प्रभात हो गया। कल प्रभात उसे गुप्त रूप से बी० ए० की परीक्षा में फेल होने की सूचना मिली थी और सन्ध्या को अपने ही विवाह के बारे में अपने ही कमरे में सामने खड़े रहकर उपेन भैया को प्रसन्न चित्त से, परम उत्साह के साथ भट्टाचार्य जी के साथ बातचीत करते सुनकर वास्तव में ही उसने निश्छल हृदय से अपनी मृत्यु की कामना की थी। सद्यः पुत्र खो देने वाली जननी जैसे दुःख से सो जाती है वैसे ही फिर जग भी उठती है। उस अभागिनी की तरह वह भी आज व्यथा पाकर नींद टूटने पर उठ गया। आँखें खोलकर उसने देखा, कमरे के पूरब की ओर से शीशे पर प्रकाश की झलक पड़ रही है। आज इस प्रकाश के साथ उसने रंचमात्र भी सम्बन्ध अनुभव नहीं किया। दिन की इन प्रथम किरणों को सम्मान के साथ उठकर प्रणाम किया जाता है, यह बात उसे याद ही नहीं पड़ी। धर्मशाला को पूर्ण उदासीन भाव से देखता हुआ बिस्तर पर ही पड़ा रहा। स्वच्छ शीशे के बाहर असीम नीलाकाश दिखाई पड़ रहा था। एकाएक उसके मन में यह विचार आया कि इस विराट् सृष्टि के किसी कोने में भी उसके लिए जरा-सा भी स्थान है या नहीं। कभी नहीं। सृष्टिकर्ता ने इतना सृजन किया है अवश्य लेकिन ऊपर, नीचे, आस-पास, जल में, सुई की नोक बराबर स्थान भी उसके लिए नहीं रखा है। उसकी माँ नहीं है, उसके बाप नहीं है, सत-सहस्र बन्धनों से जिसके साथ वह जकड़ा हुआ है, होश होने के बाद से जिसने उसको मातृ-स्नेह की भाँति आश्रय दे रखा है, वह भी उसका अपना नहीं है—यह उसके मामा का घर है। यह आश्रय उसकी जननी का नहीं है—विमाता का है।

दुःख की चिन्ताएँ जब क्रमशः जटिल और विस्तृत होती जा रही थीं, अचानक उपेन्द्र का स्वर सुनकर एक ही क्षण में वह सीधे मार्ग पर लौट आया।

वह झटपट उठ बैठा, खिड़की खोलकर मुँह बढ़ाकर उसने देखा, उपेन्द्र नौकर को कुछ उपदेश देकर बाहर चले गए। वे तो किसी ओर न देखकर सीधे चले गए, लेकिन दिवाकर ने अपनी उन आँखों में व्यथा का गीलापन

अनुभव करके मुँह घुमा लिया। उसको ज्ञात हुआ, मानो छोटे भैया के उन्नत ललाट पर कुछ सूर्य किरणें धक्का खाकर उसके नेत्रों पर आकर पछाड़ खाकर गिर पड़ीं।

वह फिर एक बार शय्या का आश्रय लेकर निर्जीव की भाँति आँखें बन्द करके लेट गया और चिन्ताओं ने उसी क्षण उसको घेर लिया।

आदत के अनुसार उसकी नींद प्रातःकाल में ही टूट गई थी लेकिन पिछली रात को उसको नींद नहीं आयी थी। दुःस्वप्न रूपी भूत-प्रेत का दल सारी रात मानो इस शरीर को लेकर खींचातानी करते रहने के बाद तुरन्त ही छोड़ गया है। उनकी छोड़ी हुई लम्बी साँस की भाप अभी तक कमरे के कोने में जमा होकर पड़ी हुई है, इसका अनुभव वह आँखें बन्द किए ही करने लगा। फिर फेल होने की बात याद आई। अनेक दुःख सहकर उसने पढ़ा-लिखा है पर सब ही व्यर्थ गया! आज यह समाचार सभी सुनेंगे। फिर जैसे धुआँ एक छोटे से सुराख से भीतर आकर सारे घर में भर जाता है, उसी प्रकार इस एकमात्र निष्फलता के छोटे द्वार के सहारे निराशा के घने अन्धकार में उसका मन एकदम डूब गया।

कोई आठ वजने का समय है। वह दोनों हाथों की मुट्ठी बाँधे उठ बैठा और बोला, 'ना, किसी प्रकार भी नहीं। छोटे भैया चाहे अप्रसन्न हों, भाभी चाहे दुःखी हों। किन्तु मैं किसी भी प्रकार विवाह न कर सकूँगा। जो गृहलक्ष्मी होगी, वह आप ही मेरे घर आएगी या कभी न आएगी। आने पर मैं उसको आदरपूर्वक रखूँगा, लेकिन उसे असम्मान के बीच मैं खींचकर नहीं लाऊँगा, इस संकल्प से मुझे कोई हटा नहीं सकेगा।'

धीरे-धीरे दिवाकर ने मकान के भीतर प्रवेश कर सुरबाला के कमरे के सामने खड़े हो पुकारा, "भाभी!"

भीतर से कोमल कण्ठ से उत्तर मिला, "भीतर आओ!"

दिवाकर भीतर गया। देखा, सुरबाला सिर नीचा किए आलमारी से सामान निकालकर सन्दूक में रख रही है, पूछा, "छोटे भैया देहात जाएँगे क्या?"

सुरबाला ने सिर नीचा किए ही कहा, "ना, कलकत्ते जाएँगे।"

फिर दिवाकर को कोई प्रश्न न सूझा। जो शक्ति उसको उसके बिस्तर

से इतनी दूर खींच लाई थी, वह ठीक अवसर पर लोप हो गई। वह सोचने लगा, किस प्रकार बात का श्रीगणेश किया जाए !

इसी समय बरामदे में जूते का शब्द सुन पड़ा, साथ ही उपेन्द्र ने पर्दा हटाकर भीतर पाँव रखा।

दिवाकर अत्यन्त संकुचित हो भागने की बजाय बैठ गया और कपड़ा खोलते-खोलते उपेन्द्र ने पूछा, "फेल कैसे हो गए ? रोज रात को एक-एक बजे तक जग-जगकर क्या करते रहे ?"

वह मौन रहा। दिवाकर सिर नीचा किये खड़ा रहा।

उपेन्द्र कहने लगे, "लगता है कि यहाँ रहकर तुम कुछ न कर सकोगे। जाओ, कलकत्ते जाकर पढ़ो।"

थोड़ी देर के बाद मुस्कराकर बोले, "भाभी के पास क्या दरबार करने आए थे ? विवाह नहीं करोगे, यही कहने आए थे न ?"

दिवाकर को यह सुनकर बड़ी शान्ति मिली। उसका सारा दुःख मानो एक साथ ही घुल गया। सहसा मुस्कराकर सिर उठाकर देखा।

यद्यपि उपेन्द्र के होंठों पर मुस्कराहट दिखाई पड़ी, पर उस मुस्कराहट का अर्थ कोई समझ न सका। वे फिर बोले, "अच्छा, अभी तो मन लगा कर पढ़ो, आगामी अगहन तक तुम्हें अवकाश है। वह अभी बहुत दूर है।" पत्नी की ओर देखकर बोले, "सतीश ने तार दिया है कि हारान बाबू की तबियत बहुत खराब है। मैं रात की ट्रेन की प्रतीक्षा न कर सकूँगा। अभी ग्यारह बजे की गाड़ी से जाऊँगा। जरा थर्मामीटर तो दो। देखूँ, ज्वर ने पीछा छोड़ा है या नहीं—अरे ! इतना बड़ा ट्रंक साथ में ले जाकर क्या करूँगा ? एक छोटी-सी पेटी दो।"

सुरबाला कपड़े सँभालकर ट्रंक में रख रही थी। उसने मृदु कण्ठ से कहा, "छोटी पेटी में हम दोनों के कपड़े न आएँगे। मैं भी साथ चलूँगी।"

उपेन्द्र चौंककर बोले, "तुम भी चलोगी ? क्या पागल हो गई हो ?"

सुरबाला ने अपना काम करते हुए कहा, "ना !" फिर दिवाकर की ओर मुड़कर बोली, "देवरजी, जरा जल्दी से स्नान कर खा-पी लो। तुम मेरे साथ चलोगे।"

दिवाकर ने आश्चर्य के साथ उपेन्द्र की ओर देखा। वे हँसते हुए बोले,

"क्या तू भी पागल हो गया ? हारान भैया बहुत बीमार हैं। लगता है, उन के दिन निकट आ गए। मैं उनका क्रिया-कर्म करने के लिए जाता हूँ। तुम लोग ऐसे अवसर पर चलकर क्या करोगे ? जाओ तुम अपना काम करो।"

इस बार सुरबाला ने ऊपर मुँह उठाया। दिवाकर की ओर देखकर शान्त तथा दृढ़ स्वर से कहा, "मैं कहती हूँ, तुम तैयार हो लो। तुम्हारे छोटे भैया को तीन रोज से ज्वर है, अब तक ज्वर नहीं गया। मैं भी साथ जाऊँगी, तुमको भी साथ चलना होगा। जाओ देरी मत करो !"

उपेन्द्र मन-ही-मन विस्मित हुए। उन्होंने इससे पहले सुरबाला को कभी इस प्रकार दिवाकर के साथ या घर के किसी आदमी के साथ बातें करते नहीं सुना था। वे यदि अपने कानों से न सुनते तो शायद विश्वास न कर सकते कि वह स्वच्छन्दता से एक नौजवान आदमी पर छोटे बच्चे के समान इस प्रकार आज्ञा चला सकती है। उन्होंने कुछ झल्लाकर कहा, "ऐसी विपत्ति के समय तुम लोग भी वहाँ चलकर क्यों विपत्ति बढ़ाना चाहते हो ? ना, तुम्हारा जाना न होगा।" उनकी अन्तिम बात में कुछ कठोरता थी।

सुरबाला उठकर खड़ी हो गई। पति की ओर देख दृढ़ स्वर से बोली, "तुम सबके सामने, सब बातों में मुझपर अप्रसन्न क्यों होते हो ? तुम बीमारी की दशा में यदि बाहर जाओगे तो मैं भी साथ जाऊँगी। नौ बज गए, खड़े मत रहो दिवाकर बाबू, जाओ !"

दिवाकर के आगे उपेन्द्र ने जो रूखी बात सुरबाला से कही, उसके लिए वे बहुत लज्जित हुए, बोले, "अप्रसन्न क्यों हूँगा ? तुम पर अप्रसन्न नहीं, किन्तु पिताजी सुनेंगे तो क्या कहेंगे ? सोचो, जाओ दिवाकर, तुम खा-पी लो।"

सुरबाला ने कहा, "बाबूजी मुझे जाने की आज्ञा दे चुके हैं।"

"इसी बीच उनसे भी आज्ञा ले चुकी हो ?"

"हाँ, जाती हूँ तुम्हारा दूध लिए आती हूँ।" कहकर सुरबाला बाहर चली गई।

उपेन्द्र अरगनी को ताककर दुपट्टा फेंक चित्त होकर लेटे रहे। सुरबाला साथ जाएगी ही, स्वामी के अस्वस्थ शरीर को आँखों की ओट न करेगी, इसमें कुछ भी संदेह न रहा और दिवाकर तैयार होने के लिए धीरे-धीरे बाहर की ओर चला गया।

उपेन्द्र सोचने लगे कि सुरबाला ने हठ कर एक नई समस्या पैदा कर दी। कलकत्ता पहुँचकर कहाँ जाकर ठहरेंगे? हारान भैया के यहाँ तो असंभव ही है। कारण, वहाँ केवल स्थानाभाव का ही प्रश्न नहीं है, किरणमयी का स्वामी मर रहा है और उसकी आँखों के आगे सुरबाला अपने स्वामी को जरा भी कष्ट सहते न देख सकेगी, रुकने का कुछ विचार न करेगी, शिष्टाशिष्ट आचरण की सीमा लाँघकर भी वह स्वामी के स्वास्थ्य की प्रतिक्षण रखवाली करती फिरेगी! मन में यह विचार उठते ही उनको लज्जा मालूम हुई।

बैरिस्टर मित्र ज्योतिषराय के घर उतरने पर बड़ी गड़बड़ी होगी। सुरबाला कट्टर हिन्दू है। इसी आयु में वह यथारीति जप-तप करती है। उस घर में वह अहिन्दू विचार आँखों से देखकर शायद पानी भी न पीएगी। उतने बड़े मकान में एकमात्र माँ के शुद्ध आचार-विचार से क्या होगा। इस के सिवा वहाँ सरोजिनी है। वह सुरबाला को सदा घेरे रहेगी। उसी के घर में रहकर उसे बारम्बार 'यह मत छूना, वह मत छूना' करते रहना न तो सुखकर होगा और न उचित ही। शेष रहा सतीश। उपेन्द्र ने सुना था कि वह अपने नए घर में अकेला ही रहता है। स्थान भी यथेष्ट है। विशेषतया वह भी जप-तप का प्रेमी सतीश और दिवाकर दोनों ही आचारवान् हैं। दोनों देवरों के साथ रहने से सुरबाला प्रसन्न ही रहेगी।

बस उपेन्द्र ने तुरन्त सतीश को तार दे दिया कि हम रवाना हो रहे हैं स्टेशन पहुँचो।

सतीश के शरीर और मन को विधाता ने सचमुच ही बड़े कड़े पदार्थ से बनाया था। इसी से उस दिन से मरणासन्न हारान के अभागे परिवार के सारे भार को जैसे उसने अपने कन्धों पर ले लिया था।

सावित्री और विपिन के इतिहास को भी वह वैसे ही सहन कर सका था।

बिहारी इस इतिहास को जानता था और उसके परमपूज्य गुरुदेव रसोइया महाराज। बिहारी समझता था कि महाराज सावित्री को अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखता है। इसी से कल दोपहर को भी महाराज का प्रसाद पा, छोटी-सी चिलम को उलटकर उसने कहा, "छिः! छिः!! देवता जी,

अन्त में उस छोकरी ने कितनी भद्दी भूल की। उसने मेरे बाबू को पहचाना नहीं, नहीं तो क्या सोना छोड़कर कभी गेरू को आँचल में बाँधती? आखिर विपिन बाबू के साथ चली ही गई!"

महाराज ने जरा हिल-डोलकर उत्तर दिया, "बिहारी, निभाई संन्यास में लिखा है—'मुनीनांच मतिभ्रम:।' नहीं तो सावित्री के समान औरत इतनी मूर्खता क्यों करती? किन्तु मैं यह भविष्यवाणी करता हूँ कि उसे एक-न-एक दिन अवश्य पछतावा होगा। सावित्री देखने-सुनने में बुरी न थी, मेरे पास उठने-बैठने से और उपदेश सुनने से उसने सभ्य मनुष्य के साथ बातें करने का भी तरीका सीख लिया था। जवान थी, सतीश बाबू की दृष्टि भी गड़ चुकी थी, यदि रह जाती तो अन्त भी अच्छा होता। किन्तु उसने मेरी सलाह तक भी न ली। दुनिया-भर के लोग संकट आ पड़ने पर जो मेरे पैरों पर नाक रगड़ते हैं, सो क्यों? अभी उस दिन रामू की माँ···"

रामू की माँ कौन थी और उसने महाराज जी से क्या और किस विषय पर सलाह ली थी, इत्यादि बात जानने की उत्कण्ठा बिहारी को न थी। वह बीच में ही बोल उठा, "देवता जी, चाहे जो कुछ कहो, बाबू हो तो मेरे मालिक के जैसा हो। कलकत्ते में मैंने बहुत से बड़े-बड़े आदमी देखे, किन्तु ऐसा जवान, ऐसा हृदय का सबल तो किसी को नहीं देखा। हाथी के दाँत, मर्द की बात, जो मुँह से निकली वह फिर लौटने को नहीं। उस दिन मैंने कह दिया था, 'बाबूजी, बस करें, रहने दें।' उस दिन से आज तक घृणा से एक दिन भी उन्होंने उसका नाम तक भी न लिया और पहले उसे कितना चाहते थे!—क्या कहते हो देवता?"

महाराज ने सिर हिलाकर उत्तर दिया, "यह बात तो मैंने पहले कह दी है। इसीसे तो इतनी खून-खराबियाँ होती हैं। जेल-फाँसी की नौबत आती है। एक बार आँख लड़ जाने पर तो फिर कहना ही क्या है, समझे बिहारी?"

बिहारी काँप उठा। उसका मुँह पीला पड़ गया। भयभीत होकर बोला, "नहीं-ना, देवता, मेरे बाबू वैसे आदमी नहीं हैं। लेकिन वह हैं कहाँ, कुछ जानते हो? इस बीच में कहीं घाट-बाट में···।"

महाराज जोर से हँस पड़े। बोले, "तू भी कैसा बज्रमूर्ख है बिहारी! अरे! वह क्या विपिन बाबू के यहाँ मजदूरी करने गई है, जो घाट-बाट में

दिखाई पड़ेगी। उसने स्वयं ही कितने नौकर-चाकर रखे होंगे। विश्वास न हो तो जाकर देख आ !"

बिहारी ने मुस्कराते हुए कहा, "मैं भी यही समझता था और सोचता था कि एक बार महाराज जी के पास जाऊँ, देखूँ, वे क्या कहते हैं। यही कहो देवता, आशीर्वाद दो कि वह राज-रानी होकर रहे, गाड़ी-पालकी पर चढ़कर घूमे ताकि इस जीवन में कभी चार आँखें होने का अवसर ही न आए।" यह कह, वह महाराज की चरणरज माथे चढ़ा, वहाँ से चल पड़ा।

इस बार बिहारी जब से कलकत्ते आया है, तब से वह इस बात से भयभीत रहता है कि कहीं संयोगवश देखा-देखी न हो जाए और इसी कारण सतीश के बाहर जाने से वापस लौटने तक वह इस भय से व्याकुल रहता है। पश्चिम जाकर घर के पुराने नौकर-चाकरों से सुन चुका था कि सतीश अत्यन्त क्रोधी है।

सावित्री ने जो काम किया है, उससे रक्तपात तक की नौबत आ सकती है, यह भी उससे छिपा न था। पर सावित्री दास-दासियों के साथ गाड़ी या मोटर पर बैठकर घूमने-फिरने को निकल सकती है, इस बात की कल्पना भी किसी दिन बिहारी ने नहीं की थी। आज महाराज की बातें सुनकर वह बहुत कुछ निश्चिन्त—निर्भय हो रहा। सावित्री पर उसे बड़ा क्रोध हो आया। वह शान्तिपूर्वक मार्ग तय करता हुआ प्रतिक्षण आशा करने लगा कि शायद किसी बड़ी-सी गाड़ी पर सावित्री जैसे सचमुच राजरानी के वेश में दिखाई दे।

बिहारी सावित्री को बड़ी ऊँची दृष्टि से देखता था। वह कौन है, कैसे रानी बन सकती है, यह सब अनावश्यक प्रश्न उसके मन में स्थान न पाते थे। सावित्री पर उसका एक अद्भुत प्रेम था—-एक श्रद्धा थी। वह व्यथित है, मेरे ही समान दूसरों की सेवा-टहल करती है। यह बात सोचकर भी मारे लज्जा और संकोच के उसका सिर झुक जाता था। इसलिए उस दिन की घटना अपनी आँखों देखकर नाराज भीतर-ही-भीतर बड़ा दुःख, पाकर ही बिहारी अत्यन्त नाराज हुआ था। किन्तु आज उसने ज्यों ही सुना कि सावित्री उसके मालिक के पथ का काँटा नहीं रही, त्यों ही उसके हृदय में यह शुभकामना जागी कि सावित्री सुखी हो, महारानी बनकर रहे।

बीस

हारान के जीवन-मरण की लड़ाई ने क्रमशः मानो एक करुणारसपूर्ण तमाशे का रूप धारण किया। मृत्यु भूखे साँप के समान उसे लगातार निगलना चाहती थी और वह विशाल बरसाती मेढ़क के समान दोनों पाँवों में उसका जबड़ा उलझाकर एक अनोखे कौशल से आत्मरक्षा कर रहा था। वस्तुतः उसका व्यथित प्राण किसी प्रकार भी समाप्त न होगा, ऐसा ही लग रहा था।

सतीश इस विपत्ति में सहायता करने आया था, किन्तु किरणमयी की पति-सेवा देखकर वह हतबुद्धि हो गया। स्त्रियों के लिए पति से बढ़कर कोई नहीं है, यह भी वह जानता था, किन्तु जिस कारण से ही क्यों न हो, सब कुछ जान-बूझकर इतना अथक परिश्रम कोई भी मनुष्य इस प्रकार प्राणों की बाजी लगाकर कर सकता है, इसकी तो वह कल्पना भी न कर सकता था।

यह कैसी आश्चर्यजनक सेवा है!

प्रतिदिन सारी रात एक ही दशा में बिस्तर के पास बैठकर जागते रहना, सारा दिन अथक परिश्रम करते रहना, फिर भी मुख पर थकावट या दुःख का चिह्न तक नहीं। मुख देखकर समझा नहीं जा सकता, कितनी बड़ी विपत्ति उसके सिर पर आसन्न हो चुकी है।

अपनी इस भाभी को सतीश सचमुच ही बड़ी वहन के समान प्रेम करने लगा था। उनकी यह अत्यन्त उद्वेगरहित पतिसेवा को देखकर अत्यन्त दुःख के साथ केवल यही सोचता था कि जिस कारण से भी हो, भाभी को यह आशा है कि उनके पति बच जाएँगे। अतएव, अन्त तक उनके मन की वेदना कैसी चोट पहुँचाएगी, इसकी कल्पना करके वह व्याकुल हो उठता था। और किस उपाय से इस अप्रिय सत्य की जानकारी करा दी जाय, यही उसके लिए प्रतिक्षण की चिन्ता का कारण हो उठा था।

ऐसा समय था, जब अपने विषय में सतीश को अटूट विश्वास था कि वह बुद्धिमान है। मानव-चरित्र समझने में विशेष अभिज्ञ है। लेकिन सावित्री से चोट खा लेने के बाद उसका वह अभिमान टूट गया था।

सावित्री उसको छोड़कर विपिन के पास चली गई, संसार में यह भी

जबकि सम्भव हो सका, तभी उसको पता चल गया कि वह मानव-चरित्र कुछ भी नहीं समझता। मनुष्य के मन के भीतर क्या है, क्या नहीं है, इसके बारे में जिसको जैसी रुचि हो, उसकी आलोचना करता हुआ घूमता रहे, लेकिन अब वह न करेगा। इस विषय की याद आने पर उसकी लज्जा और उसके दुःख का अन्त नहीं रहता कि अपनी इस बुद्धि के गर्व से ही उसने इस भाभी के विषय में बहुत-सी बातें सोची थीं और उपेन्द्र भैया को सिखाने गया था।

सतीश ने आज सवेरे उस घर में उपस्थित होकर देखा, किरणमयी वैसे ही प्रसन्न चेहरे से अकेली गृहकार्य कर रही है। दो-तीन दिनों से सास भी फिर बीमार पड़ गई। पिछली रात को ज्वर कुछ बढ़ जाने से अभी तक बिस्तर से उठी नहीं हैं।

किरणमयी का मुख देखकर किसी बात का अनुमान करना कठिन था। इसी से प्रतिदिन सतीश को सभी बातें पूछकर ही जान लेनी पड़ती थीं। आज प्रश्न करते ही उन्होंने काम छोड़कर मुँह ऊपर उठाकर क्षण-भर देखकर कहा, "बबुआ जी—अब देर करने की आवश्यकता नहीं है। अपने भैया को एक बार आ जाने के लिए लिख दो।"

सतीश ने डरकर पूछा, "क्यों, भाभी?"

किरणमयी के मुखमण्डल पर से मानो शरत् के बादल का टुकड़ा उड़ गया। इस चेहरे के साथ जिसका विशेष परिचय नहीं है, उसकी दृष्टि में यह छाया न पड़ेगी। एक लम्बी साँस लेकर वे बोलीं, "इस बार शायद कष्ट का अन्त हो गया है—तुम एक तार भेज दो।"

चुपचाप देखते रहकर सतीश क्षण-भर बाद बोला, "मैं जानता था भाभी। लेकिन यह सोचकर कि कहीं तुम डर न जाओ, मैंने कहने का साहस नहीं किया।"

किरणमयी ने सहज भाव से कहा, "भय की बात ही है। उनकी साँस का लक्षण परसों मुझे मालूम हो गया, कल रात को कुछ और बढ़ गई है। वह घटेगी नहीं, इसलिए एक बार उनको आ जाने को कहती हूँ।"

सतीश यह बात जानता नहीं था, चौंककर बोला, "इसका तो मुझे पता ही नहीं और तुमने बताया भी नहीं!"

किरणमयी ने कहा, "ना। इतनी धीरे-धीरे बढ़ती गई है कि दूसरों को पता लगने की बात ही नहीं। आज विशेष भय नहीं है। लेकिन विपत्ति पर विपत्ति, देखो बबुआ जी, कल से माँ की बीमारी ने भी टेढ़ा मार्ग पकड़ लिया है। अभी-अभी मैंने देखा, खूब ज्वर है, बीच-बीच में अनाप-सनाप भी वक रही हैं।"—यह कहकर वे जरा हँस पड़ीं। लेकिन उसकी यह हँसी देखने से रुलाई आती थी।

सतीश की आँखों में आँसू आ गए। उसने सजल कण्ठ से धीरे-धीरे कहा, "उपेन भैया आ जाएँ!"

किरणमयी ने कहा, "और एक समाचार सुनोगे बबुआ जी?"

सतीश मौन होकर देखता रहा।

किरणमयी बोली, "चौथे दिन तीसरे पहर को एक वकील की मुझे चिट्ठी मिली, उससे मालूम हुआ, दो साल पहले उन्होंने एक मित्र को अपनी जमानत पर तीन हजार रुपये कर्ज में दिलाए थे। मित्र व्यवसाय में असफल होकर प्रायः चार हजार रुपये इनके सिर पर चढ़ाकर, विष खाकर मर गए हैं। वह रुपया इस टूटे-फूटे मकान की ईंट-लकड़ी बेचकर चुकाया जा सकेगा या नहीं, इस बात को वकील साहब ने अवश्य जान लेना चाहा है।" यह कहकर वह उसी प्रकार हँस पड़ी।

सतीश सिर नीचे को झुकाकर भूमि की ओर निहारता रहा। उसने आँखें ऊपर उठाकर देखने का साहस नहीं किया, प्रश्न का उत्तर देने का भी प्रयत्न नहीं किया।

उपेन्द्र के पास तार भेजकर सतीश जब लौट आया, तब दिन के दस बजे थे। धीरे-धीरे वह रसोईघर में जा पहुँचा।

किरणमयी सास के लिए साबूदाना बना रही थी, मुँह ऊपर उठाकर बोली, "बैठो बबुआ जी।"

उनका स्वर जरा भारी था। सतीश ने ध्यान से देखा, आँखों में आँसू तो नहीं थे, लेकिन दोनों पलकें भीगी थीं। वह पास ही फर्श पर बैठ गया। आज किरणमयी ने आसन देने की बात भी नहीं उठाई। वह कहाँ बैठ गया, उसने क्या किया, शायद उन्होंने देखा ही नहीं। किसी साधारण बात में भी जरा-सी उनकी त्रुटि सतीश ने अब तक देखी नहीं थी। इतने दिनों से उनका

आना-जाना चल रहा है, इतना मेल-जोल बढ़ गया है पर एक दिन के लिए भी उसको भाभी के सरल व्यवहार में सौजन्य घनिष्टता का थोड़ा-सा भी अभाव, ढूंढ़ने पर नहीं मिला। इसीलिए आज इतनी-सी अवहेलना ने मानो उसकी आँखों में उँगली डालकर उसको दिखा दिया कि किसी भारी बोझ से भाभी का मन कष्टमय हो गया है।

दोनों ही चुप रहे।

एकाएक किरणमयी अपने आप ही तीव्र व्यंग्य करके हँस पड़ी। शायद इतनी देर तक वह इसी चिन्ता से मग्न थी। बोली, "अच्छा बताओ तो बबुआ जी, यमराज के साथ यह सब देना-पावना का झमेला मिट जाने के बाद, मेरे लिए नौकरी करना उचित होगा या भीख माँगना ?"

सतीश यह बात समझ गया। बोला, "उपेन भैया से पूछो, वे ही उत्तर देंगे।"

किरणमयी ने कहा, "पूछे बिना भी समझ रही हूँ, हो सकता है कि कृपा करके वे मुझे दो कौर खाने को देंगे, लेकिन दूसरे पर बोझ बनके रहना ही तो भीख समान हुआ।"

सतीश एकाएक इनका प्रतिवाद करने चला, लेकिन बात ढूंढ़ने पर भी नहीं मिली तो वह चुप रहकर उसका मुँह ताकने लगा।

उसके मन का भाव किरणमयी ने समझकर जरा हँसकर कहा, "मुँह खोलकर साफ कह देने से ही बात जरा कड़ी हो जाती है, यह मैं जानती हूँ बबुआ जी, लेकिन वैसे यह बात सत्य तो है !"

वह थोड़ी देर तक रुकी रहकर फिर बोली, "यह सोच मत करना कि तुम्हारे भैया को मैं पहचानती नहीं। मैंने उनको पहचान लिया है। मैं समझ गई हूँ, अनाथ को देना वे जानते हैं। लेकिन केवल देना ही तो नहीं है, लेना भी तो है। देकर मैंने कभी देखा नहीं है, लेकिन सारा जीवन दूसरे का मन प्रसन्न रखकर बिता सकना कम कठिन नहीं है।"

इस बार भी सतीश को खोजने पर कोई उत्तर नहीं मिला।

किरणमयी का उत्साह मानो बढ़ गया था। प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा किए बिना बोली, "इस दुनिया के साथ मेरा कारोबार अधिक दिनों का नहीं है, देना-पावना चुका लेने में अभी बहुत बाकी है। इस दीर्घ जीवन के हिसाब-

किताब में दोष, त्रुटि, भूल रह भी सकती है। तब वे भी क्या कह देंगे और मैं भी किस मुँह से हाथ रोपूँगी। उस समय मुझे फिर अपनी बुद्धि से आप ही चलना पड़ेगा।"

सतीश श्रद्धा और दुःख के साथ इतनी देर तक उसकी भावी आशंका की बातों को सुन रहा था लेकिन अन्तिम बात से मानो ठोकर खाकर चौंक उठा। उसने कहा, "यह कैसी बात है भाभी? दोष-त्रुटि तो होती ही है, सभी से होती है, पर तुमसे भूल-भ्रान्ति होगी क्यों?"

किरणमयी सतीश की व्याकुलता आश्चर्य से देखकर हँस पड़ी। एक क्षण में व्यग्र कण्ठस्वर को कोमल बनाकर उसने कहा, "कौन जाने बबुआ जी; मैं भी तो मनुष्य ही हूँ।"

सतीश अपनी भूल समझ गया। क्षण-भर की उत्तेजना से उसका मन कुत्सित अर्थ ग्रहण करने चला गया था, उसी लज्जा से सिर झुकाकर बोला, "मुझे क्षमा करो भाभी, मैं जैसा मूर्ख हूँ, वैसा ही अपवित्र भी।"

जरा-सा हँस पड़ी किरणमयी।

अचानक सतीश का अनुतप्त अपराधी मन उत्तेजित हो उठा। वह जोर लगाकर बोल उठा, "किन्तु केवल उपेन भैया की बात ही होगी क्यों? क्या वे ही सब कुछ हैं, मैं कोई नहीं? तुमको उनका आश्रय लेने न दूंगा।"

किरणमयी ने हँसकर कहा, "वह तो एक ही बात है बबुआ जी, तुम और तुम्हारे भैया तो पराये नहीं हो। तुम्हारे आश्रय में रहकर भी तो तुम्हारे मन को प्रसन्न रखकर तुमसे भीख लेनी पड़ेगी।"

सतीश बोला, "ना-ना लेनी पड़ेगी, इसका कारण यह है कि मैं हूँ तुम्हारा छोटा भाई, किन्तु उपेन भैया तुम्हारे पति के मित्र हैं। आवश्यकता पड़ेगी तो अपनी वहन का भार मैं ही लूंगा।"

"लेकिन यदि तुम्हारा मन प्रसन्न रखकर न चल सकूँ?"

"मैं भी तुम्हारा मन प्रसन्न रखकर न चलूंगा।'

किरणमयी ने प्रश्न किया, "यदि मैं कोई अपराध करूँ?"

सतीश ने उत्तर दिया, "तब तो भाई-बहन में झगड़ा होगा।"

किरणमयी ने फिर प्रश्न किया, "जीवन में यदि भूल-भ्रान्ति हो जाए तो उसे क्या मेरा छोटा भाई क्षमा कर सकेगा?"

सतीश क्षण-भर देखता रहा। फिर सहसा अत्यन्त व्यथित स्वर से बोला, "इस भूल-भ्रान्ति का अर्थ मैं समझ नहीं सकता भाभी ! छोटे भाई को अर्थ समझाकर कहना आवश्यक समझो तो बताओ, आवश्यक न समझो तो मत बताओ, लेकिन तुम्हारा अर्थ जो भी हो, अपराध मन में लाया भी नहीं जाता, वह भी यदि सम्भव हो जाय, तो भी मैं भूल न सकूँगा बहन कि मैं तुम्हारा छोटा भाई हूँ।"

उसको सावित्री की बात याद पड़ गई।

उसने कहा, "भाभी, आज अपने इस छोटे भाई के अहंकार को क्षमा करो, लेकिन जिस अपराध को जीवन में क्षमा कर सका हूँ, उस अपराध को क्षमा करने में स्वयं भगवान् के हृदय को भी आघात पहुँचता।"

यह कहकर उसने देखा, किरणमयी की दोनों आँखों से आँसू लुढ़ककर गिर रहे हैं।

सतीश भली प्रकार से बैठ गया, फिर गाढ़े स्वर से बोला, "आज मुझे अच्छी तरह तुम एक बार देखो तो बहन, जिस सतीश ने अपनी दुर्बुद्धि से भाभी कहकर व्यंग्य किया था, वह तुम्हारा भाई नहीं था।" कहते-कहते उसका समूचा मुखमण्डल प्रदीप्त हो उठा।

उसने प्रबल वेग से सिर हिलाकर कहा, "ना···ना···वह मैं नहीं था। वह कभी तुमको पहचान नहीं सका, उसने कभी तुमको पूजना नहीं सीखा, इसीलिए उसने जगन्नाथ को काठ का पुतला कहकर मजाक उड़ाया था। अपने महापाप का बोझ लेकर वह डूब गया है। भाभी, वह अब नहीं है।" यह कहकर वह गरदन झुकाकर अपने हृदय में झाँकने लगा।

किरणमयी अपलक दृष्टि से उसकी ओर देखती रही।

उसके बाद धीरे-धीरे अति मृदु स्वर से उसने प्रश्न किया, "किस प्रकार मुझे तुम पहचान गये, भाई ?"

सतीश ने गरदन झुकाए ही कहा, "वह बात गुरुजनों के सामने कहने योग्य नहीं, भाभी।"

"कहने योग्य नहीं है ? यह कैसी बात ?" अचानक सन्देह से, भय से किरणमयी का मुख पीला हो गया। उसने पुकारा, "बबुआ जी !"

"क्यों भाभी ?"

"मुँह ऊपर उठाओ तो देखूँ ?"

किरणमयी कुछ देर देखती रही, फिर बोली, "बबुआ जी, तुम एक बड़ी व्यथा लेकर आते हो, इसका पता मुझे बहुत दिनों से लग गया था। लेकिन पूछने का अधिकार नहीं था, इसीलिए मैंने नहीं पूछा। लेकिन, आज तुम छोटे भाई हो—क्या हो गया है, बताओ !"

सतीश सिर झुकाकर बोला, "वह तो बड़ी लज्जा की बात है भाभी।"

किरणमयी ने कहा, "भले ही लज्जा की बात हो। तो भी अपनी इस बहन को उसका भाग देना पड़ेगा। तुमको अकेले मैं दुःख का बोझ ढोते हुए घूमने न दूँगी।"

उसके दुःख का इतिहास बहुत कुछ संग्रह करके किरणमयी ने कहा, "लेकिन क्यों तुमने ऐसा कार्य किया ?"

सतीश चुप ही रहा।

किरणमयी ने प्रश्न किया, "कौन है वह ?"

सतीश अस्पष्ट स्वर से बोला, "अभागिनी···।"

"लेकिन कहाँ है वह ?"

"जानता नहीं हूँ ?"

"पता नहीं लगाया ?"

सतीश ने मृदु स्वर से कहा, "ना···उसकी आवश्यकता नहीं है। मैंने सुना है कि वह अच्छी तरह है।"

किरणमयी ने दुःखी होकर कहा, "अच्छी तरह है ? छिः ! छिः ! क्यों इस प्रकार तुमने अपने को धोखे में डाल दिया।"

सतीश ने फिर एक बार मुँह ऊपर उठाया। अस्पष्ट कण्ठ से उसने उत्तर दिया, "मैंने धोखा नहीं खाया भाभी, क्योंकि मैं प्यार कर सका था, लेकिन धोखा खा गई है वह—वह प्यार नहीं कर सकी है।"

"उसके बाद ?"

सतीश ने कहा, "पहले वह अपना मन समझ नहीं सकी। लेकिन जब समझ सकी, तब वह चली गई ?"

"बिना बताए, चली गई ?"

सतीश सिर हिलाकर बोला, "ना, यह बात भी नहीं है, जाने के पहले

वह कह गई—एक कुलटा को प्यार करके भगवान् के लिए इस मन पर कालिख न लगाओ।"

वह गम्भीर आश्चर्य से बोली, "क्या कह गई?"

सतीश के फिर वह बात कहने पर किरणमयी उन बातों को धीरे-धीरे बार-बार दोहराकर हठात् बोली, "लेकिन फिर जब उससे भेंट हो बबुआ जी तो मुझे एक बार दिखलाना।"

विपिन की बात याद करके सतीश बोला, "अब तो भेंट न होगी भाभी।"

किरणमयी के होंठों पर मलीन हँसी दिखाई पड़ी। उन्होंने कहा, "ना, फिर भेंट हो जाएगी।"

"न होने से ही कुशल है।"

किरणमयी ने गरदन हिलाकर कहा, "कब होगी यह मैं नहीं जानती लेकिन, यदि कभी दुःख और संकट पड़ जाय तभी भेंट होगी—उस भेंट से कल्याण के सिवा अकल्याण न होगा। बबुआ जी, वह चाहे जहाँ भी क्यों न रहे, तुम्हारी अपेक्षा भी वह तुम्हारी अधिक शुभाकांक्षिणी है, इस बात को तुम किसी दिन भी मत भूलना।"

ठीक उसी सन्ध्या के पहले किरणमयी पति की उत्तप्त शय्या से उठकर क्षण-भर के लिए बाहर आ खड़ी हुई। दरवाजे के पास दीवार पर ओठंग कर सतीश चुपचाप बैठा हुआ था, थकावट के कारण सम्भवतः वह सो गया था।

किरणमयी ने आश्चर्य से कहा, "बबुआ जी, इस प्रकार क्यों बैठे हुए हो? डेरे पर गए नहीं?"

सतीश तन्द्रा टूट जाने पर फड़फड़ाकर उठा और बोला, "ना भाभी।"

"इतनी देर तक कहाँ थे?"

"इधर-उधर घूमता रहा—आज अब डेरे पर न जाऊँगा।"

किरणमयी ने आपत्ति प्रकट करके कहा, "छिः-छिः, यह कैसी बात? न खाना होगा न सोना, ना, ना, डेरे पर चले जाओ। आज तुमको कोई भय नहीं है।"

सतीश ने गरदन हिलाकर कहा, "भय रहे या न रहे, आज मैं तुमको

अकेली छोड़कर न जा सकूँगा। इसके अलावा मैं दूकान से खा आया हूँ।"

किरणमयी ने कहा, "यह तो न हो सकेगा। मैं जानती हूँ, दूकान के खाने से तुम्हारा पेट नहीं भरता। मुझे तो इस दशा में फिर रसोई पकानी पड़ेगी, रसोई पका सकती हूँ लेकिन इधर कई दिनों से तुम्हारा ठीक समय पर नहाना-खाना नहीं हुआ, कल-परसों तुम अच्छी तरह सो भी नहीं सके, शरीर पर बहुत अत्याचार हो गया है, आज रात को यहाँ रहोगे तो बीमार पड़ जाओगे, ऐसा मैं नहीं होने दूंगी।"

सतीश ने क्रोध करके कहा, "दो दिन आहार-निद्रा कुछ कम होने से मैं बीमार पड़ जाऊँगा और तुम तो इधर एक महीने से सो नहीं सकीं? वो जो दिन-रात बिता रही हो, उसे किसी मनुष्य को देखने नहीं देती हो, लेकिन भगवान् तो देख रहे हैं। उसके बाद लगातार यह खटनी – इतने से भी तुम खड़ी हो और इतने से ही मैं मर जाऊँगा?"

किरणमयी ने कहा, "इसका अर्थ क्या यह है कि तुम भी एक महीने तक खाये-सोये बिना खड़े रह सकते हो?"

सतीश ने कहा, "यह बात मैं नहीं कहता, लेकिन···।"

किरणमयी ने हँसकर कहा, "इसमें फिर लेकिन है किस स्थान पर बबुआ जी? मैं तो स्त्री ठहरी! स्त्रियों को क्या कभी बीमारी होती है या स्त्री मरती है? क्या तुमने कभी सुना है, देख-भाल के बिना, अत्याचार से स्त्रियाँ मर गई हैं?"

सतीश ने कहा, "ना-ना, मैंने सुना है कि स्त्रियाँ अमर हैं।"

किरणमयी ने हँसकर कहा, "सचमुच ही यही बात है। प्राण रखने से ही जाता है। न रखने से नहीं जाता। भगवान् ने स्त्रियों के शरीर में उसे क्या दिया है कि वह चला जाएगा। मुझे तो ज्ञात होता है कि इस जाति के गले में रस्सी बाँधकर यदि दस-बीस वर्ष तक लटकाकर रखा जाए तब भी यह नहीं मरेगी।"

सतीश ने क्रुद्ध होकर कहा, "तुम्हारी यह हँसी मैं सुनना नहीं चाहता भाभी। सुनने से भी पाप लगता है।"

इस बार किरणमयी ने गम्भीर होकर कहा, "अच्छा बबुआ जी, अचानक स्त्रियों के इतने पक्षपाती क्यों हो गए हो?"

सतीश बोला, "भाभी, मैं खूब समझता हूँ, जब-तब तुम स्त्रियों का नाम लेकर अपने ही पर कठोर व्यंग्य सुनकर मैं नहीं सह सकता। इससे मुझे भारी आघात लगता है। अच्छा, मैं जा रहा हूँ।"

"सुनो बबुआ जी !"

सतीश घूमकर बोला; "क्या है ?"

"तुम सचमुच ही क्या नाराज हो गए ?"

"भाभी, क्रोध आ जाता है। संसार में दो आदमियों पर मैं देवता के समान श्रद्धा करता हूँ, उपेन भैया पर और तुम पर। एक को स्मरण करने से ही मैं तुम दोनों को देखता हूँ। यहाँ ओछा परिहास मुझसे सहा नहीं जाता। मैं जाकर शायद भोजन करके वापस आऊँगा।" यह कहकर सतीश झट-पट नीचे उतर गया।

इक्कीस

कभी किसी के सामने सतीश ने सावित्री की चर्चा नहीं की। जब यह बात किरणमयी के सामने प्रकट हो गई, तभी से उसके सारे शरीर से अमृत का स्रोत बह चला।

किरणमयी को सतीश देवी समझता था, उसकी सभी बातों पर अत्यन्त श्रद्धा करता था।

उन्होंने कहा, 'दुख के दिनों में फिर भेंट होगी।' तभी से उसके हृदय में रहने वाला विरह उस परम इच्छित दुःख के दिनों की आशा में उन्मुख हो उठा। वे घड़ियाँ कैसी होंगी, कैसे किसी दुःख के रूप में दर्शन देंगी और कैसे उस पर दया करेंगी—यही सब बातें सोचता हुआ मार्ग तय करने लगा और आठ बजे रात को घर पहुँचा।

घर में पहुँचकर जिस वस्तु की ओर उसकी दृष्टि गई, उसी ने आज विशेषता से उसकी दृष्टि आकर्षित की। कपड़े खोलकर अरगनी में लटकाते समय देखा, कपड़े सजा कर रखे हुए हैं। हरिण के सींगों पर शाम को पहनने के कपड़े सजे-सजाये रखे हैं। बैठते समय देखा कि कुर्सी पर आज मैले कपड़ों

का ढेर नहीं है। दो सप्ताह से धोबी नहीं आया था और इसलिए मैले कपड़ों का एक अम्बार कुर्सी पर बढ़ता जा रहा था। बैठते समय सतीश उनको जमीन पर फेंक देता था, उठ जाने पर बिहारी फिर यथास्थान रख देता था।

सात दिनों से मालिक और नौकर यही काम करते आ रहे थे, अचानक आज गठरी में बँधकर वे अरगनी के कपड़ों की ओट में चले गए हैं। बिस्तर की चादर, तकिये की खोल बहुत मैली हो चुकी थीं। आज चादर-खोल सब साफ हैं। मसहरी बहुत दिनों से बेढंगे तरीके से टँगी हुई थी, आज वह भी करीने से सीधी टाँगी गई है। लैम्प एक कोने में बराबर काजल से काली हो जाती थी। आज उसमें कोई दोष नहीं। बत्ती ठीक प्रकार से कटी हुई है जिससे साफ प्रकाश हो रहा है। सभी ओर यह सफाई, यह सजावट देखकर सतीश अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ, परन्तु किसके हाथों के स्पर्श से यह परिवर्तन हुआ? बूढ़े बिहारी का काम है?

उसने पुकारा, "बिहारी?"

बिहारी ओट में खड़ा था। सामने आकर बोला, "जी।"

सतीश ने कहा, "यह सब सफाई तूने की है?"

बिहारी ने कोई उत्तर नहीं दिया।

सतीश ने कहा, "जब यह सब तू कर सकता है, तब घर-द्वार गन्दा क्यों किए रहता है? मैं आज बड़ा प्रसन्न हुआ।"

बिहारी ने नम्रता से कहा, "आपका एक तार आया है, बाबूजी!"

"कहाँ है?" कहकर इधर-उधर दृष्टि दौड़ाते ही मेज पर रखे हुए पीले लिफाफे पर दृष्टि पड़ी। खोलकर देखा—उपेन्द्र भैया का तार है। साढ़े नौ बजे की गाड़ी से हावड़ा पहुँचेंगे। घड़ी में प्रायः नौ बज चुके थे। घबड़ाकर कहा, "बिहारी, जल्दी से जाकर एक गाड़ी ले आ, उपेन्द्र भैया आ रहे हैं।"

पाँच मिनट में बिहारी ने गाड़ी लाकर सूचना दी और किवाड़ की आड़ में खड़ा होकर पूछा, "बाबू को घर ले आयेंगे न?"

कुछ सोचकर सतीश ने कहा, "ना, आज रात को अब न लौटूंगा।" संशय न था। कारण, उनके पत्नी सहित आने की सूचना तार में न थी।

इसी अवसर में सतीश दो-चार गरम-गरम पूरियाँ गले के नीचे उतार रहा था।

बिहारी ने ओट से ही कहा, "बाबूजी, एक प्रार्थना है।" किसी मुख्य बात के लिए प्रार्थना करते समय बिहारी पण्डिताऊ भाषा का प्रयोग करता था।

सतीश ने मुँह ऊपर करके पूछा, "क्या प्रार्थना है?"

बिहारी 'जी' कहकर चुप हो रहा।

सतीश ने कहा, "जी क्या? कुछ कहेगा भी?"

बिहारी ने संकुचित होते हुए कहा, "तीस रुपये चाहिए।"

सतीश बोला, "अभी परसों ही तो तीस रुपये लिए थे—क्या घर भेज दिए?"

बिहारी ने मृदु स्वर में कहा, "बाबूजी, इसीलिए तो लिया था, किन्तु उस मेस के महाराज जी के···"

महाराज का नाम सुनते ही सतीश जल उठा। बोला, "वह रुपया महाराज को दे दिया—और यह रुपया किसे दान करेगा?"

"ना बाबू, दान नहीं करूँगा। एक आदमी बड़े दुःख में पड़ा हुआ···"

"ऋण चाहता है?"

"बाबूजी, उसे ऋण क्यों कर दूंगा···"

सतीश ने जल्दी से भोजन निबटाकर कहा, "तेरे पास हों तो तू दे दे। मैं ऐसा बड़ा आदमी नहीं, जो नित्य रुपये नष्ट करूँ, मैं न दे सकूँगा।"

इस बार बिहारी ने हठपूर्वक कहा, "ना बाबूजी, दिए बिना काम न चलेगा। चाहे मेरे वेतन से ही दे दें।"

यह सुन सतीश ने धमकाकर कहा, "वेतन? अब तक कितना रुपया ले चुका है? बता तो सही।"

बिहारी ने कहा, "जितने रुपये लिए हैं, उनसे लड़कों के लिए तीन बीघे जमीन और हल-बैल मोल ले लिए हैं। इसके सिवा एक नया घर भी बनवा लिया है। पर वे रुपये तो मैंने अपने वेतन के मध्य नहीं लिए हैं। वेतन के रुपये तो आपके पास ही जमा हैं। आज उसमें से दे दें बाबूजी!"

सतीश ने हँसकर कहा, "लड़कों के लिए जमीन और हल-बैल मोल लेकर मेरा बड़ा उपकार किया है! जा, मेरे पास रुपया नहीं है।" यों कह दुपट्टे को कन्धे पर रखकर सतीश स्टेशन जाने के लिए बाहर चला गया।

बिहारी ने अपने घर आकर कहा, "बेटी, नहा-धोकर इस समय थोड़ा-सा कुछ खा-पी लो। कल सवेरे जैसे भी होगा, रुपये ला दूँगा।"

सावित्री एक कमरे में सहन पर आँचल बिछाकर पड़ी हुई थी। उठ बैठी, पूछा, "बाबूजी ने रुपये नहीं दिए?"

बिहारी ने कहा, "जानती हो बेटी, दूसरे के दुःख के नाम पर जब माँगा है, तो अवश्य ही देंगे। मेरे मालिक दाता कर्ण हैं! अभी नहीं दिया, स्टेशन चले गए हैं, किन्तु कल सवेरे जब लौटेंगे, तब स्वयं बुलाकर देंगे। तुम कुछ भी चिन्ता न करो, इस समय उठकर कुछ खा-पी लो, सारा दिन तुमने यों ही बिना खाये बिता दिया।"

सावित्री के मुरझाए हुए, पीले पड़े मुँह पर जरा-सी हँसी फूट निकली, बोली, "आज रात को नहीं लौटेंगे, यह अच्छा ही हुआ। कल दोपहर की ट्रेन से काशी जा सकूँगी। क्यों बिहारी? यही ठीक रहेगा न?"

बिहारी ने कहा, "ठीक है बेटी!" फिर लम्बी साँस लेकर बोला, "एक मेरे मालिक हैं, एक तुम्हारे। घर से बुढ़िया ने दुःख भरी एक चिट्ठी भेजी थी। बाबूजी से पढ़ाने के लिए गया, पढ़कर बोले, 'बिहारी, क्या तेरे घर-द्वार कुछ भी नहीं है?' मैंने कहा, 'गरीब दुखियों के होता ही क्या है बाबू?' वे और कुछ न बोले! चार दिन बाद छः सौ रुपये दे, मुझे घर भेज दिया। जमीन-जगह खरीदी, हल-बैल खरीदे, घर-द्वार बनाया। सब बाल-बच्चों को सौंप, एक महीने के भीतर मालिक की सेवा में लौट आया। बुढ़िया ने रोकर कहा, 'मुझे भी साथ लेते चलो, एक बार चरणों के दर्शन तो कर आऊँ।' मैंने कहा, 'ना, ऋण मत बढ़ा। तेरे जाने से दो-एक सौ रुपये तुझे भी दे देंगे।' और एक तुम्हारे मालिक हैं! बीमार होने पर जो पाँच-सात रुपये दवा-दारू में व्यय हुए थे, उनके लिए कर्जदार करार दिया और साफ कह दिया कि कर्ज चुकाकर तब जाना। आह! नौकरी करने जाकर तुम्हें कितना दुःख हुआ, बेटी! हम लोगों को यह मालूम न था। इसीसे विपिन बाबू के नाम से तुम्हारी कितनी निन्दा की है। क्षमा करना बेटी, नहीं तो मेरी जीभ सड़कर और गलकर गिर जाएगी।"

विपिन का नाम सुनकर सावित्री घृणा से उद्विग्न हो धीरे से 'छिः-छिः' कह उठी। किन्तु तुरन्त ही भाव बदल, हँसकर बोली, "स्नान करूँगी

बिहारी, एक कपड़ा दे सकोगे ?"

"कपड़ा ?" बिहारी ने उदास होकर कहा, "तुम्हारे आशीर्वाद से एक नहीं, दस-पाँच दे सकता हूँ। कोई दुःख नहीं है बेटी, किन्तु शूद्र का पहना कपड़ा कैसे तुम्हें पहनने को दूं ? चलो, बाबू का एक धोया कपड़ा निकाल देता हूँ।"

बिहारी देव पर भक्ति रखता था। अतएव प्रतिवाद करना व्यर्थ समझ सावित्री सहमत हो, उसके पीछे-पीछे कमरे के बाहर आई।

सावित्री स्नान कर और सतीश की बढ़िया देशी शान्तिपुरी धुली धोती पहनकर मन-ही-मन कुछ हँसी। उसके घर में, उसी की धोती पहन और उसी की आचमनी-अर्घी से सन्ध्या-वन्दन कर दिनभर भूखी रहने के बाद बिहारी की लाई हुई विदेशी चीनी की बनी परम पवित्र खोये की मिठाई खा, कुछ स्वस्थ हुई।

उसे पान और सुर्ती खाने की बुरी लत थी। वह बाजार का बना पान न खाती थी, यह बिहारी को मालूम था। इसलिए वह इसी समय बाजार से झटपट पान-सुपारी आदि ले आया था।

एक तस्तरी में पान-सुपारी ले सावित्री के आगे रखने चला। यह देख, सावित्री ने हँसकर कहा, "बिहारी, देखती हूँ तुमने मुझे जरा भी नहीं भुलाया है।"

बिहारी ने उत्तर दिया, "आखिर मैं भी तो मनुष्य ही हूँ बेटी। तुमको एक बार देख लेने पर पशु-पक्षी भी नहीं भूल सकते।" कहकर मेज पर से लैम्प लाकर उसने दरवाजे के पास रख दी और तस्तरी को आगे सरका, पान लगाने को कहा और हिन्दुस्तानी-रसोइए से बनी सुर्ती लाने के लिए रसोईघर की ओर चला।

किरासन तेल के उज्ज्वल प्रकाश को आगे रख, सावित्री पान लगाने बैठी। सिर पर कपड़ा नहीं, भीगे बाल सारी पीठ पर फैल नीचे पृथ्वी तक बिखर पड़े हैं। दो-एक लट आँचल के काले किनारे से मिल कन्धे से नीचे की ओर लटक रही हैं। स्त्री के बीमार, सिकुड़े, सूखे चेहरे पर जो स्वाभाविक और छिपा हुआ माधुर्य तथा सौन्दर्य होता है, वह इस कृशांगी के सुन्दर मुखमण्डल पर विराज रहा था। वह कुछ अनमनी और चिन्ताग्रस्त थी।

सहसा दूर से जूते का शब्द उसने सुना, तब उपेन्द्र और सतीश दोनों दरवाजे पर आ खड़े हुए थे। सावित्री ने ध्यान टूटते ही सिर ऊपर उठाकर देखा। वह विवर्ण और आत्मविस्मृत हो गई। अचानक यह देखते ही नारी सुलभ जन्म-जन्मार्जित अन्ध संस्कार ने उसे एक बार बहुत शरमा दिया और उसी क्षण उसने दोनों हाथ बढ़ा घूंघट काढ़ लिया।

सतीश बुद्धि-विमूढ़ के समान बोल उठा, "सावित्री ! तुम !"

सुरबाला अब तक प्रकाश के सहारे बिहारी और दिवाकर के साथ ऊपर चढ़ आई थी।

उपेन्द्र ने घूमकर कहा, "ठहरो, वहीं ठहरो, यहाँ मत आओ सुरबाला।"

सुरबाला ने चौंककर पूछा, "क्यों ?"

उपेन्द्र ने प्रश्न का उत्तर न देकर कहा, "दिवाकर, तुम अपनी भाभी को गाड़ी में लौटा ले चलो। सतीश, मैं भी जाता हूँ।"

वे सब धीरे-धीरे लौट चले।

बाईस

उपेन्द्र की पगध्वनि क्षीण होते-होते सीढ़ियों में विलीन हो गई।

वे थके थे, भूखे थे, अँधेरी रात थी, तथापि सन्देह उत्पन्न हो जाने से वे ठहर न सके।

सतीश के घर में बैठी तरुणी ने लज्जा और भय से इस प्रकार मुँह ढँक लिया था कि उसके सम्बन्ध में कुछ पूछने की भी उन्होंने कोई आवश्यकता न समझी। वे घृणा के साथ लौट चले, उस ओर आँख उठाकर भी न देखा।

यह क्या हो गया ! थोड़ी ही देर के बाद सावित्री यह घटना जानकर काँप उठी। हजारों पुरुषों के आगे भी उसे लज्जा करने का अधिकार न था किन्तु अनजान में भारी भूल कर बैठी। उसे ऐसा लगा, मानो उसके घूंघट ने विस्तृत होकर उसे नख से शिख तक लज्जा से दृढ़तापूर्वक बाँध दिया। एक घड़ी पहले किसने यह बात सोची थी कि जरा-सी लज्जा के लिए उसके सिर पर सहसा लज्जा का पर्वत टूट पड़ेगा ?

दम घुटते समय मनुष्य जिस प्रकार मुँह बाहर निकालने की जी-जान से चेष्टा करता है, सावित्री ठीक उसी प्रकार घूँघट जोर से हटाकर सीधी होकर बैठ गई। पूछा, "वे कौन थे ?"

सतीश स्तब्ध भाव से द्वार के पास खड़ा था। उसी दशा में उत्तर दिया, "उपेन्द्र भैया और भाभी।"

"ऐं, ये उपेन्द्र बाबू थे ! ये बहू थी ! वे लोग थे ?" सावित्री बड़ी उत्तेजना से उठ खड़ी हुई और चिल्लाकर कहा, "उन्हें लौटा लाऊँ। छिः-छिः, मैं कोई नहीं हूँ, हटो, हटो ! घर की नौकरानी तो हूँ ही ! हटो, हटो।"

उपेन्द्र कौन है, यह सावित्री अच्छी प्रकार जानती थी।

सतीश की बातों में अनेक बार उनकी चर्चा आई थी।

अब सतीश की मानो नींद टूटी। इस चिल्लाहट ने, इस अस्त-व्यस्त भाव ने उसकी विह्वलता को क्षण भर में छिपाकर उसे एकदम सजग कर दिया। इस बार उसने सीधे हो, दोनों हाथ फैलाकर मार्ग रोका और कहा, "ना !"

सावित्री ने व्याकुल हो हाथों पर जोर देकर कहा, "ना क्यों ? सर्वनाश मत करो। सतीश बाबू। मार्ग छोड़ो। मेरा सच्चा परिचय उन लोगों को जानने दो।"

सतीश ने रास्ता न छोड़ा।

साँप की जीभ के समान दो भागों में बँटे उसके दृढ़ बँधे हुए होंठों में शायद हँसी की एक सूक्ष्म रेखा दीख पड़ी। कहा, "अः ! तुम्हारा सर्वनाश ? ना, इस विषय में निश्चिन्त रहो। किन्तु तुम्हारा सच्चा परिचय क्या है, पहले मैं तो सुनूँ।"

सहसा सावित्री कुछ उत्तर न दे सकी। केवल देखती रही। ऐसी निरुत्तर दृष्टि सतीश ने पहले भी देखी थी, किन्तु उसमें और इसमें बहुत अन्तर था। इस दृष्टि में, इतना बड़ा आघात लगने पर भी आज आग क्यों नहीं लगाई ? विस्मय भरी स्निग्ध, करुण दोनों आँखें थीं। ये क्या उसी सावित्री की हैं ?

उसने कुछ क्षण के बाद धीरे-धीरे कहा, "मेरा परिचय ? बतला तो दिया, घर की दासी। सतीश बाबू, दया करें, मैं उन्हें लौटा लाती हूँ। इस

अन्धकार में, वे रास्ते-रास्ते कहाँ भटकते फिरेंगे ? यह क्या अच्छा होगा ?"

जरा भी विचलित न होकर सतीश ने कहा, "भले-बुरे का विचार करने का भार उन पर ही रहने दो। रास्ते-रास्ते घूमना भी इस घर में आने की अपेक्षा बहुत अच्छा है। मैं भाभी को किसी प्रकार अब इस घर में आने न दे सकूँगा।"

"क्यों न आने दे सकोगे ? मैं इस घर में आ गई हूँ, इसीलिए ? सतीश बाबू, क्या पृथ्वी भी मेरे छूने से अपवित्र हो जाती है ?"

सतीश ने दूसरा प्रश्न किया, "तुम इस घर में आई क्यों ?"

"मैं ? मैं क्या···"

सावित्री अधिक देर तक सतीश की ओर देखती न रह सकी। पृथ्वी की ओर देखती हुई रोती आवाज में बोली, "आप मेरे पुराने मालिक हैं। इसी से असमय में कुछ भिक्षा माँगने आई थी।"

सतीश व्यंग्य की हँसी में बोला, "असमय में भिक्षा माँगने ? तुम्हारे तो बहुतेरे मालिक हैं, सावित्री ! मालूम होता है, इतने दिनों में सभी घरों में घूम आई हो ?"

तेज विद्युत् के स्पर्श के समान सावित्री का मुख जल उठते ही मानो बुझकर खाक हो गया।

सतीश का यह निष्ठुर आघात उसके हृदय के टुकड़े-टुकड़े करने लगा, नीची गर्दन किए कुछ बोली तक नहीं।

दाँतों के जोर से जीभ काटकर रह गई।

सतीश ने फिर कहा, "विपिन बाबू ने तुम्हें क्यों निकाल दिया ? क्या उनका मन···?"

सावित्री ने फिर भी उत्तर न दिया।

एकाएक सतीश को बिहारी की प्रार्थना याद आ गई। पूछा, "क्या भिक्षा माँगती हो ? तीस रुपए न ?"

सावित्री ने नीचे झुके सिर को केवल हिलाकर उत्तर दिया, "हाँ।"

'अच्छा' कहकर सतीश दराज के पास जाकर खड़ा हुआ और पल-भर में घर के चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर रुक गया।

इस घर की जिस नई सजावट ने उसे पहले इतना आनन्द दिया था,

वही इस समय मानो उसे काटने दौड़ी। पास की शय्या भी इसी के हाथ की बिछाई हुई है। स्टेशन जाने के पहले इस पर लेटकर उसने कुछ क्षण विश्राम किया था, यह स्मरण आते ही उसका सारा शरीर संकुचित-सा हो गया। निगाह लौटाकर जल्दी-जल्दी दराज खोल, मुट्ठी-भर नोट बाहर निकाले और उनको सावित्री के पाँवों के पास फेंककर कहा, "जाओ, जाओ इन्हें लेकर चली जाओ ! फिर कभी मत आना।"

सावित्री गिनकर केवल तीन नोट ले, उठकर खड़ी हो गई। अब तक सतीश चुपचाप देख रहा था। सावित्री के खड़े होते ही उसने उसे कुछ कहना चाहा, किन्तु एकाएक अकारण ही उसका गला रुक गया। मुँह से बात न निकली।

हाय ! इसकी खबर तो उसे न थी। जेठ के अन्तिम दिनों की तेज धूप के समान उसका तप्त क्रोध जब इस हतभागिनी को निरुपाय, आकाश में उसकी बूँद-बूँद इकट्ठी होकर घने बादलों की सृष्टि हो रही थी। बादल ऐसे अज्ञात रूप से, ऐसी निःशब्द गति से उसे घेरकर रोक सकते हैं, इस बात की कल्पना भी सतीश ने नहीं की थी। उसका कण्ठ, उसका मुँह, उसकी दोनों आँखें मानो किसी अदृश्य आक्रमण से दबने लगीं—सहसा उसने सबल प्रयत्न से अपने को उस घेरे से अलग कर पुकारा, "सावित्री !'

"जी।"

"किस्सा-कहानियों में पढ़ता था कि अमुक मनुष्य अमुक मनुष्य से घृणा करता था। मुझे विश्वास न होता था, सोचता था, यह केवल व्यर्थ बात है। कभी मेरी समझ में नहीं आता कि मनुष्य किस प्रकार मनुष्य से घृणा कर सकता है। पर अब देखता हूँ कि मनुष्य मनुष्य से घृणा कर सकता है। सावित्री, मैं शपथ खाकर कहता हूँ कि मरते दम तक तुम्हारा स्पर्श नहीं करूँगा।"

सावित्री मौन।

"अच्छा सावित्री, यह तो बताओ कि संसार में तुम लोगों को रुपये से अधिक प्यारा क्या और कुछ भी नहीं है ? यदि होता तो इन नोटों को कदापि न उठातीं। आज मेरे पास जो कुछ है, वह सब तुमको दे दूंगा, पर एक बात मुझे सच-सच बताती जाओ !"

"पूछिये।"

"पूछता हूँ," कहकर सतीश ठहर गया। सावित्री कठपुतली के समान सिर झुकाए प्रतीक्षा करती रही।

सतीश बोला, "पूछते लज्जा लगती है, फिर भी जानना चाहता हूँ··· अच्छा, सावित्री ! क्या तुमने कभी किसी को प्यार भी किया है ?"

सावित्री क्षण-भर चुप रहकर मृदु किन्तु स्पष्ट स्वर में बोली, "दूसरे की बात जान लेने से आपको क्या लाभ होगा ?"

सतीश ने जरा सकुचाकर कहा, "अच्छा, दूसरे की बात जाने दो। यदि अपने ही सम्बन्ध में जानना चाहूँ ?"

"अपने विषय में जानकर आप क्या करेंगे ?"

"अपने सम्बन्ध की बात तो प्रत्येक को जाननी चाहिए।"

"मनुष्य अपने सम्बन्ध की बात जानता है। कल क्या होगा, यह कितने आदमी जानते हैं ?"

"यह सच है, तथापि सभी जानना चाहते हैं।"

सावित्री द्वार की ओर सरककर बोली, "जैसे आप संसार की कितनी ही बातें नहीं जानते, वैसे यह बात बिना जाने भी आपके दिन कट जाएँगे।"

"हाँ, कट तो जाएँगे ही !" कहकर सतीश ने एक लम्बी साँस को बलपूर्वक दबा दिया।

सावित्री समझ गई। उसने मुँह फेर लिया। इसी समय उसके बीमार, पीले और दुबले चेहरे पर सतीश की आँखें पड़ गईं। वह चौंक उठा, पूछा, "तुम बीमार हो सावित्री ?"

सावित्री ने सिर झुकाकर कहा, "ना।"

"बहुत ही बीमार-सी दिखाई देती हो।"

सावित्री ने कुछ उत्तर दिए बिना जाने के लिए पाँव बढ़ाया। वह चुपचाप बाहर आई। कमरे के भीतर से रुँधे हुए कण्ठ से एक आवाज आई, "एक दिन सावित्री ने भी मुझे प्रेम भरी आँखों से नहीं देखा ?"

सावित्री चौखट के सहारे चुपचाप खड़ी रही। उसने मुँह नहीं फेरा।

इस बार भीतर का रुँधा हुआ कण्ठ खुल गया, "सावित्री, एक बार बताती जाओ। मैं इतने दिनों से क्या केवल प्रेम के उन्माद में ही इस व्यथा-

बोझ को लिए घूम रहा हूँ ? मेरे भाग्य में क्या सर्वत्र भूल ही होनी है ? मेरे हृदय में जो अपार वेदना भरी हुई है, क्या वह भी भ्रम है—मिथ्या है—धोखा है ?"

कुछ समय तक सोचती रही सावित्री। फिर लौटकर बोली, "देखिए सतीश बाबू, आप यह सब क्या कह रहे हैं ? मैं बड़ी विपत्ति में फँसकर बिहारी के पास रुपये उधार माँगने आई थी, किन्तु आपसे सच कहती हूँ, मुझे यह मालूम न था कि झगड़े में आ फँसूंगी, नहीं तो न आती।"

सतीश मौन हो रहा।

सावित्री का कण्ठस्वर शान्त और मृदु था, किन्तु उसमें मधुरता न थी। कुछ देर पहले तो उसने इस कोमल कण्ठ से मालिक से भिक्षा नहीं माँगी थी।

उसने फिर कहा, "आपने शपथ करके कहा है कि मैं तुमसे घृणा करता हूँ फिर मैं क्या करूँ ? आप ही बताइए। आपकी इच्छा हो तो प्यार भी कर सकते हैं, क्रोध हो तो घृणा भी कर सकते हैं। आप लोग ऐसा ही करते भी हैं। किन्तु हमारे तो हाथ-पाँव बँधे हैं। रोजगार या मजदूरी करने से भी गुजर नहीं होती, इसलिए जिससे पेट भरता है, वही हम लोगों को करना पड़ता है। जब इस मार्ग पर पाँव रख चुकी हूँ, तब इस पर चले बिना दूसरा उपाय भी तो नहीं है।"

सतीश के हृदय के भीतर जो उष्ण रक्त अब तक उबल रहा था, उस पर सावित्री की बात एकाएक बरफ के टुकड़े के समान पड़ उसे बिल्कुल निस्पन्द और निःसत्व करने लगी। वह विह्वल नेत्रों से उसकी ओर देखता रहा। वह सब बात समझ गया या नहीं, यह भी सावित्री न जान सकी।

सावित्री के लिए यह सब असह्य-सा हो रहा था। इसी से दूसरी ओर दृष्टि घुमाकर जरा ठहर गई। उसकी अपनी ही बातें उसकी छाती में मर्म-भेदी बर्छी की भाँति चुभ रही थीं तथापि मर्माहत सैनिक के समान जमीन पर लोट जाने के पहले अन्तिम बार सतीश के लज्जास्पद, निष्फल प्रणय पर उसने चोट की। कहा, "आप पूछते हैं कि किसी दिन आपको प्यार कर सकती थी या नहीं ? किन्तु आप ही बतलाइए, उस डेरा में आप जिस तरह-तरह से मुझे पैसे देते थे, उसी प्रकार मैं भी सबकी अपेक्षा आपका अधिक ख्याल करती थी या नहीं ? सम्भव है आप इसे स्वीकार न करें और यह भी

संभव है कि आप भूल गये हों, किन्तु बिहारी अब भी इस बात का साक्षी है। हमें तो जो कोई रखेगा, हम उसी की सेवा-शुश्रूषा करेंगी। यदि आप स्थान दें तो आपको भी वैसे ही चाहूँगी। आजकल तो बेकार बैठी हूँ, कहिए तो कल से ही यहाँ आकर काम करने लगूँ। आप जगह दें, तो फिर आपको उसी प्रकार प्यार करूँगी।"

सतीश के दोनों कानों में एक विचित्र आवाज गूंजने लगी। उसने एक बार अच्छी प्रकार देखने की चेष्टा की, किन्तु आँखों के आगे अँधेरा-सा छा गया। सावित्री दरवाजे के पास, प्रकाश की ओट में खड़ी थी। उसका समस्त शरीर वीभत्स, विकृत-सा दीख पड़ा। सतीश को ऐसा जान पड़ा जैसे उसके घर में प्रतिष्ठित, परम पूज्य प्रतिमा को कोई तोड़-फोड़कर, घास-भूसे की अंटिया-सी बनाकर, उसके मुँह पर फेंककर मार रहा हो।

उसने मुँह फेर लिया, कहा, "जाओ!"

सावित्री ने चौखट पर सिर रखा, प्रणाम कर चुपचाप चली गई।

सतीश ने यह न देखा। उसने केवल अत्यन्त कोमल अन्तिम पैरों का शब्द सुना।

बिहारी की निचली कोठरी में टिमटिमाता हुआ एक दीया जल रहा था। उसी घर में सावित्री आधी आँखें बन्द किए डगमगाते पाँवों से पहुँची और दोनों हाथ बढ़ाकर उसने मानो किसी वस्तु को पकड़ना चाहा, पर सहारा न पा मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ी।

बिहारी उपेन्द्र आदि के साथ थोड़ी दूर जा, ज्योतिष साहब के घर का रास्ता बता, कोई पाँच मिनट हुए लौट आया था और अन्धकार में छिपकर सावित्री की अंतिम बातें सुन रहा था।

आज दिन-भर उसने उसके साथ कितनी ही बातें की थीं। हृदयहीन गृहस्थ के घर काम करने जाकर सावित्री को जो कष्ट सहने पड़े थे, बीमार हो जाने से जो दुःख झेलने पड़े थे, उनका हाल सुनकर बिहारी का कलेजा टूक-टूक हो चुका था। परन्तु इस समय बाबू के सामने सावित्री क्यों यों झूठ बोल गई, इसका कुछ भी रहस्य बूढ़े की समझ में न आया।

सावित्री के नीचे उतर जाने पर वह भी अँधेरे के सहारे बाबू की आँखें बचा, नीचे उतर आया। नीचे सावित्री को न देख मार्ग की ओर दौड़ा।

इधर-उधर कहीं भी उसे न पाकर फिर घर के भीतर जा जल्दी-जल्दी अपनी कोठरी में खोजने पहुँचा और ठिठककर खड़ा हो गया। सावधानी से निकट जा वत्ती तेज की और सावित्री के सिर के पास बैठकर पुकारा, "वेटी सावित्री ! इस प्रकार जमीन में क्यों लेट रही हो ?"

उत्तर न पाकर फिर प्रेम के साथ बोला, "तुम्हारी तबियत ठीक नहीं है, यहाँ ठण्ड लगेगी, कष्ट होगा ! उठ बैठो, मैं चटाई बिछाये देता हूँ।"

सावित्री ज्यों-की-त्यों पड़ी रही।

बिहारी विस्मित हुआ। उसे अच्छी तरह दिखाई न पड़ता था। दीपक को मुँह के पास ला, जरा झुककर देखते ही वह चिल्ला उठा, "तुमने यह क्या किया, बेटी !" सावित्री की आँखें बन्द थीं, चेहरा काला हो रहा था। इस चिल्लाहट से भी वह न हिली न डुली, मुर्दे के समान पड़ी रही।

अपने कमरे में सतीश अब तक पत्थर के समान बैठा था। वह भी चौंक उठा। रसोइया रसोई वनाना छोड़ दौड़कर आया।

बिहारी ने रोकर कहा, "खड़े मत रहो महाराज, बाबू को फौरन सूचना दो।"

उसने दौड़ते हुए जाकर सतीश को सूचित किया, "माईजी मर गई..."

"मर गई ? कहता क्या है !"

"हाँ, बावूजी।"

सतीश विहारी की कोठरी में पहुँचा और सावित्री के सिर के पास घुटनों के वल वैठ गया। मुँह के पास बत्ती लाकर देखते ही उसे स्मरण आया कि उसे मूर्छा का दौरा हुआ करता है। कहकर बोला, "चिल्ला मत विहारी, आँख-मुँह पर पानी छिड़क।" महाराज से कहा, "एक पंखा लाकर जरा हवा तो करो।"

बिहारी साहस पाकर जोर-जोर से पानी के छींटे मारने लगा और रसोइया पंखा झलने लगा।

कुछ देर में सावित्री ने लम्बी साँस ली और आँखें मलती तथा माथे पर कपड़ा डालती हुई उठ बैठी।

सतीश ने कहा, "महाराज, जरा गरम-गरम दूध तो ले आओ ! कुछ

अधिक लाना। बिहारी, भीगा कपड़ा जल्दी से उतार देने के लिए कहो।"

महाराज दूध लाने चला गया और बिहारी ने धीरे से सावित्री को गीला कपड़ा बदलकर दूसरा कपड़ा पहनने के लिए कहा।

सतीश ने कुछ देर चुप रहकर फिर कहा, "तबियत ठीक होने पर कहाँ जाएगी, पूछ लेना और गाड़ी जरूर ला देना। मूर्छा के बाद पैदल न जाए।"

सावित्री का शरीर काँप उठा, किन्तु धुँधली रोशनी में कोई उसे देख न सका। वह बड़े कष्ट से अपने को सँभालकर निश्चल ही रही।

सतीश फिर बोला, "और तबियत ठीक न मालूम हो, तो मेरे बिस्तर पर सोने के लिए कह देना। मैं और स्थान पर जाता हूँ।"

सावित्री के सिर के बाल तक काँप उठे। उसे ऐसा जान पड़ा मानो वह अब और अपने को जब्त न रख सकेगी।

एक छोटी-सी चाभी बिहारी के पास फेंककर सतीश ने कहा, "और देखो, दराज की चाभी उसी के पास रखे जाता हूँ, उसको जितने रुपये की आवश्यकता हो, जाते समय लेती जाए।"

सावित्री बीमार तो थी ही, कमजोरी भी बहुत थी, इसके अतिरिक्त सतीश की बातों ने उसके हृदय को मथकर विष और अमृत से कण्ठ तक फेनमय कर दिया। वह फिर एक बार काँपकर पत्थर की मूर्ति के समान निस्पन्द-सी हो रही।

सतीश ने कहा, "मैं पथरियाघट्टा जाता हूँ। बिहारी, कल शायद देर से लौटूँ।" एक कदम आगे बढ़कर बोला, "कोई संकोच न करना, जो आवश्यक हो, ले लेना, मैं जाता हूँ।"

सतीश चला गया।

एक बार सावित्री ने ऊपर की ओर देखा, फिर पछाड़ खाकर जमीन पर गिर पड़ी। छाती फाड़कर रो उठी, "अरे! क्यों तुमने इस पापिनी पर इतना प्रेम किया था? अभी शपथ खाई कि मुझसे घृणा करते हो, यही घृणा करना है, मेरा इतना दुःख पहुँचाना, इतनी झूठी बातें गढ़ना, क्या तुम्हारे स्नेह की आग में पड़कर खाक हो गया? अरे, मुझे कौन बताएगा कि क्या करने से मुझे तुम्हारी घृणा ही प्राप्त हो सकेगी?"

इस रोने का कुछ भी अर्थ बिहारी न समझ सका। जरा पास आ धीरज

देने के स्वर में बोला, "बेटी, तुमने बाबू से इतनी झूठी बातें क्यों कहीं ? जहाँ नहीं गई, जो दोष तुमने नहीं किया, क्यों उसे स्वीकार कर व्यर्थ अपराधिना बनी ?"

सावित्री ने रोते-रोते कहा, "धर्म जानता है बिहारी, मेरी सब बातें झूठी हैं। कहते छाती फट गई है, तो भी कही हैं। किन्तु झूठ बोलना भी तो कुछ काम नहीं आया बिहारी, कुछ भी काम न आया !"

बिहारी मूर्ख के समान देखकर बोला, "झूठ क्या काम आए ?"

सावित्री आँखें मलकर उठ बैठी। उसके मुँह की ओर देखती हुई बोली, "ठीक जानते हो बिहारी, झूठ से कोई काम नहीं होता ?"

बिहारी ने कुछ देर सोचकर कहा, "होता क्यों नहीं, कचहरी में झूठ बोलने से ही काम चलता है। वहाँ मिथ्या की ही जय होती है।"

सावित्री मौन। बहुत देर तक स्थिर रहकर बोली, "मैंने क्यों झूठ का सहारा लिया, यह बात शायद किसी दिन तुम भी समझ सकोगे। किन्तु जाने दो बिहारी, मेरी दो बातें मानोगे ?"

"क्यों न मानूँगा ? क्या बात है ?"

"एक तो मेरे चले जाने पर भी बाबू से किसी दिन यह न कहना कि मैंने आदि से अन्त तक सब बात झूठ कही थी।"

बिहारी चुप।

सावित्री ने कहा, "और एक बात है। मैं अपना पता तुम्हें लिख भेजूँगी। यदि कभी मेरी जरूरत समझना तो मुझे लिखना। तुमसे कहने में मुझे लज्जा नहीं बिहारी। जानते हो, मेरे सिवा संसार में कोई भी इन्हें वश में नहीं ला सकेगा और आड़े दिनों में मुझसे अधिक दूसरा कोई इनकी सेवा भी न कर सकेगा।"

बिहारी रोने लगा। आँखें पोंछ रुँधे कण्ठ से बोला, "सब जानता हूँ बेटी।"

सावित्री उठ खड़ी हुई। बोली, "तो चलती हूँ। उनको तुम्हारे ही हाथ सौंपे जाती हूँ। देखो बिहारी ! ये दो बातें याद रखना। भगवान् करे, तुम सुखी रहो। अपना यह जला मुँह लेकर फिर कभी तुम लोगों के सामने न आना पड़े।" यों कहती और आँखें पोंछती हुई सावित्री आगे बढ़ी।

सड़क पर आ, एक किराये की गाड़ी पर सावित्री को चढ़ाकर बिहारी ने झुककर प्रणाम किया। आँखें पोंछकर गला साफ कर बोला, "बेटी ! मेरी भी एक विनती है। आज तुमने अपना समझकर मेरी याद की थी, आवश्यकता पड़ने पर फिर स्मरण करना।"

"अवश्य करूँगी।"

गाड़ी दौड़ चली।

बिहारी के रुँधे कण्ठ से आवाज बाहर न निकल सकी। उसने फिर एक बार चुपचाप रास्ते पर सिर रख प्रणाम किया और धोती से आँख पोंछ कर तेज कदमों के साथ लौट पड़ा।

सतीश पथरियाघट्टा की ओर चल पड़ा। चलते-चलते ही उसे एक विचित्र थकान-सी जान पड़ी। वह सोचने लगा, कहीं बैठ जाऊँ या लेट जाऊँ तो आराम मिलेगा। दोनों पाँव उससे उठाये नहीं उठते थे, सारा शरीर पत्थर के समान भारी जान पड़ता था। आज ऐसी गहरी थकान कहाँ से और कैसे हुई, यह उसे विदित नहीं।

पूर्व घटित ऐसी ही एक रात की बात उसे स्मरण आ गई जब बिहारी ने सावित्री ओर मोक्षदा के घर से वापस लौटकर कहा था, "वह वहाँ नहीं है। विपिन बाबू के पास चली गई है।" उस दिन उस सूचना ने कुछ क्षण के लिए उसको विमूढ़ कर दिया था। लेकिन दूसरे क्षण अभिमान तथा अपमान की जो भयंकर ज्वाला प्रज्वलित हो उठी थी, वह किले के निर्जन मैदान में मौन आकाश के नीचे आँखों के आँसू से बुझ न जाती तो चाहे जितने ही दिनों में क्यों न हो, सावित्री को बिना जलाये शान्त न होती। वैसी ही रात तो आज भी आई थी, तो फिर वैसी ही क्यों नहीं जली !

एक खाली गाड़ी जा रही थी, बुलाकर बोला, "पथरियाघट्टा चलेगा ?"

गाड़ीवान ने गाड़ी रोककर मार्ग के प्रकाश में सतीश की ओर देखते ही सोचकर कि कोई शराबी-मतवाला है, उसने कहा, "यह तो बहुत दूर है। तीन रुपया लगेगा बाबू, रुपये हैं न ?"

"हाँ हैं !" कहकर सतीश चढ़ बैठा, और गाड़ी के एक कोने में सिर टेककर उसने आँखें मूंद लीं। थकावट ने उसको इस प्रकार घेर लिया था

कि इससे अधिक बातें कहने की शक्ति उसमें नहीं थी।

बहुत देर बाद बहुत-सी गलियों में घूमकर गाड़ीवान ने विरक्त होकर पूछा, "किस जगह जाइएगा बाबू, ठीक प्रकार से बता दें। मैं व्यर्थ ही नहीं घूम सकता।"

सतीश ने अपने डेरे का पता बता दिया। कुछ देर बाद गाड़ी आकर दरवाजे पर रुक गई। कई बार पुकारने पर बिहारी ने आकर किवाड़ खोल दिया तो सतीश ने चुपके से पूछा, "बिहारी, सावित्री क्या कमरे में है?"

बिहारी ने विह्वल की भाँति निहारते हुए कहा, "ना बाबू, वह तो नहीं है। वह उसी समय चली गई।"

"चली गई?"

"हाँ, बाबू।"

सतीश लम्बी साँस छोड़कर बिहारी के बिस्तर के छोर पर बैठ गया।

पल-भर बाद बिहारी ने मीठे स्वर से कहा, "मैंने गाड़ी ठीक कर दी थी। चलिए, आपके कमरे में बत्ती जला आऊँ।"

"नहीं, रहने दो, मैं ही जला लूँगा।" कहकर सतीश उठकर चला गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल जब उसकी कच्ची नींद टूटी, तब दिन बहुत चढ़ आया था।

एक प्रचण्ड आँधी की भाँति सब कुछ उलट-पलटकर इस रात में कितनी ही घटनाएँ हो गई हैं। उन्हीं इधर-उधर फेंके हुए, बिखरे हुए चिह्नों के बीच में बड़ी देर तक उसका मन दुःखी रहा।

बिहारी तम्बाकू देकर बाहर चला जा रहा था। सतीश ने पुकारकर कहा, "सुनो बिहारी, कल किस समय वह यहाँ आई थी रे?"

सावित्री के चले जाने के बाद उसके सब प्रकार के दुर्भाग्य याद करके बिहारी का व्यथित मन भीतर-ही-भीतर रो रहा था। उसने मुँह झुकाए ही मृदु स्वर से कहा, "दोपहर को।"

"उसको किस प्रकार इस मकान का पता लगा?"

"यह तो मैं नहीं जानता बाबू।"

सतीश उसके मुँह की ओर कठोर दृष्टि से देखकर बोला, "क्यों रे

बिहारी, तू क्या सचमुच ही मुझे इतना बड़ा बैल पा गया है कि यह भी मैं नहीं समझ सकता ? सच्ची बात बता ?"

बिहारी आश्चर्य से दोनों आँखें फाड़कर मालिक के मुह की ओर देखता रहा।

सतीश ने कहा, "देख क्या रहा है ? क्या तू विपिन के यहाँ नहीं जाता ? सावित्री के साथ तेरी भेंट-मुलाकात, बातचीत नहीं होती ?"

"ना बाबू !" कहकर बिहारी के बाहर चले जाने को प्रस्तुत होते ही सतीश क्रुद्ध कण्ठ से बोला, "खड़ा रह, जाना मत ! क्या तूने उसको यहाँ आने के लिए सिखाया नहीं था ?"

बिहारी ने चुपचाप सिर हिलाकर बताया कि ना।

सतीश धमकाकर बोला, "फिर ना।"

बिहारी सिर झुकाये ही था, चौंककर उसने मुँह ऊपर उठाकर देखा।

सतीश कहने लगा, "फिर ना ? तो किस प्रकार उस हरामजादी को इस डेरे का पता लगा ? जा, तू भी उसी के पास जाकर रह, मुझे आवश्यकता नहीं है। मैं घर में शत्रु का पालन नहीं कर सकता। आज ही तुम जाओ—तुमको मैंने नौकरी से हटा दिया।"

बिहारी एकदम चुप रहा। केवल उसकी आश्चर्य से भरी दोनों आँखों के कोने से आँसुओं की बूँदें लुढ़क पड़ीं।

इस आँसू को सतीश ने देखा। क्षण-भर मौन रहकर उसने प्रश्न किया, "रात को वह कहाँ चली गई ?"

बिहारी आँख पोंछकर बोला, "चिट्ठी लिखकर अपना पता-ठिकाना बताने को कह गई है।"

क्षण-भर चुप रहकर सतीश फिर बोला, "बहुत कमजोर दिखाई पड़ी। बहुत बीमार थी शायद !"

बिहारी सिर हिलाकर बोला, "हाँ।"

"इसीलिए वहाँ स्थान नहीं मिला ?"

बिहारी ने फिर सिर हिलाकर सम्मति प्रकट की।

कुछ क्षण चुप रहकर सतीश फिर बोला, "लेकिन इस बार तुमको मैं सावधान कर देता हूँ बिहारी, मेरे डेरे में वह फिर न घुसने पावे या किसी

प्रकार का बहाना बनाकर मेरे साथ भेंट करने का प्रयत्न न करे। मेरी चाबी कहाँ है ? जाते समय कितने रुपये तूने दिए ?"

बिहारी चाबी निकालकर बोला, "रुपये नहीं दिए।"

"क्यों नहीं दिए ? तुझे तो मैंने देने को कहा था ?"

"उसने लेना नहीं चाहा।" कहकर बिहारी बाहर चला गया।

सतीश ने उसको फिर पुकारकर लौटा लिया। सावित्री उपस्थित नहीं थी, बिहारी उसे प्रेम करता है--इसलिए इस बिहारी को चोट पहुँचा सकने पर भी मानो कुछ क्षोभ मिट जाता है। उसके आगे आते ही सतीश ने पूछा, "उसके बाद तुम लोगों में क्या विचार-विमर्श हुए ?"

बिहारी फिर अपने को रोककर न रख सका। रुद्ध कण्ठ से बोला, "बाबू, सावित्री क्या परामर्श करेगी मेरे जैसे आदमी के साथ ? आपके चरणों में मैंने अपराध किए हों तो सिर झुका देता हूँ, जो इच्छा हो दण्ड दीजिए। बूढ़े मनुष्य को इस प्रकार दुःखी मत करिए।" यह कहकर वह फूट-फूटकर रो उठा।

सतीश के नेत्र भी एकाएक गीले हो उठे।

"अच्छा, तू जा !" कहकर उसको विदा करके फिर एक बार लेट रहा और नेत्र बन्द करके तम्बाकू पीने लगा। बड़ी ईर्ष्या से जलकर उसके मुँह से जो भी भाषा सावित्री के प्रति क्यों न निकली हो किन्तु उसके उस रोग-पीड़ित चेहरे की स्मृति भीतर-ही-भीतर उसको बहुत ही दुःखी कर रही थी। अब बिहारी की बातों से यद्यपि कुछ स्पष्ट नहीं हुआ, फिर भी रुख से जान पड़ा, मानो सचमुच ही वह और कहीं चली गई है। कहाँ चली गई है ? दो वर्ष पहले सती के नवनाट्य समाज में विल्वमंगल का अभिनय हुआ था। हठात् उसे वही बात स्मरण हो आई—तो भी उसको क्यों भूल नहीं सकता ? यह कैसा आश्चर्य है ! जो सावित्री दुष्ट ग्रह के समान उसको केवल निरन्तर दुःख पहुँचा रही है, जो अभी केवल कुछ ही घण्टे पूर्व अपने मुँह से स्वीकार कर गई है, वह उसकी कोई नहीं है--दोनों का कोई संबंध ही नहीं है—जिसके विरुद्ध आज उसकी घृणा का अन्त नहीं है, तो भी उसी के लिए क्यों सम्पूर्ण मन से हाहाकार उठ रहा है ! यह कैसी विचित्र बात है ! ऐसा भीषण विद्वेष और इतना बड़ा आकर्षण एक ही साथ किस प्रकार

उसके हृदय के भीतर स्थान पा रहे हैं। हाय रे ! यह यदि वह एक बार भी देख पाता, एक बार भी समझ पाता कि उसका हृदय अभी तक अचल-अटल भाव से इसी विश्वास को मजबूती से पकड़े हुए है कि सावित्री मेरी है, मुझसे बढ़कर उसके लिए संसार में और कोई भी नहीं है—कुछ भी नहीं है तो शायद उसका विस्मय कम हो जाता।

सतीश ने सावित्री के विरुद्ध स्वयं जो बातें कही थीं, वे भी उसके हृदय के इस रहस्य को जान पाता, तो उसके आश्चर्य का कोई कारण नहीं रह जाता--वह उस परमाश्चर्य का अर्थ स्पष्ट रूप से समझ जाता।

चौबीस

दो घण्टे बाद।

सतीश पथरियाघट्टे की ओर जाने के उद्देश्य से बाहर निकला और मन-ही-मन बोला, "उफ ! कैसा संकट है। पर अब मेरी जान बच गई—सिर से भूत टल गया !" मार्ग चलते-चलते सोचने लगा, किन्तु आज उपेन्द्र भैया को मुँह कैसे दिखाऊँगा ? आग पर हाथ रखने से क्या होता है, यह बात जैसे वह निश्चयपूर्वक जानता था, इसी प्रकार अपने बाल-बन्धु उपेन्द्रनाथ को भी पहचानता था। उसके निकट इस अपराध की क्षमा नहीं मिल सकती, आजन्म-स्नेह के बदले भी इस विषय में उपेन्द्र दा से सहारा पाने की आशा नहीं, यह बात उसकी अपेक्षा और अधिक किसे पता थी ?

किरणमयी के घर का सदर दरवाजा खुला था। वहाँ पहुँचकर सतीश चुपचाप खड़ा हो गया और भीतर घुसने के पहले एक बार सब बातें ठीक प्रकार से सोचने-विचारने लगा।

उसने सोचा कि केवल उपेन्द्र भैया ही उसके परम मित्र, गुरु और आदर्श हैं। उनसे बढ़कर अपना और कौन है ?

उन्हीं भैया के पास जाकर सिर ऊँचा कर खड़े होने का अब कोई उपाय नहीं रह गया। विचार की आँखों से उसने स्पष्ट रूप से देखा कि आज भेंट होते ही उनकी कठोर दृष्टि, बाल-बन्धुत्व स्नेह और प्रेम—सबको एकदम

भस्म कर देगी । वे कदापि क्षमा न करेंगे ।

इतना ही क्यों ? इस घर के दरवाजे भी निश्चय ही उसके लिए आज से सदा के लिए बन्द हो जाएँगे और यहाँ वह कौन-सा मुँह लेकर आएगा ।

किन्तु जो इतनी हानि, इतनी लाँछना का कारण है, जो ऐसा सर्वनाश कर गई, वह उसकी कौन थी ?

उसने अपने को बाँधने नहीं दिया, किन्तु मुझे बाँध गई। उसने आप तो दुःख भोग नहीं किया, किन्तु मुझे दुःख के सागर में डुबा गई। जिन बातों को मैं सच नहीं मान सकता, उन्हें मैं मिथ्या समझकर उड़ा भी नहीं सकता। यह कैसी विचित्र परिस्थिति है ! एक लम्बी साँस लेकर सतीश ने मन-ही-मन कहा, 'सावित्री ने यह जो दुःख दिया है, इसके लिए दुःख नहीं, किन्तु सच्ची-झूठी बातों में फँसाकर वह मुझे विडम्बना में क्यों छोड़ गई—दुःख केवल इसी बात का है ।'

तभी दासी ने हाथ के इशारे से कहा, "बहू आपको बुलाती हैं ।"

सतीश चौंक उठा, पूछा, "उपेन्द्र भैया आए हैं ?"

"हाँ, कल बड़ी रात को आए थे ।"

"उनके छोटे भाई और उनकी स्त्री भी हैं ?"

दासी ने सिर हिलाकर कहा, "ना तो, वे अकेले आए हैं और जब से आए हैं, बाबूजी के पास बैठे हैं ।"

"बाबूजी कैसे हैं ?"

दासी ने निःश्वास लेकर कहा, "अन्तिम समय है !"

सतीश ने क्षणेक चुप रहकर पूछा, "बहू कहाँ हैं ?"

"वे अभी स्नान कर रसोईघर में गई हैं ।"

सतीश और प्रश्न न कर यथासाध्य दबे पाँवों सीधा रसोईघर की ओर चला गया ।

किरणमयी शायद प्रतीक्षा ही कर रही थी ।

सतीश के दरवाजे पर पाँव रखते ही उत्सुकता से पूछा, "यह क्या, भीतर नहीं आए ? बाहर ही खड़े रहे ? चेहरा ऐसा उदास क्यों है ? मालूम होता है रात को सोए नहीं ।"

इस प्रश्न से सतीश का एक बार मुखमण्डल क्रोध से लाल हो, तुरन्त

शान्त हो गया। बोला, "हाँ, सारी रात जगकर उसके साथ आमोद-प्रमोद किया है। सुनकर सन्तुष्ट हुई हो? इसी से यहाँ न आया, यही न? किन्तु उपेन्द्र बाबू से कहो कि उन्होंने मुझसे कुछ पूछा क्यों नहीं? पूछते, तो मैं सब कुछ सच-सच बता देता। संसार में उनके अतिरिक्त और भी मनुष्य हैं जो सच बोल सकते हैं। इसके अलावा, वे मेरे ऐसे कोई सम्बन्धी भी नहीं हैं कि भयभीत होकर मुझे झूठ बोलना पड़ता। कह दो उनसे—समझ गईं न भाभी?" यों कह सतीश लौट चला।

सतीश के इस भाव ने, उसके उग्र कंठस्वर ने किरणमयी को किंकर्त्तव्य-विमूढ़ बना दिया। सतीश बड़े कमरे का दरवाजा पार कर रहा है, यह देख किरणमयी ने फुर्ती के साथ आगे बढ़कर पुकारा, "छोटे बाबू, कहाँ जाते हो? जरा सुन तो लो···"

सतीश घूमकर खड़ा हो गया। जोर से बोला, "क्या होगा सुनकर? सच कहता हूँ भाभी, ये इतने नीच हैं, मैंने यह स्वप्न में भी न सोचा था। ये जहाँ रहते हैं, वहीं मेरा रहना असम्भव हो जाता है। आज समझ गया हूँ कि पिताजी ने उस दिन क्यों मुझे उस प्रकार का पत्र लिखा था, किन्तु उस नीच से जाकर कह देना कि मैं उसकी चिन्ता नहीं करता।"

किरणमयी ने व्याकुल होकर पूछा, "किसकी? क्या कहते हो छोटे बाबू, कुछ भी मेरी समझ में नहीं आता?"

"ठीक कहता हूँ भाभी, ठीक कहता हूँ। उनसे कहते ही वे सब कुछ समझ जाएँगे। किन्तु आज तुमसे भी कहे जाता हूँ—तुमने मेरे लिए अपने घर का द्वार बन्द कर दिया है। एक दिन समझोगी कि सतीश चाहे कितना ही बुरा हो, उस पर विश्वास कर किसी ने धोखा नहीं खाया है। एक बात और उनसे कह देना—उनके मन में जो आवे, जहाँ तक हो सके, मेरे सर्व-नाश का प्रयत्न करें, किन्तु मैं अब उन्हें अपना मुँह न दिखाऊँगा और वे भी मुझे···।" अचानक सतीश द्वार की ओर देखकर रुक गया और फिर तुरन्त ही मुँह फेरकर आँधी के समान शीघ्रता से चल पड़ा और उसकी दृष्टि का अनुकरण कर किरणमयी की दोनों आँखें पत्थर की मूर्ति के समान स्तब्ध रहने के बाद उपेन्द्र के मुख पर जा पड़ीं। वे शोर-गुल सुनकर रोगी के पास से उठ आए थे और किवाड़ खोलकर खड़े-खड़े सुन रहे थे।

एक बार किरणमयी ने सोचा कि उपेन्द्र इस विषय में कुछ पूछताछ अवश्य करेंगे, किन्तु उन्होंने कुछ भी न पूछा। चुपचाप किवाड़ बन्द करके वे भीतर चले गए।

किरणमयी के आश्चर्य की सीमा न रही कि यह सब क्या हुआ?

सतीश अपने उपेन्द्र भैया का इस प्रकार अपमान क्यों कर गया? वह रसोईघर में लौट गई और स्वप्न की-सी अवस्था मन में लिए काम-काज करने लगी। किन्तु मन के भीतर गम्भीर विस्मय हजारों रूप धारण कर निरन्तर चक्कर लगाने लगा। उसके घर में जो बहुत बड़ी विपत्ति शीघ्र ही आने वाली थी, क्षण-भर के लिए वह उसे भी भूल गई, केवल सोचने लगी कि कल शाम के बाद सतीश घर लौट गया था। इसके बाद इसी एक रात के भीतर ऐसी क्या घटना घटी जिससे वह इस प्रकार पागलों के समान बातें करके चला गया?

एक बात भी जानने का प्रयत्न उपेन्द्र ने नहीं किया। उसने देखा कि थोड़ी देर के लिए उपेन्द्र के सूखे मुख पर मानो एक बार असह्य आश्चर्य का भाव प्रकट हुआ, किन्तु यह बात सच है या केवल उसके मन की कल्पना, इसका भी वह निश्चय न कर सकी।

उपेन्द्र चुपचाप रोगी की शय्या के पास अपने पूर्व स्थान पर जा बैठे। वे स्वभाव से ही अत्यन्त धीर, विवेकी और गम्भीर हैं। सहसा किसी के पक्ष में या विपक्ष में कोई धारणा नहीं बाँधते, किन्तु उस सहज निर्मल विचार की क्षमता उनमें उस समय किसी प्रकार भी न रह सकी, जब कल रात को वे सुरबाला आदि को ज्योतिष के घर पहुँचाकर बड़ी रात बीते अकेले हारान के घर में आए थे।

उस समय हारान का श्वास-कष्ट बढ़ गया था। उनमें चेतना थी या नहीं, यह भी अनुमान करना कठिन था। चारों ओर दृष्टि डालने से यह घटना उन्हें बड़ी भयंकर-सी मालूम हुई थी। किसी के मन में जरा भी चंचलता या व्याकुलता नहीं थी, इसके पहले उन्होंने जो दो-एक मृत्यु घटना अपनी आँखों से देखी थीं, उनसे यहाँ ढंग-ढर्रे बिलकुल भिन्न थे। रोगी के सिरहाने तेल का दीपक जल रहा था। माँ घर के एक कोने में चटाई बिछाए अब भी सो रही थी। केवल किरणमयी जग रही थी, किन्तु उसके व्यवहार

और स्वर में जरा भी शंका या उद्वेग का लक्षण न देखकर उनको ऐसा मालूम हुआ, मानो वह स्वामी की मृत्यु की प्रतीक्षा करती हुई बैठी है। 'माँ' का भी कैसा निर्विकार भाव है—वह अपने ही रोग से बेचैन है।

उपेन्द्र ने कल रात जो कुछ देखा था, उससे उन्हें यह स्पष्ट जान पड़ा कि केवल मृत्यु की विभीषिका ही इन दोनों रमणियों के भीतर है, यह बात नहीं, बल्कि उसका जीवित रहना ही एक बाँध के समान बन गया और वह इस छोटे-से परिवार के सुख-दुःख के प्रवाह को रोककर और कूड़ा-कर्कट बटोरकर भीतर-ही-भीतर बहुत दुःख दे रहा है। चाहे जैसे हो, इस अवरोध से छुटकारा पाते ही इन स्त्रियों के सिर से एक भारी संकट टल जाएगा।

आज भी किरणमयी को उपेन्द्र पहचान न सका। वह अवसर ही उन्हें न मिला, किन्तु सतीश ने पहचान लिया था। इससे पहले जिस रात को इन लोगों ने हारान के बुलाने पर इस घर में पैर रखे थे, किरणमयी के उस रात के व्यवहार से सतीश तो भूला था ही, पर उसने अपने मनोभावों को स्पष्ट शब्दों में बताकर, सौ-सौ मुँह से अपनी भूल स्वीकार कर उससे क्षमा माँगकर भाई का सम्बन्ध जोड़ लिया था, किन्तु उपेन्द्र के मन में उस दिन जो दाग बैठ गया था, वह तो था ही, कल रात की याद ने उस दाग पर और भी स्याही फेर दी और कहीं किसी प्रकार की अस्पष्टता नहीं रहने दी।

इन दोनों स्त्रियों के सम्बन्ध में उनके मन का भाव भीतर-ही-भीतर क्या और कैसा है, अब तक उन्होंने इस विषय पर विचार कर कोई निश्चित धारणा मन में बैठाने का भी प्रयत्न नहीं किया। जब कभी यह बात मन में पैदा हुई तभी उसे बलपूर्वक दबा दिया, किन्तु गत रात्रि को उस घर में प्रवेश करने के बाद मन-ही-मन इस सम्बन्ध में तर्क-वितर्क करने को उन्हें अवसर ही न मिला। वहाँ पहुँचते ही उनका चित्त माँ के प्रति वितृष्णा से और स्त्री के प्रति घृणा से परिपूर्ण हो गया।

थोड़ी देर के बाद जब किरणमयी ने चाय का प्याला लिए कमरे के भीतर पाँव रखा, तब उपेन्द्र ने अपनी दृष्टि रोगी पर स्थिर रखी और उसने जब प्याला उनके आगे रख दिया तब भी उसे छूने के लिए उनके हृदय ने स्वीकार नहीं किया।

सवेरे सतीश के आने और जाने की बात अघोरमयी को मालूम न थी।

उस समय वह अपने काम-काज में लगी थीं। इस समय दबे पाँवों कोठरी में आकर लड़के की ओर देख रोने लगीं। किसी ने उनको धीरज नहीं बँधाया, मना भी नहीं किया। सहसा चाय के प्याले की ओर उनकी दृष्टि जा पड़ी। उन्होंने रोती आवाज में पूछा, "क्यों बेटा, चाय नहीं पी ?"

उपेन्द्र ने कहा, "ना।"

अघोरमयी अत्यन्त व्याकुल होकर बोली, "ना बेटा, यह न होगा—सारी रात जगे हो, कहीं तुम बीमार हो जाओ तो हमारी क्या दुर्गति होगी ?"

कुछ न बोले उपेन्द्र, केवल अघोरमयी की ओर अत्यन्त विरक्ति के साथ देखकर फिर रोगी की ओर देखने लगे। इस तीव्र दृष्टि का अर्थ समझना अघोरमयी का काम न था। किन्तु उस दृष्टि का अर्थ समझा किरणमयी ने। अपने मरते हुए बेटे के पास बैठकर दूसरे के लड़के के लिए माता के मुँह से ऐसा असह्य, व्याकुलतापूर्ण आग्रह कितना अनुचित और अप्रिय था, यह उसकी तीव्र बुद्धि से छिपा न रहा। फिर भी, उपेन्द्र इसी मामूली अनुरोध के विरुद्ध क्यों इस प्रकार अड़ गए, इसका कोई कारण वह न समझ सकी। उपेन्द्र का यह व्यवहार किरणमयी को असंगत-सा प्रतीत हुआ।

आग्रह-प्रत्याग्रह हो चुकने पर डाक्टर आए।

डाक्टर साहब दो-तीन मिनट रोगी की जाँच-पड़ताल करने के बाद परीक्षा कर अन्तिम उत्तर देकर चले गए, साथ ही कह गए कि आगामी रात बीतने के पहले मृत्यु की सम्भावना नहीं है।

उस समय दस बजे थे।

किरणमयी ने जरा निकट आकर कहा, "आपको अपने लोगों को एक बार देख आना चाहिए।"

किसी ओर न देखकर उपेन्द्र ने कहा, "वैसे कोई खास आवश्यकता नहीं। उन्हें सब-कुछ ज्ञात है।"

किरणमयी ने कहा, "तब भी एक बार हो आइए, अभी कोई भय की बात नहीं है। तब तक जरा विश्राम कर आइए।"

उपेन्द्र चुप रहा।

किरणमयी ने मृदु और दृढ़ स्वर से कहा, "जरा सोचकर देखिए,

स्नानाहार न कर भूखे-प्यासे इस प्रकार सामने बैठे रहने का कोई फल नहीं। गाड़ी से आए हैं, कल सारी रात इस प्रकार बैठे रहे—इस पर आज सारा दिन और सारी रात इसी प्रकार बैठे रहने से बीमार हो सकते हैं। सतीश बाबू नहीं हैं। इसके अतिरिक्त इस समय आप बहुत थके मालूम होते हैं। मैं यहाँ बैठती हूँ—तब तक आप जरा घूम आइए। कहा मानिए, उठिए।"

उपेन्द्र ने जरा मुँह ऊपर उठा, दृष्टि नीचे कर ली। उनके आगे किरणमयी ने इतनी बातें कभी पहले न की थीं। इस कण्ठस्वर में ताने का तनिक भी भाव नहीं था। उसमें एक दृढ़ता थी और कोमलता भी। उपेन्द्र को किरणमयी का यह प्रथम स्नेहपूर्ण कातर आग्रह बहुत ही अच्छा लगा। वे पहले एक रात को जैसे तीव्र कंठस्वर, जैसी कठिन भाषा उसके मुँह से सुन गए थे, उसमें और इसमें आकाश-पाताल का अन्तर जान पड़ा।

उपेन्द्र ने उसकी ओर देखे विना पूछा, "आप लोगों का दिन आज कैसे बीतेगा ?"

किरणमयी ने कहा, "यह बात क्यों पूछते हैं—आज हम लोगों पर दुःख का जो पर्वत टूटने वाला है उसमें कोई भाग ले तो नहीं सकेगा। आप यह देरी न करें, इसी समय उठें।"

सत्य बात कहने का यह कितना शान्तिमय ढंग था।

कुछ देर के लिए उपेन्द्र सब-कुछ भूल-से गए, आश्चर्य से दोनों आँखें फाड़कर वे किरणमयी के मुँह की ओर देखने लगे। पहले ही उनकी आँखें उसकी माँग के सिन्दूर पर पड़ीं, जो स्त्री के सौभाग्य का सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है, इस जीवन का परम कल्याण अब भी विद्यमान है, यहाँ तक कि जरा मलिन भी नहीं हुआ है—सौभाग्य की सब महिमा लिए पताका के समान गर्व के साथ वह अब भी उच्च स्थान पर विराजमान है। सहसा एक लम्बी श्वास के साथ उपेन्द्र का सारा शरीर काँप उठा।

किरणमयी उनके मनोभाव को भी बहुत कुछ समझ गई परन्तु अपने अन्तःकरण के दुःख का आभास तक उसने प्रकट होने नहीं दिया, कहा, "आप उठिए, मैं इनको थोड़ा दूध पीने के लिए लाए देती हूँ।"

उपेन्द्र जरा हटकर बैठ गए, पूछा, "दवा ?"

किरणमयी बीच में ही व्यथित स्वर से बोल उठी, "ना-ना, अब दवा

की आवश्यकता नहीं रही। बहुत-सी दवाएँ बलपूर्वक खिला-पिला चुकी हूँ। अब और दवा देना नहीं चाहती।"

उपेन्द्र ने प्रतिवाद नहीं किया। दवा की आवश्यकता नहीं, यह वे अच्छी प्रकार समझते थे।

स्वामी को दूध पिलाकर उसने उपेन्द्र से फिर अनुरोध किया। उपेन्द्र खड़े हो गए और बहुत शीघ्र स्नान-भोजन कर लौट आने की बात कह द्वार की ओर बढ़े। उन्हें जाते देख किरण ने मृदु स्वर से पूछा, "आते समय सतीश बाबू के घर से होते आएँगे क्या ?"

उपेन्द्र लौटकर खड़ा हो गया, पूछा, "क्यों ?"

किरण ने कहा, "मेरे पास तो कोई आदमी नहीं कि उनके घर भेजती, इसी से कहा है कि यदि आप एक बार···"

सहसा उपेन्द्र ने समझा कि इस बुलावे के प्रस्ताव से शायद उन्हीं को विशेष रूप से ठोकर लगाई गई है। इसीसे उन्होंने रूखे स्वर में पूछा, "उससे क्या आपको कोई विशेष कार्य है ?"

उसका आशय किरणमयी समझ गई, किन्तु अपने कण्ठस्वर से उसने उसे और भी परिस्फुट नहीं किया, बल्कि बिल्कुल अस्वीकार कर स्वाभाविक घबराहट के साथ कहा, "इस दुःसमय में तो मुझे सबकी आवश्यकता है। इसके सिवा, वे एकाएक आप पर इस प्रकार बिगड़कर क्यों चले गए, यह भी मालूम नहीं हो सका। इसी से सोचती हूँ कि उनको एक बार बुलाना ही अच्छा होगा।"

उपेन्द्र ने चिढ़कर कहा, "आप इसके लिए चितिन्त न होइए, वह तो मेरा ही मित्र है। उसका भला-बुरा मैं अच्छी तरह समझ लूँगा। फिर भी, यदि आपको अपना कोई विशेष काम हो, तो उसके पास आदमी भेज सकता हूँ, मुझे स्वयं जाने का अवकाश न मिलेगा।"

धीरे से कहा किरणमयी ने, "यही ठीक होगा। आदमी भेज दें। वह भी मेरा भाई है न, अतः उसे आना ही चाहिए। बन्धु से झगड़कर ही समझ-बूझ ले। बहन के सिर पर जब ऐसी विपत्ति आ पड़ी है, अब ऐसे समय में क्या उसे मुझे त्यागकर, मुझे दण्ड देकर चला जाना चाहिए और यदि वह मुझे ऐसी अवस्था में छोड़ भी दे, तो मैं बहन होकर उसे क्यों कर त्याग

सकती हूँ ?"

"ना-ना, इसकी क्या आवश्यकता है, मैं सूचना भेज दूंगा।" कहकर उपेन्द्र बाहर निकल आए। उन्होंने मन-ही-मन कहा—कौन किसका कितना निकट सम्बन्धी बन जाएगा, यह विचारने का मुझे क्या काम है, किन्तु आत्मीयता की जो धारा एक दिन केवल उसके इस परिवार के बीच से होकर ही बहने का मार्ग रखती थी, वह आज उनको लाँघकर शायद दूसरे मार्ग से होकर बह रही है, इसी विचार ने उन्हें चोट पहुँचाए बिना न छोड़ा। बन्धु के साथ वह जो चाहे कर सकता है, किन्तु उनके इस भाई-बहन के निकटतम सम्बन्ध के विषय में किरणमयी किसी बन्धु को भी हस्तक्षेप करने न देगी, यह बात वे बिल्कुल ही स्पष्ट रूप से समझ गए। वस्तुतः उनके भले-बुरे के विषय में सोच-विचार या चिन्ता करने का अब अधिकार नहीं रहा उपेन्द्र को।

जल्दी-जल्दी उस तंग गली को पार कर उपेन्द्र सड़क पर पहुँचे और एक गाड़ी बुलाकर उस पर जा बैठे। अन्धकार की ठंडक से भरे, मृत्युवन के बाहर शहर के प्रकाशपूर्ण, यान-वाहन से चंचल और कोलाहल से जाग्रत् राजपथ पर आ पहुँचने पर भी उनका दुःख दूर न हो सका। उनके मन के भीतर जो आग जल उठी थी, वह जलती ही रही।

आवश्यकता होने पर किरणमयी कैसा उग्र रूप धारण कर सकती है, यह एक दिन उन्होंने देखा था, किन्तु उसका शान्तिपूर्ण विरोध भी उससे कम कठोर नहीं, आज की कुछ बातों से ही उनको इसका अनुभव हो गया। सतीश के साथ उनका कुछ विवाद हो गया है, किरणमयी को यह मालूम हो गया है, यह भी उपेन्द्र समझ गए, किन्तु विवाद का कारण, चाहे जो कुछ हो, आवश्यकता पड़ने पर उसका विचार वह स्वयं ही करेगी।

उपेन्द्र को किसी प्रकार हाथ भी डालने न देगी, यह बात बार-बार उनके मन के भीतर ठोकर मार-मारकर उन्हें निरन्तर कहने लगी कि यह किरणमयी का हितैषी है और सतीश चाहे जो करे और जैसा ही क्यों न हो, वह अब उसका भाई लगता है।

चौबीस

नारी के सम्बन्ध में उपेन्द्र को अपना मत परिवर्तन करने का समय आ गया। उपेन्द्र के मन में नारियों के प्रति एक अवज्ञा थी। वे उन्हें 'अबला' ही समझते थे और इससे उनके प्रति अवज्ञापूर्ण दया का भाव रखते थे, परन्तु आज उस पर एक साथ ही धक्का लगा। आज उन्हें मन-ही-मन स्वीकार करना पड़ा कि यह धारणा सत्य नहीं। ऐसी स्त्रियाँ भी हैं जिनके आगे पुरुषों का ऊँचा मस्तक आप ही झुक जाता है, वश नहीं चलता, सिर झुकाना पड़ता है। ऐसी स्त्री किरणमयी है। उस रात को जव प्रथम परिचय हुआ था, इसके सम्बन्ध में उपेन्द्र ने सतीश के मुँह पर कुछ और ही कहा था और मन-ही-मन सकरुण घृणा के साथ सोचा था कि यह उसी प्रकार की उग्र प्रकृति वाली प्रचण्ड रमणी है, बिलकुल छोटी-सी बात पर ज्ञानशून्य हो उन्मत्त बुद्धि का आश्रय लेकर बात-ही-बात में विष खाकर या गले में फाँसी लगाकर वीभत्स काण्ड कर बैठती है। पर आज उन्होंने देखा और समझा कि नहीं, यह बात नहीं है। यह अत्यन्त संकट के समय भी मस्तिष्क ठीक रख सकती है और लेशमात्र भी उग्र न होकर अनायास ऐसी प्रबल शक्ति का प्रयोग कर सकती है कि उसके विरुद्ध खड़ा होना मर्दों के लिए भी असम्भव है। अतः सतीश के इस घर में आने-जाने के सम्बन्ध में उनकी कर्तव्य-बुद्धि चाहे जो उपदेश दे, किन्तु किरणमयी के बुलावे की सूचना आज स्वयं जाकर या आदमी भेजकर उसको पहुँचानी ही होगी।

चलते-चलते इस बात की वे जितनी ही आलोचना करने लगे उतना ही उनका मन दुःखी होने लगा। उपेन्द्र सतीश को बहुत ही अधिक प्यार करते थे, इसी से आज उस पर उनकी घृणा की भी सीमा नहीं थी। उसने जो अपराध किया है, उसका विचार और किसी दिन होगा, पर आज वह उनके सामने आकर खुल्लमखुल्ला उसने सदा के अधिकृत बड़े भाई के सम्मानित आसन को बड़े अभिमान के साथ पैरों से मसलकर और कुचल कर चला गया है। इस प्रकार अपमानित करने में उसने तनिक भी संकोच नहीं माना और किरणमयी ने भी उसके इस व्यवहार को देखा है। सब दुखों

से बढ़कर यह लज्जा उसके हृदय में चुभ-सी गई है। सतीश आज ऐसी बातें कहकर उपेन्द्र को अपमानित कर गया है, जो उसे न कहनी चाहिए थीं। इस अपमान की बात तो शरीर में प्राण रहते उपेन्द्र किसी से कह भी नहीं सकते। जिसे वे बड़ी ऊँची दृष्टि से देखते थे, सबसे अधिक स्नेह की दृष्टि से देखते थे, वही सतीश आज पतन के ऐसे गहरे गढ़े में जा पहुँचा है कि उनको ऐसी गन्दी गालियाँ दे गया। उसने उनकी आयु का भी आदर न किया।

कुछ दिन पूर्व उपेन्द्र को एक गुमनाम पत्र से सतीश के सम्बन्ध की बातें मालूम हुई थीं। वह पत्र राखाल ने लिखा था। जब दोनों में मित्रता थी, तब सतीश के मुँह से ही उसने उपेन्द्र के अलौकिक गुणों की बातें सुनी थीं। सच तो यह है कि सतीश का परिचित ऐसा कोई न था, जिसने सतीश के मुँह से उपेन्द्र बाबू की विद्या, बुद्धि और विशेषत: उनके वर्फ के समान शुभ्र और निष्कलंक चरित्र की ख्याति न सुनी हो। सतीश को सब गर्वों में बड़ा गर्व था उपेन्द्र भैया का और उनके अनुपम प्रेम का। वहाँ चोट पहुँचाने के समान मर्मान्तक आघात सतीश के लिए और कुछ हो ही नहीं सकता था, धूर्त राखाल ने इस बात को भली-भाँति समझ लिया था।

उस पत्र का उस समय कोई प्रभाव नहीं पड़ सका था। उपेन्द्र ने चिट्ठी पढ़कर फाड़ डाली थी। पत्र भेजने वाले के विषय में मुस्कराते हुए कहा था, 'तुम चाहे कोई भी हो, और चाहे सतीश की जितनी गोपनीय बातें क्यों न जानते हो, मैं तुमसे भी अधिक उसे जानता हूँ।' और दो दिन के बाद जब सतीश के पिता ने पूछा तब कहा था कि, "सतीश अच्छी तरह है। मालूम होता है, किसीसे लड़ाई-झगड़ा कर बैठा है, इसी से पहला घर छोड़ कर दूसरे में चला गया। उसी मनुष्य ने एक गुमनाम चिट्ठी भेजकर उसके सम्बन्ध में कुछ व्यर्थ बातें लिख भेजी हैं।"

वृद्ध ने उद्विग्न मन से पूछा था, "कैसी व्यर्थ बातें, उपेन्द्र?" उपेन्द्र ने उत्तर दिया था कि उन सब झूठी बातों को सुनकर आपका समय नष्ट करना अच्छा नहीं। मैं तो सतीश को भली-भाँति जानता हूँ। मैं शपथ खा के यह बात कह सकता हूँ कि वह ऐसा कोई भी काम न करेगा, जिससे किसी के सामने सिर नीचा करना पड़े! आप निश्चिन्त रहिए।

सावित्री को अपनी आँखों देखने पर उसके उस ध्रुव—अविचल विश्वास की मूल पर मानो अचानक वज्राघात हुआ।

सतीश के घर में बन-ठनकर बैठी अकेली रमणी! उसमें कितनी गहरी लज्जा थी और लज्जा से भी बढ़कर उन दोनों बड़ी-बड़ी आँखों की व्यथित-व्याकुल दृष्टि में जो त्रास था वह स्पष्ट दिखाई दे रहा था। इसमें भूल या भ्रम की गुंजाइश नहीं है। पलभर में उपेन्द्र के मन में राखाल की वह भूली हुई चिट्ठी आदि से अन्त तक आग के अक्षरों में जल उठी थी। पूछने की या सन्देह करने की फुर्सत न थी।

राखाल ने उस चिट्ठी को विश्वास योग्य बनाने में कोई भी कमी नहीं की थी। उसमें सावित्री का नाम तो था ही, नाना प्रकार के विवरणों में उसके बाएँ गाल पर के एक छोटे काले तिल का भी उल्लेख करना वह न भूला था। वह चिह्न ऐसा स्पष्ट था कि सावित्री पर दृष्टि पड़ते ही उपेन्द्र की आँखों ने उसे देख लिया था।

सतीश को सावधान करें या न करें यह विचार करते-करते ही किराये की गाड़ी ज्योतिष साहब के घर के सामने जा पहुँची और फाटक में घुसते ही उनकी उत्सुक दृष्टि को मानो किसी ने घर के दक्षिण के दुमंजिले कमरे की ओर आकर्षित कर लिया।

उपेन्द्र ने ऊपर की ओर आँख उठाकर देखा। उन्होंने जिसकी निस्संशय प्रत्याशा की थी, वहाँ वास्तव में वही उपस्थित थी। खुली हुई लम्बी खिड़की पर एक स्थिर प्रतिमा मानो मार्ग पर मन-प्राण बिछाये खड़ी थी। इतनी दूर से अच्छी तरह कुछ भी दिखाई देना असम्भव था, तथापि उसके मन की आँखों ने उन होंठों की मन्द मुस्कान और पलक के कानों के जल की रेखा तक देख ली। उपेन्द्र की इतनी देर की चिन्ता-ज्वाला, अभिमान और अपमान के घात-प्रतिघात का दुःख एक साथ ही विलीन हो गया, केवल यही एक बात मन में जाग उठी कि सुरबाला ने कल की सारी रात और आज का यह सवेरे का पहर न मालूम कैसे बिताया होगा! यदि उसकी चलती तो वह उसे घर से बाहर निकलने भी न देती। उसने इस अपरिचित शहर में गहरी रात्रि में अपने अस्वस्थ स्वामी को अकेले घर से जाने देकर इतना लम्बा समय कैसे बिताया, यह सोचकर उन्हें हँसी भी आई और

आँखों के कोनों से पानी भी आ गया।

सूचना पाते ही सरोजिनी दौड़ती हुई बाहर के बरामदे में आ पहुँची।

उपेन्द्र को देखते ही उसकी आँखों पर और मुँह पर हँसी चमक उठी। गाड़ी पर से उनके उतरते-उतरते बोल उठी, "जरा भी न ठहरिए, एकदम ऊपर जाइए।"

उपेन्द्र ने अपनी मुखमुद्रा गंभीर बनाकर एकदम ऊपर चलने का कारण पूछना चाहा, पर उन्हें हँसी आ गई।

सरोजिनी ने मुस्कराकर कहा, "कल रात-भर न वे स्वयं सोईं, न मुझे सोने दिया। सारी रात गाड़ियों का शब्द सुनती और खिड़की खोलकर सड़क को देखती रहीं। यह क्या आप चिट्ठी लिखने बैठे? ना-ना, यह न होगा? एक बार मिल तो लीजिए, फिर जो इच्छा हो कीजिए। जाइए।"

एक छोटी मेज पर दवात-कलम थी। कागज का पैड भी था।

उपेन्द्र ने एक बार कागज निकालकर कहा, "चिट्ठी लिखने के बाद जो कहो, कर सकता हूँ, किन्तु पहले नहीं। पाँच मिनट से अधिक न लगेगा—चाहो तो जाकर सूचना दे दो।"

सरोजिनी ने पूर्ववत् मुस्कराते हुए कहा, "मेरी सूचना पहुँचाने की आवश्यकता नहीं। उन्होंने ही मुझे सूचना देकर बाहर भेजा है। अच्छा, पाँच मिनट तक मैं यहीं खड़ी रहती हूँ। आपको साथ लेकर जाऊँगी।"

उपेन्द्र और कुछ उत्तर न देकर चिट्ठी लिखने लगे। लिखते समय उनके मुँह पर क्रोध और कष्ट के जो स्पष्ट चिह्न प्रतिफलित हो रहे थे, उनके पास खड़ी सरोजिनी देख रही थी; किन्तु उपेन्द्र यह न जान सके।

चिट्ठी समाप्त कर, उसे लिफाफे में वन्द कर और लिफाफे पर पता लिखकर उपेन्द्र ने सिर उठाया।

कोचवान ने आकर सरोजिनी से कहा, "गाड़ी तैयार है।"

उपेन्द्र ने कहा, "तुम बाहर जाओगी क्या?"

सरोजिनी ने कहा, "हाँ, मैंने अपना छोटा पियानो मरम्मत करने को दिया है, उसे एक बार देख आऊँगी।"

उपेन्द्र ने प्रसन्न होकर कहा, "तो जरा दो गली घूमकर यह चिट्ठी

साईस के हाथ उसके घर पर भेज देना—पास ही है, दूर नहीं।"—कहकर उपेन्द्र ने सरोजिनी के बढ़ाये हुए हाथ पर चिट्ठी रख दी।

कुछ देर तक सरोजिनी लिफाफे के पते को देखती रही। पर नाम और पते की पंक्तियाँ पढ़ने में उसे इतना समय नहीं लगा, जितना इसे देखने में लगाया। फिर कुछ सोचकर उसने कहा, "सतीश बाबू हमारे यहाँ क्यों नहीं उतरे?"

"वह तो हम लोगों के साथ नहीं आया। सतीश तो प्रायः यहीं रहता है।"

सरोजिनी यह सुनकर चौंक उठी। इस समय उपेन्द्र के मन की ऐसी अवस्था न थी कि वे सरोजिनी के चेहरे पर होने वाले इस परिवर्तन को देख पाते।

सरोजिनी ने अपनी लज्जा दबाकर सहजभाव से बोलने का प्रयत्न किया, "इतने दिनों से पास में ही रहकर वे कभी इस ओर न आए।"

उपेन्द्र कुछ सोच रहे थे, बोले, "शायद आप लोगों की बात उसे याद न आई होगी।" बात बिल्कुल मामूली थी, किन्तु सुनने वालों के कानों को बहुत ही कठोर मालूम हुई। खैर, उपेन्द्र ने पूछा, "दिवाकर कहाँ है? वह तो दिखाई नहीं पड़ता?"

"वे भैया के साथ हाईकोर्ट घूमने गए हैं। चलिए, आपको साथ लेकर अंदर पहुँचा आऊँ।" कहकर सरोजिनी ने घर के अन्दर प्रवेश किया।

लगभग बीस मिनट के बाद जब वह लौटकर गाड़ी पर जा बैठी, तब गाड़ी उसकी आज्ञानुसार सतीश के घर की ओर बड़ी तेज गति से दौड़ चली। सरोजिनी का हृदय सहसा काँप उठा और गाड़ी ज्यों-ज्यों आगे बढ़ने लगी, त्यों-त्यों उसके हृदय की धड़कन बढ़ने लगी।

उसके मन में यह बात उठने लगी कि आज वह एक ऐसे कार्य का भार लेकर चली है, जिसकी सफलता पर मानो उसके निजी भविष्य का भला-बुरा निर्भर है।

गाड़ी सतीश के घर के सामने आ खड़ी हुई और साईस पत्र हाथ में लेकर उतर गया। सरोजिनी गाड़ी के एक कोने में बिल्कुल सिमटकर बैठी थी। उसने बड़े ध्यान से साईस द्वारा दरवाजे का कड़ा खड़खड़ाना सुना।

क्षण-भर बाद द्वार खुलने की आवाज हुई, उसके भीतर जाने का अनुमान किया और इसके बाद प्रतिक्षण वह किसी का सुपरिचित गम्भीर कंठ-स्वर सुनने की आशंका और आकांक्षा से उत्कंठित होती रही। वह निश्चय-पूर्वक अनुमान करती थी कि साईस के द्वारा गाड़ी और गाड़ी के भीतर बैठनेवाली की सूचना पाकर सतीश स्वयं ही आ उपस्थित होगा।

उसके मन में एक बार भी यह बात न उठी कि जो व्यक्ति अब तक इतना पास रहने पर भी इस प्रकार भूला रह सकता है, उसे यह समाचार तनिक भी विचलित नहीं कर सकता।

फिर साईस का कंठ-स्वर द्वार के पास सुनाई पड़ा। द्वार वन्द भी हो गया और क्षण-भर बाद ही साईस चिट्ठी लिए वापस आ गया, बोला, "बाबू घर में नहीं हैं।"

"घर में नहीं।" सुनकर कुछ काल के लिए सरोजिनी के हृदय ने मानो शान्ति पाई, झुककर कहा, "चिट्ठी क्यों लौटा लाया, दे आ।"

साईस ने कहा, "बाबू कलकत्ते में नहीं हैं। सुबह दस बजे की गाड़ी से घर चले गए हैं।"

उसे यह सुनकर एक बार अपने मन में सतीश का घर देख आने की उसकी इच्छा बलवती हुई। इसका ठीक कारण वह स्वयं भी न समझ सकी किन्तु उसी क्षण गाड़ी से उतर पड़ी और द्वार खुलवाकर घर के अन्दर घुस गई। रसोइये को साथ लेकर उसने उस मकान को सर्वत्र घूम-फिरकर देखा, नीचे उतरते समय रस्सी की एक अरगनी पर लटकती अधमैली चौड़े किनारे की साड़ी पर उसकी दृष्टि जा पड़ी।

रसोइये ने पूछने पर कहा, "बाईजी की है।" सावित्री ने शाम को स्नान कर अपनी गीली साड़ी सूखने के लिए फैला दी थी, वही अब तक लटक रही थी।

सरोजिनी ने विस्मित हो, इन बाईजी के सम्बन्ध में कई प्रश्न किए। उन प्रश्नों के उत्तर में उसे जो बातें मालूम हुईं, उनसे वह और भी आश्चर्य में पड़ गई। जो बातें साधारणतः नहीं होतीं और जिनके भीतर से पाप की दुर्गन्ध आती है, ठीक प्रकार से न समझ सकने पर भी मनुष्य अपनी बुद्धि के अनुसार उनके विषय में एक धारणा बना लेता है। इन ब्राह्मण देवता ने भी

उपेन्द्र के स्त्री सहित आने, उलटे पाँव वापस जाने और आज सवेरे मालिक के अचानक घर चले जाने की घटनाओं के विषय में यह अनुमान किया था कि बाईजी के कारण ही ये बातें हुई हैं! खासकर सतीश का अस्वाभाविक चिन्तित और उद्भ्रान्त भाव किसी मनुष्य की दृष्टि से छिप नहीं सकता था। इसी से उसने सावित्री की बीमारी आदि की अनेक बातें बताईं और यह भी कहा कि उसी को देखने-सुनने के लिए ही शायद उसके मालिक को यों व्यस्त और व्याकुल होकर जाना पड़ा। सरोजिनी को यह एक नई बात मालूम हुई कि उपेन्द्र आदि पहले इसी घर में आए थे, सामान तक उतार लिया गया किन्तु तुरन्त ही सब सामान उठवाकर उसी गाड़ी से वापस चले गए। उन लोगों में से किसी ने सतीश का नाम तक नहीं लिया। इसके बाद उपेन्द्र बाबू ने यह पत्र लिखा, इससे स्पष्ट मालूम होता है कि उन्हें अपने भाई के अकस्मात् चले जाने की खबर मालूम नहीं है। इस रमणी के संबंध में उत्सुकतापूर्ण नाना प्रकार के प्रश्न कर एक-एक कर उसकी आयु और रूप-रंग आदि की जो सूचनाएँ मिलीं, वे सत्य को लाँघकर बहुत ऊपर जा पहुँची थीं। फिर लौटकर जब सरोजिनी गाड़ी पर बैठी उस समय पियानो मरम्मत कराने की उसकी इच्छा जाती रही और हृदय का भीतरी भाग अज्ञात बोझ से दब गया। यह रहस्यमयी कौन है और कैसे यहाँ आई, यह उसे मालूम न हो सका, 'पर दाल में कुछ काला जरूर' होने का अनुमान उसके मन में दृढ़ हो गया।

सतीश और किरणमयी पर उपेन्द्र को चाहे जितना क्रोध और चाहे जितनी घृणा क्यों न हो, किन्तु उसे प्रधानता देकर कर्तव्य की उपेक्षा करना उसके स्वभाव के विरुद्ध था। इसी से भोजन के बाद पथरियाघट्टे के उस मकान में जाने की उनकी इच्छा तो अवश्य थी, पर भारी थकान ने आज उन्हें जाने न दिया। सुरबाला ने भी ऐसी हठ की कि उसकी बात न मानकर जाना और भी कठिन हो गया। उसने स्वामी को छूकर पंखे की रस्सी दिखा बहुत ही संक्षेप में कहा, "तुम्हारी तबियत अच्छी नहीं, यदि तुम आराम किए बिना चले जाओगे तो मैं गले में फाँसी लगा लूँगी।"

उपेन्द्र बिना तर्क-वितर्क किए मौन हो चारपाई पर लेट रहे और देखते-

देखते सो गए।

बड़ी देर बाद जब उनकी नींद टूटी, तब दिन ढल चुका था। अँगड़ाई ले, उठकर बैठते ही तिपाई पर रखी चिट्ठी पर दृष्टि पड़ी। उठाकर देखा, वह ज्यों की त्यों बन्द है—चाहे जिस कारण से हो, वह सतीश के पास नहीं पहुँची। सुरबाला ने आहट पाकर कमरे में अन्दर आकर कहा, "सतीश बाबू तो वहाँ नहीं हैं, सुबह दस बजे की गाड़ी से घर चले गए हैं।"

उपेन्द्र का मुँह यह समाचार सुनकर सूख गया। पहले ही मन में यह शंका उठी कि अपरिचित शहर में हारान की मृत्यु से सम्बन्धित सभी काम उसे स्वयं ही करने होंगे। ओफ्फोह! कितने काम होंगे—और कैसे भीषण एवं कठोर! लोगों को बुला लाना, सब सामान जुटाना, विधवा स्त्री और जननी की गोद से मृत देह को उठाकर ले जाना! इस हृदय विदारक शोक के दृश्य की कल्पना करके ही उनका सारा शरीर पत्थर के समान हो गया और चित्त पथरियाघट्टे की ओर से हट गया। वे अपने अन्धविश्वास में भीतर-ही-भीतर सतीश पर कितना भरोसा किए हुए थे, यह अब घृणा और अपमान का पर्दा फटकर स्पष्ट दिखाई देने लगा।

सब काम उपेन्द्र की प्रकृति के बिलकुल विरुद्ध थे। जहाँ तक हो सकता था, वे ऐसे कामों में पड़ना न चाहते थे। किन्तु सतीश के लिए ये बहुत सहज थे। जब किसी की मृत्यु हो जाती थी तब बलवान सतीश सबसे पहले पहुँचता था और सभी अप्रिय कार्यों को चुपचाप बिना आडम्बर के कर देता था। इसी से ऐसे दुःसमय में सभी उसे खोजते थे और उसके आ जाने से शोकार्त्त और विपन्न गृहस्थ को दुःख में भी सांत्वना और साहस प्राप्त होता था। वह जब एक बार कलकत्ता छोड़कर चला गया तब क्षण-भर के लिए उपेन्द्र को किसी ओर दृष्टि डालने पर भी कोई मार्ग न सूझा।

स्वामी के चेहरे की ओर देखकर सुरबाला ने हारान की अवस्था पूछी, किन्तु सतीश का प्रसंग न उठाया। उसने सतीश के यहाँ से लौटकर अपनी आँखों-देखी जो बातें कहानी के समान बताई थीं, उन्हीं से उसने कल रात की बातों का अनुमान कर लिया था। सतीश उसके स्वामी का कितना घनिष्ठ मित्र है, यह वह जानती थी, इसी से इस बात को उसने हँसी में उड़ा दिया था।

उपेन्द्र का सुरबाला की सांसारिक बुद्धि पर कुछ भी विश्वास न था, इससे वे कभी उससे किसी कठिन विषय की चर्चा नहीं करते थे, किन्तु अभी वे अपने को जिस विपत्ति में फँसा हुआ समझ रहे थे, उससे वे व्यग्र हो उठे और बोले, "वह मुझे ऐसी विपत्ति में छोड़कर चला जाएगा, यह मैंने स्वप्न में भी न सोचा था। इस शहर में अकेला मैं क्या-क्या करूँगा ?" इतना कह वे असहाय शिशु के समान स्त्री का मुँह देखने लगे।

स्वामी के सिर पर आई हुई इतनी बड़ी विपत्ति की बात सुनकर भी सुरबाला के चेहरे पर जरा भी उद्वेग का चिह्न दिखाई न पड़ा। वह पास खिसक आई और स्वामी का एक हाथ पकड़ उनको फिर बिस्तर पर बिठा दिया और धीरे-धीरे बोली, "इतनी चिन्ता क्यों करते हो ? यह कलकत्ता है, किसी का कोई काम किसी के बिना यहाँ नहीं रुकता। तुम्हारी चाय तैयार हो गई है, हाथ-पाँव धोकर चाय पी लो। दिवाकर बाबू को लेकर मैं भी साथ चलती हूँ।"

उपेन्द्र ने कहा, "तुम चलोगी ?"

जरा भी विचलित न होकर सुरबाला ने कहा, "हाँ, चलूँगी। स्त्रियों के ऐसे दुःख के समय स्त्रियों को पास रहना चाहिए।" यह कहकर उसने आज्ञा के लिए प्रतीक्षा न कर पास के कमरे से चाय का प्याला ला रखा और दिवाकर को सूचित करके तथा स्वयं तैयार होने के लिए तुरन्त ही बाहर चली गई।

गृहस्थों के घर में दीपक जल चुके थे।

उसी समय वे पथरियाघट्टे के उस मकान में पहुँचे।

सदर दरवाजा खुला था, किन्तु नीचे कहीं कोई भी न था। कहीं कोई आहट भी नहीं मिलती थी। टूटा-फूटा, अँधेरा मकान श्मशान के समान सूना था। दोनों को सावधानी से पीछे-पीछे आने का संकेत कर उपेन्द्र चुपचाप ऊपर चढ़ हारान के बन्द कमरे के सामने आकर कुछ देर तक मौन खड़े रहे। भीतर से एक मर्मभेदी दीर्घश्वास कानों में आ पड़ी। काँपते हाथ से द्वार खोलते ही शय्या के नीचे धुँधली रोशनी में सिर से पैर तक कपड़े से ढँकी हारान की मृत देह दिखाई पड़ी। उसके दोनों पाँवों के बीच मुँह डालकर सद्यः विधवा पड़ी हुई थी।

उसने एक बार सिर ऊपर उठाकर देखा और उसी क्षण बिजली के समान तेजी से उठ आर्त्त कण्ठ से माँ कहकर चिल्ला उठी। वह उपेन्द्र के पाँवों तले मूर्छित हो गिर पड़ी।

सुरबाला ने, जो अपने पति के पीछे खड़ी थी, तुरन्त स्वामी को एक ओर हटाकर किरणमयी का सिर अपनी गोद में ले लिया। उसे सांत्वना देने लगी।

छब्बीस

यह मानव देह अस्थि, मांस-मेद, मज्जा-रक्त में सभी वस्तुओं की ही एक सीमा निर्धारित है।

मातृ-स्नेह भी असीम नहीं है, उसका भी परिमाण है। भारी बोझ दिन-रात खींचकर घूमते रहने से रक्त-संचरण जब बन्द होने लगता है, तब उस सीमारेखा के एक छोर पर खड़ी रहकर जननी भी फिर सन्तान का बोझ उठाकर एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकती। यह प्रेम के अभाव से होता है या शक्ति के अभाव से, इसकी मीमांसा का भार अन्तर्यामी के हाथ में है, माँ के हाथ में नहीं।

उस दिन जब हारान का मृत देह माँ की गोद से पृथक् होकर श्मशान में चला गया, तब अघोरमयी की छाती चीरकर जो लम्बी साँस उसी असीम के पदप्रान्त में इसे मृत्युवत् ढोकर ले गई, वह अपने साथ और कुछ ले गई या नहीं, इसका अनुमान करने की शक्ति मनुष्य में नहीं है।

हारान की मृत्यु उनकी अत्यन्त ज्वर की दशा में ही हुई। उसके बाद आठ-दस दिन किस प्रकार और कैसे कट गए, वे जान न सकीं।

श्राद्ध के किसी प्रकार समाप्त हो जाने पर उन्होंने उपेन्द्र को पकड़ लिया, कहा, "बेटा, सामने के घर से मल्लिक घराने की बड़ी बहू काशी, वृन्दावन, प्रयाग घूमने जाएँगी, क्या उनके साथ जाना उचित नहीं है?"

"क्यों नहीं मौसी, अच्छी तरह से हो सकता है। लेकिन…।" कहकर उसने एक बार किरणमयी की ओर देखा।

किरणमयी ने स्थिति समझकर कहा, "मेरी चिन्ता न करो बबुआ, मैं दासी को लेकर अच्छी प्रकार रह सकूँगी।"

इस पर भी तुरन्त ही सम्मति उपेन्द्र न दे सका। चुप रहा।

किरणमयी उसके मुँह की ओर क्षण-भर देखकर बोली, "ऐसा भी हो सकता है कि दिवाकर बबुआ तो कलकत्ते में रहकर ही पढ़ेंगे, ऐसा निश्चय हो चुका है। उनको मेरे ही पास रख क्यों नहीं देते? एक अनजान घर में रहने की अपेक्षा मेरी आँखों के सामने रहना तो अधिक अच्छा रहेगा। देख-भाल भी होगी, कलकत्ते में अकेला रहने के जो भय हैं, वे भय भी न रहेंगे।" यह कहकर उसने उपेन्द्र पर अपनी दृष्टि स्थिर कर दी।

अघोरमयी अपनी पूरी सम्मति देकर बोल उठीं, "इससे अच्छी और कौन बात है उपेन—यही करो। उस लड़के की देखभाल भी होगी, यह अभागिनी भी जो कुछ हो, जरा हिल-डोलकर बचेगी। वे किसी प्रकार जरा बाहर निकल सकने से ही बच जाएँगी।" इतनी सुगमता से ऐसा सीधा मार्ग आविष्कृत होते देख उन्होंने निश्चिन्त भाव से एक लम्बी साँस ली। लेकिन उपेन्द्र किरणमयी का साहस देखकर एकदम स्तम्भित हो गया। ऐसा एक अचिन्तनीय प्रस्ताव उसके मुँह से निकला ही कैसे, यही तो वह पहले सोचने पर भी समझ न सका।

दिवाकर, जो कुछ भी हो, वह बच्चा नहीं है—वह भी युवक है। फिर भी इस परम रूपवती रमणी को अकेली इस निर्जन घर में ठीक मानो बच्चे के ही समान उसका लालन-पालन करने और सुयोग्य बना देने का हर प्रकार का दायित्व निःसंकोच ग्रहण करने को तैयार देखकर उपेन्द्र के मुँह से भली-बुरी कोई बात ही नहीं निकली। यह रमणी कैसी असाधारण बुद्धिमती है, यह जानना उसके लिए शेष नहीं था। उसने संगत-असंगत, सांसारिक और सामाजिक व्यवस्था विशेष रूप से जान-बूझकर ही यह प्रसंग उठाया है, इसमें भी सन्देह नहीं है—फिर भी, यह कैसी बात है? किस तरह उसने कही?

उसने अपनी सब सूक्ष्म शक्तियों को एकत्र करके इस अनन्त सुन्दरी के हृदय में भेज देना चाहा, लेकिन कहीं भी उनको प्रवेश का मार्ग नहीं मिला, अतः वे कहीं जोरों से टकराकर उसी क्षण वापस आ गईं।

पल-भर के लिए दोनों चुपचाप एक-दूसरे को देखते रहे, इसीसे दोनों के बीच मानो एक नए प्रकार से जान-पहचान हो गई। उसको ख्याल हुआ, ऐसी शुद्ध, शान्त और आत्मसंयमपूर्ण वैराग्य की मूर्ति उसने और कभी नहीं देखी थी। उस दिन, रात के समय इसके वेश की सजावट देखकर उसकी और सतीश की दृष्टि झुलस गई थी; विचार हुआ था, इसकी तुलना नहीं है—इस प्रकार सजावट न कर सकने से किसी की सजावट ही नहीं होती। आज फिर उसकी यह रूखी, शिथिल खुली केशराशि और विधवा की सजावट देखकर ज्ञात हुआ, ऐसी सम्भवतः किसी दिन यह दिखाई नहीं पड़ी।

उस समय उपेन्द्र बातें न कर सका। उसके मानस-चक्षुओं की दृष्टि से इस विधवा के सामने दिवाकर बिलकुल ही छोटे बच्चे की भाँति तुच्छ हो गया, और उस दिन क्यों सतीश को छोटे भाई के समान अपने पास भेज देने का इसने अनुरोध किया था, यह बात भी आज बिलकुल ही स्पष्ट हो गई। उसके परितृप्त मन ने चुपचाप हाथ जोड़ इस महिमामयी के सम्मुख अपना अपराध बार-बार स्वीकार करके मन-ही-मन क्षमायाचना कर ली। तीनों ही चुप थे।

किरणमयी ने पहले बात कही। अनुनय के स्वर में कहा, "दिवाकर को मेरे पास क्या रख न सकोगे, बबुआ जी?"

मन्त्रमुग्ध की भाँति उपेन्द्र बोला, "क्यों न रख सकूँगा भाभी, आप यदि उसका भार ले लें, तो यह मेरा परम सौभाग्य होगा।" इतने दिनों के बाद उपेन्द्र ने आज पहले-पहल उसको आत्मीय के समान सम्बोधन किया। कहा, "दिवाकर मेरे साथ ही तो आया था, अकेले चला गया है शायद, नहीं तो बुलाकर कह देता।"

इस बात से किरणमयी चकित हो उठी। इस बार वह चुप रही। अचानक आनन्द की बाढ़ ने मानो उसके दोनों किनारों को बहा देने की तैयारी कर दी। इसीलिए वह क्षण-भर के लिए दूसरी ओर मुँह फेरकर अपने को सँभालने लगी। इतना थोड़ा-सा आत्मीय सम्बोधन है, यह कितना है! किन्तु इसी के लिए वह मानो कितने युगों से प्यासी थी, ऐसा उसे ज्ञात हुआ। सतीश ने भी यही कहकर पुकारा था। कितना अन्तर है! इस आह्वान

से इतने दिनों के बाद उपेन्द्र ने उसको जो अपने समीप खींच लिया, एकाएक उसे भय हुआ कि उसके तीव्र वेग को वह सम्भवतः सँभाल न सकेगी।

इन लोगों की इस आकस्मिक मौन से अघोरमयी शंकित हो उठीं, बोलीं, "बेटा उपेन, तब तो मेरे जाने में कोई विघ्न नहीं है, लेकिन उस काम में भी अब देर नहीं है, मैं क्या इसी समय जाकर मल्लिक जी की स्त्री को कह आऊँ ?"

किरणमयी की ओर एक बार देखकर उपेन्द्र बोला, "मैंने तो कह दिया है मौसी, इसमें मुझे आपत्ति नहीं है। तुम्हारी बहू जी के सहमत होने से तुम्हारी तीर्थयात्रा में तो मैं कोई बाधा नहीं देखता।"

"बेटा, मैं जाकर इसी समय उससे कह आऊँ। पता लगा लूँ कि कब उन लोगों का जाना होगा।"

दासी को बुलाकर अघोरमयी प्रसन्न हो नीचे उतर गई।

उपेन्द्र ने मन-ही-मन तृप्ति अनुभव करके कहा, "अच्छा ही हुआ। जिस प्रकार भी हो, अब कुछ दिनों के लिए उनका बाहर जाना बहुत ही आवश्यक है।"

किरणमयी कुछ भी नहीं बोली। इस समय के बीच वह किसी प्रकार अनमनी-सी हो गई थी। उत्तर न पाकर उपेन्द्र ने फिर कहा, "आपकी सम्मति है न भाभी ?"

उपेन्द्र के कथन से वह क्षण-भर अबोध की भाँति उसके मुँह की ओर देखती रहकर एकाएक सचेत हो उठी। उसने कहा, "है तो अवश्य ही बबुआ जी, अवश्य है, यह कैसा अन्धकूप है, इसे केवल हम लोग ही जानते हैं। चली जाएँ, कुछ दिनों तक इस दुःख के घेरे से छुटकारा पाकर बच जाएँ।"

इससे उपेन्द्र ने कष्ट अनुभव किया। पीड़ित चित्त से कुछ देर तक मौन रहकर बोला, "इस दुःख के घेरे से केवल उनको ही नहीं भाभी, आपका भी बाहर निकल जाना ही उचित है।"

किरणमयी ने कातर दृष्टि से देखकर कहा, "मेरा कौन है बबुआजी, किसके पास मैं जाऊँगी ?"

उपेन्द्र ने प्रश्न किया, "आपके पिता के घर क्या कोई नहीं है ?"

किरणमयी हँस पड़ी। बोली, "पिता का घर कहाँ है, यही तो मैं नहीं

जानती। मामा के घर पाली-पोसी गई थी। उन लोगों के समाचार भी आठ-दस वर्षों से नहीं जानती। दस वर्ष की आयु में ब्याह हो जाने पर जो इस मकान में मैं आ गई, मृत्यु न होने से सम्भवतः अब इसमें से निकल ही न सकूँगी।"

उपेन्द्र बहुत ही दुःखी हो गया। फिर सोचकर बोला, "तो आप भी क्यों मौसी के साथ पश्चिम को नहीं चली जातीं? घूमना भी होगा, तीर्थ-यात्रा भी होगी।" किरणमयी का मनोभाव देखकर वह आश्चर्य में पड़ गया क्योंकि ऐसे प्रस्ताव से उसने जरा भी आनन्द प्रकट नहीं किया। वैसे ही निरुत्साह मुँह से नीचे को देखती रही।

तुरन्त ही उपेन्द्र को यह ध्यान आ गया कि यह घर छोड़कर जाने में असमर्थ है।

उसने कहा, "आप इस घर के लिए सोच रही हैं, कोई चिन्ता मत कीजिएगा। मैं इसकी देखभाल का प्रबन्ध कर दूँगा। कोई भी वस्तु नष्ट न होगी।"

इस बार किरणमयी हँस पड़ी। बोली, "तुमने सम्भवतः मेरा उस प्रथम रात्रि का पागलपन स्मरण करके यह बात कही है बबुआजी।"

उपेन्द्र घबराकर बोल उठा, "ना-ना, ऐसी बात नहीं है। लेकिन वह भी यदि हो तो उसको भी पागलपन नहीं कह सकते। उस दशा में सतर्क होना तो सभी को उचित है।"

किरणमयी ने हँसी के साथ कहा, "क्या इतना सतर्क हो जाना, बबुआ जी?"

उपेन्द्र ने कहा, "ना? अपने घर-द्वार, धन-सम्पत्ति पर ममता किसको नहीं है? भविष्य की दुश्चिन्ता किसको नहीं होती? नहीं, ऐसी बात आप मत कहिए, उसमें असंगति या अस्वाभाविकता कुछ भी नहीं थी।"

"न रहने से ही अच्छा है। लेकिन मैं तो अब उसको शुद्ध पागलपन के अतिरिक्त और कुछ भी सोच नहीं सकती।" और एकाएक गम्भीर होकर बोली, "तुम पर भी सन्देह! छिः-छिः! कैसी कड़ी बात मैंने कह दी थी। याद आने से अब स्वयं ही लज्जा से मरने लगती हूँ।"

उपेन्द्र ने प्रतिवाद नहीं किया, वह चुपचाप देखता रहा। पल-भर मौन

रहकर उसने फिर कहा, "किन्तु वह ममता अब कहाँ है बबुआजी ? एक बार भी तो यह विचार नहीं आता कि यह घर मेरा रहेगा या हाथ से निकल जाएगा। रहे तो रहे, न रहे तो चला जाय ! सोचती हूँ, मार्ग के वृक्षों के नीचे का स्थान तो कोई रोक न सकेगा, मुझे यही पर्याप्त होगा।"

इसका उत्तर उपेन्द्र ने नहीं दिया। विधवा के वैराग्य की इन थोड़ी-सी बातों से उसका हृदय श्रद्धा तथा करुणा से भर उठा।

किरणमयी ने कहा, "मकान के लिए नहीं बबुआजी, लेकिन माँ के साथ तीर्थ में जाने से भी क्या मैं शान्ति पाऊँगी ? उन सब स्थानों पर भी तो बहुत से लोगों की भीड़ होती है, सुनती हूँ।"

उपेन्द्र ने गरदन हिलाकर कहा, "तीर्थस्थानों में तो लोगों की भीड़ होती है भाभी। लेकिन आपका और कुछ भले ही न हो, तीर्थ करना तो हो जाएगा। वह भी तो एक काम ही है।"

किरणमयी उपेन्द्र की ओर देखकर मुस्करा पड़ी, लेकिन बोली कुछ नहीं। वह किसलिए हँस पड़ी, उसका तात्पर्य समझ न सकने के कारण उपेन्द्र सम्भवतः कुछ कहने जा रहा था, लेकिन एकाएक आश्चर्य में पड़कर उसने देखा, पास के कमरे से दिवाकर निकल आया।

"तू क्या इतनी देर से उसी कमरे में था ?"

किरणमयी ने कहा, "दिवाकर बबुआ कृपा कर मेरी पुस्तकें ठीक से रख रहे थे। मैं तुमको बताना भूल गई थी।"

दिवाकर ने निकट आकर कहा, "कितनी पुस्तकें कैसी दशा में हो गई हैं भाभी, लेकिन खोलकर देखने से ज्ञात होता है, वे कैसे यत्न से उन सबको पढ़ रहे थे।"

किरणमयी ने कहा, "सचमुच ही यही बात है। जिसको पढ़ना कहते हैं, वे उसी प्रकार पढ़ते थे। तुम्हारे हाथ में वह कौन-सी पुस्तक है बबुआ जी ?"

लज्जित भाव से दिवाकर ने कहा, "मैं संस्कृत नहीं जानता, फिर भी एक बार पढ़ने का प्रयत्न करूँगा। यह है कठोपनिषद्।"

किरणमयी ने कहा, "इतनी पुस्तकों के रहते पसन्द हुई कठोपनिषद् ?"

दिवाकर ने इस प्रश्न को ठीक न समझकर कहा, "क्यों भाभी, इससे अच्छी पुस्तक संसार में और कौन है? लेकिन मेरे लिए सम्भवतः यह अनधिकार चेष्टा है। समझ न सकूँगा, लेकिन यथाशक्ति प्रयत्न करना तो चाहिए ही।"

किरणमयी ने मुस्कराकर कहा, "जो तुमने सोचा बबुआ जी, यह बात नहीं है। इस प्रकार यत्न करने का इसका कुछ भी मूल्य नहीं है। फिर भी प्रयत्न करना बुरा ज्ञात नहीं होता। हाथ में काम-काज न रहने पर नाना प्रकार की अद्‌भुत कहानियाँ पढ़ने से समय कट जाता है।"

कठोर सत्य की बात सुनकर दिवाकर का मुख एकदम पीला पड़ गया।

उसने कहा, "आप कहती क्या हैं, भाभी, मैंने सुना है उपनिषद् तो वेद हैं। इसका तो प्रत्येक अक्षर अभ्रान्त सत्य है।"

उसके आश्चर्य का परिणाम देखकर किरणमयी फिर हँस पड़ी।

उसने कहा, "कोई धर्मग्रन्थ कभी अभ्रान्त सत्य नहीं हो सकता। वेद भी धर्मग्रन्थ है। इसीलिए इसमें भी असत्य की कमी नहीं है।"

दोनों कानों में अँगुली डालकर जोर से सिर हिलाकर दिवाकर ने कहा, "वेद असत्य है! फिर मत कहिएगा! सुनने से भी पाप होता है—वेद असत्य है! लोग कहते हैं, वेद वाक्य! यह क्या मनुष्य की रचना है कि असत्य होगा? यह तो वेद है।"

किरणमयी उसकी मुखमुद्रा देखकर एकदम खिलखिलाकर हँस पड़ी।

दिवाकर ने कानों में अँगुली निकालकर अपनी उत्तेजना से लज्जित होकर कहा, "सचमुच ही पाप होता है भाभी। वेद कभी असत्य हो सकता है? यह क्या व्यर्थ का धर्मग्रन्थ है कि शिव-वचन कहकर दो प्रक्षिप्त श्लोक रचकर, दस मनगढन्त उपकथाएँ जोड़ देंगे? वेद का अर्थ ही तो साक्षात् सत्य है।"

हँसी रोककर गम्भीर होकर किरणमयी ने कहा, "क्या जानूँ बबुआ जी, उनसे मैंने जो कुछ सुना था, वही मैंने कह दिया। लेकिन तुमने भी अभी-अभी स्वीकार कर लिया, धर्मग्रन्थ जिसका नाम है, उसमें भी शिव का वचन कहकर झूठी उक्तियाँ जोड़ दी गई हैं।"

दिवाकर ने मान लिया।

कुछ दिन पहले ही पुराणों के सम्बन्ध में उसने मासिक पत्रिका में समालोचना पढ़ी थी। उसने कहा, "यह बड़ा अन्याय है, लेकिन उपकथाएँ, मिथ्या श्लोक विद्यमान हैं, यह बात मैं अस्वीकार नहीं कर सकता। लेकिन वह तो अधिक दिन चलता नहीं भाभी, जो असत्य है, वह कुछ ही दिनों में ज्ञात हो जाता है।"

दिवाकर ने फिर कहा, "मैं ठीक नहीं जानता भाभी। लेकिन जो झूठ है, उसकी छानबीन के साथ आलोचना करने से ही विद्वानों को ज्ञात हो जाता है कि कौन सत्य है, कौन असत्य है, कौन शुद्ध है, कौन अशुद्ध है। इसीलिए आप वेद को सत्य नहीं स्वीकार करना चाहतीं, यह अन्याय है। बड़ा अन्याय है।"

उतनी देर तक चुप ही रहा उपेन्द्र।

किरणमयी के इन परिहासों का तात्पर्य क्या है, इसे ठीक-ठीक न समझ सकने के कारण वह केवल सुनता रहा।

किरणमयी ने एक बार उसकी ओर कटाक्ष से देखकर हँसी छिपा ली। बाद को गम्भीर होकर उसने दिवाकर से कहा, "जानते हो बबुआ जी, मैंने एक बार एक धर्मशास्त्र में पढ़ा था कि एक ब्राह्मण का पुत्र किसी कारण यमराज के साथ भेंट करने गया। यमराज तब घर में नहीं थे—सम्भवतः अपने ससुर के घर गए थे—तीन दिन के बाद लौटकर आने पर, घर के लोगों से उन्होंने सुना कि एक ब्राह्मण ठहरा है, उस पर से अतिथि भी! यमराज दुःखी हो गए। अन्त में अनेक विनय करके बोले—तुम भैया तीन दिन के उपवास के बदले में तीन वर ले लो। अच्छा—"

दिवाकर बात समाप्त करने से पहले ही ठठाकर हँस पड़ा। उसने कहा, "यह कौन-सी कथा आरम्भ कर दी भाभी।"

किरणमयी ने निरीह भाव से कहा, "क्या करूँ बबुआ जी, जो कुछ मैंने पढ़ा था, वही कह दिया है। अच्छा, क्या ऐसा हो सकता है, इस पर क्या तुमको विश्वास हो सकता है?"

दिवाकर ने जोर लगाकर कहा, "ना-ना। असम्भव है।"

"क्यों असम्भव है? धर्मशास्त्र की ही तो बात है।"

"भले ही हो धर्मशास्त्र। यह प्रक्षिप्त है—उपन्यास है!"

"उपन्यास का कैसे पता लग गया बबुआ जी?"

"सभी में थोड़ी-बहुत कुछ बुद्धि रहती है भाभी! मैं अधिक नहीं जानता लेकिन यह जो अस्वाभाविक घटना है, इसमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है। ऐसा हो ही नहीं सकता।"

किरणमयी ने कहा, "बबुआ जी, इसी प्रकार सभी विद्या-बुद्धि से सत्य-मिथ्या का निर्णय करते हैं, इसके अलावा और मानदण्ड भी नहीं है। लेकिन यह वस्तु सभी एक नहीं—तुम जिसको सत्य समझ सकते हो, यदि मैं न समझ सकूँ तो मुझे दोष देना नहीं।"

उसी क्षण दिवाकर ने कहा, "अवश्य ही नहीं।"

किरणमयी ने कहा, "तभी तुम देखो बबुआ जी, इसमें ही जब कोई दोष दिया नहीं जा सकता, तब जो वस्तु बुद्धि और अभिज्ञता दोनों के ही बाहर है, उसके सम्बन्ध में मत का बहुत आधिक्य होना ही सम्भव है। लेकिन इस विषय में हममें मतभेद नहीं है। हम दोनों का ही विचार है कि यह घटना हम लोगों की बुद्धि के बाहर है, इसीलिए यह उपन्यास ठीक है न बबुआजी?"

किरणमयी उसको कहाँ खींचकर ले जा रही है, यह ठीक समझ न सकने पर दिवाकर ने संक्षेप में कहा, "हाँ।"

किरणमयी ने हँसकर कहा, "खूब! लेकिन, मेरे इस उपन्यास का अन्तिम भाग अपने हाथ की उस पुस्तक में तुम पाओगे।"

दिवाकर ने विस्मित होकर कहा, "इस उपनिषद् में?"

उसी तरह किरणमयी ने कौतुक के साथ कहा, "उसी में पाओगे, अधिक खोजना न पड़ेगा। लेकिन यदि पा जाओ तो तुमको प्रत्येक अक्षर सत्य तो ज्ञात होगा?"

दिवाकर ने उत्तर नहीं दिया। हत्बुद्धि की भाँति वह बैठा रहा।

किरणमयी ने उपेन्द्र के अवाक् मुँह की ओर देखकर कहा, "तुम्हारा क्या मत है बबुआ जी?"

उपेन्द्र जरा हँस पड़ा, कुछ बोला नहीं।

दिवाकर ने अपने को सँभालकर कहा, "लेकिन यह रूपक भी हो सकता है।"

किरणमयी ने कहा, "संभव है। परन्तु रूपक तो सत्य घटना नहीं। वह पुस्तक आदि से अन्त तक मिथ्या है, यह भी नहीं हो सकता, लेकिन आदि से अन्त तक सत्य ही है, यह बात बुद्धि के हिसाब से चुन लेनी पड़ेगी। इस-लिए, तुम्हारी बुद्धि में यदि बारह आना झूठ जान पड़े, वही हमारी बुद्धि में शायद पन्द्रह आना झूठ जान पड़े, इसमें तो मेरा अन्याय नहीं होगा बबुआ जी।"

दिवाकर पुस्तक की ओर मौन होकर देखता रहा।

किरणमयी की बातें उसके हृदय में पीड़ा पहुँचाने लगीं।

थोड़ी देर तक चुप रहकर उसने कहा, "भाभी, जिसको आप मिथ्या बता रही हैं, उसका शायद कोई गूढ अर्थ हो?"

"तुम जो अनुमान कर रहे हो, वह हो सकता है, यह मैं मान लेती हूँ। लेकिन तो भी वह अनुमान के सिवा और कुछ भी नहीं है। अर्थ जो कुछ भी हो, मार्ग सन्मार्ग नहीं है। यह बात मान लेनी चाहिए कि मिथ्या से भुलावा डालकर सत्य का प्रचार नहीं होता। सत्य को सत्य की तरह बना-कर ही कहना पड़ता है, तभी मनुष्य अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार समझ सकता है। आज नहीं समझ सकता तो कल समझ सकता है। यदि न भी समझ सके तो उस दशा में भी उसको असत्य की भूमिका देकर रोचक बना देने की भाँति अन्याय और नहीं है। बबुआ जी, मिथ्या पाप है, लेकिन मिथ्या सत्य को एक मिलाकर कहने की तरह पाप संसार में कम ही है।"

किरणमयी उसका उदास-मलिन मुँह देखकर मन का भाव स्पष्ट समझ गई। कोमल स्वर में बोली, "इसमें दुःखी होने की तो कोई बात नहीं है बबुआ जी। जो सत्य है उसको ही सदा सब अवस्थाओं में ग्रहण करने का प्रयत्न करना चाहिए। उससे चारों वेद ही मिथ्या हो जाएँ, या शास्त्र ही मिथ्या हो जाएँ। सत्य की अपेक्षा ये सब बड़े नहीं हैं, सत्य की तुलना में इनका कोई मूल्य नहीं है। आँखें बन्द करके झूठ को सत्य कहकर विश्वास करने में कुछ भी पौरुष नहीं है।"

वह चुप ही रही, फिर बोली, "इसलिए ऐसी बात भी मन में न सोचना कि मैंने असत्य कहकर समझ लिया है, इसीलिए वह असत्य हो गया है। मेरी मोटी बात यह है कि सत्य-असत्य जो भी हो, उसको बुद्धिपूर्वक ग्रहण

करना उचित है। आँखें बन्द करके मान लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। उससे उसका और तुम्हारा मान नहीं बढ़ता।"

बड़ी देर तक दिवाकर चुप रहकर बोला, "अच्छा भाभी, जो वस्तु बुद्धि के बाहर है, उसके सम्बन्ध में आप सत्य-असत्य का निर्णय बुद्धि द्वारा कैसे करेंगी ?"

उसी क्षण किरणमयी ने उत्तर दिया, "करूँगी तो नहीं। उसे बुद्धि के बाहर कहकर छोड़ दूंगी। मुँह से कहूँगी अव्यक्त, अबोध्य, अज्ञेय और कामों से, बातों से उसको ही क्रमगत करने की चेष्टा, बताने की चेष्टा किसी प्रकार भी न करूँगी। जो करेंगे उनको भी मैं किसी तरह न सहूँगी। तुमने ये सब पुस्तकें पढ़ी नहीं हैं बबुआ जी, पढ़ने पर देख सकोगे, सर्वत्र ही यही चेष्टा है, और यही जिद है, केवल शरीर का बल। जिस मुँह से आप कह रहे हैं जाना नहीं जाता, उसी मुँह से फिर इतनी बातें कह रहे हैं मानो अभी-अभी सब अपनी ही आँखों देख आए। जिसको किसी प्रकार समझा नहीं जाता, उसको ही समझने के लिए पन्ने के बाद पन्ने, पुस्तकों के बाद पुस्तकें लिखते जा रहे हैं। क्यों ? जिस मनुष्य ने जीवन में लाल रंग नहीं देखा है, उसको क्या मुँह की बातों से समझाया जा सकता है कि लाल रंग क्या है ? और उसको ही न समझने से, न मानने से क्रोध-शाप-अभिशाप और भय दिखाने की सीमा-परिसीमा नहीं रहती। केवल बड़ी-बड़ी बातों का दाँव-पेच चलता रहता है। निर्वाण, निराकार, निर्लिप्त, निर्विकार ये सब बात की ही बातें हैं, इनका कुछ भी अर्थ नहीं है। यदि कुछ हो तो वह यही है कि जिन लोगों ने इन बातों का आविष्कार किया है, वे दूसरे प्रकार से कह रहे हैं, इस सम्बन्ध में चिन्ता-मात्र भी न करेंगे—सब परिश्रम व्यर्थ है।"

चुप रहा दिवाकर। उसके बाद उसने धीरे-धीरे कहा, "भाभी, आप आत्मा को नहीं मानतीं ?"

"ना।"

"क्यों ?"

"असत्य होने के कारण। इसके अलावा ऐसा दम्भ मुझे नहीं है कि सब कुछ का नाश हो जाएगा, केवल मेरे इस महामूल्य 'मैं' का किसी दिन ध्वंस न होगा, ऐसी इच्छा भी मैं नहीं करती कि मेरा यह 'मैं' बचा रहे।"

"अच्छा तो क्या आप ईश्वर को भी स्वीकार नहीं करतीं ?"

किरणमयी ने हँसकर कहा, "इतना डर-डरकर क्यों कह रहे हो बबुआ जी ! इसमें भय की बात कुछ भी नहीं। ना-ना, मैं अस्वीकार भी नहीं करती।"

दिवाकर को गहन अन्धकार के बीच प्रकाश की क्षीण रेखा दिखाई पड़ी। उसने कहा, "उनका आप किस तरह चिन्तन करती हैं ?"

किरणमयी ने कहा, "जिस वस्तु को अज्ञेय कहकर निश्चित रूप से समझ गई हूँ, उसका चिन्तन भी नहीं किया जाता, मैं करती भी नहीं। वस्तुतः अचिन्तनीय का चिन्तन करूँ कैसे ? इसलिए असम्भव को सम्भव करने की चेष्टा किसी दिन भी मुझे नहीं रहती। एक वस्तु को बढ़ाकर वृहत् बनाया जा सकता है, और अधिक बढ़ा देने से और भी अनन्त बना दिया जाता है—यह गलती मुझसे कभी नहीं होती।"

"तो क्या उसको सोचा भी नहीं जाता ?"

"सोचा जाता है बबुआ जी, छोटा बनाकर सोचा जाता है। मनुष्य के दोष-गुण को एक में मिलाकर, छोटा-मोटा देवता मानकर, निरक्षर लोग जिस प्रकार भक्ति-भाव से सोचते हैं, उसी तरह केवल सोचा जाता है। नहीं तो ज्ञान के अभिमान से ब्रह्म बताकर जो लोग सोचना चाहते हैं वे केवल अपने को धोखा देते हैं, लेकिन आज और नहीं। ये सब बातें किसी दूसरे दिन होंगी।" फिर उपेन्द्र की ओर देखकर हँसते हुए बोली, "लेकिन बबुआ जी, बड़े सयाने हो। हम लोगों के झोंक में आकर वाद-विवाद करने से अपने को बिल्कुल ही बचा रखा है। मैं जानती हूँ, तुम सब कुछ जानते हो; लेकिन मन की एक बात भी तुमने किसी को जानने न दी।"

उपेन्द्र हँस पड़ा। उसने कहा, "ना भाभी, मैं इस सम्बन्ध में बिल्कुल ही मूर्ख हूँ। मैं स्तम्भित होकर केवल आप ही की बातें सुन रहा था।"

किरणमयी ने हँसकर कहा, "व्यंग्य कस रहे हो बबुआ जी ?"

"ना भाभी, सच्ची बात ही कह रहा हूँ। लेकिन सोचता हूँ, आप अपनी इस थोड़ी-सी आयु में इतना पढ़ गईं, इतना सोचा भी कब ?"

प्रशंसा सुनकर किरणमयी का अन्तःकरण, आनन्द से, गर्व से उच्छ्-वसित हो उठा। लेकिन उसका दमन करके विनय के साथ उसने कहा,

"ना-ना, यह बात मत कहो बबुआ जी, मैं भी महामूर्ख हूँ, कुछ नहीं जानती। केवल इतना अवश्य जान गई हूँ कि कुछ जान लेने का उपाय नहीं है, इसलिए इन सब शास्त्रों की दम्भपूर्ण उक्ति देखने से ही मेरे शरीर में आग लग जाती है—किसी प्रकार भी अपने आपको फिर सँभालकर नहीं रख सकती। केवल यह ज्ञात होता है कि तुम भी नहीं जानते, मैं भी नहीं जानती। तो भी, भाई तुम्हारा इतना शरीर का बल विधि-निषेध की घटा, इतनी फिर असत्य बातों की भर्ती क्यों? तमाम कामों में ही भगवान् ने उसको मध्यस्थ बनाकर काम किया है, ऐसे ही दाम्भिक अनुशासन का ठाठ है? खाते समय, सोते समय, बैठने में भगवान् की दुहाई और धर्म को दाँत से पकड़ना! क्यों भैया? क्यों इस प्रकार छींकूँगी, और उस तरह खाँसूँगी, फिर भी इतना तेज है कि कहीं भी, थोड़ा-सा कारण भी दिखाने की आवश्यकता किसी ने नहीं समझी। केवल जबरदस्ती ही है। तुमको गो-हत्या का, ब्रह्म-हत्या का कलंक लगेगा, तुम उजड़ जाओगे, तुम्हारी चौदह पुश्तें नरक में जाएँगी। किसने तुमसे कहा है? श्रुति, स्मृति, पुराण, सब ही ने। वास्तव में इतना अन्याय जबरदस्ती सहा नहीं जाता बबुआ जी।"

उपेन्द्र चुप।

दिवाकर ने अपनी अंतिम चेष्टा करके कहा, "लेकिन, यह जोर संभवतः हमारे कल्याण के ही निमित्त उन्होंने प्रकट किया है।"

किरणमयी बोली, "इतनी भलाई की आवश्यकता नहीं है बबुआ जी! मानो वे ही लोग केवल मनुष्य बनकर देश-भर के पशु-दल को लाठी की ठोकर से अच्छे मार्ग में खदेड़ देने के ही लिए अवतीर्ण हुए हैं। अपनी भलाई कौन नहीं चाहता? समझकर कह देने से ही तो बन जाता है, भैया, इसीलिए तुम्हारी भलाई है—इसी कारण, हमने यह सब विधि-निषेध प्रस्तुत कर दिए हैं। मुझे भी तो समझने देना चाहिए, क्यों, इस मार्ग से मेरा कल्याण है, इससे तो इतना आँख लाल करने, इतने झूठे उपन्यास लिखने की आवश्यकता नहीं पड़ती।" कहते-कहते उसके भीतर का क्रोध उभर गया।

अचानक उपेन्द्र को प्रथम रात्रि की बात याद आ गई। यह है वही मूर्ति! पिंजरे में बन्द जंगली पशु का वह मर्मान्तिक गर्जन! लेकिन क्या चाहती है यह? किसके विरुद्ध इसका इतना रोष है? शास्त्र और शास्त्र-

कार की किस जंजीर को चूर्ण करके यह विधवा मुक्ति-प्रार्थना कर रही है ?

उपेन्द्र ने उसको शान्त करने की इच्छा से सविनय के साथ कहा, "हम दोनों तो आपकी बातों का उत्तर न दे सके भाभी, लेकिन एक व्यक्ति है— जिनके सामने आपको भी तर्क में हारकर आना पड़ेगा, यह मैं कहे देता हूँ।"

किरणमयी ने हँसकर कहा, "ऐसा कौन है, बताओ तो बबुआ जी ?"

उपेन्द्र ने गम्भीर होकर कहा, "आप हँसी मत समझिएगा। सच ही कहता हूँ, उसको जीत आना कठिन है। उसका पढ़ना-लिखना अधिक हुआ हो ऐसी बात नहीं, लेकिन उनकी तर्क-बुद्धि अति सूक्ष्म है। वह भी इन सबका विश्वास रखती है—उसको निरुत्तर बनाकर आप आ सकें, तभी समझूँगा ?"

उत्साहित होकर किरणमयी ने कहा, "भले ही मैं न सिखा सकूँ, लेकिन सीखकर भी तो आ सकूँगी ?" उसने कहा, "वह कौन है बबुआ जी ? हमारी छोटी बहू तो नहीं ?"

उपेन्द्र हँसने लगा। बोला, "वही है। वास्तव में भाभी, उसकी विचार-शक्ति अद्भुत है। तर्क-बुद्धि देखकर समय-समय पर मैं सचमुच ही मुग्ध हो जाता हूँ। मैं क्या उत्तर दूँगा, क्या प्रश्न करूँगा, यह मैं खोज पाता ही नहीं। हतबुद्धि होकर बैठा रहता हूँ।"

सुरबाला की प्रशंसा उपेन्द्र के मुँह से सुनकर किरणमयी के मुख की दीप्ति बुझ गई। लेकिन इसी के दुःख ने समूचे अंग को घेरकर मानो गले को रूँधकर पकड़ लिया। एकाएक यह बात वह न कह सकी।

उपेन्द्र ने इसे लक्ष्य नहीं किया। उसने पूछा, "उसके साथ सम्भवतः किसी दिन इस विषय पर आपकी आलोचना नहीं हुई है ?"

किरणमयी ने गरदन हिलाकर कहा, "ना। केवल दो ही दिन तो वह यहाँ आई थी। वह भी ऐसे समय में नहीं कि कोई बातचीत हो जाती ! चलो न बबुआ जी, आज एक बार तुम्हारे तर्कवीर को देख आऊँ !"

उपेन्द्र ने हँसकर कहा, "ना भाभी, वह तार्किक बिल्कुल ही नहीं है। वस्तुतः इस विषय के अलावा वह विवाद करती ही नहीं—जो आप कहेंगी उसी को वह मान लेगी। तीन दिन के बाद वह घर लौट जाएगी—अनुमति दें तो यहीं उसे ले आऊँ।"

किरणमयी ने दुःखी होकर कहा, "ना बबुआ जी, ना, यहाँ लाकर उसको मैं कष्ट देना नहीं चाहती। वह जो दो दिन कष्ट स्वीकार करके आई थी, वह मेरे लिए अहोभाग्य था। मुझे तुम ले चलो, मैं चलूंगी। अच्छा, एक बात मैं पूछती हूँ, बबुआ जी, इतना बड़ा तार्किक गुरु रहते हुए भी तुम दोनों भाई मेरी बातों का उत्तर क्यों न दे सके?"

किरणमयी ने इसे सरल परिहास के रूप में ही कहना चाहा, लेकिन दुःख के बोझ से अन्तिम बातें भारी होकर प्रकट हो गईं।

दिवाकर मौन।

उपेन्द्र ने कहा, "ना भाभी, उसकी वे सब युक्तियाँ सीखी नहीं जातीं। कितनी ही बार तो उन्हें सुन चुका हूँ, किसी प्रकार भी उनको समझ नहीं सका। जो लोग भगवान् को मानते हैं, वे कहेंगे यह उनके ही दाहिने हाथ का सर्वश्रेष्ठ दान है। सच कहता हूँ भाभी, अनेक बार मुझे ईर्ष्या हुई है कि इसके सहस्र भागों का एक भाग भी यदि मैं पा जाता तो उस दशा में मैं धन्य हो जाता!"

किरणमयी ठीक समझ न सकी कि वह क्या है! फिर भी उसका मुख काला पड़ गया और इसको उसने स्वयं ही स्पष्ट अनुभव करके किसी प्रकार एक छोटी-सी सूखी हँसी से सामने के इन दो पुरुषों के दृष्टि-मार्ग से अपने आपको ढक लेना चाहा। लेकिन किसी प्रकार भी उसके मुँह पर हँसी नहीं आई।

वह अचानक सीधी होकर खड़ी हो गई, बोली, "चलो बबुआजी, आज ही मैं उसके साथ भेंट करके आऊँगी। तुमको भी जिसके लिए डाह होती है वह दुर्लभ वस्तु क्या है उसके देखे बिना मैं किसी प्रकार भी चैन न पाऊँगी।"

उपेन्द्र उसके अनुरोध की व्यग्रता देखकर किसी प्रकार भी हँसी को दबाकर न रख सका।

किरणमयी ईर्ष्या से इतनी आच्छन्न न हो गई होती तो उसकी इतनी देर की छिपी हुई गम्भीरता पल-भर में पकड़ सकती थी लेकिन उस ओर उसकी दृष्टि ही नहीं थी।

उसने कहा, "ना बबुआजी, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, मुझे ले चलो।"

दोनों हाथों से माथा छूकर उपेन्द्र ने घबराकर कहा, "छिः! छिः!!

ऐसी बात मुँह से आप मत निकालिए भाभी। आप आयु में छोटी होने पर भी मेरी पूज्या हैं। अच्छी बात तो है, मौसी लौट आए, फिर आज ही आप को ले चलूँगा।"

तीसरे पहर।

किरणमयी ज्योतिष बाबू के घर आ पहुँची। मोटा सफेद कपड़ा पहने थी, शरीर पर कोई गहना नहीं, लम्बे-लम्बे सूखे बाल, कुछ बिखरे हुए, कुछ बँधे हुए और कुछ ललाट पर लटके पड़े थे। आँखें उदासीनता से भरी थीं, वैधव्य का साम्राज्य उसके शरीर को घेरकर मूर्तिमान हो रहा था। उसके चेहरे की ओर देखते ही आँख आप ही उसके पाँवों की ओर झुक जाती थी।

सरोजिनी बाहर के बरामदे में चौकी पर बैठी एक किताब पढ़ रही थी। आँखें ऊपर उठाते ही यह अमंगल रूप देखकर वह एकबारगी विह्वल हो गई।

उसने किरणमयी को पहले कभी आँखों से देखा नहीं था। केवल उसका नाम सुना था, और उसके सौन्दर्य की प्रशंसा सुरबाला के मुँह से सुनी थी, किन्तु वह सौन्दर्य ऐसा अनोखा था, इसकी उसने कल्पना भी न की थी।

उसका परिचय उपेन्द्र ने दिया, "मेरी भाभी हैं—सरोजिनी !"

सरोजिनी ने निकट आकर प्रणाम किया।

उसका हाथ पकड़ मुस्कराती हुई किरणमयी बोली, "तुम्हारा नाम तो सबसे सुना है बहन, आँखों से देखने आई हूँ।"

सरोजिनी क्या जवाब दे, यह उसे सूझ न पड़ा। अपरिचित नर-नारियों से मिलने-जुलने और बातें करने की शिक्षा उसे बचपन से ही मिली है, वह इसमें अभ्यस्त भी है, परन्तु इस विधवा स्त्री के सामने वह विमूढ़ हो रही।

एक बार उपेन्द्र की ओर घूमकर किरणमयी ने देखा। कहा, "किन्तु आज अधिक समय नहीं। अधिक देर तक ठहरने के लिए समय न मिलेगा। चलो बाबू, एक बार छोटी बहन के घर में चलकर बैठें।"

उसने सरोजिनी का हाथ दबाकर इशारा किया।

जिस जिज्ञासा के भाव में किरणमयी आज असमय सुरबाल से मिलने आई थी, उस पर उसने इसी बीच में भली-भाँति विचार कर लिया था।

आते समय रास्ते में ही उसने निश्चय कर लिया कि जिस सुरबाला के साथ उसका केवल दो दिन का परिचय है, अकारण उनके घर आकर उस पर आक्रमण करने के समान उसकी विद्या-बुद्धि की जाँच करने की चेष्टा करना, उससे तर्क-वितर्क करना ठीक नहीं है। लोग क्या कहेंगे? सभी मेरे इस व्यवहार की हँसी उड़ाएँगे। इसलिए उस सम्बन्ध में बिना कुछ चर्चा किए लौट जाना ही उसे उचित जँचा, किन्तु किसी प्रकार लौट न सकी। किसी ने मानो उसे जबरदस्ती रोक दिया।

अपनी प्रियतमा पत्नी के उपेन्द्र ने जिन गुणों की इतनी बड़ाई की थी, जिसके लिए उन्हें अभिमान है, उसे किरणमयी मानो कुछ नहीं के समान समझती है। वह कैसी भी बुद्धिमती क्यों न हो, मैं उसे बात-की-बात में हरा दूँगी। उसके सामने ही मैं उसके सम्पूर्ण ज्ञान को धूल की तरह उड़ा अपनी इस आकांक्षा को, जो उसके हृदय के भीतर प्रतिहिंसा के समान धधक रही थी, वह किसी तरह दबा न सकी। सतीश से उसने उपेन्द्र का जो परिचय पाया था, उससे उसे विश्वास था कि उपेन्द्र उसकी उक्तियों और प्रश्नों के उत्तर दे सकते थे, किन्तु उन्होंने कुछ भी नहीं कहा, केवल मुस्कराकर रह गए। ऐसा क्यों किया? किसलिए? क्या सुरबाला भी कोई उत्तर न दे, स्वामी के समान वह भी मुस्कराकर रह जाए, तो उस दशा में मैं क्या करूँगी?

वह यही सब सोचती-विचारती हुई जब सरोजिनी के पीछे-पीछे सुरबाला के कमरे में पहुँची, तब इन सबके आने की उसे कुछ भी सूचना न थी। वह चौकी पर बैठी महाभारत में भीष्म की शर-शय्या की कथा पढ़ रही थी और रो-रोकर आठ-आठ आँसू बहा रही थी।

अकस्मात् किरणमयी को देख जल्दी से पुस्तक मोड़ और आँखें पोंछकर वह खड़ी हो गई।

उसने किरणमयी के दोनों हाथ पकड़, बड़े आदर से कहा, "आओ बहन!" वहीं दरी पर बिठाकर बोली, "मैंने कल तुम्हारे यहाँ जाने का विचार किया था।"

किरणमयी ने कहा, "इसीसे मैं आज ही आ गई बहन!"

पास ही एक कुर्सी खींचकर उस पर बैठते हुए उपेन्द्र ने कहा, "रो रही

थीं क्या ? संभवत: यह महाभारत है ?"

सुरबाला आँचल से आँखें पोंछने लगी।

उपेन्द्र ने कहा, "क्यों तुम इन सब पुरानी पुस्तकों के पीछे अपना समय नष्ट करती हो, मैं नहीं समझता। इस पर रोना, आँसू गिराना···" बात पूरी न होने पाई।

सुरबाला आँखें पोंछना छोड़, अप्रसन्न होकर बोली, "सैकड़ों बार तुम यह क्या कहते रहते हो कि···"

उपेन्द्र ने कहा, "कहता हूँ कि यह आदि से अन्त तक झूठ से भरा हुआ है और कुछ तो नहीं कहता।"

ऐसी बातों से उसे रुठाने में देर न लगती थी।

उसने अपनी रिस-भरी लाल आँखों से स्वामी की ओर देखकर कहा, "महाभारत मिथ्या है ? ऐसी बात तुम कभी मुँह से न निकालो। यह इसी की बात नहीं, ऐसी बात कहने से भी पाप होता है, यह नहीं जानते ?"

उपेन्द्र ने कहा, "जानता हूँ, कुछ नहीं होता। अच्छा, इनसे पूछो—ये भी विश्वास नहीं करतीं।"

सुरबाला इस बार किरणमयी के मुँह की ओर देखकर सूखी हँसी हँसकर बोली, "सुनती हो बहन, तुम महाभारत पर विश्वास नहीं करतीं ? ये कैसी बातें करते हैं ? इनको जरा समझा देना होगा।"

किरणमयी चुप।

पति-पत्नी के इस वाक्य-युद्ध का कुछ अर्थ वह समझ न सकी। उसे ऐसा मालूम हुआ कि यह अभिनय उसी को लेकर हो रहा है।

उपेन्द्र ने सरोजिनी को सम्बोधन कर कहा, "अच्छा, तुम क्या महाभारत की कहानियों को सच मानती हो ?"

सरोजिनी सरल भाव से बोली, "कुछ सत्य निश्चय ही है ? किंतु आदि से अन्त तक सच है, यह कोई नहीं मानता, मैं भी नहीं मानती।"

सुरबाला पहले चुप ही रही। उसने हँसी के बहाने इस बात को ही उड़ा देना चाहा, किन्तु सरोजिनी के और दो-चार बातें कहने तथा उपेन्द्र के ताना मारने पर वह विस्मित हुई और अन्त में क्रुद्ध हो उठी।

क्रमशः तीनों में वाद-विवाद बहुत बढ़ गया।

किरणमयी अब तक एक बात भी नहीं बोली थी। कारण, यह वाद-विवाद हँसी-मजाक के अलावा और भी कुछ हो सकता है, इसे वह मन में स्थान न दे सकी। जिसके साथ वह तर्क-वितर्क करने आई है, वह जब संपूर्ण महाभारत को ही अखण्ड सत्य प्रमाणित करने के लिए कमर कसे बैठी है, तब ऐसे अचिन्तनीय विषय को वह कैसे स्वीकार कर सकेगी !

इधर तर्क-वितर्क जोरों से चलने लगा, उधर वह केवल तीक्ष्ण दृष्टि से सुरबाला की ओर चुपचाप देखती रही। देखते-देखते उसकी सन्देह-राशि भाप के ही समान नष्ट हो गई।

उसने देखा—सुरबाला के स्वर से, उसकी दृष्टि से, उसके मुखमण्डल से, या यों कहिए कि उसके सारे शरीर से, एक ऐसा विश्वास प्रकट हो रहा है, जिसमें सन्देह का लेश भी नहीं हो सकता। यह इतना बड़ा ग्रंथ उसकी दृष्टि में प्रत्यक्ष सत्य है। यह हँसी नहीं, खेल नहीं, यह तो प्रत्यक्ष जीवित-जाग्रत् है। इसके वाद कुछ देर तक, कौन क्या करता है, इस ओर उसका ध्यान नहीं रहा। वह मानो एक नवीन सम्पूर्ण अपरिचित भाव का धुँधला स्वरूप सुरबाला के अन्तस में देखने लगी।

इस प्रकार वह कितनी देर तक रहती, कहा नहीं जा सकता।

सहसा वह उपेन्द्र और सरोजिनी को खिलखिलाकर हँसते देख, आपे में आ गई। देखा, हँसी से सुरबाला चकरा गई है। वह बेचारी अकेली थी। इसी से उसने किरणमयी को मध्यस्थ मानकर क्रोध में कहा, "अच्छा बहन, यह क्या कभी मिथ्या हो सकता है?"

किरणमयी की ओर उपेन्द्र ने देख, हँसी दबाकर कहा, "भाभी, तर्क का विषय यह है, सरोजिनी ने कहा कि भीष्म की शर-शय्या के समय अर्जुन ने वाणों से पृथ्वी को फोड़कर गंगाजल की धारा ला उपस्थित की थी, यह बात झूठी है। ऐसा कभी नहीं हो सकता।"

स्वामी की ओर कठोर दृष्टि से देखकर सुरबाला ने कहा, "अगर नहीं लाए तो कहती हूँ सुनो। पितामह भीष्म ने शर-शय्या पर लेटे हुए जल माँगा था। दुर्योधन सोने की झारी में जल लाए, पर उन्होंने नहीं पिया। यह तो झूठ नहीं है? गंगाजल यदि नहीं आया तो उनकी प्यास बुझी कैसे?"

इसे सुनकर सरोजिनी चुप न रह सकी, बोली, "कैसे? यदि उनकी

प्यास बुझी थी, तो झारी के जल से ही। उन्होंने वह जल पिया था जो दुर्योधन झारी में भरकर लाया था।"

सुरबाला ने बहुत उत्तेजित और रुष्ट होकर कहा, "तो क्यों लिखा है कि नहीं पिया, और यदि उन्होंने झारी का जल ही पी लिया तो अर्जुन को इतना कष्ट उठाकर बाण से पृथ्वी को बेधकर गंगाजल लाने की क्या आवश्यकता थी? बहन, तुम्हीं बताओ, यह तो कभी किसी तरह मिथ्या नहीं हो सकता!" यों कहकर उसने क्रुद्ध और करुण आँखों से किरणमयी की ओर देखकर उत्तर देने का अनुरोध किया।

उसी क्षण उपेन्द्र की हँसी से कमरा गूंज उठा। सरोजिनी भी खिलखिलाकर हँस पड़ी।

उपेन्द्र ने कहा, "लो भाभी, उत्तर दो। बताओ अर्जुन यदि गंगाजल नहीं लाए, तो प्यास कैसे मिटी? और जब प्यास बुझ गई, तब गंगाजल आया कैसे नहीं?" कहकर एक बार फिर जोर से हँस पड़े।

किरणमयी इस हँसी में भाग न ले सकी। वह आश्चर्य से सुरबाला के चेहरे की ओर देखती रही।

क्षण-भर बाद एकाएक बड़े आवेग के साथ उसको अपनी छाती से लगाकर धीरे से कहा, "मिथ्या नहीं बहन, इसमें तनिक भी मिथ्या नहीं। गंगाजल अवश्य आया था। तुमने जो समझा है, जो पढ़ा है, सब सत्य है। सत्य को सभी नहीं पहचान सकते, इसी से लोग तुम्हारी बातें सुनकर हँसी उड़ाते हैं—" कहते-कहते उनकी दोनों आँखें भर आईं।

सरोजिनी और उपेन्द्र दोनों आश्चर्य से उसका मुँह देखने लगे। किरणमयी ने उधर एक बार भी न देखा। उसको उसी प्रकार छाती से लगाए, आँखें पोंछकर धीरे-धीरे कहा, "बहन, जिन्होंने अनेकों धर्मग्रंथ पढ़े हैं, वे जानते हैं कि आज तुमने जैसा विचार किया है, इससे अच्छा विचार किसी धर्मग्रंथ में किसी विद्वान् ने कभी नहीं किया है। उन्हें भी इसी तरह अपने मन की बात कहनी पड़ी। इस विषय को जो जानते हैं, वे तुम्हारी बात सुनकर हँस नहीं सकते—" उसने सरोजिनी की ओर देखकर पुनः कहा, "क्यों बहन, क्या तुम मेरे विचार-व्यवहार देखकर आश्चर्य कर रही हो! करने की बात ही है"—कहकर वह हँसने लगी।

उपेन्द्र सबसे अधिक विस्मित हुए थे। वे किरणमयी के इस आकस्मिक भाव-परिवर्तन का कारण बिल्कुल ही न समझ सके। कुछ क्षण पहले जिसने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि सत्य-असत्य की पहचान, बुद्धि और विवेक के पलड़े के सिवा और किसी प्रकार हो ही नहीं सकती, और इस परख पर जो बात सत्य नहीं उतरती, उसे स्वीकार करना वह व्यर्थ समझती है, वही सुरवाला के इन सीधे-सादे शब्दों और लड़कपन से कैसे विचलित हो गई? उसे छाती से लगाकर उसने जो बातें कही थीं, वे मुँहदेखी नहीं हो सकतीं। इसके अलावा किरणमयी अच्छी तरह समझती है कि उसने जो बातें कही हैं उनका मतलब सुरबाला समझ भी न सकी है। फिर उसकी आँखों में इस प्रकार आँसू क्योंकर उमड़ आए?

उपेन्द्र को बड़ा आश्चर्य हुआ। एक बात और थी। उपेन्द्र जानते थे कि इस प्रकार की तीक्ष्ण बुद्धिवाली नारियाँ किसी भी अवस्था में आवेग प्रकट करना नहीं चाहतीं। यदि किसी प्रकार उनका आवेग प्रकट हो भी जाता है तो उनकी लज्जा की सीमा नहीं रहती। आज के व्यवहार से उसने तनिक भी लज्जा का अनुभव नहीं किया, यह बात सम्पूर्ण अपरिचित सरोजिनी भी समझ गई।

साँझ हो गई।

किरणमयी सबसे विदा ले, धीरे-धीरे गाड़ी पर आ बैठी।

दिवाकर घर में न था। घूमने के लिए बाहर निकल गया था, इसीलिए उपेन्द्र को अकेले ही गाड़ी के अन्दर बैठना पड़ा, किन्तु किरणमयी ने मानो उसकी ओर ध्यान भी नहीं दिया। गाड़ी के एक कोने में सिर रख, चुपचाप बैठी रही।

कुछ पल सरक गए। इस प्रकार मौन बैठे रहना भी अच्छा नहीं। इस के अलावा उपेन्द्र निश्चित रूप से समझते थे कि किरणमयी कुछ सोच रही है, किन्तु क्या सोच रही है, यह जानने के लिए पूछा, "भाभी, देखा आपने, कैसी बुद्धिमती पत्नी के साथ मुझे गृहस्थी चलानी पड़ी है? एक तो वह यों ही इस विषय में किसी की कोई बात नहीं सुनती है, दूसरे हँसी-हँसी में जो सर्टिफिकेट आप दे आई हैं, उससे तो अब किसी की एक न सुनेगी।"

इसका कोई उत्तर नहीं दिया किरणमयी ने।

फिर उपेन्द्र ने मुस्कराते हुए कहा, "किन्तु यहीं इसका अन्त नहीं है। भाभी ! वह ऐसी मूर्ख है कि जन्म-भर में कभी झूठी बात बोल ही नहीं सकती।"

किरणमयी पहले के समान ही चुप रही।

उपेन्द्र ने कहा, "क्यों नहीं बोल सकती, जानती हैं ? एक तो तैंतीस करोड़ देवता उसे चारों ओर से घेरकर दिन-रात पहरा देते ही रहते हैं। इसके अलावा जो कुछ उसने कभी देखा नहीं है, उसके विषय में बुद्धि लगाकर कुछ अनुमान करने की शक्ति ही उसमें नहीं है।"

रुँधे कंठ से किरणमयी ने संक्षेप में कहा, "अच्छा ही तो है !"

उपेन्द्र ने कहा, "अरे, यह अच्छी बात है भाभी, मैं तो ऐसा नहीं समझता। गृहस्थाश्रम में एक-दो झूठी बात भी बोलनी पड़ती हैं। जिस बात से किसी को कोई हानि नहीं बल्कि किसी अशान्ति या किसी व्यर्थ के बखेड़े से मुक्ति मिलती हो, वैसी असत्य बात बोलने में क्या दोष है ? मैं तो कहता हूँ कि ऐसे समय झूठ बोलना ही अच्छा है।"

"अच्छा तो है, पर यह बात क्या आप उन्हें नहीं सिखा सकते ?"

"ना-ना ? एक बहुत छोटी-सी मिथ्या बात के लिए युधिष्ठिर की जो दुर्गति हुई थी, वह महाभारत में लिखी है ! देवी और देवतागण जिस तरह आँखें फाड़कर उसकी ओर देखते हुए बैठे हैं, यह जानकर भला वह झूठ बोल सकती है ? वे उसी दम उसे घसीटकर नरक में जा डुबो देंगे !" जरा ठहरकर फिर बोले—"भाभी ! वह आँख मींचकर भगवान् का स्वरूप भी स्पष्ट देख पाती है, यह एक अनोखी ही बात है। कभी ढाल-तलवार, कभी शंख, चक्र, गदा, पद्म और कभी वंशी हाथ में लिए वे प्रत्यक्ष रूप से उसके सामने आ खड़े होते हैं, यह सुनकर तो मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। किसी और के मुँह से ऐसा सुनता तो मैं झूठी गप्प समझकर हँसी में उड़ा देता, किन्तु उसके सम्बन्ध में ऐसा सन्देह तक नहीं कर सकता···" इतना कहते-कहते श्रद्धा, प्रेम और गर्व से द्रवित होकर उपेन्द्र का गला भर आया। क्षण-भर बाद उन्होंने कौतूहल भरे स्वर में कहा, "यही सब देख-सुनकर उसे मनुष्य की अपेक्षा जानवर कहना अधिक ठीक जँचता है। उनकी बुद्धि की बलिहारी है, जिन्होंने बचपन में उसका नाम पशुराज रखा था। यह क्या

भाभी ?"

गाड़ी के मोड़ घूमते समय गस के प्रकाश में उपेन्द्र सहसा किरणमयी का चेहरा आँसुओं से तर देखकर चौंक उठे।

उपेन्द्र लज्जा से सिर झुकाकर बैठे रहे। वे आनन्द-माधुर्य में मग्न होकर प्रेमवश जिसके आगे बैठे यह हँसी कर रहे थे, वह किस व्यथा से पीड़ित होकर चुपचाप आंसू बहा रही थी, यह अब तक उन्हें मालूम भी न हो सका था।

पथरियाट्टे के मकान पर जिस समय दोनों पहुँचे, उस समय ढाई-तीन घंटे रात बीत चुकी थी।

सारा मार्ग किरणमयी ने मौन रहकर पार किया था। मकान में आ थोड़ी देर तक इधर-उधर करने के बाद वह अचानक अनुतप्त कंठ से बोल उठी, "मेरी बुद्धि एकदम मारी गई क्या? व्यर्थ क्यों घूमती-फिरती हूँ। आप अब तक एक घूँट जल भी पीने नहीं पाए, इसका भी मुझे ध्यान न रहा। हाथ-मुँह धो लीजिए, मेरे साथ रसोईघर में चलिए। दो-चार पूरियाँ निकालने में दस मिनट से अधिक देर न लगेगी।"

दासी से कहा, "जरा तू चूल्हा तो जला दे, जल्दी कर, फिर घर जाना। मेरी दासी बड़ी अच्छी है।" वह किवाड़ बन्द कर रही थी, घर जाना चाहती थी, किन्तु आज्ञा मानने के लिए उसे फिर ऊपर जाना ही पड़ा। सदर दरवाजा बन्द कर वह जल्दी से ऊपर चली गई।

दो-चार पूरियाँ निकालने की बात सुनकर उपेन्द्र घबराए। बोले, "यह न होगा, भाभी। आज आप बहुत थक गई हैं। मैं वापस ही जाकर खाऊँगा। मेरे लिए आप कोई कष्ट न उठावें।"

"क्यों न उठाऊँगी ?"

उपेन्द्र ने कहा, "ना-ना, यह न होगा, किसी प्रकार भी न होगा।"

किरणमयी मुँह मोड़कर मुस्कराती हुई बोली, "बाबू, तुम यश के भूखे हो, इतना यश इकट्ठा कर कहाँ रखोगे ?"

सहसा प्रशंसा का कारण न समझकर उपेन्द्र कुछ आश्चर्यचकित हुए।

किरणमयी ने कहा, "सच कहती हूँ, तुम्हारे परोपकार का यश ऐसा निःस्वार्थ, निर्लिप्त होना चाहिए जिसका जोड़ स्वर्ग-मर्त्यलोक में कहीं भी

न हो। हम लोगों के लिए तुमने जो कुछ किया है, उसके लिए मैं अपनी छाती चीरकर यदि हृदय-रक्त से तुम्हारे पाँव धोऊँ, तो तुम्हें आपत्ति नहीं करनी चाहिए। जरा जलपान तैयार करने की बात में सिर हिलाते हो? छिः! हमें तुमने इतना नीच समझ लिया है? बाबू, तुम हम लोगों को क्या समझते हो? क्या हम मनुष्य नहीं हैं या मनुष्य का रक्त हम लोगों के शरीर में नहीं बहता?"

अत्यन्त लज्जित और कुण्ठित होकर उपेन्द्र ने कहा, "ऐसी कोई बात सोचकर मैं आपत्ति नहीं कर पा रहा हूँ भाभी! मैं तो केवल···"

"केवल क्या बाबू? घर जाने की जल्दी में क्या कहा, क्या नहीं, इसका भी कुछ ध्यान नहीं रहा?"

उपेन्द्र की जान में जान आई।

वे मुस्कराते हुए बोले, "बदनामी मेरी तो है ही भाभी; यह तो मैं अस्वीकार नहीं कर सकता, किन्तु इस समय बात यह नहीं थी। मैंने वास्तव में यह समझा था कि आज आप बहुत थक गई हैं।"

"हो सकता है मैं थक गई हूँ···" यह कह किरणमयी फिर मुस्कराई। इसके बाद सहसा गम्भीर होकर बोली, "आह! आज यदि मेरे सतीश बाबू होते, तो अपनी बात अपने मुँह से नहीं कहनी पड़ती। वे सौ-सौ मुँह से मेरी सब बातें कहते। ना बाबू, थके-माँदे का बहाना कर आराम करने की अब मेरी अवस्था नहीं रही। इसके अलावा हिन्दू घरों की किसी स्त्री को यह बदनामी अच्छी नहीं लगती। अपना हो या पराया, किसी भी पुरुष को यदि ठीक समय पर खिला-पिला न सकी, और इस बात पर यदि किसी ने ताना मार दिया, तो मरती हुई स्त्रियाँ उठ खड़ी होती हैं। यह तो जानते हो न बाबू?"

इस बार मुस्कराते हुए उपेन्द्र ने वहा, "जानता हूँ, भाभी! अच्छी प्रकार जानता हूँ। स्वीकार करता हूँ कि अपराध हो गया, क्षमा करो! चलिए क्या खाने को देंगी?"

"आओ", कहकर किरणमयी मार्ग दिखाती हुई रसोईघर की ओर चली। सास की कोठरी के सामने पहुँचकर उसने एक बार झाँककर देखा। वे गहरी नींद में सो रही थीं।

रसोईघर में पहुँच, पीढ़ी रख, जैसे सतीश को बिठाती थी, वैसे ही उसने उपेन्द्र को भी बिठाया।

दासी चूल्हा जलाकर और वस्तुओं का प्रबन्ध करने बाहर चली गई। किरणमयी ने अपने इस रूप में आए हुए नए अतिथि की ओर देखकर कहा, "अच्छा बाबू, मुझे कष्ट होगा, इससे बिना खाए चलने का प्रस्ताव तुमने किया था, यह यदि और किसी के सामने कर बैठते तो आज तुमको क्या दण्ड भोगना पड़ता, जानते हो?"

उपेन्द्र ने कहा, "जानता हूँ; किन्तु यहाँ तो वह दंड भोगने का भय न था, भाभी!"

दासी आटे की थाली रखकर चली गई। किरणमयी ने थाली अपनी ओर खींचकर सिर झुकाए मृदु स्वर में कहा, "ऐसा क्यों समझते हो! भाग्य में यदि लिखा रहता है, तो उसे भोगना ही पड़ता है। कहाँ जाकर कौन भोग भोगना पड़ेगा, इसका कोई लेखा-जोखा पहले से मालूम भी तो नहीं रहता। भाग्य का लिखा क्या मेटा जा सकता है? मेटा नहीं जा सकता बाबू, यह आप ही आकर गले पड़ता है।"

इन बातों का मर्म उपेन्द्र ठीक-ठीक समझ न सके। बोले, "यह तो ठीक ही है भाभी!"

किरणमयी फिर और कुछ न बोली, एक बार केवल उपेन्द्र के मुँह की ओर देखकर ही आँखें नीचे कर आटा माँड़ने लगी। मालूम हुआ, मानो वह चुपचाप हँस रही है।

कुछ समय बाद वह एक बार बोल उठी, पर उसने आँखें ऊपर न उठाईं। कहा, "अच्छा, आज इतना आडम्बर रचकर बहू को दिखाने ले जाने का मतलब क्या था? अब जरा खोलकर कहो तो सही।"

उपेन्द्र ने आश्चर्य में आकर कहा, "भाभी, आडम्बर तो मैंने कुछ भी नहीं किया!"

किरणमयी ने कहा, "तो शायद कहने में मुझसे भूल हुई है। लो स्पष्ट कहती हूँ, ऐसी कपट-चातुरी से मुझे क्यों ले गए थे?"

उपेन्द्र ने कहा, "इसमें मैंने कपट-चातुरी ही क्या की थी?"

किरणमयी ने कहा, "यही कि वह बड़ी मूर्ख है, पागल है आदि कितनी

ही बातें बताई थीं, किन्तु इन व्यर्थ की बातों पर तर्क करने से क्या होगा ? ऐसी बहू को यदि मूर्ख समझते हो, तो इस भाभी का भी तो परिचय पा गए हो। क्या तुम समझते हो कि मुझे सहज ही भुलावे में डाल सकोगे ?''

''ना, ऐसा नहीं समझता।''

किरणमयी ने मुँह ऊपर उठाकर देखा। इस कारण जैसा छोटा-सा उत्तर उपेन्द्र ने देना चाहा था, वैसा वे न दे सके। न इच्छा होने पर भी, उनका गम्भीर स्वर निकल पड़ा था, किन्तु किरणमयी ने उस ओर ध्यान दिया या नहीं, यह वे न जान सके। वह पहले के समान ही हँसी के स्वाभाविक स्वर में बोली, ''फिर ?''

उपेन्द्र को स्वयं अपने कंठ-स्वर में गम्भीरता मालूम हुई और इसीलिए वे मन-ही-मन लज्जित हुए।

इसी बीच में उन्होंने भी अपने आपको सँभाल लिया। हँसकर बोले, ''भाभी, आपको धोखा देना क्या सहज बात है ? पर यदि मैं चतुराई न करता, तो आप यह कैसे जानतीं कि मैं कैसी मूर्खा के साथ अपनी गृहस्थी चलाता हूँ ? अब तो देख आईं न ?''

किरणमयी ने कहा, ''देख आने से मुझे क्या लाभ हुआ ?''

उपेन्द्र ने कहा, ''लाभ आपको नहीं, मुझे हुआ। सभी अपना दुःख दूसरों को बताकर दुःख को कम करना चाहते हैं। यह मनुष्य मात्र का स्वभाव है। इसी से यदि चालाकी या चतुराई का व्यवहार करके कुछ कष्ट दिया है, तो आपकी दया पाने के लिए, अन्य किसी स्वार्थ के लोभ से नहीं।''

कुछ क्षण किरणमयी चुप रही। इसके बाद मुँह नीचा किए हुए ही उसने कहा, ''और सुन नहीं सकती, झूठी बड़ाई अब बन्द करो। अपनी मूर्खा को यदि मूर्खा समझ कुछ कम स्नेह करते तो और भी कुछ देर तक यश के ये गीत सुन सकती, शायद कुछ दया भी आती, किन्तु सतीश बाबू से मैंने सब सुना है। अच्छा तो है, खूब प्यार करो, किन्तु इस तरह ढोल पीटते फिरना क्या अच्छा लगता है ? जरा लज्जा भी नहीं आती ?''

उपेन्द्र मौन हो गए। वे क्या कहें, क्या नहीं, कुछ निश्चित न कर सके। यह कैसा ढंग है ! यह कैसा कंठ-स्वर है ! परिहास तो यह किसी भाँति नहीं माना जा सकता। फिर यह क्या है !

आक्षेप ! ईर्ष्या ? विद्वेष !

इस रात को इस विधवा रमणी ने यह किस बात का आभास इस निर्जन घर में अचानक मेरे समक्ष प्रकट करने का प्रयास किया !

कुछ क्षण तक दोनों सिर झुकाए बैठे रहे।

दासी ने दरवाजे के बाहर से खाँसकर कहा, "बहू, अब मैं ठहर नहीं सकती। जरा चलकर सदर दरवाजा बन्द कर लो।"

किरणमयी ने उसकी ओर देखकर कहा, "जाएगी ! अच्छा तो…बाबू जरा तुम बैठो, मैं दरवाजा बन्द करके आती हूँ।" यह कह उसके जाते ही उस कमरे में अकेले उपेन्द्र का अन्तःकरण एक अनोखी लज्जा और घृणा से भर गया, जिसका अनुभव उसने जीवन में कभी नहीं किया था।

उसका उदार, उन्मुक्त चरित्र सदा स्फटिक जैसे स्वच्छ प्रवाह के समान बह रहा था। कहीं भी, कभी भी अवरोध नहीं पहुँचा था, पर आज इस अकेलेपन में उसकी निर्मलता धुंधली हो गई।

सत्ताईस

किरणमयी दासी को विदा कर वहीं आ बैठी।

तब उपेन्द्र सिर उठाकर उसकी ओर देख भी न सके। किरणमयी से यह बात छिपी न रही, किन्तु वह भी चुपचाप अपना काम-काज करने लगी।

इसी प्रकार प्रायः दस मिनट का समय बीत जाने के बाद किरणमयी ने धीरे-धीरे कहा, "अच्छा बबुआ, यदि कोई आड़ से हम लोगों को इस प्रकार चुपचाप बैठे देख ले तो क्या समझेगा ?" वह मुँह घुमाकर हँसने लगी।

इस हँसी को उपेन्द्र न देख सका पर मन से इसका अनुभव कर लिया।

"तो क्या कहूँ भाभी, कोई बात ढूँढ़ नहीं मिलती।"

हँसते हुए किरणमयी ने कहा, "कोई बात ही नहीं मिलती ! अच्छा, मैं खोज देती हूँ, पर पहले ही एक बात बता देती हूँ। जलपान तैयार होने और तुमको खिला-पिलाकर विदा करने में आध घंटे से अधिक समय न

लगेगा। इतनी देर तक तुम प्रसन्नतापूर्वक बातें करो, इस प्रकार उदास मत बैठो।"

उपेन्द्र ने जरा हँसकर कहा, "अच्छा, कहो।"

किरणमयी फिर मुँह मोड़कर हँसी और बोली, "ठीक है। भाभी का मान रखने के लिए जरा हँसे तो सही। तुमको देखकर मेरे मन में एक बात सूझ आई है, किन्तु उसे सुनकर कहीं उलटा मतलब लगाकर तुम अप्रसन्न तो न हो जाओगे?"

"ना, अप्रसन्न क्यों होऊँगा?"

"क्या आप जानते हो बबुआ जी, अच्छे-अच्छे काव्यों में पढ़ा जाता है —वे हमारे देश के हों या विदेश के, कि प्रथम दर्शन से ही अगाध प्रेम उत्पन्न होना—अच्छा, इसे क्या सम्भव मानते हो?"

एकाएक उपेन्द्र का मुख शर्म से लाल हो उठा। उसने कहा, "अच्छा-बुरा किसी काव्य के सम्बन्ध में ही मेरा विशेष ज्ञान नहीं है भाभी, यह सब मैं नहीं जानता।"

किरणमयी बोली, "यह कैसी बात कहते हो बबुआ? इतना लिख-पढ़ चुके हो, इतनी परीक्षाएँ पास करके कितने ही रुपए की मिठाइयाँ वसूल कर चुके हो और काव्य के विषय में तुम कुछ भी नहीं जानते? शकुन्तला, रोमियो-जूलियट, इन दोनों को कभी क्या तुमने नहीं पढ़ा है?"

उपेन्द्र ने कहा, "लेकिन पढ़कर पास करने में सम्भव-असम्भव निश्चय करना नहीं पड़ा है। पुस्तक में जो लिखा है, कंठस्थ करके लिख आया था। आपके समान किसी परीक्षक ने कभी प्रश्न नहीं किया—यह होता है या नहीं। मुझे क्षमा करना पड़ेगा भाभी, ऐसी बहस आपके साथ मैं न कर सकूँगा।"

किरणमयी ने उदास होकर एक लम्बी साँस लेकर कहा, "इसीलिए पूछा था, मुझपर क्रोध तो न करोगे।"

"लेकिन क्रोध तो मैंने किया नहीं।"

"न करना ही अच्छा है!" कहकर किरणमयी ने गरम कड़ाही में घी डाल दिया।

तीन-चार पूड़ियाँ छानकर, किरणमयी सहसा बोली, "जिस बात को

मैंने जान लेना चाहा था, उसकी आलोचना ही तुमने करने नहीं दी। मेरा भाग्य ही ऐसा है ! लेकिन एक और बात मैं पूछती हूँ बबुआ जी, प्रेम को लोग अन्धा क्यों कहते हैं ?"

उपेन्द्र ने कहा, "सम्भवतः आँखें रहने से जिस मार्ग से मनुष्य नहीं जाता—उस मार्ग में प्रेम उसको ले जाता है।"

किरणमयी ने उत्सुक होकर पूछा, "ले जाता क्या ? क्या यह बात सत्य है कि प्रेम अन्धा होता है ?"

"सच तो अवश्य है। बहुतों की बहुत-सी अभिज्ञता से ही तो यह प्रवाद चला है।"

किरणमयी ने कहा, "अच्छी बात है। यदि यही होता है, तो अन्धा जब गढ़े में जाता है, लोग दौड़ते हुए आकर उसे उठा लेते हैं। उसके लिए दुःख मानते हैं, जिसमें जैसी शक्ति रहती है, उसके अनुसार सहायता की चेष्टा करता है, लेकिन प्रेम के कारण अन्धा बनकर कोई जब गढ़े में गिर पड़ता है, तो कोई भी उसे सहायता देने के लिए दौड़कर नहीं आता। बल्कि, और हाथ-पैर तोड़कर उसी गढ़े पर मिट्टी डाल दी जाती है। जिस सत्य का मनुष्य स्वयं ही प्रचार करता है, आवश्यकता पड़ने पर उस सत्य की कोई मर्यादा ही नहीं मानता। मेरी बात तुम समझ रहे हो न बबुआ ?"

उपेन्द्र ने गर्दन हिलाकर कहा, "समझ रहा हूँ।"

किरणमयी ने कहा, "समझ सकते हो इसलिए तो तुमसे पूछ रही हूँ, लेकिन इसी दशा में देखो, दूसरों के मामलों में बहुत कुछ जानते हुए भी लोग बरबस भूल जाना चाहते हैं। अन्ध को आँख वाले का दंड देकर अपने को वीर समझने लगते हैं। दूसरे के विषय में विचार करते समय यह बात उसे याद नहीं रहती कि आँख खो देने पर, गढ़े में गिर जाने की उसकी सम्भावना उस मनुष्य की अपेक्षा कुछ भी कम नहीं रहती।"

कुछ अप्रसन्न तथा आश्चर्य के साथ उपेन्द्र ने कहा, "यह नहीं भी हो सकता है, लेकिन सोचकर समझ नहीं सकता भाभी, ये सभी आलोचनाएँ क्यों कर रही हैं ? सच हो, झूठ हो, आपके जीवन के साथ इस मीमांसा का कोई सम्बन्ध नहीं है।"

किरणमयी उपेन्द्र की अप्रसन्नता लक्ष्य करके भी हँस पड़ी, बोली,

"अन्धा आलोचना करके गढ़े में नहीं गिरता बबुआ, गिरकर आलोचना करता है। मैं नहीं गिर पड़ी हूँ या गिर पड़ने के लिए उस ओर बढ़ती नहीं जा रही हूँ, यही बात तुम किस प्रकार जान गए ?"

उपेन्द्र ने कहा, "लेकिन आप तो अन्धी नहीं हैं। मैंने तो आपकी बड़ी-बड़ी दोनों आँखें देख ली हैं भाभी !"

किरणमयी बोली, "यही तो कठिनाई है बबुआजी, दो प्रकार के अन्धे होते हैं, जो लोग आँखें बन्द करके चलते हैं, उनके विषय में तो सोचना नहीं पड़ता—वे पहचाने जाते हैं। लेकिन जो लोग दोनों आँखों से देखते हुए चलते हैं, फिर भी देख नहीं पाते, उन लोगों को ही लेकर सब गंडागोल हैं। वे स्वयं भी धोखा देने से नहीं बख्शते।"

उपेन्द्र कुण्ठित होकर बैठा रहा। उससे उत्तर न पाकर किरणमयी ने एकाएक उत्सुक होकर, प्रश्न किया, "अच्छा, तुमने जो यह बात कही बबुआ, कि मेरी बड़ी-बड़ी दो आँखें तुमने देखी हैं, तो वह किस समय ? क्या यह मैं पूछ सकती हूँ ?"

उपेन्द्र बोला, "आपके पति की मृत्यु के बाद ही उस दिन जिसने उन्हें देखा है, वह किसी दिन आपके विषय में भूल न करेगा। क्यों आप अपने को अन्धी कहकर डर रही हैं, यह बात आप ही जानती हैं, लेकिन मैं जानता हूँ, यह बात सच नहीं है। उस दिन आपकी दोनों आँखों में मैंने जो ज्योति देखी थी, उससे मैं निश्चित रूप से जानता हूँ, कितना ही अन्धकार आपके चारों ओर घना होकर क्यों न आ जाए, वह आपको लील न सकेगा और आप ठीक मार्ग देखकर चली जा सकेंगी।"

कुछ देर तक चुप रहकर किरणमयी ने कहा, "इतनी देर में सम्भवतः मैं यह बात समझ गई हूँ बबुआ, उस दिन जिस प्रकार चेतना खोकर मैं उनके पैरों के नीचे गिर पड़ी थी, उसे ही देखकर सम्भवतः तुम्हारे मन में यह धारणा उत्पन्न हुई।"

उपेन्द्र ने सिर हिलाकर कहा, "यह बात हो भी सकती है, लेकिन वह क्या भूल करने के लिए है भाभी ?"

किरणमयी सुनकर हँस पड़ी। फिर संकोच-रहित सहज स्वर से बोली, "भूल की तरह तो ज्ञात हो रहा है। मैं तो अपने पति को प्यार नहीं करती

थी ।"

उपेन्द्र अवाक् होकर निहारता रहा ।

किरणमयी कहने लगी, "सचमुच ही उनको मैंने किसी दिन प्रेम नहीं किया । और मैंने ही नहीं, उन्होंने भी मुझे कभी प्यार नहीं किया । तो क्या उस दिन की वह मेरी छलना थी ? यह बात भी नहीं है, वह भी सत्य है । सचमुच ही उस दिन मैं अपनी बुद्धि खो चुकी थी ।"

उपेन्द्र की मौन मुख-मुद्रा देखकर वह कुछ ठिठक गई । लेकिन दूसरे ही क्षण उसे बलपूर्वक दूर करके बोली, "ना, डरने से मेरा काम न चलेगा । तुमको सभी बातें आज बता देनी पड़ेंगी ।"

उपेन्द्र ने कष्ट से मुँह ऊपर उठाकर कहा, "क्यों ? मैं सुनना नहीं चाहता, तो भी मुझे क्यों सुनती ही पड़ेंगी ?"

किरणमयी ने कहा, "इसका कारण यह है कि तुम हो मेरे गुरु । तुम्हारे सामने सब स्वीकार न करने से मैं किसी प्रकार भी शान्ति न पाऊँगी ।"

उपेन्द्र स्थिर रहा । किरणमयी दृढ़ किन्तु मृदु स्वर में बोली, "मेरे भीतर जो गम्भीर अन्तर्दृष्टि तुमने देखी थी, बबुआ, वह आँखों की भूल नहीं थी, सच्ची थी; लेकिन बहुत ही अल्पकाल की थी । पति को मैंने किसी दिन प्यार नहीं किया, लेकिन तन-मन से प्यार करने का प्रयत्न मैंने आरम्भ किया था । लेकिन वे बचे नहीं, मेरी भी वह चेष्टा स्थायी नहीं हुई । पुस्तकों में से वे सब बातें पढ़कर कभी मैं सोचती थी, ये झूठी बातें हैं, कभी सोचती थी, कवि की कल्पना है, कभी मन में यही विचार करती थी कि सम्भवतः मुझमें प्यार करने की शक्ति ही नहीं है । इसीलिए ऐसा होता है । वह शक्ति मुझमें है या नहीं, आज भी मैं नहीं जानती बबुआ, किन्तु प्यार करने की इच्छा मेरी कितनी अधिक है, इस बात का पहले मुझे पता लगा तुमको देखकर । इसीलिए तुम ही गुरु हो ।"

कुछ देर चुप रहकर अपने आप उसने कहा, "दो दिनों के बाद तुम लोग चले जाओगे । फिर जब भेंट होगी, तब अपनी बातें कहने योग्य मन की अवस्था सम्भवतः न रहेगी । हो सकता है कि यही कह देने के लिए तब मैं शर्म से मर जाऊँगी । नहीं बबुआजी, यह होगा नहीं, आज ही तुमको

अपनी सभी बातें सुनाकर मैं निश्चिन्त हो जाऊँगी !"

उपेन्द्र ने कातर होकर कहा, "भाभी ! आज तरह-तरह के कारणों से आपका मन अत्यन्त उत्तेजित हो गया है, मैं देख रहा हूँ। इस अवस्था में क्या कहना उचित है, क्या अनुचित, यह समझ न सकने से—ना-ना, भाभी मैं अनुरोध कर रहा हूँ, किसी दूसरे दिन आकर आपकी सब बातें सुन जाऊँगा, लेकिन आज नहीं।"

किरणमयी ने कहा, "ठीक इसीलिए तो आज तुमको सभी बातें सुनाना चाहती हूँ, बबुआजी। फिर उस दिन लज्जा आकर बाधा न डाल दे, सांसारिक भले-बुरे की विचार-बुद्धि मुँह दबाकर पकड़ लेगी। आज मुझे रख-ढककर, समझ-बूझकर, सजाकर-बचाकर कहने की शक्ति भी नहीं है, इच्छा भी नहीं है—आज ही तो कहने का दिन है। इसके बाद सम्भवत: तुम इस जन्म में फिर मेरा मुँह न देखोगे, तो भी मैं प्रार्थना करती हूँ और भी कुछ देर तक मेरी यह कुबुद्धि और मेरा उन्माद बना रहे, जिससे मैं तुम्हारे सामने सब खोलकर कह सकूँ।"

उसकी आकृति की ओर देखकर उपेन्द्र का निर्मल, शुद्ध हृदय अज्ञात भय से त्रस्त हो उठा। अन्तिम बार वह बोला, "भाभी, मनुष्य मात्र की गुप्त बातें रहती हैं। उन्हें तो किसीके सामने खोल देने की आवश्यकता नहीं है, वरन् प्रकट कर देने में अधिक बुराई है, केवल तुम्हारी और मेरी ही नहीं, और भी दस आदमियों की।"

किरणमयी मौन रही। पूड़ियों का पकाना समाप्त हो गया था, एक थाली में अच्छी प्रकार से सजाकर तथा उपेन्द्र के आगे रखकर उसने कहा, "तुम खाओ, मैं अपना कहना समाप्त कर डालूँ।"

"अच्छा है, आप न कहें भाभी !"

किरणमयी ने कहा, "प्रार्थना कर रही हूँ बबुआ, अब मुझे कहने के लिए मत रोको। सब सुन लेने पर तुम्हारी इच्छा हो, तो मेरी सास के साथ ही मेरा भी भार लेना; इच्छा न हो, तो मैं अपना मार्ग स्वयं ही निश्चित कर लूँगी। मैंने बहुतों को धोखा दिया है बबुआजी, लेकिन मैं तुमको ठग न सकूँगी।"

"तो कहिए !" यह कहकर उपेन्द्र ने पूड़ी का एक टुकड़ा अपने मुँह में

डाल लिया।

किरणमयी ने कहा, "तुमको मैंने बता दिया है बबुआजी, पति को मैंने कभी प्यार नहीं किया; उनका प्यार मुझे मिला भी नहीं। इसके लिए हमें कोई दुःख नहीं था। घर में मेरी सास और पति दो से साथ रहा। एक थे दार्शनिक, वे मुझे जी-जान से पढ़ाने में ही प्रसन्न रहा करते थे और एक थीं घोर स्वार्थी—वे जी-जान से मुझे काम में लगाए रखने में ही प्रसन्न थीं। इसी प्रकार दिन बीत रहे थे और सम्भवतः कट भी जाते; लेकिन एकाएक सब उलट-पलट गया। पति बीमार पड़ गए। उनसे मैंने अनेक पुस्तकें पढ़ी हैं। नाटक-उपन्यास भी मैंने कम नहीं पढ़े हैं; लेकिन हम दोनों ही पढ़-पढ़ कर केवल हँसते रहते थे। प्यार का चिह्न भी हममें नहीं था। कोई आदमी रहते हैं जन्म के बहरे, जन्म के अन्धे; मेरे पति भी वैसे ही जन्म के नीरस थे। लेकिन मुझमें कितना रस था, यह उस समय तक भी मैं जान नहीं सकी थी। लेकिन उस बात का एकाएक मुझे पता लग गया कि प्यार करने की और उसे प्राप्त करने की इच्छा मेरी किसी स्त्री से कम नहीं है—ना-ना, इसके बीच ही इसको ठेल रखने से काम न चलेगा…।"

उपेन्द्र ने उदास होकर कहा, "किसी प्रकार भोजन अच्छा नहीं लग रहा है भाभी।"

पल-भर चुप रह कुछ सोचकर किरणमयी ने फिर कहा, "मैं जानती हूँ बबुआजी, और थोड़ी देर बाद ही पूड़ी-तरकारी का स्वाद तुम्हारी जीभ पर विष बन जाएगा, लेकिन अभी तो इसमें देर थी। तुम कुछ और खा सकते थे।"

उपेन्द्र और भी उदास हो गया।

किरणमयी उसकी ओर देखकर ही कहने लगी, "यदि मैं कहूँ कि तुम्हारे यह न खाने का जो दुःख है, वह मेरा दाहिना हाथ नष्ट हो जाने की अपेक्षा अधिक है तो तुम विश्वास न कर सकोगे। लेकिन तुम विश्वास करो या न करो, मैं तो जानती हूँ कि यह सच है। तो भी रुक जाने का उपाय नहीं है बबुआजी, मुझे कहना ही पड़ेगा।"

"अच्छा, कहिए।"

"कहती हूँ। अपने पति की बीमारी में केवल गहनों को छोड़कर और

जो कुछ भी मेरे पास था, वह सब ही एक-एक करके समाप्त हो गया, तब आ गए एक नए पास किए डॉक्टर—अच्छा बबुआ, अनंग डॉक्टर तो तुम लोगों ने देखा न ?"

उपेन्द्र ने कहा, "हाँ।"

किरणमयी ने विद्रूप की हँसी हँसकर कहा, "उन्होंने ही ! वाह रे फूटा भाग्य। इस कमरे में पति मरने की दशा में थे और उस कमरे में मैं चली गई उसको लेकर प्रेम का स्वाद चखने।"

उपेन्द्र गरदन झुकाए चुप बैठा रहा।

किरणमयी और कहने जा रही थी, लेकिन किसीने मानो उसका गला दबा दिया।

थोड़ी देर तक प्रबल चेष्टा करने के बाद सूखे स्वर से वह बोली, "सुनते ही तुम्हारी गरदन झुक गई, तो भी उस अनंग डॉक्टर को नहीं पहचानते, पहचानने से तुम समझ सकते थे, कितने वर्षों की घोर अनावृष्टि की ज्वाला मेरे इस हृदय के अन्दर जमी हुई थी, इसीलिए यह असम्भव घटना हो सकी थी। जानते हो, जिस तृष्णा से पनाले के गाढ़े पानी को अंजुली में भरकर मुँह में भर लेते हैं, मुझे भी वही प्यास थी; लेकिन वह खबर मुझे मिली उस पानी को गले के अन्दर डाल लेने पर। उसके बाद—ओह ! वह कैसा था। कै करने की-सी दशा में दिन बीतते रहे।" यह कहते-कहते उसका समूचा शरीर थरथरा उठा। एक अति दुर्गन्धमय विषाक्त उद्गार मानो उसके गले तक उच्छ्वसित हो उठा।

पल-भर मौन रहकर अपने को सँभालकर किरणमयी ने कहा, "लेकिन मैं कै भी न कर सकी, सास ने मेरा मुँह दबा दिया। उस समय अनंग ने गृहस्थी का आधा भार सँभाल लिया था।"

उपेन्द्र उसी भाव से पत्थर की मूर्ति के समान बैठा रहा।

उसके निर्वाक् झुके हुए मुंह की ओर एक बार कटाक्ष करके किरणमयी बोली, "उसके बाद आसक्ति-घृणा के तृष्णा-वितृष्णा के लगातार संघर्ष से जो विष दिन-रात उठने लगा, देव-दानव के निष्ठुर मंथन से पीड़ित वासुकी भी सम्भवत: उतना विष, अपने मुँह से निकाल न सका था। मुझे जान पड़ता है, इस घर की प्रत्येक ईंट-लकड़ी, दरवाजा-खिड़की, धरन-बँडेरी तक विष

से नीले रंग की हो गई हैं।"

उसने जरा रुककर फिर कहा, "कितने दिनों में किस प्रकार इसका अन्त होता, यह मैं नहीं जानती। कितनी बार ही मैंने सोचा लेकिन किसी ओर भी कूल-किनारा मेरी दृष्टि में नहीं पड़ा। लेकिन तब ही अमृत हाथों में लेकर तुम निकल आए बबुआ। कहाँ चली गई वह विष की ज्वाला और कहाँ रह गई विद्वेष-घृणा! पलभर में ये सब ऐसी तुच्छ हो गईं कि अनंग को विदा कर देने में मुझे एक क्षण नहीं लगा। तुम ही मानो आकर मेरे कान में उपाय बता गए। जानते तो हो बबुआजी, स्त्रियाँ गहनों पर कितना प्रेम रखती हैं। बड़े दुःख के मेरे गहने मानो मेरी छाती की पसलियाँ ही थीं। यहीं जहाँ सिर झुकाए, तुम इस समय बैठे हो, ठीक यहीं पर पसलियों को निकालकर उसके चरणों पर मैंने डाल दिया। मुझपर उसकी आसक्ति चाहे जितनी ही बड़ी क्यों न रही हो, इतने गहने हाथ में पा लेने से, वह फिर कभी मुँह न दिखाएगा, जन्म-भर के लिए मुझे मुक्ति देकर वह चला जाएगा, यह मन्त्र तुमने ही मानो मुझे दिया। ओह!—कितना भय, कितनी चिंताएँ मुझे थीं, पीछे कहीं इस दुर्दिन के दबाव से किसी दिन मेरे यह गहने नष्ट न हो जाएँ। वे चले ही तो गए—मैं उनको पकड़कर तो रख ही न सकी। लेकिन ओह!—वह कैसी तृप्ति थी, कैसा वह आश्चर्यजनक आनन्द था बबुआ, ऐसी ही एक अँधेरी सन्ध्या में जब उन्हीं के लोभ में पड़कर वह अपनी वीभत्स मूँछों को मेरे समूचे अंग से खेलकर चोर के समान चुपचाप चला गया। मन में ध्यान आया कि मैं बच गई।"

उपेन्द्र को याद आया—उसके और सतीश के वीच से एक दिन सवेरे चोर की तरह अनंग डॉक्टर चला आया था। लेकिन कोई बात न कहकर वह मौन रह गया था।

किरणमयी कहने लगी, "तुमको स्मरण आ रहा है क्या बबुआजी, मेरी उस रात की वह प्रचण्ड मूर्ति? उस दिन मैंने क्या-क्या काण्ड कर डाला था। छिपकर तुम लोगों की बातचीत सुनना, नीचे जाकर तुम लोगों को लाल आँखें करके कितना ही भय दिखाना, उसके बाद तुम चले गए। अपने विष की वह कैसी ज्वाला थी! किन्तु उसके बदले में जो दो वस्तुएँ मुझे मिलीं, बबुआजी, वह था मेरा स्वर्ग, वह था मेरा अमृत। श्रीरामचन्द्र के पाद-स्पर्श

से पत्थर की अहल्या जैसे स्त्री हो गई थी, मैं भी मानो उसी प्रकार बदल गई। अहल्या ने स्त्री बन जाने पर क्या पाया था, मैं नहीं जानती; लेकिन मैंने जो कुछ पा लिया, उसकी तुलना नहीं है। मेरा भाई नहीं था, सतीश को पा गई, अपना सहोदर भाई, और पा गई तुमको—छिः ! ऐसे उदास मत होओ बबुआ, पुरुष को क्या ऐसी लज्जा शोभा देती है ?"

उपेन्द्र ने बलपूर्वक सिर सीधा करके दृढ़ स्वर से कहा, "जो लज्जा की वस्तु है, वह स्त्री-पुरुष दोनों के लिए समान है भाभी। मैं ये सब बातें सुनना नहीं चाहता—या तो आप चुप हो जाइए, नहीं तो मैं इसी समय उठकर चला जाऊँगा।"

किरणमयी ने कहा, "अचानक क्या ?"

उपेन्द्र ने कहा, "हाँ।"

किरणमयी ने कहा, "उस दशा में भी मैं अचानक पकड़ रखने का प्रयत्न करूँगी। लेकिन यह मैं कह सकती हूँ बबुआ, इसकी परीक्षा में मुझे लाभ के अतिरिक्त हानि नहीं है।"

उपेन्द्र इस उत्तर के बाद गरदन झुकाकर बैठा रहा। किरणमयी फिर हँसकर बोली, "डरने की बात नहीं है जी, तुम्हारी इच्छा न रहते स्वयं तुम्हारे शरीर पर हाथ रखूँगी, ऐसी पागल अभी तक मैं नहीं हूँ। इच्छा हो तो उठ जाओ, मैं बाधा न दूँगी !"

मुँह झुकाए उपेन्द्र चुप होकर बैठा रहा।

बादल से छिपा चन्द्रमा आँख से दिखाई न पड़ने पर भी चारों ओर की फीकी चाँदनी के आभास से वास्तविक वस्तु जैसे पहचान ली जाती है, इन दोनों नर-नारियों का गुप्त सम्बन्ध भी इतनी देर तक केवल उतना ही आड़ में पड़ा हुआ था। लेकिन वायु बहने लगी है, बादल तेजी से हटते जा रहे हैं, हृदय में यह निश्चित रूप से अनुमान करके भी उपेन इस प्रकार भाग जाने की चेष्टा कर रहा था; लेकिन सब विफल गया।

एकाएक हवा का झोंका आ जाने से समस्त आवरण फटकर जहाँ तक दिखाई पड़ता है वहाँ तक सामने आकाश हो गया।

धीरे-धीरे किरणमयी ने कहा, "जाने दो, तुमको जो प्यार करती हूँ यह तुमको बताकर मैं बच गई। अब तुम्हारी जो इच्छा हो, वही करो; मुझे कुछ

भी कहना नहीं है। लेकिन यह विचार मत करना बबुआजी, मैंने अन्धी आशा से भूलकर यह बात बता दी हैं। मैं तुमको पहचानती हूँ, मैं जानती हूँ यह व्यर्थ है। रक्षक होने के लिए आकर तुम भक्षक न हो सकोगे, किसी प्रकार भी नहीं, यह मैं जानती हूँ।"

उपेन्द्र ने मृदु स्वर से प्रश्न किया, "यह श्रद्धा यदि मेरे ऊपर है तो आपने बताया क्यों?"

किरणमयी ने कहा, "इसके दो कारण हैं। पहला यह है कि न बताने से मैं पागल हो जाती। दूसरा कारण यह है कि तुमको सब बातें न बताकर तुम्हारा आश्रय लेना मेरे लिए असम्भव है। उस दशा में मुझे केवल यही ज्ञात होता कि सुरबाला ही मानो मुझे खिला-पहना रही है; लेकिन अब यदि इसके बाद भी तुम मेरा भार लेते हो—तो ज्ञात होगा कि तुम्हारा ही खा रही हूँ, पहन रही हूँ; और किसी का नहीं। अच्छा, सुरबाला से मेरी बातें बताओगे तो?"

उपेन्द्र ने कहा, "ना।"

किरणमयी ने प्रश्न किया, "ना क्यों? सुनने से वह दुःखी होगी?"

उपेन्द्र ने कहा, "ना, भाभी, वह दुःखी न होगी। वह बहुत ही मूर्ख है। भले घर की लड़की पति के अलावा और किसी पुरुष को किसी अवस्था में भी प्यार कर सकती है, यह बात सहस्र बार कहने पर भी उसके मस्तिष्क में न घुसेगी। लेकिन आज्ञा दें तो अब उठूं?"

किरणमयी को इस बात ने तीक्ष्ण आघात पहुँचाया, लेकिन उसने सहज स्वर से कहा, "आज्ञा न देने से भी तो उपाय नहीं है, देनी ही पड़ेगी, लेकिन जरा और बैठो। तुमको जो मैंने प्यार किया था यही तो केवल बताया गया लेकिन भूल जाना भी चाहा था, आज यह बात भी तो तुमको ज्ञात नहीं है। लेकिन इसमें मेरा गुरु कौन है, जानते हो बबुआ? वही जो मूर्खों में अग्रगण्य लड़की छोटी बहू बनकर तुम लोगों के घर में गई हैं, वे ही।"

किरणमयी ने उपेन्द्र के मुख पर आश्चर्य का आभास देखकर कहा, "हाँ, वे ही। तुम लोग जिसको पशुराज कहकर हंसी उड़ाते हो, वही सुरबाला मेरी गुरु है। तुमने जो बात दिखाई, उन्होंने उसे ही भुला देने को कहा। वे मेरी पूज्या हैं।"

उपेन्द्र चुप होकर बैठा रहा ।

किरणमयी कहने लगी, "तुमको मैं बार-बार कहती हूँ बबुआजी, आज तो तुम्हारे पैरों पर अपनी लज्जा के समस्त जंजाल की तिलांजलि मैंने दे दी है, उसका सब फलाफल जानकर ही । मैं जानती हूँ, तुम्हारी सुरबाला कठोर पतिव्रता नारी है । वह है स्फटिक के समान स्वच्छ, वज्र की भाँति कठोर, उसके शरीर पर दाग लगा सकूँ, यह बल मुझमें नहीं है । लेकिन जानते तो हो बबुआजी, मनुष्य का ऐसा ही जला हुआ स्वभाव है कि जो बात उसकी शक्ति के बाहर है, उसी पर उसका सबसे अधिक मोह रहता है । भगवान् को कोई पा नहीं सकता, इसीलिए मनुष्य सब कुछ देकर उन को पाना चाहता है । इसीलिए मुझे यही ध्यान आता है कि तुम मेरे लिए इतनी अप्राप्य वस्तु न रहते तो सम्भवतः मैं तुमको इतना अधिक प्यार नहीं करती । लेकिन जाने दो उस बात को ।"

क्षण-भर चुप । अचानक एक लम्बी सांस लेकर किरणमयी ने कहा, "द्रोणजी एकलव्य के जैसे गुरु थे, मेरी गुरु वैसे ही सुरबाला है । लेकिन वह कैसे हो गई, वही एक बात आज तुमको बताकर छुट्टी दूंगी । वहीं जहाँ तुम खाने के लिए बैठे हो बबुआ, एक दिन, रात के समय सतीश बबुआ भी उसी तरह खाने के लिए बैठे हुए थे । किस प्रकार, मुझे याद नहीं है, एकाएक तुम लोगों की चर्चा छिड़ गई । जानते ही हो, वह मेरे ऐसे भाई हैं कि तुम लोगों की बातें चलाने पर बिल्कुल त्रस्त हो जाते हैं । तब उनको सँभालना कठिन ही है । मेरी अपनी भी तब प्रायः वही दशा थी । प्रेम की मदिरा उस समय तुरन्त ही पात्र में भरकर, पीकर, तुम्हारे नशे में तब मेरे हाथ-पाँव आसक्त हो गए थे, दोनों आँखें लुढ़कती जा रही थीं, ऐसे ही समय में सतीश बबुआ ने कितने उदाहरण दे-देकर बताया कि तुम अपनी सुरबाला को कितना प्यार करते हो । कब तुमने उसको छोटी माता की बीमारी होने पर आहार-निद्रा छोड़ दी थी, कब उसने तुम्हारे सिर में जरा-सा दर्द उठने पर सारी रात हाथ में पंखा लेकर सिरहाने बैठकर बिता दी थी—इसी प्रकार के कितने ही दिनों और कितनी ही रातों की छोटी-छोटी कहानियाँ । उनकी तो वे सब सुनी हुई बातें थीं । सम्भवतः कोई झूठी थी अथवा चढ़ा-बढ़ाकर कही गई थी, लेकिन उससे हम दोनों की कोई हानि नहीं । तुम दोनों पति-पत्नी

में प्रेम की गंगा वहती जा रही है, हम दोनों भाई-वहन देखते-देखते उसमें निमग्न हो गए। उसके बाद बड़ी रात को सतीश अपने डेरे पर चले गए; लेकिन मैं उसी रसोईघर में बैठी रही। कितनी देर तक, मैं नहीं जानती; बाहर निकलकर मैंने देखा कि सामने ही शुक्रतारा उगा हुआ है। मुझे अचानक यह याद आया कि सुरबाला का मुँह मानो ऐसा ही है, ऐसा ही मधुर है, ऐसा ही उज्ज्वल है। ठीक इसी प्रकार ही सम्भवतः उसके मुँह से आँखें हटाई नहीं जातीं। मन-ही-मन उसको मैंने कहा – तुमको तो मैंने देखा ही नहीं है कि तुम कैसी हो, लेकिन जैसी भी क्यों न हो, आज से तुम मेरी गुरु हो गईं। तुम्हारे पास से ही मैंने पति-प्रेम का पाठ पढ़ा है। प्रेम का स्वाद मैं पा गई हूँ—इसको अब मैं छोड़ न सकूँगी। प्रेम मुझे अवश्य ही चाहिए—मुझे प्रेम करना ही पड़ेगा, तो दूसरे को प्यार करके क्यों व्यर्थ करूँ? आज भी तो मेरे पति जीवित हैं, अभी तक तो मैं विधवा नहीं हूँ—तो फिर क्यों मैं यह भूल करूँ? तुम्हारे ही समान आज से मैं अपने पति को ही प्यार करूँगी—और किसी को नहीं। यह कहने के साथ ही मेरा मन मानो अपनी सारी शक्ति को एकत्रित करके बोला—प्रेम के वापस मिलने की आशा तुमको नहीं है यह सच है, लेकिन तो भी तुमको ही प्यार करना पड़ेगा। लेकिन मैं ऐसी निरभागी हूँ, बबुआ, कि वे बचे नहीं। मेरी साधना अंकुर में ही सूख गई। इसीलिए उनकी मृत्यु के दिन मेरा मुख जो तुम लोगों ने देखा था, उसमें एक विन्दु भी छलना नहीं थी।"

उसका स्वर करुणा से गीला होता जा रहा था।

उपेन्द्र ने इसे लक्ष्य किया, लेकिन उसने कोई बात नहीं कही।

किरणमयी स्वयं भी कुछ देर तक मौन रहकर बोली, "बबुआजी, जो लोग मूर्ख हैं, जो कट्टर हैं, वे समझेंगे नहीं, लेकिन तुम जानते हो, संसार में सभी वस्तुओं के प्राकृतिक नियम हैं। उन नियमों की उपेक्षा करने से पति-पत्नी में कोई भी अपने उस चिर-मधुर सम्बन्ध पर पहुँच नहीं सकता। ब्याह का मन्त्र कर्तव्य-बुद्धि दे सकता है, भक्ति दे सकता है, सहमरण की प्रवृत्ति दे सकता है, लेकिन माधुर्य देने की शक्ति तो उसमें नहीं है। वह शक्ति है केवल उस प्रकृति के हाथ में। उसके दिए हुए नियमों के पालन में। जब समय था, सामर्थ्य थी, तब हम दोनों ही, दोनों पैरों से उस नियम को

कुचलते रहे, उसका कोई सम्मान हमने नहीं किया। आज कुसमय में, जबकि पति मृतप्राय हैं, प्रयोजन होने के कारण उनके पास मैं जाऊँगी किस मार्ग से ? लेकिन तो भी मैंने पतवार छोड़ नहीं दी थी, बबुआजी। आशा थी, एक मार्ग सम्भवत: तब तक भी खुला था। वह था उनकी सेवा का। मैंने सोचा था, अपनी पतिसेवा से ही शायद एक दिन उनको पाऊँगी। लेकिन ऐसी ही अभागिनी हूँ मैं—उतना-सा भी अवसर मुझे नहीं मिला, वे इहलोक त्याग-कर चले गए।"

उपेन्द्र ने आश्चर्य से मुँह ऊपर उठाकर देखा।

किरणमयी की दोनों आँखें आँसुओं से भर गई हैं।

उसने कहा, "मैंने सुना है, आपने जैसी उनकी सेवा की है, वैसी सेवा कोई मनुष्य कर नहीं सकता। उस ओर पत्नी के कर्तव्य में आपकी कोई त्रुटि नहीं हुई है।"

किरणमयी ने कहा, "सम्भवत: वह नहीं हुई है, लेकिन मनुष्य नहीं कर सकता तो मैं ही कैसे कर सकी बबुआजी ? यह बात नहीं है—वैसी सेवा सभी स्त्रियाँ कर सकती हैं। लेकिन मैंने तो कर्तव्य कहकर कुछ भी नहीं किया है। दूसरे सभी मार्ग बन्द थे, इसीलिए मैंने अपनी सेवा के द्वारा उन को पाना चाहा था। इसीलिए उस ओर शक्ति के अनुसार मैंने कभी अव-हेलना नहीं की। मैंने सोचा था, यदि एक बार उनको हृदय में पा जाऊँ तो जितने दिन बचूँगी, जहाँ जिस तरह भी रहूँगी, शिष्ट भाव से जीवन बिता सकूँगी। मेरी सारी चेष्टाएँ विफल हो गईं। उनको पाना आरम्भ अवश्य कर दिया था, लेकिन पा न सकी। पहले से ही वही जो तुम मेरे हृदय को घेरे रहे, किसी प्रकार भी वहाँ से फिर तुमको मैं हटा न सकी—अपने पति को भी अपने हृदय में न पा सकी।"

उपेन्द्र उठ खड़ा हुआ, बोला, "रात हो गई भाभी, मैं जाता हूँ।"

किरणमयी भी उठ खड़ी हुई, बोली, "चलो, तुमको द्वार तक पहुँचाकर मुख्य द्वार बन्द कर आऊँ। कल तुमसे भेंट होगी न ?"

"ना, कल मैं घर जाऊँगा।"

"तो फिर कब भेंट होगी ?"

"यह तो भविष्य बताएगा। अच्छा, नमस्कार भाभी।"

"नमस्कार बबुआ ! दिवाकर को यहाँ भेजोगो न ?"

"भेजूँगा तो अवश्य भाभी । उसके माँ-बाप नहीं हैं । मैं ही इतने दिनों से उसकी देखभाल करता रहा । आज से उसको मनुष्य वनाने का भार आप ही के हाथ मैंने सौंप दिया ।"

किरणमयी के नेत्रों में आँसू उमड़ रहे थे । उसने कहा, "इतनी बाते सुन लेने के बाद भी इतने वड़े विश्वास का भार मुझपर किस प्रकार डालोगे बबुआ ? तुम दिवाकर को कितना प्यार करते हो, यह तो मैं भी जानती हूँ ।"

द्वार के बाहर आकर उपेन्द्र ने कहा, "इसीलिए तो मैंने उसे तुमको दे दिया भाभी । मैं जिसको प्यार करता हूँ, उसकी बुराई आपसे कभी न होगी, यही तो मुझे विश्वास है ।" कहकर शीघ्रता से आगे वढ़ गया ।

किरणमयी ने अँधेरी गली में आगे वढ़कर ऊँचे स्वर से पूछा, "एक बात और तुम मुझे बता जाओ ववुआ, क्या सतीश कलकत्ते में नहीं हैं ?"

उपेन्द्र ने दूर से ही उत्तर दिया, "ना ।"

किरणमयी ने फिर पूछा, "वह जब मुझसे कहे विना चला गया है, तब निश्चय है कि मन में कोई भारी चोट खाकर ही गया है । क्या तुमने उसे इस मकान में आने को मना कर दिया था ?"

उपेन्द्र ने पास आकर कहा, "मना कर देने की इच्छा तो थी, लेकिन अभी मना नहीं किया ।"

किरणमयी ने पूछा, "इच्छा थी तो मना क्यों नहीं कर दिया था ?"

उपेन्द्र चुप रहे ।

किरणमयी ने उत्तर न पाने पर कहा, "परन्तु ऐसी इच्छा क्यों हुई थी, क्या मैं यह कारण नहीं जान सकती ?"

उपेन्द्र ने कहा, "मुझसे भूल भी हो सकती है । जो हो, वह कहाँ है, इसका पता लगाकर उसे आपके पास आने के लिए एक चिठ्ठी लिख दूंगा । न आने का कारण उसी से पूछिएगा ।"

उपेन्द्र दूसरे प्रश्न की प्रतीक्षा न कर शीघ्रता से अँधेरे में डूबी गली के पार हो गए ।

अट्ठाईस

सन्थाल परगने से होकर जो सीधी पक्की सड़क वैद्यनाथ धाम को गई है, उसी के किनारे, एक बाग में, वैद्यनाथ धाम से प्रायः दो कोस की दूरी पर एक बंगला था।

कलकत्ते से आकर रहने के लिए इसी बंगले को सतीश ने पसन्द किया था। अपने आपसे समझौता करने के लिए वह इस निर्जन स्थान में अज्ञात-वास करने आया था। जब उसने देखा कि इसके इधर-उधर गाँव नहीं है, सामने के मार्ग में भी लोग बहुत कम आते-जाते हैं, तब उसने बड़ी प्रसन्नता से कहा था, "बस, मुझे ऐसा ही स्थान चाहिए। ऐसे ही सुनसान एकान्त स्थान की आवश्यकता थी।"

सतीश कलकत्ते से अपयश और दुःख के जो गट्ठर लादकर लाया है, वहाँ एकान्त में बैठकर वह उनमें से एक-एक की मीमांसा करना चाहता था। सबसे पहला उसका काम था सावित्री की ओर से मन में घोर घृणा लाना, दूसरा काम था पथरियाघट्टे की बहू को भुला देना और तीसरा ध्येय था उपेन्द्र भैया के साथ सारा सम्बन्ध तोड़ लेना !

इस स्थान में बैठकर वह इन सब कठिन कामों को पूर्ण करना चाहता था। साथ में था बिहारी और इसी प्रान्त का एक रसोइया।

बिहारी बाबू की सेवा-टहल से बचे हुए समय में रसोइया महाराज से वाद-विवाद कर उसे अनाड़ी और मूर्ख सिद्ध करने में अपनी शक्ति व्यय करता था और महाराज का काम था भोजन बनाना और शेष समय बिहारी से लड़-झगड़कर यह सिद्ध करने में लगाना कि वह बाजार से सौदा लाने में दोनों हाथों से पैसे लूटता है।

उन दोनों के दिन इस प्रकार ज्यों-त्यों कट रहे थे।

उनके मालिक दिन-रात तत्त्वचिन्तन में ही लगे रहते थे। संसार में कामिनी और कंचन ही सब मुसीबतों की जड़ है, वैराग्य ही परम साधनीय वस्तु है, पक्षियों की चहचहाहट ही नरम संगीत है; वन, जंगल और पर्वत ही सौन्दर्य के विशुद्ध आदर्श हैं—इन सबको पूर्णरूप से हृदय में धारण करना ही उसकी वर्तमान साधना थी। इन साधना के बिना उद्देश्य-सिद्धि का दूसरा

उपाय ही न था, इसलिए वह बरामदे में एक टूटी-सी आरामकुर्सी पर पड़े-पड़े कान लगाकर वृक्ष पर बैठे पक्षियों की किलोलें सुना करता था।

महुए के वृक्ष से टकराकर साँय-साँय करती हुई जो हवा पार होती थी, उसमें वह दुर्लभ राग-रागिनियों के सुर तलाश करता था, आकाश में जहाँ-तहाँ बादल देखकर मग्न हो, मन-ही-मन प्रशंसा के पुल बाँधता था, और कहीं दूर पहाड़ पर बाँस के सूखे पत्तों में आग लगी देख पड़ती, तो रात-भर बैठा देखा करता था।

मछली-मांस आदि खाना छोड़कर उसने सात्विक भोजन करना शुरू कर दिया था और कहीं से सफेद पत्थर का एक लोढ़ा लाकर दिन में उसे पूजता तथा सन्ध्या को उसकी आरती उतारता था।

उसे ऐसे नए ढंग से जीवन बिताने का समय कभी प्राप्त न हुआ था। पहले तो सदा उसे पक्षियों की चहचहाहट की अपेक्षा सितार का शब्द ही अधिक प्रिय लगता था। कभी सपने में वह वायु में राग-रागिनियों की कल्पना न करता था और न आकाश के नए बादलों ने ही किसी दिन उसे विचलित किया था। वास्तव में प्रकृति की यह सारी शोभा-सम्पदा चाहे कितनी ही मोहक क्यों न हो, उसकी खबर लेने का समय सतीश को किसी दिन नहीं मिला था। जहाँ गाना-बजाना, नाटक-थियेटर या फुटबाल-क्रिकेट के खेल होते, वहीं सतीश ने दिन बिताए थे। दंगे-फसादों में भाग लेना, सभा-समितियों की बैठक के लिए स्थान ठीक करना, किसीके घर में मुर्दा पड़ा हो तो उसे जलाना, विपत्ति के समय किसी को दस रुपए का प्रबन्ध कर देना—यही सब उसके आवश्यक कार्य थे।

पक्षियों के गान में मधुरता है या नहीं, कोयल पंचम स्वर में कूकती है या नहीं, नदी का जल कलकल शब्दों में क्या घोषणा करता है, कामिनी और कंचन संसार में कितने अनर्थों की जड़ हैं, ये सूक्ष्म तत्त्व कभी भी उसके दिमाग में न आते थे और न इनके लिए सोच-विचार करते ही कभी किसी ने उसे देखा था।

वह सीधा-सादा मनुष्य था, संसार का काम-काज सीधी तरह से ही कर सकता था। जिसे प्यार करता, उसे बिना विचारे ही करता और बीच में बाधा पड़ती, तो निर्णय न कर पाता था कि क्या करना चाहिए।

सृष्टि में दो आदमियों को उसने सबसे ज्यादा चाहा था, एक सावित्री को और दूसरे उपेन्द्र भैया को।

सावित्री उसे धोखा देकर दुराचारी, विश्वासघाती विपिन के साथ कहीं चली गई। उपेन्द्र भैया भी बिना कुछ पूछे, बिना कुछ भी कहे-सुने एक अँधेरी रात में उसे छोड़कर चले गए। उसके लिए खड़े होने का भी मानो कोई स्थान न रह गया।

एक किरणमयी का घर था, लेकिन उस घर का दरवाजा बन्द देखकर उसे वहाँ जाने का भी साहस न हुआ। इसी से वह निर्जन स्थान में आकर मुक्त आकाश की वायु, पेड़-पौधों और पशु-पक्षियों के साथ अनायास एक अज्ञात सम्बन्ध जोड़कर वैराग्य साधना में लगने को प्रस्तुत हुआ था, लेकिन जिस आदमी ने खेल-कूद और हा-हा-ही-ही में अब तक अपने दिन बिताए थे, उसकी इस नई चेष्टा को देखकर अक्सर बिहारी की आँखें भर आती थीं।

बिहारी कभी आकर कहता, "बाबू साहब, दो बंगाली सज्जन, मालूम होता है, इधर से तपोवन की ओर जा रहे हैं।"

सतीश बात समाप्त होने के पहले ही, 'कहाँ-कहाँ' कहकर उछल उठता और फिर तुरन्त ही 'जाने दो' कहकर मुँह लटकाकर अपनी कुर्सी पर बैठ जाता।

बिहारी कहता, "बुलाऊँ, जरा बातचीत···"

सतीश कहता, "क्या आवश्यकता है?" इसके बाद सूखी हँसी हँसकर कहता, "मुझे अब ऐसी बातचीत की आवश्यकता नहीं—अच्छी नहीं लगती। बिहारी, तू जानता नहीं, वन के पक्षी मेरे लिए गीत गाते हैं, पेड़-पौधे बातें करते हैं, हवा सनसनाती हुई मेरे कानों में कहाँ-कहाँ की कथाएँ कह जाती है, अब क्या मुझे व्यर्थ के लोगों के साथ गपशप कर समय नष्ट करना अच्छा लगता है। और जो सच पूछो, तो मेरे सच्चे मित्र ये ही हैं। समझते हो न?"

बिहारी चुपचाप लौट जाता, किन्तु देर तक मालिक का यह दुःख से भरा कण्ठ-स्वर उसके कानों में गूँजता रहता था और उसकी उस प्रकार की हँसी से बूढ़े का कलेजा टूक-टूक हो जाता था।

बिहारी में एक विशेष गुण था—वचन देकर वह मुकरना नहीं जानता था। बहुतेरे बड़े आदमी तो लोभ को नहीं सँभाल सकते, पर बिहारी सँभाल सकता था। मन-ही-मन एक प्रकार से समझता था कि सावित्री उस रात को कोई प्रपंच रचकर गई थी।

बिहारी को इसमें सन्देह नहीं था कि वह सतीश की सबसे अधिक भलाई चाहती है और तन-मन से प्यार करती है। लेकिन बराबर सोचते रहने पर भी यह बात उसकी समझ में न आती थी कि जो दोष उसने नहीं किया, उसे स्वीकार कर और जो पाप उसने किसी दिन नहीं किया, उसी का बोझ अपने हाथों सिर पर उठाकर क्यों वह मालिक को इतना दुःख दे गई? तथापि सावित्री पर बिहारी की असीम भक्ति थी और अगाध विश्वास था। इसीलिए अपनी बुद्धि से जब अपने विचारों का कोई निर्णय न कर सका, तब मन को इस तरह समझाने लगा कि अब चाहे जितना दुःख और कष्ट हो, अन्त में कल्याण ही होगा और इसी कल्याण की आशा से वह इस मामले में एकदम मुँह बन्द किए हुए था। मालिक का मुँह देख, उनके भीतरी दुःख को भली-भाँति समझकर जब वास्तविक बात कह डालने के लिए, बीच-बीच में उसके मन में बड़ा आवेग होता, तब वह इस विचार से ठहर जाता कि सावित्री की अपेक्षा मैं बाबू को अधिक प्यार नहीं करता। जब वह स्वयं ही यह दुःख दे गई तब मैं उसे दूर करने की चेष्टा क्यों करूँ? मैं क्यों कहने जाऊँ? वह क्या बिना विचारे ही मुझे सिर की शपथ देकर रोक गई है?

ऐसे ही इनके निर्जनवास के दिन कटते थे और सम्भव था और भी कुछ समय कट जाता, लेकिन एक दिन अचानक नीचे लिखी घटना से बाधा पड़ गई।

दिन-भर तो आकाश साफ था, लेकिन शाम के कुछ पहले बड़े जोर की आँधी आई। उसी आँधी के समय सतीश घोड़े की टाप की आवाज सुनकर चौंक उठा। उसने सिर उठाकर देखा, सामने एक बढ़िया घोड़ा पीठ पर साज लिये बड़े वेग से इधर-उधर दौड़ रहा है।

सतीश ने बिहारी को पुकारकर कहा, "यह किसका घोड़ा है बिहारी?"

बिहारी भीतर लालटेन साफ करते-करते बोला, "किसी बाबू का होगा।"

सतीश ने पूछा, "यहाँ बाबू कहाँ ?"

बिहारी बोला, "यहाँ चाहे कोई न हो, पर देवधर से बाबू लोग प्रातः गाड़ी पर तपोवन देखने आते हैं। उन्हीं में से किसीका होगा। आँधी-तूफान से घबराकर निकल भागा है।"

"तब तो पता लगाना कठिन ही है।" सतीश फिर अपनी आरामकुर्सी पर लेट रहा। लेकिन बात उसके हृदय से दूर न हुई, वह विचारने लगा—'चाहे कोई हो, साथ में यदि स्त्रियाँ भी हों तो और भी संकट। यहाँ गाड़ी-पालकी की कौन कहे, एक आदमी की सहायता भी कठिन है। रास्ते-भर पेड़ों की आड़ के सिवा और कहीं कोई आश्रय नहीं है और आँधी में पेड़ के नीचे रहना भी खतरनाक ही है। इधर शाम होने में भी देर नहीं है और पानी जोरों से आने का लक्षण दिखाई दे रहा है।

सतीश से रहा न गया। वह बरामदे के कोने से लाठी उठाकर बाहर निकल पड़ा। मार्ग में मिट्टी और बालू के कण शरीर में छर्रे से लगते थे। उनसे अन्धकार छा गया था।

थोड़ी दूर जाते ही सहसा एक ओर भयानक शोरगुल सुनाई पड़ा। होली के दिन छुट्टी पाकर, मिर्जापुरी दरबानों का दल जिस प्रकार हो-हल्ला करता हुआ निकलता है; यह शोर-गुल उसी प्रकार था।

मामला क्या है, यह जानने के लिए सतीश उसी ओर बढ़ा तो सामने ही रास्ते पर उसे एक टमटम दिखाई दी। उसे घेरे हुए आठ-दस आदमी तालियाँ पीट-पीटकर प्रसन्न हो रहे थे। किसीके सिर पर टोपी, किसी के सिर पर साफा है—कपड़े भले आदमियों के-से पहने हैं।

यह तमाशा कैसा है, जानने के लिए सतीश कुछ और आगे बढ़ा तो देखा कि टमटम के पास एक स्त्री कपड़े में मुँह छिपाए लज्जा से सिकुड़कर पत्थर की मूरत बनी खड़ी है और उसे खिलौना समझ ये लोग जिन अश्लील शब्दों का व्यवहार कर रहे हैं, उनका वर्णन नहीं किया जा सकता।

पहले तो सतीश ने समझा कि ये लोग शायद इस स्त्री को साथ लेकर इधर आनन्द करने निकले हैं, घोड़ा भाग जाने से अब हँसी कर रहे हैं। एक

बार इसके जी में आया कि इस झंझट में न पड़कर लौट जाना ही ठीक है, पर न मालूम क्यों किसी प्रकार आज वह अपना कौतूहल रोक न सका। उसकी आश्चर्य-भरी दृष्टि स्त्री के वस्त्रों पर पड़ी। सन्ध्या और धूल-धक्कड़ के अँधेरे में भी उसे मालूम हुआ कि वह बंगाली और पारसी के समान साड़ी पहने है। पैरों में जूते भी हैं, लेकिन लखनऊ की जूतियाँ नहीं, मेमों के-से जोड़े हैं।

अचानक स्त्री ने जोर से पुकारकर कहा, "बाबू साहब, मुझे बचाइए।"

'बचाइए' इस शब्द ने बिजली के समान काम किया।

सतीश उसकी रक्षा के लिए व्याकुल हो उठा। कामिनी-कंचन सब अनर्थों की जड़ हैं, यह तत्त्व वह थोड़ी देर के लिए भूल-सा गया। शेर के समान उछलकर युवती के पास आ खड़ा हुआ, बोला, "क्या हुआ है?"

इतनी देर तक युवती अकेली होने के कारण इन दुष्टों के कितने ही अश्लील वाक्य-बाण सुन-सह चुकी थी। अब सहारा पाते ही उसने मुँह ढक लिया और बैठकर जोर-जोर से रोने लगी।

सतीश ने उकताकर पूछा, "मामला क्या है, बताइए तो?"

"इन लोगों ने मेरा बड़ा अपमान किया है!"

"अपमान किया है? ये कौन हैं?"

"मैं नहीं जानती।"

"नहीं जानती?" सतीश ने एक साथ प्रश्नों की झड़ी-सी लगा दी, "तुम कौन हो? कहाँ से यहाँ आई हो? तुम्हारे साथ के आदमी कहाँ गए? गाड़ी किसकी है?"

स्त्री आँखें पोंछकर रुँधे स्वर से बोली, "मेरा साईस घोड़ा पकड़ने गया है। मेरे साथ और कोई नहीं है। मैं तपोवन देखने गई थी, वापस आ रही थी। रास्ते से ये लोग मुझे परेशान करते आ रहे हैं।"

सतीश ने बिगड़कर कहा, "खूब किया! आप क्या मेमसाहब हैं जो टमटम पर सवार होकर इतनी दूर से सैर करने निकलती हैं? आप क्या अंग्रेज महिला हैं कि जहाँ जी चाहे बेधड़क, चली जाएँगी? हमारे देश के आदमी असहाय भारतीय महिला को देखते ही उसका अपमान करेंगे, उसपर अत्याचार करेंगे, यही इस देश की रीति है, इसे क्या आपके माँ-बाप

नहीं जानते ?" कहकर वह उन लोगों में जो सबसे बड़ा था उसकी ओर जलती हुई आँखों से देखकर बोला, "तुम लोग क्यों खड़े हो ?"

वह बोला, "हमारी इच्छा !"

उन लोगों की आँखों की ओर देखने से जान पड़ता था कि सबने भंग पी है या गाँजा पिया है अथवा दोनों का ही पूरी मात्रा में सेवन किया है।

सतीश ने उँगली से सीधा मार्ग दिखाकर कड़ककर कहा, "चुपचाप चले जाओ।" उत्तर में उस आदमी ने मुँह बिगाड़कर तमककर कहा, "चलो-चलो—तुम अपना मार्ग देखो। हम क्यों जाएँ ?"

इस पर सतीश ने उसके गाल पर कसके एक तमाचा जड़ दिया। हाथ ऐसा भरपूर बैठा कि वह एकदम जमीन से बातें करने लगा। बगल में ही एक दुबला-सा छोकरा खड़ा था। उसके गाल पर बायें हाथ का थप्पड़ पड़ा और वह टमटम के पहिए के पास आँखें बन्द करके ध्यान करने लगा। शेष छः व्यक्ति कुछ तो नशे के प्रभाव से और कुछ थप्पड़ के भय से हतबुद्धि के समान आँखें फाड़-फाड़कर देखते रहे।

सतीश ने सामने के आदमी को बुलाकर कहा, "अब आइए, आपकी बारी है !"

वह बिजली के समान उछलकर सबके पीछे जा खड़ा हुआ।

सतीश ने तब युवती से कहा, "उठिए !"

युवती चुपचाप उठ खड़ी हुई।

सतीश ने कहा, "चूल्हे में जाए आपका साईस और गाड़ी। पानी आ रहा है—आइए, मेरे साथ !"

युवती ने डरते-डरते कहा, "क्या मैं टाउन तक पैदल चल सकूँगी ?"

सतीश ने कहा, "टाउन नहीं, मेरे घर चलिए, इसी बाग में है। पानी आ रहा है, सोचने से काम न चलेगा, शीघ्रता से चलो और नहीं तो खड़ी-खड़ी भीगो, मैं जाता हूँ।"

युवती ने कहा, "चलिए न। आपके साथ चलने में सोच-विचार क्या है ?"

बूंदें प्रारम्भ हो गई थीं। आँधी कम हो जाने पर भी बन्द नहीं हुई। दोनों कुछ देर चुपचाप चलकर बाग के फाटक के सामने आए।

सतीश सहसा ठहरकर बोला, "लेकिन मेरे घर में कोई स्त्री नहीं है—मैं अकेला रहता हूँ।"

युवती ने पूछा, "आपके रसोई-पानी और घर-बार का काम कौन करता है, क्या आप स्वयं ही?"

"ना, नौकर है, लेकिन वह स्त्री नहीं।"

"न सही। पर आप ठहर क्यों गए? चलते रहिए।"

सतीश ने कुंठित होकर कहा, "यह कह रहा हूँ कि मेरे यहाँ कोई स्त्री नहीं है। इस रात में घर में जाने के पहले यह बात आपको बता देना उचित है।"

युवती ने कहा, "यदि उचित है, तो वहीं क्यों न जताया? अब तो मुझसे खड़ा नहीं रहा जाता। मेरे हाथ-पैर काँप रहे हैं, प्यास से दम निकल रहा है।"

"आइए-आइए"—कहकर सतीश विवश हो, अँधेरे बगीचे में मार्ग दिखाता हुआ आगे बढ़ा। इन दुष्टों के फेर में पड़कर इस बेचारी की जान पर कितनी आफत आई होगी, मन-ही-मन यह अनुभव कर सतीश अपने कठोर व्यवहार के लिए कुछ लज्जित हुआ। कुछ देर बाद उसने धीरे-धीरे कहा, "मालूम होता है जैसे कहीं मैंने आपकी आवाज सुनी है।"

युवती ने कोई उत्तर न दिया। लेकिन वह समझ गई कि सतीश अँधेरे में उसका मुँह नहीं देख सका है। बरामदे में जाकर सतीश की टूटी आराम-कुर्सी पर बैठ गई और बोली, "साथ में बिहारी तो है न?" फिर जोर से पुकारा, "बिहारी, मेरे लिए एक गिलास पानी तो लाना।"

इधर की कोठरी में था बिहारी। पुकार सुनकर जल ले आया। बरामदे में एक छोटी-सी दिवालगीर जल रही थी। उसकी धीमी रोशनी में बिहारी ने युवती को देखते ही पहचान लिया और आश्चर्यचकित होकर बोला, "अरे दीदी, तुम यहाँ कहाँ?"

"लम्बी कहानी है।" वह उठ खड़ी हुई और बिहारी के हाथ से जल का गिलास लेकर एक साँस में सब पी गई। गिलास बिहारी को लौटाकर बोली, "भैया को सूचना देनी होगी। बिहारी, पता बता देने से इस रात में तू घर ढूँढ़ सकेगा?"

बिहारी ने सिर हिलाकर कहा, "ना, दीदी, मैं तो इस शहर में किसी को जानता-पहचानता नहीं। दूसरे, बूढ़ा आदमी हूँ, इस आँधी-पानी और अँधेरे में मार्ग चलना भी दूभर है।"

"तब क्या होगा बिहारी ? घोड़ा यदि भूलता-भटकता कहीं अस्तवल में जा पहुँचा तो भैया बड़े चिन्तित होंगे। किसी प्रकार उन्हें सूचना दे देनी चाहिए कि कोई भय नहीं है, मैं सुरक्षित स्थान में हूँ।"

बिहारी ने सोचकर कहा, "हाँ, महाराज इसी ओर का निवासी है, यहाँ के सभी स्थानों से परिचित है। उसे बुला लाता हूँ।" कहकर वह रसोईघर की ओर चल पड़ा।

सतीश ने कहा, "भैया को एक चिट्ठी लिख दो।"

युवती बोली, "हाँ, यही सबसे अच्छा है।"

सतीश ने कहा, "जरा यह भी लिख दीजिएगा कि बहन मेमसाहिब की आज क्या दशा हुई थी? ज्योतिष बाबू को बड़ी प्रसन्नता होगी।"

सरोजिनी को ताना सुनकर क्रोध आ गया। दैवयोग से वह आज इस प्रकार गुंडों के फेर में पड़ गई थी और उसे बहुत अपमानित भी होना पड़ा था, इसके लिए उसे स्वयं भी कम दुःख और क्षोभ नहीं हुआ था। जो अपने किए पर आप ही पछताता हो, उसपर यदि कोई ताना मारता है, तो वह सहन नहीं होता।

उसने रुखाई के साथ जरा तनकर उत्तर दिया, "भैया को आप ही क्यों नहीं अपने हाथ से लिख देते कि तुम्हारी बहन को मैंने अकेले ही बड़ी मुसीबत से बचाया है। और इतने से सन्तोष न हो, तो कल सवेरे सारे शहर में इस बात का ढिंढोरा पिटवा दीजिए। जब चारों ओर से यह बात भैया के कानों में पहुँचेगी तो वे और भी प्रसन्न होंगे।" इतना कहकर वह हँस पड़ी।

सतीश ने उसकी झुंझलाहट का कारण साफ समझ लिया, लेकिन वह इन साहबी ढंग-ढर्रों को बिल्कुल नहीं देख सकता था। अंगरेजों की नकल करना बहुत बुरा है, शराब पीने की अपेक्षा मुर्गी खाने में अधिक पाप है, यह उसके मन में जमा हुआ था, अतएव उसने उत्तर दिया, "यह कोई आश्चर्य की बात नहीं—आपके समाज में सब कुछ सम्भव है।"

सरोजिनी बोली, "तो हमारा समाज क्या कुत्ते-बिल्लियों का समाज है ! क्या हम मनुष्य नहीं हैं ?"

सतीश ने कहा, "आप लोग मनुष्य क्यों नहीं ? वल्कि आप लोगों की समझ में आप लोगों के अलावा बंगाल में और कोई मनुष्य ही नहीं है।"

सरोजिनी बोली, "एक प्रकार से यह बात सच भी है। हम लोगों में जो ऐसा समझते हैं, उन्हें मैं दोष नहीं देती।"

सतीश बोला, "यह मैं जानता हूँ। इसीलिए आज आपकी सजा और भी अधिक होनी चाहिए थी। यदि मैंने वहाँ आपको पहचान लिया होता तो चुपचाप चला आता—बात भी न करता।"

सरोजिनी ने कहा, "क्या दंड मिलता ? अपमान और अत्याचार—यही तो ?"

सतीश ने कहा, "और यहाँ।"

सरोजिनी बोली, "यहाँ, अब मैं समझ गई कि आप क्यों यह बात कर रहे थे कि असहाय स्त्रियों का अपमान करना ही इस देश के लोगों का नियम है। मालूम होता है, जो अपमान शेष रह गया है, वह घर लाकर स्वयं करने के विचार से ही आपने यह बात कही थी। जान-पहचान निकल आई, इससे अड़चन पड़ गई और क्रोध का कारण भी शायद यही है, क्यों ?"

सतीश सरोजिनी की व्यंग्यभरी बातों से क्रुद्ध होकर भी हँस पड़ा। बोला, "बिलकुल यही बात है। तुम्हारा अपमान नहीं कर पाता, इसीसे मुझे इतना क्रोध है। हमारे देश में कृतज्ञता शब्द का प्रयोग किया जाता है, लेकिन तुम लोगों के इस नए साहब के समाज में कृतज्ञता शब्द का प्रयोग करना भी निरर्थक समझा जाता है।"

सरोजिनी के होंठों पर एक दबी हुई हँसी मेघ में छिपी बिजली के समान चमककर लुप्त हो गई। फिर उसने क्रोध के स्वर में ही उत्तर दिया। लेकिन इस बार उसके कण्ठस्वर में इतना अधिक बनावटीपन था कि इतने बड़े लापरवाह श्रोता के कानों ने भी उसे पकड़ लिया। बोली, "जी नहीं, ये साहब—मैं जितनी अकृतज्ञ हैं, उतनी ही पाखण्डी भी। जब तक तुम

उनके दल में नहीं मिलते, तब तक उनके उद्धार का कोई उपाय नहीं हो सकता। बोलो, मिलोगे न ?"

सतीश भी हँसी रोककर उत्तर में कुछ कहना चाहता था कि ठीक उसी समय बिहारी ने हनुमान पांडे को लाकर उपस्थित किया।

सरोजिनी ने अपना हैंडबैग खोला, पाँच रुपए निकाल, कुर्सी पर रख कर कहा, "पांडेजी, अभी शहर जाकर यह चिठ्ठी दे आ सको तो ये तुम्हें पुरस्कार में मिलेंगे।"—यह कहकर उसने पता बता दिया।

पांडेजी ने दो महीने के वेतन की ओर लोलुप दृष्टि से देखा और क्षणभर में राजी होकर पत्र के लिए हाथ बढ़ाया। उसके पसारे हुए हाथ पर सरोजिनी ने रुपए रख दिए और पत्र लिखने के लिए कमरे में चली गई।

जरा देर में पत्र लाकर पांडेजी के हाथ में रखा। पांडेजी ने सावधानी से पत्र को मिर्जई की जेब में रखा, बायें हाथ में लालटेन और दाहिने हाथ में लम्बा मिर्जापुरी सोटा लिया और उसी मूसलाधार वर्षा में सबके देखते-देखते निकल पड़े।

बिहारी ने कहा, "बाबूजी, महाराज तो न मालूम कब लौटें, भोजन का क्या होगा।"

सतीश ने सरोजिनी के मुँह की ओर देखकर बात को दबाने के विचार से कहा, "अरे देखा जाएगा, वह लौटेगा तब होगा।"

बिहारी की उद्विग्नता इससे जरा भी कम न हुई। बोला, "क्या होगा, मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आता, बाबूजी !"

सतीश ने अप्रसन्न होकर कहा, "तुझे चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी बिहारी, तू जा, मैं सब ठीक कर लूँगा। इसके अतिरिक्त आज मुझे भूख भी नहीं है।"

पर बिहारी टस-से-मस न हुआ, क्योंकि उसने सतीश की बातों का जरा भी विश्वास न किया। एक तो मामूली आदमियों से सतीश की भूख यों ही अधिक थी, दूसरे इतने दिनों की नौकरी में उसने कभी सतीश को खाने से उदासीन होते नहीं देखा था। बोला, "भला यह कैसे होगा बाबू ?"

सतीश ने कड़ककर कहा, "तुझमें यही सबसे बड़ा दोष है बिहारी ! तू

सब बातों में बहस करने लगता है। कहता हूँ, सब ठीक कर लूंगा लेकिन तू नहीं सुनता, खड़ा-खड़ा यहाँ पर प्रश्नोत्तर किए जा रहा है।"

तब बिहारी चुपचाप लौट रहा था कि सरोजिनी ने बुलाकर कहा, "बिहारी, आज मेरे ही कारण तुम लोगों पर सारी मुसीबत आई है। क्या भोजन का कुछ प्रबन्ध नहीं हुआ है?"

"प्रबन्ध क्या होगा दीदी, सब कुछ रखा हुआ है, पर बनावेगा कौन? महाराज न मालूम कब लौटेगा?" तत्काल बिहारी नाराज होकर चला गया।

सरोजिनी बोली, "मेम साहिबा चाहे जैसी भी हो, है तो ब्राह्मण की ही कन्या। उसके हाथ का खाने से क्या किसीकी जात नष्ट हो जाएगी?"

सतीश प्रश्न सुनकर हँसा और बोला, "जात जाएगी या नहीं, सो तो नहीं कह सकता, प्रश्न तो यह है कि मेम साहिबा का पकाया भोजन किसी के गले से नीचे उतर सकेगा या नहीं?"

"ऊँहूँ! ऐसी बात नहीं। मेम साहिबा के हाथ का खाकर आप जन्म-भर भूल न सकेंगे।" कहकर सरोजिनी अपनी हँसी और ऐसेन्स की गन्ध से सारे दालान को सुवासित कर बड़ी तेजी के साथ उठकर अन्दर चली गई।

पाँच-छः मिनट बाद जब वह बाहर आई तब उसकी ओर देखकर सतीश क्षण भर के लिए मोहित हो गया।

जूते और मोजों से पैर खाली थे, रेशमी कपड़ों के स्थान पर केवल कमीज पर सतीश की एक सीधी-सादी लाल किनारीदार धोती थी। देखकर सतीश के दोनों नेत्र शीतल हो गए। बोल उठा, "आह! कैसी अच्छी लगती हो, मानो साक्षात् लक्ष्मी हो!"

यह सुनकर सरोजिनी का रोम-रोम आनन्द से भर गया। बात इतनी मधुरता से भी भीतर जा सकती है, जीवन में कभी उसने यह अनुभव न किया था। लेकिन लज्जा के मारे सिर झुकाकर केवल बोली, "धत्!"

दो ही अक्षरों का शब्द था, लेकिन अपने ही मुख से निकले हुए इन दो अक्षरों ने उनके कानों में अमृत बरसा दिया। केवल सतीश ही नहीं, उसके भी कंठस्वर में इतना माधुर्य भरा हुआ है, यह आज ही उसने पहले-पहल अनुभव किया।

उसने उसी घड़ी लज्जा को किसी प्रकार दबा डाला। शिक्षित लड़की थी, परिचित और अपरिचित पुरुष के साथ निःसंकोच भाव से बातचीत करने का उसे अच्छी प्रकार अभ्यास था।

वह जानती थी कि दारुण लज्जा को प्रश्रय देने से ही वह सिर चढ़ जाता है। इससे अनायास सिर उठाकर हँसती हुई बोली, "अच्छा, प्रशंसा पीछे करना। जरा पहले चलकर यह बतलाओ कि तुम्हारा चौका-चूल्हा किस ओर है?" कहकर वह स्वयं अग्रसर हो गई।

उनतीस

रसोई हो गई। भोजन करना भी समाप्त हो गया। वे बरामदे में दो कुर्सियों पर आमने-सामने बैठ गए।

सरोजिनी ने कहा, "एक बात हम लोगों में से किसीके ध्यान में नहीं आई कि भैया के मकान का पता यदि महाराज ढूँढ़ने पर न लगा सका तो स्वयं ही एक गाड़ी बुला लावे। लेकिन यह यदि न हो सका तो फिर क्या होगा सतीश बाबू?"

"इतनी रात को इतनी दूर कोई गाड़ीवाला भी सम्भवतः आए ही नहीं। या तो आपको यहीं रात्रिवास करना पड़ेगा या फिर पैदल चलना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त तीसरा कोई उपाय नहीं।"

"मैं पैदल चल सकती हूँ, लेकिन आपके अतिरिक्त किसी और के साथ नहीं?"

"इसका अर्थ? मेरे साथ जाने से ही क्या विपत्ति की सम्भावना नहीं है?"

"ना-ना—लेकिन उसका पूरा भार आप पर है। संकट आपको सहना पड़ेगा, मुझे नहीं।"

सतीश ने कहा, "मुझे क्यों संकट सहना पड़ेगा? मेरा अपराध?"

"और किसी के सामने आप भले ही न करें, अपने सामने तो करना ही पड़ेगा।"

सहसा सरोजिनी चुप हो गई।

उसका प्रतिवाद सतीश ने फिर नहीं किया। लेकिन उसने स्पष्ट अनुभव किया, दोनों की क्षणिक नीरवता के बीच से लज्जा की हवा का एक झोंका बह गया।

"कोई आ रहा है न ?" यह कह सरोजिनी कुर्सी छोड़कर उठ गई और कुछ देर तक वरामदे की रेलिंग पकड़कर अँधेरे बगीचे की ओर देखती हुई खड़ी रही।

"कोई नहीं है।" कहकर वह अपने स्थान पर लौट आई और कपड़े-लत्ते एक बार फिर अच्छी प्रकार सँभालकर बैठ गई। दोनों मौन थे।

दोनों बैठे रहे। तब तक वाहर तूफान बन्द हो जाने पर भी वर्षा रुकी नहीं थी। माथे पर अँधेरा आकाश था और चारों ओर के महुआ के जंगल में वह अन्धकार दस गुना गाढ़ा हो गया था। उसी एकान्त स्थान में, स्वल्प प्रकाशयुक्त वरामदे में ये दोनों तरुणावस्था के नर-नारी एक-दूसरे के आमने-सामने बैठकर भी चुप हो रहे थे।

वाह्य प्रकृति अपने आकाश वायु-प्रकाश-अन्धकार की लीला से मनुष्यों के मनोभाव और हृदय-वृत्ति को किस प्रकार खींचकर ग्रहण कर लेती है, इसका परिचय सतीश को एक दिन रात के समय मिल चुका था।

उस दिन बिहारी के मुँह से विपिन के साथ सावित्री के गृह-त्याग का समाचार पाकर अपना सारा भविष्य दुःख के समुद्र में डूब गया है, यह समझकर वह दिशा भूलकर अकेले ही दौड़ता हुआ, जन्यशून्य मैदान में लेट गया था, तव ऐसे ही काले आकाश ने अपने शीतल कर से सतीश की सारी जलन को पोंछकर उस सावित्री को ही क्षमा करने की शिक्षा दी थी। फिर आज की यह उद्दाम चंचल बाह्य प्रकृति अपनी सारी सजीवता के स्पर्श से सतीश के निराश तथा दुःखी मन को आज फिर एक मार्ग की ओर तीव्र गति से ठेलने लगी।

एकाएक सरोजिनी ने प्रश्न किया, "आपके इस वनवास का अर्थ क्या है ?"

सतीश बोला, "कुछ अर्थ अवश्य ही है।"

"वह तो है ही। लेकिन किसीको भी न बताकर क्यों भाग आए ?"

"मैं भाग आया हूँ, यह समाचार किसने दिया ?"

सरोजिनी ने जरा हँसकर कहा, "इस समाचार को मैंने स्वयं ही आविष्कार किया है। आप जिस दिन सवेरे चले आए उस दिन मैं स्वयं आपके घर पर गई थी।"

सतीश ने आश्चर्य में कहा, "समझ गया। उपेन्द्र भैया सम्भवतः मुझे ढूंढ़ने के लिए गए थे और आप उनके साथ थीं। वे आएँगे, यह मैं जानता था। लेकिन मुझे अनुपस्थित पाकर उन्होंने क्या कहा ?"

सरोजिनी ने कहा, "उन्होंने अवश्य ही कुछ कहा था, लेकिन मैंने सुना नहीं क्योंकि वे स्वयं वहाँ नहीं गए, मेरे हाथ से उन्होंने चिट्ठी भिजवा दी थी।"

सतीश ने पूछा, "उसके बाद ?"

सरोजिनी ने कहा, "मैंने वहाँ सुना, आप सवेरे की गाड़ी से चले गए हैं। मन में न जाने कैसा विचार आया कि ब्राह्मण महाराज से कहकर दरवाजा खुलवाकर सारे घर को घूम-घूमकर मैंने देखा। बाहर के बरामदे में एक साड़ी सूख रही थी, पूछने पर ज्ञात हुआ कि यह कपड़ा है माईजी का। वे बीमार हैं, आप उनको लेकर पश्चिम को चले गए हैं। अच्छा, वे कौन हैं और कहाँ हैं ? इस घर में तो उनको मैं देख नहीं रही हूँ।"

कुछ देर तक मौन रहकर सतीश ने कहा, "ब्राह्मण महाराज ने कहा कि मैं उसको साथ लेकर पश्चिम को चला गया हूँ ! बदमाश ! झूठा ! उपेन भैया ने उसपर विश्वास कर लिया ?"

सतीश के मुँह का भाव और कंठ-स्वर सुनकर सरोजिनी आश्चर्य में पड़ गई। उसने कहा, "उपेन बाबू तो थे नहीं और विश्वास करने में भी दोष क्या है ? यह माईजी आपकी कौन हैं सतीश बाबू ?"

सतीश ने उपेक्षा से कहा, "मेरी कौन ? कोई भी नहीं, हमारे पुराने घर की नौकरानी ! शैतान ! बदमाश औरत ! बूढ़ी उम्र में बीमारी से मर रही है, इसीलिए कुछ भीख माँगने आई थी। मैं उसको लेकर पश्चिम को चला गया हूँ, हरामजादा, उल्लू मेरे सामने कहे तो उसका…।"

सरोजिनी के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा।

थोड़ी देर तक चुपचाप देखती रहकर उसने कहा, "दासी ! लेकिन, इस

बात से आप इतने उत्तेजित क्यों हो रहे हैं ?"

सतीश ने कहा, "गलत निन्दा करने से कौन उत्तेजित नहीं होता, बताइए ?"

"वे उस रात को अचेत हो गई थीं।"

सतीश ने पूर्ववत् उत्तेजित स्वर से कहा, "हाँ, हो गई थी, लेकिन इससे भी क्या हुआ ? उसका बेहोश हो जाना क्या मेरा अपराध है ? और आप भी उसके बारे में इतने सम्मान के साथ बातें क्यों कह रही हैं ? घर की दासियों और नौकर-चाकरों से क्या आप लोग 'आप', 'जैसी आज्ञा' कहकर बातें करती हैं ?"

सरोजिनी ने इसका उत्तर नहीं दिया। वह बैठी रही। इतनी देर तक उसके हृदय में जो आनन्द का चाँद उग गया था, उसको न जाने कहाँ से काले बादलों ने आकर घेर लिया।

एक बार उसके मन में यह प्रश्न उठा, क्यों उस रात को उपेन्द्र सपत्नीक उसके घर पर आकर तुरन्त ही चले गए थे। लेकिन उसने प्रश्न नहीं किया। मन-ही-मन वह एक प्रकार से समझ गई थी—इसमें कुछ ऐसी बातें हैं जिन्हें उपेन्द्र स्वयं ही प्रकट नहीं कर सके हैं।

यह मौन दोनों को खलने लगा। मौन को भंग किया सरोजिनी ने। धीरे-धीरे पूछा, "एक बात मैं आपसे पूछ सकती हूँ ?"

जरा अभिमान के स्वर से सतीश ने कहा, "कौन बात ?"

"आपने इतने दिन हम लोगों के इतने निकट रहकर भी कभी दर्शन नहीं दिया, क्यों ?"

इस प्रश्न का उत्तर सतीश के पास नहीं था। उसने कहा, "कई प्रकार के कारणों से समय नहीं मिला।"

"कारण क्या है—लिखना-पढ़ना ?"

"ना, लिखना-पढ़ना मेरा नाम-मात्र का चलता है। वह मुझे किसी दिन कहीं जाने में रुकावट नहीं डालता।"

"तो फिर ?"

जरा हँसने की चेष्टा करके सतीश ने कहा, "देखिए, सच्ची बात मैं आपको बता सकता हूँ। आप लोगों के बारे में किसी दिन मेरे मन में विचार

नहीं आया, ऐसी बात नहीं है, लेकिन आप क्या जानती हैं, हमारा जैसा समाज है, उसकी जैसी शिक्षा है, उसके रहते आप लोगों के बीच जाने में एक प्रकार की हिचक-सी मालूम होती है। सम्भवतः इसलिए मैं जा नहीं सका।"

सरोजिनी ने कहा, "कदाचित्! आपके समाज की शिक्षा कैसी है, जरा सुन सकती हूँ? उपेन बाबू के समाज के साथ सम्भवतः उसका विशेष कुछ मेल नहीं है, क्योंकि उनको तो हमसे मिलने-जुलने में रुकावट, हिचक नहीं होती।"

उस अज्ञात स्त्री की सतीश के घर पर चर्चा छिड़ जाने के बाद से ही उसके हृदय में एक ज्वाला धधक रही थी, इन अनाप-शनाप की बातों के विवरण से उस ईर्ष्या की जलन और भी बढ़ गई। सतीश को वह छिपे रूप से प्यार न करती तो वह सब छिपाना-चुराना सम्भवतः उसके लिए छिपा ही रह जाता किन्तु प्रेम की अन्तर्दृष्टि को इतनी सरलता से प्रसारित न किया जा सका। ठीक बात यह है, इसकी जानकारी न होने पर भी उसका हृदय किस प्रकार मानो वास्तविक बात समझ गया, सतीश ने दुःख-भरे आश्चर्य के साथ सरोजिनी की ओर देखा। उसकी कंठ की आवाज में झगड़े का जो दबा हुआ स्वर था, उसने सतीश के कानों में तीक्ष्ण भाव से पहुँचकर सावित्री की याद दिला दी। इसके बीच ही सरोजिनी भी उसको प्यार कर सकती है, ऐसी सम्भावना सतीश के मन में सपने में भी उदित नहीं हुई। इसलिए उसकी इस उत्तप्त प्रश्नोत्तर-माला का वास्तविक कारण वह स्पष्ट रूप से देख न सका। उसको उच्च शिक्षा-प्राप्त महिला का कोरा स्पर्श-भरा अभिमान कल्पना करके वह स्वयं भी मन-ही-मन जल उठा और उसने उत्तर भी उसी रूप में दिया।

उसने कहा, "उपेन भैया का समाज और उनकी शिक्षा क्या है, इसे तो आप भली-भाँति जानती हैं। लेकिन उस दशा में भी सम्भवतः वे आप लोगों के साथ मिलना-जुलना बनाए रह सकते हैं। लेकिन और कोई यह न कर सके तो उसके लिए जवाबदेही करनी पड़ेगी, इसका कुछ भी अर्थ नहीं है। जो भी हो, मुझे आप क्षमा करें, इन सब आलोचनाओं की मैं सार्थकता नहीं समझता।"

सरोजिनी चुप हो गई और सतीश भी चुपचाप मुँह झुकाकर चुप हो रहा।

फाटक के सामने एक गाड़ी आकर खड़ी हो गई और ज्योतिष बाबू ऊँचे स्वर से सतीश का नाम लेकर पुकारते-पुकारते बत्ती और आदमियों के साथ बगीचे में आ गए।

ज्योतिष जब अपनी बहन को साथ लेकर प्रस्थान करने को प्रस्तुत हो गए तब असंख्य धन्यवाद, निमन्त्रण-आमन्त्रण आदि यथाविधि सम्पन्न किए।

सतीश ने सरोजिनी से पूछा, "एक बात आपसे पछनी बाकी रह गई। हारान बाबू नामक एक उपेन बाबू के मित्र थे, उनका क्या हाल है, आप बता सकती हैं?"

ज्योतिष ने आश्चर्य से उत्तर दिया, "अरे? आपने सुना नहीं है? वे तो मर गए।"

सतीश यह समाचार सुनकर थोड़ी देर तक मौन खड़ा रहा, फिर बोला, "उनकी माँ, उनकी स्त्री, वे लोग कहाँ हैं, आप जानते हैं?"

सरोजिनी ने बताया, "वे लोग तो अपने मकान में ही हैं। तय हुआ कि दिवाकर बाबू उनके मकान में रहकर कॉलेज में पढ़ेंगे—वे उनका भार लेंगी।"

हठात् ज्योतिष ने अपनी बहन से पूछा, "हारान बाबू की स्त्री हम लोगों के घर एक दिन आई थीं न?"

सरोजिनी ने कहा, "हाँ, बड़ी देर तक रही थीं, बहुत-सी बातें की थीं।"

उसके अपने बारे में क्या बातें हुई थीं, पति के शोक से भाभी की क्या दशा हुई थी, आदि जानने के लिए सतीश ने सरोजिनी के मुँह की ओर एक उत्सुक दृष्टि डाली क्योंकि उसके विषय में कड़ी आलोचना हुई थी, इसमें उसे सन्देह नहीं था। लेकिन उस अस्पष्ट प्रकाश में या तो सरोजिनी उसके चेहरे का भाव न समझ सकी अथवा समझकर भी, सतीश का कौतूहल दूर करने की आवश्यकता उसने नहीं समझी।

उसने भैया को चलने के लिए एक हल्का-सा धक्का लगाकर मृदु स्वर

में कहा, "अब देर मत करो भैया, चलो···!"

"सरोजिनी चलते हैं।"

सतीश को नमस्कार करके वे बोले, "फिर एक बार आपको असंख्य धन्यवाद सतीश बाबू ! कल-परसों एक दिन इस दीन के यहाँ भी चरण-धूलि पड़ जाती तो अच्छा होता !"

सतीश ने प्रतिनमस्कार करके अस्पष्ट स्वर से जो कुछ कहा, वह समझ में नहीं आया।

सरोजिनी लौटकर खड़ी हो गई और सतीश को एक छोटा-सा नमस्कार उसने किया और चल पड़ी।

तीस

दो माह पूर्व हारान की मृत्यु के समय दिवाकर केवल दो-चार दिन के लिए कलकत्ते में रहकर लौट जाने को लाचार हुआ था।

इस बार किरणमयी के संरक्षण में रहकर कलकत्ते के कॉलेज में बी० ए० में पढ़ना निश्चित होने पर वह अपने लिए खरीदी गई नई पेटी में किताबें तथा आवश्यक वस्तुएँ-वस्त्रादि भरकर एक दिन सन्ध्या समय हारान बाबू के पथरियाघट्टे के मकान में उपस्थित हुआ।

अपने प्रिय छोटे भाई के समान किरणमयी नें उसे स्नेहसहित ग्रहण किया।

सुरबाला के अतिरिक्त मामा के घर दिवाकर को प्यार करने वाला और कोई भी न था। पर उस प्रेम से दिवाकर को जो सुख-शान्ति मिलती थी, उसे मय ब्याज के माहेश्वरी वसूल कर लेती थी। माहेश्वरी की तीखी दृष्टि तो शनि की दृष्टि के समान समय-समय पर उसके बदन का रक्त तक मानो सोख लेती थी। लेकिन यहाँ वैसी कोई बात न थी और न उसका भय ही था।

गमले का पौधा सहसा मुक्त पृथ्वी का आश्रय पाकर अनजान रस के स्वाद से अपनी भूखी जड़ों को जिस प्रकार मिट्टी में चारों ओर फैला देता

है, किरणमयी के आश्रय में दिवाकर की भी ठीक वही दशा हुई।

महानगरी कलकत्ता की विस्तीर्ण और विचित्र जलवायु में पड़कर देखते-देखते उसकी संकुचित आशा और संकीर्णता दूर हो गई। उसके मन में बड़प्पन आ गया। बी० ए० फेल होने के साथ ही विद्याभ्यास का जो उसका पुराना तार था, वह टूट चुका था और नया तार जोड़ने में अभी देर थी।

इसी मधुर अवकाश के साथ में वह निरन्तर चारों ओर घूम-घूमकर रस-संचय करने लगा।

उसने थियेटर देखकर मानो स्वप्न देखा। चिड़ियाघर देखकर चौंक कर स्तब्ध ही हो रहा। जादूघर देखकर सन्नाटे में आ गया। शिवपुर की कृषि-वाटिका देखकर उसने निबन्ध लिखा। ऊँचे मकानों और प्रासादों की ओर स्तब्ध होकर देखता रहा। अन्त में एक दिन गाड़ी के नीचे दबने के डर से भागते समय पैर में मोच आ जाने के कारण घर में आकर पड़ा रहा। चोट बहुत मामूली थी।

किरणमयी चटपट हल्दी-चूना गरम कर लाई और लेप करते-करते हँसकर बोली, "कहाँ दब गए थे? घोड़ागाड़ी थी या बैलगाड़ी?"

दिवाकर ने कहा, "घोड़ागाड़ी।"

किरणमयी बोली, "गनीमत! कहीं बैलगाड़ी या भैंसा-गाड़ी के नीचे आते, तो लँगड़ाते-लगड़ाते थाने में जुर्माना भी देने जाना पड़ता।"

दिवाकर ने लज्जित मुख से कहा, "चोट वैसी नहीं लगी है, सवेरे तक पैर ठीक हो जाएगा।"

किरणमयी बोली, "ठीक तो हो ही जाएगा। लेकिन अब अधिक दूर न जाना। सुना है, कलकत्ते में एक ऐसा दल आया है, जो लड़कों को पकड़-कर ले जाता है।"

दिन कट रहे थे।

अघोरमयी कितने ही तीर्थस्थानों से घूमकर एक दिन घर लौट आई। इसके पहले उसने दो-एक दिन के लिए दिवाकर को देखा था, तब उसका हृदय पुत्रशोक में ऐसा डूबा हुआ था कि उसने इसके मुख पर दृष्टि भी न डाली थी। आज इस बिना दाढ़ी-मूँछ के सुगठित शरीर वाले सुन्दर नवयुवक

की ओर देखते ही उसके मातृप्राण प्रेम से पिघल गए। बोली, "दिवू, मैं नाते में तुम्हारी मौसी होती हूँ, तुम मुझे मौसी कहा करो।"

इसके भी माँ-वाप नहीं हैं, यह सुनकर वृद्धा की दोनों आँखें छलछला आईं, आँचल से दो बड़ी-बड़ी बूंदें उसने पोंछीं। बोली, "भगवान् ने हारान को उठाकर भी यदि इस अभागिन को संसार में रखा है, तो जितने दिन जीऊँ, उतने दिन तक वेटा, तू मुझे छोड़कर कहीं न जाना।" उसके सिर पर हाथ फेरते हुए वृद्धा ने प्रेम प्रकट किया।

उसकी अपनेपन की बातें सुन और उसकी आँखों में जल देखकर, दिवाकर की भी आँखें भर आईं, पर उसे छिपाकर वह सामने से हट गया। इन चंद दिनों में दिवाकर के प्रति उसका आर्त्तस्नेह जादूगर के माया-वृक्ष की भाँति डाल-पात फैलाने लगा। सच तो यह था, कि यह पुत्रहीना माता कुछ दिन तक प्रवास में रहने के बाद घर लौटकर सम्पूर्ण अन्तःकरण से पुत्र की कमी इसके द्वारा पूरा कर लेना चाहती थी। इसी घर में कई महीने पहले जब उसका अपना वेटा चल बसा था, तब उस सर्वग्रासी निष्ठुर शोक ने ही उसके मातृत्व का संरक्षण कर किसी प्रकार उसे जीवित रखा था, इस समय वह शोक अपेक्षाकृत शान्त हो गया था। इससे उसका मातृहृदय संतानाभाव से एक शून्यता का अनुभव कर एकदम टूटा जा रहा था। उसने उस सूने सिंहासन पर दिवाकर को बड़े समारोह से बैठा लिया।

स्नेह की भूखी वृद्धा और किरणमयी जैसी चतुर कर्तव्यपरायणा भाभी के साथ रहकर इस घर में दिवाकर के आदर और प्रेम की सीमा न रही।

दिवाकर को यहाँ भूख न होने पर कहना पड़ता है, जरा-सी तबीयत खराब होने पर उत्तर भी देना पड़ता है, स्नेह के इन गूढ़ रहस्यों को इस बीस वर्ष के जीवन में उसने कभी अनुभव नहीं किया था।

जीवन के इस आकस्मिक परिवर्तन के दिनों पहले-पहल उसे किसी-किसी बात में रुकावट-सी जान पड़ती थी। चिराभ्यास अनधिकार का संकोच एकदम से दूर नहीं होना चाहता था, फिर भी उसका संकुचित मन इन दोनों नारियों के अपरिचित प्रेम में यथेष्ठ फल गया। आखिर कब उसकी बड़े कष्ट से प्राप्त की हुई दुःख सहने वाली आदतें पेड़ के तने पर की सूखी छालों की भाँति उसके शरीर से छूट गईं, इसे उसका पता भी न लगा।

दिवाकर इधर देखने की जो सब चीजें थीं, उन्हें देख चुका। फिर जब उसको गाड़ी के नीचे दवने या गिर पड़ने का भय नहीं रहा, तब वह सभा-समिति में सम्मिलित होने लगा और थोड़े ही दिनों में एक मासिक पत्रिका का उत्साही और सम्मानित लेखक बन गया। बचपन से ही उसे गाने-बजाने का शौक और साहित्य से प्रेम था, वह 'हे हरे, भारत कहाँ' आदि तुकबंदियाँ कर सकता था, अव दिवाकर वंद्योपाध्याय के नाम से कहानियाँ लिखने लगा। कॉलेज के कुछ लड़कों ने मिलकर 'चन्द्रोदय' नामक एक मासिक पत्र निकाला, उसके पीछे दिवाकर पागल-सा हो गया।

अब वह घर के वाहर बहुत कम निकलता है, उसे वड़ा काम रहता है। टूटी छत के निर्जन कोने में, कागज-पेंसिल लिये, गम्भीर मुख से वैठा रहता है—नहाने-खाने की भी सुध नहीं रहती। बड़ी हाँक-पुकार के बाद नीचे उतरता है।

उसके मनोराज्य के भीतर इन नए उपद्रवों से अघोरमयी ने भयभीत होकर कहा, "दोष तो इस घर का ही है! मेरे हारान ने लिखने-पढ़ने के ही पीछे जान दी। देखती हूँ, इसे भी उसी रोग ने पकड़ा है। ना, यह ठीक नहीं, पराया लड़का है। क्या जाने···"

किरणमयी ने सास की वातें सुनीं। वह हँसकर वोली, "माँ, डरो मत! वह जिस प्रकार के पढ़ने-लिखने में लगा है, उससे आयु घटती नहीं, बढ़ती है।"

कुछ ही दिन बाद उपर्युक्त 'चन्द्रोदय' पत्र में 'जहरीली छुरी' नामक एक कहानी निकली। 'सूर्योदय' पत्रिका ने उसकी समालोचना करते हुए लिखा—वंगभाषा-भाषियों के गौरव-स्वरूप सुप्रसिद्ध नवीन लेखक श्रीयुत दिवाकर वन्द्योपाध्याय द्वारा लिखी हुई इस गल्प में 'प्रेम का एक निर्दोष चित्र' अंकित किया गया है।

इसके बाद निर्दोष चित्र में क्या-क्या है और समालोचक महाशय पढ़ते-पढ़ते किस प्रकार आँसू बहाने लगे, यह भी लिखा था और उपसंहार में ऐसी एक कहानी और पढ़ने के लिए वे किस उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा कर रहे हैं, इसका आभास भी उन्होंने दिया था।

दिवाकर ने इस कोरे प्रशंसा वाक्य को निरपेक्ष सत्य समझने में जरा

सोच-विचार न किया। जिस अवस्था में मानव-जीवन की आशा और आकाश-कुसुम की कल्पना को छोड़कर मनुष्य प्रायः पृथक् नहीं हो सकता, अभी वह उसी अवस्था में था। इस बीच में जिन दो-चार प्रशंसकों और बन्धु-बान्धवों की सहायता एवं प्रोत्साहन से वह साहित्य की जड़ाऊ टोपी सिर पर धारण कर बैठा था, सूर्योदय के सम्पादक ने उसके चारों ओर पुस्तकों की एक माला लपेट दी थी।

दिवाकर यह अनोखा साहित्य-मुकुट सिर पर पहनकर एक दिन सवेरे गर्वोज्ज्वल मुख से रसोईघर में आ उपस्थित हुआ। उसके हाथ में सूर्योदय का वही अंक था। बोला, "भाभी, क्या काम में बहुत व्यस्त हो?"

किरणमयी भोजन बना रही थी, बोली, "अरे, रसोई प्रायः बन चुकी है। तुम्हारे हाथ में वह कागज कैसा है?"

"यह एक मासिक पत्र है—'सूर्योदय' नया निकला है, लेकिन भाभी, चाहे जो कहो, लिखता खूब है।"

किरणमयी को सूर्योदय के अस्तित्व का भी पता नहीं था, आग्रह से बोली, "सचमुच? लाओ दो जरा इसे देखूँ तो सही।"

"अभी देखोगी?"

"ना-ना, अभी नहीं—मेरे बिस्तर पर रख दो, दोपहर को देखूँगी।"

दोपहर को खाना-पीना और सब काम-काज समाप्त हो जाने पर किरणमयी 'सूर्योदय' खोलकर बैठी। इधर-उधर देखते, पन्ने उलटते-पलटते ठीक स्थान पर उसकी आँखें पड़ीं।

दिवाकर बगल के कमरे में था, उसके पास जाकर बोली, "बाबू, तुम्हारी 'जहरीली छुरी' कहाँ है? समालोचना दिखा दी, अब वास्तविक चीज तो दिखाओ।"

दिवाकर लजाकर नम्रता से कहने लगा, "ओ! वह कहानी? वह कुछ नहीं है भाभी, क्या देखोगी?"

किरणमयी हँसकर बोली, "तुम दो तो सही।" फिर उसने आप ही खोज-ढूँढ़कर 'चन्द्रोदय' का अंक निकाला और खोलकर वहीं एक चौकी पर बैठ चुपचाप पढ़ने लगी। लेकिन दिवाकर आशा और आशंका की उत्तेजना छिपाकर झूठ-मूठ एक पुस्तक के पन्ने उलटने लगा। उसकी 'जहरीली छुरी'

कहानी की नायिका षोडसी है और अतीव सुन्दरी। धनी जमींदार की कन्या होकर भी दैवयोग से उसने एक दरिद्र युवक को अपना हृदय दे डाला था। जमींदार को जब यह बात मालूम हुई, तब उन्होंने नायक विजयेन्द्र कुमार को देश-निकाला दे दिया। लेकिन उनकी कन्या नगेन्द्रनन्दिनी को यह मालूम नहीं हो सका था। एक दिन की वसन्त सन्ध्या में मालती-कुंज में बैठी वह बड़े प्रेम से माला गूंथ रही थी। उधर रूपमुग्ध पूर्णचन्द्र वृक्ष की ओट में झाँक रहा है, लेकिन आकाश में आने का साहस नहीं करता। बीच-बीच में कोयल कूकती है, लोभी भौंरा गुनगुनाकर निद्रालसा मालती की निद्रा भंग कर रहा है। इसी समय धीरे-धीरे वह कौन आया? विजयेन्द्र तो नहीं है? हाँ-हाँ, वही है! लेकिन यह कैसा वेश है! गेरुआ बाना, सिर में भस्म, गले में रुद्राक्ष! नगेन्द्रनन्दिनी के हाथों से मालती की माला गिर पड़ी।

विजयेन्द्र पास आकर गद्‌गद कंठ स्वर से बोला, "विदा दो, चलता हूँ।"

नगेन्द्रनन्दिनी के सिर पर मानो सैकड़ों ही वज्र एकसाथ गिरे, हृदय में लाखों बिच्छुओं ने एक साथ डंक मारकर उसे व्याकुल कर दिया। जान पड़ा, जैसे हृदय के सौ-सौ टुकड़े हो रहे हैं। उसकी आँख में चन्द्रमा का प्रकाश काला पड़ गया, कानों में कोयल-कूक उल्लू के स्वर में बदल गई। युवती से और खड़ा नहीं रहा गया—मूर्च्छित होकर वह पृथ्वी पर गिर पड़ी।

यहाँ तक पढ़कर किरणमयी ने सहसा सिर उठाकर कहा, "लाला, अवश्य तुमने किसी को अपना हृदय दे डाला है, क्यों?"

दिवाकर ने आश्चर्य में आकर कहा, "मैंने?"

"हाँ, हाँ तुमने। अवश्य चुपके-चुपके तुम किसी को चाहते हो।"

इस अचानक आरोप की प्रबल लज्जा से दिवाकर सन्नाटे में आ गया। कुछ ही क्षण बाद कुण्ठित और व्यग्र होकर उसने प्रतिवाद में कहा, "मैंने! छिः—राम कहो—कभी नहीं!"

"ना! बाबू, सच कहो, क्या किसी दिन बिच्छू ने डंक नहीं मारा!"

"ना, किसी दिन नहीं।"

किरणमयी बोली, "आश्चर्य है ! क्या किसी दिन किसी को डंक का दुःख सहन करते भी नहीं देखा है ?"

"ना, देखा भी नहीं।"

किरणमयी ने और भी आश्चर्य में आकर कहा, "तुम्हारा हृदय भी किसी दिन सौ टुकड़े हुआ हो, यह भी मन में नहीं आता। किसी दिन किसी को चाहा नहीं, एक छोटे बिच्छू तक को तो कभी तुमने आँखों से देखा नहीं, वज्रपात की व्यथा कैसी होती है, यह भी तुम्हें मालूम नहीं, फिर विरह ऐसा भयानक होता है, यह तुमने कैसे जाना ?"

दिवाकर क्रमशः समझ रहा था कि किरणमयी उसे किस ओर ढकेले लिए जा रही है, मुँह लाल कर बोला, "तो क्या यों ही नहीं जाना जा सकता ?"

किरणमयी बोली, "कैसे जाना जा सकता है ? मैं तो नहीं जानती, लेकिन दूसरे की पुस्तक से चुराकर अच्छा लिखा जा सकता है, यह मैं मानती हूँ।"

दिवाकर जोश में आ गया। बोला, "तो तुम्हारे कहने का तात्पर्य यह है कि मैंने चोरी की है !"

किरणमयी ने हँसकर कहा, "तात्पर्य तो यही है, चोरी है, इसमें तो सन्देह नहीं है, इसके सिवा तुम ऐसे अन्धे हो, कि तुम्हें इसका भी पता नहीं कि तुमने चोरी की है। अप्रसन्न न होना लाला ! लेकिन बिच्छू और वज्र-पात के अलावा तुम्हारे पास और कोई पूंजी ही नहीं है। इतनी-सी पूंजी लेकर ही यह व्यापार चलाओगे ? उपन्यास लिखना इतना आसान नहीं है, यदि छलांग मारकर समुद्र के पार जाना चाहो, तो भी देवता का आशीर्वाद चाहिए, यों ही नहीं होता।" यह कहकर वह हंसने लगी।

इस प्रत्याशित और रूखी बात से दिवाकर मौन रहा। इतने दिनों तक जिससे केवल मीठी बातें और मधुर हँसी ही प्राप्त करता आया है, उसके इस ताने और शुष्क व्यंग्य का उत्तर क्या दे, यही उसकी समझ में न आया। कुछ क्षण चुप रहकर उसने धीरे-धीरे कहा, "तो इतने आदमी जो लिखते हैं, वे सभी प्रेम-पिपासु हैं या सबने अलगाव की ज्वाला सही है ? ज्वाला सहने की आशा में बैठे रहने का अर्थ तो साहित्य-चर्चा छोड़ ही देना है।"

किरणमयी ने उसे यों जोश में आकर गर्म होते देख, हँसकर कहा, "क्या इसे साहित्य-चर्चा कहते हैं ? यह तो अनधिकार चर्चा है।" यह कहते-कहते उसके मुख की हँसी रोके न रुकी। उसकी अपनी ही बातें मानो डुबकी लगाकर उसके हृदय के अन्तस्तल को बींधकर, खून से भीगकर भारी और लाल होकर ऊपर आईं। मलिन मुख से वह बोली, "लाला, अभी तुम मेरी बात न समझोगे और आशीर्वाद देती हूँ कि किसी दिन समझने की नौबत भी न आए, लेकिन देखो, मैं आयु में तुमसे बड़ी हूँ, मेरी इतनी बात मानो। जो बात स्वयं नहीं समझते, उसे दूसरे को समझाने का झूठा प्रयत्न न करो। जिसे तुम स्वयं नहीं पहचानते, उसका अंट-संट परिचय दूसरों के सामने मत दिया करो !"

दिवाकर निरुत्तर रहा।

कुछ देर किरणमयी चुप रही, फिर भरे हुए गले को साफ करके बोली, "यह क्रोध या अभिमान की बात नहीं है बाबू, यह भाग्य की बात है, बहुत बड़े दुर्भाग्य की बात है। इस संसार में जिन दो-चार हतभाग्यों को इस निगूढ़ रहस्य का परिचय देने का सच्चा अधिकार पैदा होता है, यह गुरुभार उन्हीं के हाथों में छोड़कर दूसरे काम में मन लगाओ तो काम भी होगा और हानि भी कम होगी। वृथा छत के कोने से मुँह लटकाकर बैठे-बैठे कल्पना करने में लाभ न होगा, यह मैं तुमसे साफ-साफ कहे देती हूँ। तुम अपने जैसे अनाड़ी को ताँबे पर सोने का मुलम्मा देकर भुला सकोगे, लेकिन जिस व्यक्ति ने जल-जलकर सोने का रंग पहचाना है, इस दुःख के व्यवसाय में आयु बिता दी है, उसे कैसे धोखा दोगे लाला ?"

दिवाकर ने नम्र होकर कहा, "तो कल्पना क्या कोई वस्तु ही नहीं है ?"

किरणमयी बोली, "यह तो मैं नहीं कहती कि कल्पना कुछ भी नहीं है; लेकिन कोरी कल्पना ढाँचा बना सकती है, प्राण नहीं डाल सकती, बोझ ढो सकती है, मार्ग नहीं देख सकती। तुम जब तक उस पथप्रदर्शक प्रकाश का पता नहीं पाते तब तक तुम्हारा बिच्छू तुम्हीं को डंक मारेगा, और किसी के शरीर में वह डंक छुआ भी न सकेगा।"

दिवाकर उसकी अन्तिम बात पर फिर जल उठा।

उसे मुंह फुलाए बैठे देखकर किरणमयी फिर मुस्कराकर बोली, "लेकिन मैं सोचती हूँ कि तुम्हारे इस 'सूर्योदय' सम्पादक महाशय के आँसू न रुक सकने का कारण क्या है? कहीं नगेन्द्रनन्दिनी भी अंत में विष खाकर मर तो नहीं गई!"

दिवाकर ने क्रोध में आकर कोई भी उत्तर न दिया।

किरणमयी कहानी के अन्तिम भाग पर दृष्टि डालकर बोल उठी, "अरे!" इसके बाद जोर से पढ़ने लगी, "लेकिन लोग श्मशान में वह किस की लाश लिये जा रहे हैं? वे हजारों आदमी किसके पीछे छाती पीटते जा रहे हैं? किसके दुःख में महाप्रतापी जमींदार पागल के समान रो रहा है? अहा! यह कैसी करुणा, हृदयविदारक दृश्य है! विजयेन्द्र धीरे-धीरे उसी ओर बढ़ने लगा।" किरणमयी आगे न पढ़ सकी। हँसकर मासिक-पत्र दिवाकर के ऊपर फेंककर बोली, "समय हो गया, चलूँ, तुम्हारे लिए भोजन बनाऊँ।" कहकर हँसती हुई वह चली गई।

दिवाकर पत्थर की मूर्ति के समान बैठा रहा। असमर्थ मनुष्य की किसी प्रिय वस्तु को जब कोई पैरों से कुचलकर चला जाता है, तब उसके मन की जो दशा होती है, वही दशा उसकी भी होने लगी।

इकत्तीस

पाँच-छः दिनों के बाद एक दोपहर बेला को दिवाकर ने किरणमयी के कमरे में प्रवेश कर देखा, वह वहाँ बैठी बड़े ध्यान से हस्तलिखित एक मूल संस्कृत रामायण पढ़ रही थी। यह देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। किरण-मयी साधारण गृहस्थ-घर की स्त्रियों की अपेक्षा अधिक पढ़ी-लिखी है और बंगला के अलावा हिन्दी और अंग्रेजी भी जानती है। लेकिन वह हाथ की लिखी संस्कृत पुस्तक भी मजे में पढ़ सकती है, इसका उसे स्वप्न में भी अनुभव न था।

वह आश्चर्य के साथ श्रद्धा से झुककर वहीं बैठ गया।

हाथ के पन्ने को ठीक स्थान पर रोककर मुँह ऊपर उठाकर किरणमयी

ने कहा, "अचानक असमय कैसे ?"

जरा कुण्ठित होकर दिवाकर ने कहा, "तुम पढ़ रही हो, यह मैंने नहीं सोचा था भाभी। समझता था सम्भवत:···।"

"सो रही हूँ। इसीलिए एकान्त सोचकर मुझे जगाने आए हो ?"

दिवाकर ने लज्जा से लाल होकर कहा, "भाभी, जब-तब इसी प्रकार हँसी करती रहोगी, तो मैं घर छोड़कर भाग जाऊँगा।"

किरणमयी ने हँसकर कहा, "भाग जाऊँगा, कहने से ही क्या भागा जा सकता है ? भूल-भुलैया का मार्ग मालूम रहना चाहिए। अच्छा, बैठो, बैठो ! क्रोध करके उठना न पड़ेगा। मैं सोचती थी बबुआ, द्वार बन्द करके बैठे-बैठे 'जहर की छुरी' के बाद तलवार-कटार के समान कोई बड़ी चीज तैयार कर रहे हो। इसीलिए मैंने भी बुलाया नहीं। नहीं तो, मुझे ही क्या दोपहर को रामायण पढ़ना अच्छा लगता है ?"

दिवाकर ने पूछा, "रामायण में तुम विश्वास करती हो ?"

किरणमयी ने कहा, "करती हूँ।"

दिवाकर ने आश्चर्य में पड़कर कहा, "किन्तु बहुत-से लोग नहीं करते। वास्तव में इसमें इतने झूठ, इतने असम्भव, इतने क्षेपक हैं कि उन पर विश्वास नहीं किया जा सकता।"

जरा हँसकर पोथी को हाथ से ठेलकर किरणमयी ने कहा, "यही तो मूल ग्रंथ है। इसमें से प्रक्षिप्त विषयों को निकाल दो तो देखूँ ?"

दिवाकर ने सहमकर कहा, "मैं किस प्रकार निकाल सकता हूँ भाभी, मैं तो संस्कृत नहीं जानता।"

किरणमयी ने कहा, "जानते नहीं हो, इसीलिए इस प्रकार झट से ऐसी बात तुम्हारे मुँह से निकल गई। विद्या न रहने से ही अविद्या आ घुसती है, उसके ही फलस्वरूप मनुष्य जिस बात को नहीं जानता, वही दूसरों को बता देना चाहता है, जो समझता नहीं, वही अधिक समझाना चाहता है। बुरी आदत को छोड़ दो।"

अत्यन्त लज्जित हो गया दिवाकर। यह बात कहने का उसका कोई विशेष उद्देश्य नहीं था। उसने सोचा था, धर्मग्रंथ में अश्रद्धा, अविश्वास दिखाने से भाभी प्रसन्न होंगी।

किरणमयी ने जरा हँसकर कहा, "लिखना कैसा हो रहा है ?"

दिवाकर ने कहा, "मैं तो अब लिखता नहीं हूँ ।"

किरणमयी विस्मय से बोली, "लिखते नहीं हो ! कहते क्या हो बबुआ ? लेकिन तुमने जो कुछ लिखा था, वह बुरा नहीं था। छोड़ क्यों दिया, बताओ तो ?"

दिवाकर बोला, "क्यों लज्जित कर रही हो भाभी, मैंने उसके बाद बहुत विचार करके देखा है, तुम्हारी बात सत्य है। मेरा यह लेख दूसरे की चोरी भले ही न हो, दूसरे की नकल तो अवश्य है ! वास्तव में मैं प्रेम का क्या जानता हूँ कि इतनी बातें लिख गया। इसीलिए अब मैं लिखता नहीं— केवल सोचता हूँ ।"

"सोचते हो, दिन-रात क्या सोचते हो, बताओ तो ? मुझे ही तो नहीं ?"

इस बात पर ध्यान न देकर दिवाकर ने कहा, "फिर भी, मैं देख रहा हूँ कि उपन्यास लिखने के झोंक को भी मैं किसी दिन छोड़ न सकूँगा। आज इसीलिए यही सोचकर मैं यहाँ आया हूँ कि तुमसे कुछ सीखूँगा ।"

किरणमयी ने कहा, "मुझसे तुम क्या सीखोगे बबुआ, प्रेम ?"

दिवाकर ने प्रबल लज्जा को किसी प्रकार रोककर गम्भीर होकर कहा, "सब कुछ सीखूँगा, आवश्यकता पड़ेगी तो वह भी सीखूँगा ।"

किरणमयी ने भी मुँह को कृत्रिम गम्भीरता से परिपूर्ण करके कहा, "लेकिन इसमें एक झंझट है, बबुआ ! मुझसे तुम प्रेम सीखने लगोगे तो लोग क्या कहेंगे !"

दिवाकर झट से उठ खड़ा हुआ। बोला, "जाओ, मैं जा रहा हूँ। तुम तो केवल हँसी ही करती हो ।"

किरणमयी ने लपककर उसका हाथ पकड़ मुस्कराकर कहा, "तो स्पष्ट कहो न भाई, हँसी नहीं चाहते, सच्ची बात चाहते हो ।"

दिवाकर अपना हाथ तेजी से खींचकर शीघ्रतापूर्वक बाहर चला गया।

किरणमयी ने मन-ही-मन हँसकर अपनी पुस्तक बन्द कर दी। उसके बाद उचित स्थान पर उसे रखकर वह धीरे-धीरे दिवाकर के कमरे में चली गई।

दिवाकर उदास-सा खिड़की के बाहर देखता हुआ चुपचाप बैठा था।

किरणमयी ने कहा, "क्रोध करके क्यों चले आए, बताओ तो ?"

दिवाकर ने बिना मुँह घुमाए ही कहा, "यह सब हँसी-मजाक मुझे अच्छा नहीं लगता।"

पल-भर किरणमयी चुप रहकर मीठे स्वर से बोली, "तुम तो मेरे देवर लगते हो बबुआ ! तुम्हारे साथ तो हँसी-मजाक चलना ही चाहिए। यह सब न करने से मैं जीवित कैसे रहूँगी, जरा बताओ तो !"

इस प्रेम-भरे कोमल स्वर से ज्ञात हो गया कि यह सत्य ही है। मुझे लज्जित होने की तो कोई बात ही नहीं है। हम लोगों का सम्बन्ध ही तो हँसी-मजाक का है।

यह बात सत्य है कि बंगाली समाज में देवर-भौजाई में एक मधुर हास-परिहास का सम्बन्ध प्रचलित है और ठीक किस स्थान पर जाकर इसकी सीमा-रेखा पहुँच गई है, यह भी बहुतों की दृष्टि में नहीं पड़ता। पड़ने की आवश्यकता भी वे नहीं समझते। लेकिन इस निर्दोष हास-परिहास की अधिकता से कभी-कभी कितने विष-बीज झड़ पड़ते हैं और अलक्ष्य में अनजान में, वे ही बीज अंकुरित होकर विष-वृक्ष में परिणत हो जाते हैं, और किसी समय समूचे पारिवारिक बन्धन को कलुषित कर देते हैं, इसका हिसाब कितने लोग रखते हैं !

दिवाकर ने मुँह फेरकर अभिमान से कहा, "मैं सीखने गया और तुमने हँसी करके मुझे भगाकर ही दम लिया।"

किरणमयी ने बिस्तर के एक छोर पर बैठकर कहा, "क्या सीखने गए थे ?"

दिवाकर ने कहा, "वही जो मैंने कहा था कि कहानी लिखने का झोंक मैं किसी प्रकार भी छोड़ न सकूँगा। इसलिए मैंने सोचा है कि तुम सिखा दोगी, बोलती जाओगी, मैं लिखता जाऊँगा।"

किरणमयी ने हँसकर कहा, "वह तो मेरा ही लिखना होगा बबुआ !"

"होगा तो होने दो, लेकिन मेरा तो सीखना होगा। केवल जानने से ही तो नहीं होता, व्यक्त करने की शक्ति भी तो रखनी चाहिए।"

"वह तो चाहिए ही। लेकिन व्यक्त करोगे क्या, सुनूँ तो ?"

"वही तो तुम बता दोगी भाभी !"

फिर हँसकर किरणमयी ने कहा, "तो तुम किसी दूसरे को पकड़ो बबुआ। यह काम मेरा नहीं है। जल में रहने वाली मछली यदि समझना चाहे कि मरुभूमि में मनुष्य प्यास से कैसे मर जाता है, तो इसके लिए किसी और की आवश्यकता है। मेरी विद्या-बुद्धि से यह काम न चलेगा।"

कुछ देर तक चुप रहकर दिवाकर ने कहा, "मरुभूमि की प्यास की मुझे जानकारी नहीं है, यह सच है; लेकिन मैं जल-जीव भी नहीं हूँ, तुम्हारी ही तरह सूखी भूमि पर ही जबकि मेरा भी निवास है, तब मुझे प्यास की धारणा भी है। एक बार कुछ बताकर ही देखो न, मैं समझ सकता हूँ या नहीं।"

किरणमयी चुप ही रही। केवल हँसते हुए उसे देखती रही।

कुछ क्षण स्थिर रहकर दिवाकर बोला, "यही जो इतनी देर तक तुम रामायण पढ़ रही थीं भाभी, मैं उसी की बात कहता हूँ। सीता के जिस रूप की अग्नि में रावण सपरिवार भस्म हो गया, नारी का वह रूप क्या है और अकेला रावण ही तो नहीं, ऐसे अनेक रावणों का इतिहास मौजूद है। कवि लोग कहते हैं—रूप की प्यास। तुमने भी उसी प्रकार की उपमा दी है। तुम यह मत सोचना भाभी, कि मैं तुमसे बहस कर रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि तुम्हारे पैरों के पास बैठकर मैं बहुत दिनों तक सीख सकता हूँ। मैं तो केवल यही जानना चाहता हूँ कि इसे प्यास कहते क्यों हैं? पानी देखने से तो मनुष्य को तृष्णा नहीं लग जाती। तो फिर रूप देखने से ही उसको प्यास क्यों लगेगी?"

किरणमयी ने एकाएक हँसकर कहा "प्यास लगती है क्या बबुआ?"

इस हँसी और प्रश्न का यथार्थ अर्थ समझकर दिवाकर पल-भर के लिए हतबुद्धि-सा हो रहा। लेकिन दूसरे ही क्षण अपने को सँभालकर बोल उठा, "अवश्य लगती है।"

उसका संकुचित और दबा हुआ साहस इतनी देर में किस हद तक ऊपर उठ गया था, इसे वह स्वयं भी नहीं जानता था। उसने कहा, "न लगने से संसार में बड़े-बड़े कवि लोग शकुन्तला भी नहीं लिखते, रोमियो-जूलियट भी नहीं लिखते। इसीलिए तो मैं जानना चाहता हूँ। भाभी, नारी का यह रूप वास्तव में क्या वस्तु है और प्रेम भी उसके साथ इस प्रकार घनिष्ठ रूप

से लिपटा क्यों रहता है ?"

गम्भीर होकर किरणमयी ने कहा, "ना, तुम्हारी अवस्था उतनी बुरी नहीं है।"

दिवाकर दुःखी होकर बोला, "सभी बातों को यदि तुम हँसकर उड़ा दोगी भाभी, तो रहने दो। मैं अब कुछ न पूछूँगा।"

किरणमयी ने उसकी ओर देखकर दुःख का पाखंड रचकर कहा, "मैं मूर्ख स्त्री हूँ बबुआ। मैं इन सब बड़ी बातों का हाल क्या जानूँ जो तुम क्रोध कर रहे हो ?"

उस दिन की बात दिवाकर को स्मरण हो गई जिस दिन वेद के प्रति अवहेलना-भरी उक्ति सुनकर उसने कानों में अँगुली डाल ली थी। उसने कहा, "मैं जानता हूँ भाभी, तुम भारी पण्डित हो। तुम चाहो तो सभी विषय मुझे समझा सकती हो।"

किरणमयी ने कहा, "समझा सकती हूँ ? अच्छा, यदि मैं कहूँ कि स्त्री का रूप एक भ्रम मात्र है, वास्तव में यह कुछ भी नहीं है, मृगमरीचिका की भाँति झूठा है, क्या तुम विश्वास करोगे ?"

दिवाकर ने कहा, "ना। इसका कारण यह है कि मरीचिका भी मिथ्या नहीं है, चाहे वह कुछ भी हो, दर्पण में मनुष्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है। वह प्रतिबिम्ब है, आदमी नहीं, यह तो मानी हुई बात है। प्रतिबिम्ब को मनुष्य कहकर पकड़ने की चेष्टा करना मूर्खता है। लेकिन रूप तो उस प्रकार की किसी वस्तु का प्रतिबिम्ब नहीं है। साँप को रस्सी समझकर पकड़ने जाना भूल है। लेकिन रूप के पीछे तो मनुष्य केवल रूप की ही तृष्णा से दौड़ जाता है, भाभी।"

किरणमयी ने कहा, "बबुआ, अभी तुमने दर्पण में प्रतिबिम्ब देखने की उपमा दी है। जिस दिन तुम समझ जाओगे कि रूप भी मनुष्य का प्रतिबिम्ब ही है, मनुष्य नहीं है, उसी दिन प्रेम का पता पाओगे, लेकिन छोड़ो इस बात को, मैं पूछती हूँ कि रूप के ही पीछे मनुष्य क्यों भागता फिरता है ?"

"यह मैं नहीं जानता। भ्रमर जैसी स्त्री को छोड़कर भी गोविन्दलाल रोहिणी के पीछे दौड़ गया था। यह बात मुझे बहुत ही अनोखी मालूम होती है।"

"लेकिन उसका परिणाम क्या हुआ ?"

"परिणाम जो कुछ हो भाभी, इस पर विचार करने का भार मनुष्य के हाथ में नहीं है। रोहिणी में रूप था, गुण नहीं था; किन्तु रूप के साथ गुण रहने से गोविन्दलाल की क्या दशा होती, यह बताई नहीं जा सकती।"

किरणमयी चुप रही। बी० ए० फेल हो जाने के कारण ही नहीं पास हो जाने पर भी, वह सोचती थी कि ये लोग केवल पाठों को कण्ठस्थ करके परीक्षा पास कर सकते हैं, और कुछ नहीं कर सकते। किन्तु आवश्यकता पड़ने पर इनका शिक्षित मन विवाद भी कर सकता है, यह धारणा ही उसकी नहीं थी।

उसने कहा, "रूप प्रतिविम्ब नहीं है, इस बात को इतने असन्दिग्ध रूप से स्थिर मत रखो। जो भी हो, मैं तुमसे पूछती हूँ बबुआ, ये सब बातें तुमने स्वयं ही सोची हैं, या किसीकी बताई हुई बातें सुनकर कह रहे हो ?"

दिवाकर ने मुस्कराकर कहा, "ना भाभी, मेरी अपनी ही बातें हैं। बचपन से ही भगवान् ने मुझे सोचने की सुविधा दी थी।"

क्षणभर मौन रहकर किरणमयी ने कहा, "फिर भी इतनी सुविधा रहने पर भी रूप का तत्त्व खोजकर तुम न पा सके। लेकिन आश्चर्य की वात यह है कि सतीश बबुआ ने भी मुझसे ठीक यही बात एक दिन पूछी थी, और भी एक व्यक्ति ने पूछी थी, और आज तुम भी पूछ रहे हो। मैं सोचती हूँ, मेरा रूप देखकर ही क्या तुम लोगों के मन में यह प्रश्न नहीं आता ?"

एकाएक दिवाकर चौंक पड़ा। लज्जा से उसका मस्तक नत हो गया। उसने कहा, "मुझे क्षमा करो भाभी, मैं जानता नहीं था।"

किरणमयी ने हँसते हुए मुख से कहा, "एकाध बार नहीं भाई, तुमको तो मैं सौ बार क्षमा करती हूँ।" यह कहकर और पलभर मौन रहकर उसने मानो मन में आने वाली दुविधा को जोर से धकेलकर निकाल दिया और अपनी अत्यन्त सुन्दर गर्दन जरा ऊँची करके कोमल करुण स्वर में बोली, "बबुआ, आज तुमने जितनी बातें मुझसे पूछी हैं उनका यदि स्पष्ट उत्तर देने लगूँ, तो मेरी बातें दम्भ के समान ज्ञात होंगी। उसे ही तुमको भूल जाना पड़ेगा, नहीं तो अपनी भूल से मुझे गलत समझकर सब ही बातों को तुम अस्पष्ट कर दोगे। मेरी बात तुम्हारी समझ में आती है न ?"

दिवाकर ने चुपचाप सिर हिला दिया।

क्षणभर स्थिर रहकर किरणमयी कहने लगी, "मेरे शरीर का यह रूप केवल पुरुषों की दृष्टि में ही नहीं, मेरी अपनी भी दृष्टि में एक विचित्र वस्तु है। इसीसे इसकी बात मैंने बहुत सोची है। जो कुछ सोचा है, सम्भवतः वही ठीक है, सम्भवतः नहीं भी है; लेकिन वह जो कुछ भी हो, अपनी इस भावना को जबकि एक देवर से कहने में कोई संकोच नहीं किया, तब तुमसे कहने में भी मैं नहीं हिचकूंगी। जानते हो, अपने आपको देखकर मुझे कैसा जान पड़ता है? मालूम होता है सन्तान धारण करने के लिए जो लक्षण सबसे अधिक उपयोगी है, वही नारी का रूप है। सारे विश्व के साहित्य में, काव्य में यही वर्णन उसके रूप का सच्चा वर्णन है।"

दिवाकर मौन होकर देखता रहा।

किरणमयी उसके मौन मुख पर नवीन यौवन की जाग्रत् भूख की मूर्ति अनुभव करके संकोच से एकाएक रुक गई। दूसरे ही क्षण उस भाव को बलपूर्वक दबाकर बोली, "वास्तव में बबुआ, इसी स्थान पर मानो रूप का एक छोर दिखाई पड़ता है। इसीलिए नारी का बाल्य रूप मनुष्य को आकर्षित करने पर भी उसे उन्मत्त नहीं करता। फिर जबकि वह सन्तान धारण करने की आयु पार कर जाती है, तब भी ठीक यही दशा हो जाती है। सोचकर देखो बबुआ, केवल नारी की ही नहीं, पुरुष की भी यही दशा है। तभी तक नारी का रूप रहता है, जब तक कि वह सन्तान उत्पन्न कर सकती है। यह सृष्टि करने की सामर्थ्य ही उसका रूप है, यौवन है, सृष्टि करने की इच्छा ही उसका प्रेम है।"

दिवाकर ने धीरे से कहा, "लेकिन···!"

बीच ही में रोककर किरणमयी बोली, "ना, लेकिन के लिए इसमें स्थान नहीं है। विश्व चराचर में जिस ओर इच्छा हो, आँखें उठाकर देखो, वही एक बात मिलेगी बबुआ, सृष्टितत्त्व की मूल बात तुम्हारे सृष्टिकर्ता के ही लिए रहे, लेकिन इसके काम की ओर एक बार ध्यान से देखो तुम। इसका प्रत्येक अणु-परमाणु निरन्तर अपने को नए रूपों में सृजन करना चाहता है। किस प्रकार वह अपने को विकसित करेगा, कहाँ जाने से, किसके साथ मिलने-जुलने से, क्या करने से वह और भी बलवान तथा उन्नत होगा,

यही उसका अविराम उद्यम है। दृश्य हो, अदृश्य हो, अनन्त हो, इसी से प्रकृति का नित्य परिवर्तन होता रहता है। और इसीलिए नारी में पुरुष जब ऐसा कुछ देख पाता है—ज्ञान से हो या अज्ञान से हो, जहाँ वह अपने को अधिक सुन्दर और सार्थक बना सकेगा, तो उस लोभ को वह किसी प्रकार भी रोक नहीं पाता।"

धीरे से दिवाकर ने कहा, "तब तो इस दशा में चारों ओर ही मारकाट मच जाती !"

किरणमयी ने कहा, "कभी-कभी मच जाती है। लेकिन मनुष्य में लोभ दमन करने की शक्ति, स्वार्थ त्याग करने की शक्ति, समाज तथा शासन की शक्ति, कितनी ऐसी शक्तियाँ हैं, जिनके कारण चारों ओर एक ही साथ आग नहीं लग सकती। फिर भी इस सामाजिक मनुष्य का ही एक दिन ऐसा था, जबकि प्रकृति के अतिरिक्त और किसी का शासन नहीं मानता था। रूप का आकर्षण ही उसकी दुर्दमनीय प्रकृति का संचालन था। वही था उसका प्रेम—ऐसे अवाक् मत बनो बबुआ, इसको ही संस्कृत तथा सुसभ्यता के वस्त्र पहनाकर, सजावट-सिंगार से तैयार कर देने से उपन्यास का निर्दोष प्रेम तैयार हो जाता है।"

दिवाकर ने चकित होकर कहा, "कहाँ तो पाशविक प्रवृत्ति की ताड़ना और कहाँ स्वर्गीय प्रेम का आकर्षण ! जो मनुष्य पशु प्रवृत्ति से भरा हुआ है, वह शुद्ध, निर्मल, पवित्र प्रेम की मर्यादा क्या समझेगा ? इस वस्तु को वह पाएगा कहाँ ? भाभी, तुम किसके साथ किसकी तुलना करने चली हो ?"

"मैं तुलना नहीं करती बंधु। केवल यही बता रही हूँ कि दोनों हैं एक ही वस्तु। इंजन की जो वस्तु उसको आगे की ओर ठेलकर ले जाती है, वही वस्तु उसे पीछे को ठेल सकती है, दूसरी नहीं। जो प्रेम कर सकता है, वही केवल सुन्दर-असुन्दर सभी प्रेमों में अपने को डुबा सकता है, दूसरा नहीं। उसकी जिस वस्तु ने भ्रमर को प्यार किया था ठीक वही वस्तु उसको रोहिणी की ओर भी खींच ले गई थी। लेकिन हरलाल तो वह कर सका। उसने सांसारिक भले-बुरे, कर्तव्य-अकर्तव्य, सुविधा-असुविधा पर सोच-विचार करके आत्मसंयम किया था, लेकिन गोविन्दलाल अच्छा मनुष्य नहीं

था—बहुत बुरा था। तो भी उसने जिसे घृणा से त्याग दिया था, दूसरे ने उसी को सिर पर चढ़ा लिया।

"यह सिर पर चढ़ा लेना तरह-तरह के कारणों से व्यर्थ हो सकता है। लेकिन समस्त दुःख-ग्लानि, लज्जा के अलावा एक बड़ी सार्थकता का संकेत एक व्यक्ति को खींचकर एक-दूसरे के पास ले जाता हो, ऐसी बात भी तो कोई बलपूर्वक कह नहीं सकता, बंधु !"

दिवाकर क्षोभ के साथ बोला, "तुम्हारी सभी बातों को यद्यपि मैं समझ नहीं सका, लेकिन पवित्र प्रेम स्वर्गीय नहीं है, ऐसी अद्‌भुत बात को मैं किसी प्रकार भी मान नहीं सकता भाभी।"

किरणमयी ने कहा, "तुम्हारे मानने-न-मानने पर तो कुछ भी निर्भर नहीं करता बबुआ ! हम लोगों का यह शरीर भी तो अत्यन्त नश्वर है, बिलकुल ही पार्थिव वस्तु है, लेकिन इसमें तो मैं कोई दुःख का कारण नहीं देखती। शिशु जन्म लेने के बाद जब तक अपने जड़ शरीर में सृष्टि की शक्ति को संचय नहीं करता, तब तक प्रेम का सिंहद्वार उसके लिए बन्द ही रहता है। प्रवृत्ति की ही ताड़ना से वह उस सिंहद्वार को पार कर जाता है। उसके पहले वह अपने माता-पिता को, भाई-बहन को प्यार करता है, इष्ट-मित्रों को भी प्यार करता है किन्तु जब तक उसका पंचभूत का शरीर बड़ा नहीं हो जाता, तब तक तुम्हारे पवित्र प्रेम की कोई भी खबर का अधिकार उसको नहीं मिलता, तब तक स्वर्गीय आकर्षण उसे तिल-भर भी नहीं हिला पाता। पृथ्वी का आकर्षण तो सदा से ही उपस्थित है, लेकिन उस आकर्षण से वृक्ष का पका फल ही आत्मसमर्पण करता है, कच्चा फल नहीं कर सकता। उसका रेशा-गूदा पृथ्वी के रस से ही पकता है, स्वर्गीय रस से नहीं पकता। सुन्दर पुष्प रूप से, गन्ध से, मधुमक्खियों को खींचकर, फल में परिणत हो जाता है। वही फिर समय पर भूमि पर गिरकर अंकुर में परिणत हो जाता है—यह है उसकी प्रवृत्ति, यही है उसका स्वर्गीय प्रेम। सारे विश्व में यह जो अविच्छिन्न सृष्टि का नाटक चल रहा है, रूप का खेल चल रहा है, वह स्वर्गीय नहीं है, इसलिए दुःख मानने या लज्जित होने का तो कोई कारण ही मैं नहीं देखती।"

किरणमयी कुछ रुककर फिर बोली, "अन्धकार में भूतों के भय से यदि

नेत्र बन्द करके ही तुम आराम पाते हो, तो मैं तुमको नेत्र खोलकर देखने को नहीं कहती। लेकिन मैं प्रवृत्ति की ताड़ना नहीं चाहती, स्वर्गीय प्रेम का ही उपभोग करूँगी—प्रेम ऐसी साधारण वस्तु नहीं है।"

दिवाकर ने पूछा, "तो फिर संसार में पवित्र प्रेम, घृणित प्रेम—ये दो क्यों हैं?"

किरणमयी हँस पड़ी। बोली, "तुम्हारा यह तर्क तो एकदम सतीश बबुआ के तर्क की तरह हुआ। संसार में इन दोनों के रहने की बात है, इसीलिए यह है। जिसको तुम घृणित कहते हो, वास्तव में वह तो सुबुद्धि का अभाव है। अर्थात् जिसको प्रेम करना उचित नहीं था, उसे ही प्रेम करना। अपनी ही असावधानी से पेड़ से गिरकर हाथ-पैर तोड़ देने का अपराध, पृथ्वी के प्रत्याकर्षण पर मढ़ देना और प्रेम को कुत्सित, घृणित कहना एक ही बात है। बबुआ, इसी प्रकार संसार में एक का पाप दूसरे के सिर पर रख दिया जाता है।" यह कहकर एकाएक किरणमयी मौन हो रही और अपने हृदय में क्या है, इसे मानो भली-भाँति देखने लगी। दूसरे ही क्षण बोली, "जीवन का प्रत्येक अणु-परमाणु, अपनी उत्कृष्ट परिणति के बीच विचार करने का लोभ किसी प्रकार भी संवरण नहीं कर सकता। जिस देह में उसका जन्म होता है, उस देह में जब उसकी परिणति की निश्चित सीमा समाप्त हो जाती है, तब वही उसकी यौवनावस्था कही जाती है। तभी वह दूसरी देह के संयोग से सार्थक होने के लिए शिराओं और उपशिराओं में विप्लव का जो ताण्डव नृत्य आरम्भ करती है, उसे तो पण्डित लोगों ने नीतिशास्त्र में पाशविक कहकर घृणा की है। इसका अर्थ समझ न सकने से ही हतबुद्धि लोग इसे घृणित कहते हैं, वीभत्स कहकर सान्त्वना पाते हैं। लेकिन आज मैं तुमको निश्चित रूप से कहती हूँ बबुआ, कि इतना आकर्षण किसी प्रकार भी ऐसा घृणित, ऐसा हीन नहीं हो सकता। यह सत्य है। सूर्य के प्रकाश की भाँति सत्य है। ब्रह्माण्ड के आकर्षण की भाँति सत्य है। कोई भी प्रेम किसी दिन घृणा की वस्तु नहीं हो सकता।"

दिवाकर यह सुनकर सचमुच ही विह्वल हो उठा। उसकी छाती में एक प्रकार की धड़कन होने लगी। ऐसा उत्तप्त कंठस्वर तो उसने किसी दिन सुना ही नहीं था। नेत्रों की ऐसी दृष्टि भी तो उसने कभी देखी नहीं थी।

डरते-डरते उसने पुकारा, "भाभी !"

"हाँ, बबुआ ?"

"मेरे जैसे मूर्ख को उपदेश देने में सम्भवतः तुम्हारा सन्तोष नहीं रहता।"

"यह क्या बबुआ, मुझे तो बहुत ही अच्छा लग रहा है।"

जरा हँसने की चेष्टा करके दिवाकर ने कहा, "अच्छा लगने से तुम्हारे मुँह से यह सब उलटी-सीधी बातें क्यों निकलती हैं ? अभी तुमने स्वयं ही कहा कि जिसे प्रेम करना उचित नहीं है, उसे प्रेम करने को ही घृणित प्रेम कहते हैं, फिर कह रही हो, इसका मतलब समझ न सकने के कारण विद्वान् लोग उसे बुरा कहते हैं, तो फिर सत्य कौन है ?"

किरणमयी ने कहा, "दोनों ही सत्य हैं।"

"विधवा रोहिणी से प्रेम करना क्या गोविन्दलाल का अनुचित काम नहीं था ?"

"प्रेम करना क्या कोई एक काम है कि उसका न्याय-अन्याय होगा ? स्त्री को छोड़ जाना ही उसका बुरा काम था।"

दिवाकर फिर एक बार उत्तेजित हो उठा। बोला, "छोड़कर चला जाना तो अवश्य ही बुरा काम है। हजार वार बुरा काम है ! लेकिन अपनी स्त्री को छोड़कर किसी दूसरी स्त्री को मन-ही-मन प्यार करना भी क्या अपराध नहीं है ?"

किरणमयी उसकी उत्तेजना पर हँसती हुई बोली, "बबुआ, अपने को इतना शक्तिशाली न समझना चाहिए, अभिमान का कुछ कम रहना ही ठीक है। तुम क्या सोचते हो कि मनुष्य इच्छा करने से ही जो चाहे, कर सकता है ? गोविन्दलाल इच्छा करने से ही रोहिणी को प्यार कर सकता था या नहीं भी कर सकता था, क्या तुम्हारी यही धारणा है ?"

"ना, मेरी यह धारणा नहीं है। इच्छा के साथ चेष्टा भी करनी चाहिए।"

किरणमयी ने कहा, "फिर उसके साथ शक्ति भी तो रहनी चाहिए। केवल प्रयत्न करने से ही काम नहीं चलता। उस छत के नीचे बैठे-बैठे यदि तुम्हारे सिर पर पेड़ भी उग जाय, तो भी कालिदास की भाँति तुम

एक और मेघदूत न लिख सकोगे। मेघ देखकर आँधी-पानी की आशंका होगी। सर्दी लग जाने के भय से ही तुम व्याकुल हो उठोगे, विरही का दुःख सोचने का समय न पाओगे। लाख प्रयत्न करने से भी नहीं। यह शक्ति अस्थि-मज्जा में मिली हुई है—इसको जीता नहीं जा सकता।" यह कहकर वह चुप हो गई।

दिवाकर मौन रहा। सिर झुकाए बैठा रहा। बहुत देर तक फिर कोई बात न निकली। निस्तब्ध कमरे के कोने से केवल एक पुरानी घड़ी से टिक्-टिक् शब्द आता रहा।

किरणमयी बहुत देर तक मौन रहकर एकाएक अत्यन्त ही मीठे स्वर से बोली, "तुमसे और दो बातें कहना चाहती हूँ। उस दिन तुम्हारी 'जहर की छुरी' लेकर चाहे जो कुछ मैंने कह डाला हो बबुआ, मैंने यह भी देखा था कि तुम्हारे हृदय में एक ऐसी भी वस्तु है जो वास्तव में ही प्रेमिल है, सचमुच कवि है। उस वस्तु को यदि तुम नष्ट करना चाहो तो दूसरों को अपराधी बनाने के सुख से अपने को ही वंचित करना होगा। इस बात को कभी मत भूल जाना कि कवि विचारक नहीं है। नीतिशास्त्र के मत के साथ यदि तुम्हारा मत अक्षर-अक्षर न भी मिले, तो उससे तुम लज्जित मत होना। मैं जानती हूँ, मनुष्य दूसरे की असमर्थता और अपराध को एक ही तराजू पर तौलकर दण्ड देता है, लेकिन उनके बटखरे उधार लाने से तुम्हारा काम न चलेगा। तुमने बार-बार गोविन्दलाल का उल्लेख किया था। वही गोविन्दलाल कितनी बड़ी शक्ति के सामने हारकर, सर्वस्व छोड़कर चला गया था। इस संसार में जिन्होंने केवल भले-बुरे का विचार का भार लिया है, यह प्रश्न उनका नहीं है, यह प्रश्न तुम्हारा है। हत्या के अपराध में जज साहब जब किसी अभागे को फाँसी का दण्ड देते हैं, तब वे विचारक हैं, लेकिन अपराधी के हृदय की दुर्बलता अनुभव करके जब वे दण्ड हल्का कर देते हैं, तब वे कवि बन जाते हैं। बबुआजी, इसी प्रकार संसार के सामंजस्य की रक्षा होती है, इसी प्रकार संसार की भूलें, भ्रान्तियाँ और अपराध असहनीय नहीं होने पाते। कवि केवल सृष्टि ही करता है, यह बात नहीं है, कवि सृष्टि की रक्षा भी करता है। जो स्वभावतः सुन्दर है उसको जैसे और भी सुन्दरता के साथ प्रकट करना और उसको असुन्दर के हाथों से बचाना भी

उसका काम है।"

जरा सोचकर दिवाकर ने कहा, "इस दशा में क्या अन्याय को बढ़ावा देना न होगा ?"

किरणमयी ने कहा, "मैं ठीक नहीं जानती। हो भी सकता है। सुनती हूँ, मन के विरुद्ध अत्यन्त घृणा उत्पन्न कर देना भी सम्भवतः कवि का ही काम है। लेकिन अच्छे के प्रति अत्यन्त लोभ जगा देना क्या उसकी अपेक्षा बड़ा काम नहीं है ? इसके अलावा जब तक इस संसार से पाप बिलकुल ही मिटा न दिया जाएगा, मनुष्य का मन पत्थर न बन जाएगा, तब तक इस पृथ्वी में अन्याय, भूल-भ्रान्ति होती ही रहेंगी और उसे क्षमा करके प्रश्रय भी देना ही पड़ेगा। पाप दूर करने की शक्ति भी नहीं है, सहन करने की शक्ति न रहेगी, तो उससे ही क्या कोई सुविधा होगी बबुआ ?"

दिवाकर ने कहा, "सुविधा ही तो सब कुछ नहीं है। असुविधा में भी तो न्याय-धर्म का पालन करना चाहिए। जो शुभ है, जो निर्मल है, जो सूर्य के प्रकाश की भाँति है, उसको सबके ऊपर स्थान देना उचित है।"

किरणमयी ने कहा, "ना-ना। यदि पाप मनुष्य के खून के साथ न लगा रहता तो उस दशा में तुम्हारा कहना ही सच होता। एक न्याय के अतिरिक्त संसार में कुछ भी न रहने पाता। दया, माया, क्षमा आदि चित्तवृत्ति के नाम तक भी किसी को ज्ञात न रहते। तुम सूर्य के प्रकाश के श्वेत रंग के साथ न्याय की तुलना कर रहे थे, लेकिन क्या श्वेत सब रंगों के मेल से ही नहीं बनता ! यह उज्ज्वल प्रकाश जैसे टेढ़े शीशे के भीतर जाने से रंगीन हो उठता है, उसी प्रकार न्याय भी अन्याय, अधर्म, पाप-ताप के टेढ़े रास्ते से दया, माया, क्षमा से चित्रित होकर दिखाई देते हैं। अन्याय को क्षमा करने से अधर्म को ही बढ़ावा देना होता है, यह बात मैं मानती हूँ, लेकिन पाप भी तो क्षमा का रूप नहीं, यह बात भी तो स्वीकार किए बिना नहीं रह सकती। तर्क करके सम्भवतः मैं अपनी बात तुमको समझा न सकूँगी बबुआजी, लेकिन जो क्षमा प्रेम के भीतर से पैदा होती है उस प्रेम का मर्म यदि तुम किसी दिन जान जाओ तो समझ जाओगे कि अन्याय, अधर्म, अक्षमता को क्षमा कर प्रश्रय देना धर्म का ही अनुशासन है। लेकिन दिन तो अब बहुत ही ढल गया बबुआजी, क्या आज तुमको भूख-प्यास भी नहीं लगी है ?"

यह कहकर घबराकर किरणमयी कमरे से बाहर चली गई।

सन्ध्या समय दिवाकर खाना खाने बैठा तो धीरे-धीरे बोला, "आज सारा दोपहर का समय मेरा बहुत ही आनन्द से बीता। कितनी ही नई बातें मैंने सीखीं, यह मैं कह नहीं सकता।"

किरणमयी ने मुस्कराते हुए कहा, "अनेक ही बातें तुमने सीखीं ? तो मुझे अपना गुरु मानना चाहिए।"

दिवाकर उत्तेजित होकर बोल उठा, "अवश्य, अवश्य, हजार बार मैं तुमको अपना गुरु स्वीकार करता हूँ ! सच कहता हूँ भाभी, यदि इस प्रकार सदा ही तुम्हारे पास रहने पाऊँ तो मुझे और कुछ नहीं चाहिए !"

"क्या कहते हो ? इतने में ही इतना आकर्षण ?"

दिवाकर का मन उसकी बातों की धारा से मग्न हो गया था, सरल मन से बोला, "भाभी ! तुमको छोड़कर एक दिन भी कहीं रह न सकूँगा।"

किरणमयी हँस पड़ी और बोली, "चुप, चुप, यदि कोई सुन लेगा तो अन्धेर हो जाएगा।"

दिवाकर सावधान हो गया। फिर अत्यन्त ही लज्जा से बिल्कुल ही लाल हो गया।

बत्तीस

शय्या बिछाते-बिछाते किरणमयी ने उसके एक कोने पर बैठकर ममता और दया-भरे कण्ठ से कहा, "यह क्या तुम्हारी नौकरी है या व्यवसाय कि इसकी सफलता-विफलता मालिक की इच्छा अथवा दुकान की खरीद-बिक्री पर निर्भर करेगी ? यह अपने हृदय का धन है। इसे विफल करे, ऐसी शक्ति किसी और में नहीं है।" यह कहकर वह कुछ देर तक आँखें मूँदें बैठी रही।

दिवाकर ने धीरे-धीरे भक्ति भरे मन से उसके मुख की ओर देखकर कहा, "अच्छा, भाभी, क्या तुम आँखें बन्द करने पर अपने स्वामी का मुख अपने हृदय में देख पाती हो ?"

किरणमयी ने आँखें खोल, जरा चकित होकर कहा, "हाँ, देख पाती

हूँ। जो मेरे असली स्वामी हैं, वे दिन-रात मेरे इस स्थान पर रहते हैं।" कहकर उसने उँगली से अपना हृदय दिखाया।

दिवाकर ने इस बात को सरल भाव से समझकर नम्रता से कहा, "किन्तु इस देखने से क्या लाभ! तुम भगवान् को नहीं मानतीं, लोक-परलोक भी स्वीकार नहीं करती हो, फिर मरने के पश्चात् कैसे तुम उनके पास जाओगी?"

किरणमयी ने कहा, "मरने के बाद मैं किसी के पास नहीं जाना चाहती।"

"कहीं···किसी के पास नहीं? बिल्कुल अकेली रहना चाहती हो?" पूछकर दिवाकर मुँह उठाए देखता रहा।

उसका प्रश्न सुनकर किरणमयी भी थोड़ी देर के लिए मौन ही रही, फिर हँसकर बोली, "तुम प्राय: मेरे सम्बन्ध की बातें सुनना चाहते हो बाबू, बताओ तो क्यों सही?"

"क्या जानूँ भाभी, पर मुझे सुनने की बड़ी इच्छा होती है।"

किरणमयी ने बिस्तर की चादर को ठीक प्रकार से बिछाने के बहाने मुँह घुमाकर कहा "मैं एक आदमी के पास जाना चाहती हूँ, मरने के बाद नहीं—पहले ही।"

"किन्तु वे मर गए। इस जीवन में उनको कैसे पाओगी?"

किरणमयी ने मुस्कराकर कहा, "वे मेरे लिए अभी जीते हैं—अब तक चली भी गई होती, उनके पास यदि···।"

"यदि क्या भाभी?"

"यदि एक बार भी मुझे यह मालूम हो जाता कि वे मुझे चाहते हैं तो चली गई होती!"

दिवाकर ने फिर अचम्भे में आकर पूछा, "कौन जीता है? किसकी बात कहती हो? कौन बतलाएगा कि वे तुमको चाहते हैं या नहीं? क्या बात है, बताओ भाभी!"

थोड़ी देर के लिए किरणमयी के मुँह पर एक हल्की स्याही दौड़ गई, किन्तु क्षण-भर में ही वह हट गई और फिर उसका मुखमण्डल उज्ज्वल हो उठा। कृत्रिम क्रोध के स्वर में उसने कहा, "तुम बड़े ही चालाक हो। अपने

मुँह से साफ-साफ कुछ कहना नहीं चाहते, केवल मेरे मुँह से सब बातें सुनना चाहते हो। जाओ, उनकी कोई बात मैं तुम्हें न बता सकूँगी।" कहकर और मुँह को जरा आड़ में करके मुस्कराने लगी।

दिवाकर को वह मुस्कराहट दिखाई दे गई और एक अज्ञात आवेश से उसका हृदय तेजी से धड़कने लगा। उसने जरा सँभलकर कहा, "भाभी, मेरी ऐसी बात क्या है, जो तुम्हें खोलकर बताऊँ?"

किरणमयी उसकी ओर मुँह करके खड़ी हो गई, बोली, "अब तक जो सिखलाया, क्या वह सब ही व्यर्थ हो गया? एक बार अपनी छाती पर हाथ रखकर देखो कि वहाँ एक भयानक बात खलबली मचा रही है या नहीं? सच कहो!"

मन्त्रमुग्ध होकर दिवाकर ने कहा, "क्या बात है, मुझे क्या सिखाया तुमने?"

किरणमयी ने कहा, "तुमने मुझे आश्चर्यचकित कर दिया। इतने बड़े हो गए, अब तक क्या केवल ढोंग ही सीखा है? तुम खुलकर कुछ नहीं कहते, मैं भी नहीं कहती, इससे या तो मेरा हृदय फट जाएगा या तुम्हारा।" सहसा एक बार दिवाकर की ठोड़ी हाथ से हिलाकर कमरे से बाहर चली गई।

दिवाकर काठ के समान बैठा रह गया।

किरणमयी ने अब तक कितनी ही बार, कितने ही प्रकार से उससे हँसी की, हजारों प्रकार से उसे स्पर्श किया था, किन्तु आज के इस परिहास ने, इस स्पर्श ने उसकी नस-नस में मानो बिजली उत्पन्न कर दी। अपने शरीर के प्रत्येक रक्तबिन्दु में इतने उत्ताप का और उसकी गति में इतनी तीव्रता आज तक दिवाकर ने कभी अनुभव नहीं की थी।

तैंतीस

अनेक दिनों के पश्चात् आज सुबह अघोरमयी पड़ोस की कई वृद्धाओं के साथ दर्शन करने के लिए कालीघाट गई थी। जाते-जाते कह गई थी कि माता की आरती हो जाने के बाद थोड़ी रात बीतने पर घर लौटूंगी।

आठ बज रहे थे।

दिवाकर अपने बिस्तरे पर चुपचाप पड़ा था। उसके सिरहाने मिट्टी का एक दीपक टिमटिमा रहा था। इसी क्षीण प्रकाश में कुछ काल पहले वह 'दुर्गेशनन्दिनी' नामक पुस्तक पढ़ रहा था। उसी को मुँह पर रखकर शायद मन-ही-मन आयेशा की बात सोच रहा था।

इसी समय किरणमयी ने आकर पूछा, "क्यों छोटे बाबू, सो रहे हो?"

मुँह पर से पुस्तक हटाए बिना ही दिवाकर ने कहा, "ना, सिर में भारी दर्द है।"

किरणमयी ने कहा, "यह तो अच्छी दवा कर रहे हो! सिरहाने दीपक जला रखने से सिरदर्द दूर नहीं हुआ क्या।"

दिवाकर ने कहा, "यह पुस्तक कल ही लौटा देनी है, इसीलिए इसे समाप्त कर रहा हूँ।"

किरणमयी ने कहा, "आँखें बन्द कर आयेशा की चिन्ता करने से ही पुस्तक समाप्त न होगी भाई, आँखें खोलकर पढ़ना होगा। नहीं तो खा-पीकर समाप्त करो। अब चलो, खाना ठण्डा हुआ जाता है।"

दिवाकर की उठने की इच्छा न थी। उसने अनुनय-विनय से कहा, "अभी रहने दो भाभी, मौसी के आने पर खाऊँगा।"

किरणमयी ने कहा, "वे कब लौटेंगी, क्या ठीक है? आज मेरी भी तबियत ठीक नहीं। सोचती हूँ, उनके कमरे में भोजन की सामग्री रखकर जरा आराम करूँगी। उठो, तुमको खिला-पिलाकर अवकाश लूँ।"

उसने दिवाकर के हाथ से पुस्तक छीन ली।

पास ही दिवाकर की लोहे की पेटी रखी हुई थी।

किरणमयी लौटकर उस पर आ बैठी और कहा, "उठो भी!"

"मैं उठना नहीं चाहता भाभी! इससे अच्छा तो यह है कि तुम कुछ कहो, कोई बात करो, मैं सुनूँ।"

"केवल बातों से पेट नहीं भरता। समय पर खाना भी पड़ता है, उठते हो या नहीं?"

क्षण-भर चुप रहकर दिवाकर बोला, "अच्छा भाभी, मेरे नहाने, खाने और सोने के लिए तुम इतनी चिन्ता क्यों करती हो?"

किरणमयी ने मुस्कराकर कहा, "क्यों करती हूँ ? नहीं जानते ?"

"बिना बताए कैसे जानूंगा ?"

"यह तो झूठ कहते हैं। न बताने से भी जाना जा सकता है और तुम अवश्य सब कुछ जानते हो कि मैं तुम्हारे पीछे क्यों इतना कष्ट सहती हूँ।"

दिवाकर का चेहरा लज्जा से लाल हो गया।

वह कुछ क्षण चुपचाप पड़ा रहा। अनन्तर सहसा उदास हो, करुण स्वर से बोला, "भाभी, तुमसे एक बात पूछूँ, बताओगी ?"

"एक क्यों, एक सौ पूछो; किन्तु पहले खा-पीकर मुझे छुट्टी दो। इसके बाद सारी रात तुम्हारी बातों का उत्तर दूंगी। क्यों, राजी हो ?" कहकर वह मुस्कराने लगी।

दिवाकर ने इस हँसी के बदले में उत्तर देने का प्रयत्न कर कृत्रिम सहानुभूति के स्वर में कहा, "अच्छा तो है भाभी, तुम शायद इसी लोहे की पेटी पर बैठी सारी रात मेरी बातों का उत्तर दोगी।"

किरणमयी मुँह फेरकर हँसी, बोली, "मेरे इस पर बैठने से शायद तुम्हें कष्ट होता है, तो तुम्हारे नरम बिछौने पर बैठूंगी। ऐसा होने से तो फिर दुःख न होगा ?"

फिर दिवाकर का चेहरा कानों तक लाल हो गया।

उसने लजाकर करवट बदल ली।

किरणमयी ने पास आकर कहा, "चलो, उठो ! मुझे छुट्टी दो, करवटें बदल-बदलकर क्यों आलस्य बढ़ा रहे हो ?"

दासी की रसोईघर से आवाज सुन पड़ी, "मैं यहाँ से सुन रही हूँ, तुम नहीं सुन पातीं बहू ? माँ नीचे से पुकार रही है।"

किरणमयी लौटकर फिर उसी ट्रंक पर बैठ गई। अप्रसन्न होकर दासी से बोली, "तू तो सिर चढ़ गई। मैं तो जाकर दरवाजा खोल दूं और तू जाकर नहीं खोल सकती ?"

"मेरा हाथ खाली नहीं था, इसी से कहा है बहू।" कहकर दासी बड़बड़ाती हुई जल्दी-जल्दी नीचे उतर गई। दरवाजा खोलते ही अघोरमयी झिड़ककर बोल उठी, "क्या तुम दोनों-की-दोनों बहरी हो गई हो, सुनती ही नहीं, आध घण्टे से खड़ी-खड़ी शोर मचा रही हूँ।"

इस बार दासी जल उठी। बोली, "अन्धी-बहरी न होती तो क्या तुम्हारे घर नौकरी करने आती माँजी ? अब किसी आँख-नाक-कान वाली को रख लो, मुझे जवाब दे दो। रसोईघर में सदर दरवाजे की पुकार न सुन पाऊँगी।"

कुछ नम्र होकर अघोरमयी ने कहा, "बहू कहाँ है ?"

दासी ने अस्फुट झल्लाहट के साथ कहा, "सारा दिन देवर को लिए सोहाग होता है ! अभी दरवाजा खोल देने को कहा तो एकदम झनझना उठीं। बोलीं, तू सिर चढ़ गई है। ओ ! बड़े बाबू···!" कह, लज्जित होकर दासी बगल में जा खड़ी हुई।

अघोरमयी ने मुड़कर कहा, "उपेन्द्र, आओ, ऊपर चलो !"

"चलो मौसी, चलता हूँ।" कहकर उपेन्द्र अघोरमयी के पीछे-पीछे सीढ़ियों पर चढ़ने लगे। दासी की सभी बातें उन्होंने भी सुन ली थीं।

अघोरमयी ने ऊपर आकर कड़ी आवाज से पुकारा, "कहाँ हो बहू, जरा बाहर तो आओ। उपेन्द्र आया है, उसे···।"

किरणमयी का हृदय अँधेरी कोठरी में बैठे भीतर से हिल गया और बिस्तर पर लेटे हुए दिवाकर का पूरा शरीर शिथिल और ठण्डा हो गया।

अघोरमयी ने फिर आवाज दी, "कहाँ गई ? एक चटाई तो लाकर बिछा दो बहू, उपेन्द्र क्या खड़ा ही रहेगा ?"

किरणमयी ने बाहर आकर बरामदे में एक चटाई बिछा दी। उसके मुँह से सहसा बात न निकली। उपेन्द्र ने पास आकर प्रणाम किया और पूछा, "अच्छी हैं न भाभी ?"

किरणमयी ने अपने को सँभाल लिया। सिर हिलाकर कहा, "हाँ। तुम कैसे हो ? बहू अच्छी तरह से हैं ? बिना सूचना दिए ही अचानक कैसे आ गए ?"

किरणमयी का स्वर सुनकर उपेन्द्र आश्चर्य में पड़ गया। स्वर में माधुर्य का लेशमात्र नहीं, बिलकुल शुष्क और नीरस था।

उपेन्द्र ने कहा, "मुवक्किल का पैसा मुझे खींच लाया है भाभी—कल तीसरे पहर ही लौट जाना होगा। कालीघाट का काम समाप्त हो चुकने पर बाहर निकलते ही मौसी को देखा। तब से साथ-ही-साथ हूँ। दिवाकर का

समाचार बतलाइए। वह चिट्ठी-पत्री तक नहीं भेजता है। क्या बाहर गया है ?"

किरणमयी ने कहा, "सिर में दर्द है, इसीसे लेटे हुए हैं। क्या मालूम शायद सो गए हों।"

आज अघोरमयी का मन अच्छा न था। बहू का दोष दिखाने का यदि कभी जरा भी अवसर मिल जाता तो वह उसे न चूकती थी। आज दिवाकर पर भी उसका चित्त प्रसन्न न था। सवेरे उससे अपने साथ कालीघाट जाने को कहा था, किन्तु काम का बहाना बताकर उसने मना कर दिया था। कठोर स्वर में बोली, "अभी तो तुम उसके कमरे से निकली हो बहू ! वह सोता है या नहीं, यह भी तुम नहीं जानतीं ?"

"नहीं जानती" कहकर किरणमयी ने सास की ओर अस्वाभाविक दृष्टि से देखा। उपेन्द्र ने जरा ऊँची आवाज में पुकारा, "दिवाकर !"

आहट न मिली।

फिर और तीव्र आवाज दी, "दिवाकर, सोता है क्या ?"

वह जाग रहा था, इस आवाज की उपेक्षा न कर सका। "आया" कह-कर धीरे-धीरे बाहर आ खड़ा हुआ। प्रणाम कर अस्पष्ट स्वर से पूछा, "कब आए छोटे भैया ?"

"सवेरे। तेरे सिर में दर्द है ?"

"मामूली-सा।"

अघोरमयी ने अप्रसन्न होकर कहा, "सिर में दर्द तो होगा ही ! पहले इधर-उधर जरा घूम-फिर आता था। अब तो घर से बिलकुल ही बाहर नहीं निकलता। सवेरे कहा था कि मेरे साथ जरा कालीघाट चलो, तो उत्तर दिया—मुझे काम है मौसी, मैं न जा सकूँगा। भला तुम्हें क्या काम था, मुझे बताओ तो सही ?"

दिवाकर मौन रहा।

उपेन्द्र ने पूछा, "चिट्ठी-पत्री भी नहीं लिखता ! किस कॉलेज में नाम लिखाया है ?"

दिवाकर ने कोमल स्वर से कहा, "कॉलेज खुलते ही नाम लिखाऊँगा। अभी नाम कहीं नहीं लिखाया है।"

"खुलते ही नाम लिखाएगा, अभी नहीं लिखाया ?" असह्य क्रोध से उपेन्द्र की दोनों आँखें आग के समान जल उठीं। "सोलह-सत्रह दिन से अधिक हुए सब कॉलेज खुल गए, और तुझ यह भी पता नहीं ?"

दिवाकर का मुँह पीला पड़ गया। वह कठपुतली के समान खड़ा रहा।

अघोरमयी अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहने लगी, "उपेन्द्र ! दोनों दिन-रात हँसी-खेल करते हैं और न जाने क्या-क्या सलाह-मशविरा होता रहता है। मैं बार-बार पूछती हूँ—बहू, वह पराया लड़का है, लिखने-पढ़ने-सीखने आया है, आठों पहर उसके पास तुम क्या करती हो ? देवर है तो क्या हुआ, जवान लड़के के पास बहू को जरा लाज-शर्म तो करनी चाहिए। लेकिन कौन किसकी बात सुनता है !" उपेन्द्र की ओर देखकर फिर बोली, "तू बैठा है इसीसे, नहीं तो अब तक मेरा झोंटा पकड़कर घसीटती फिरती। मैं शपथ खाकर कह सकती हूँ उपेन्द्र, सब दोष इसी अभागिन का है।"

किरणमयी पास ही खड़ी थी—एक बात का भी उसने उत्तर नहीं दिया। धीरे-धीरे वह रसोईघर की ओर चली गई।

उसी प्रकार क्रुद्ध स्वर में अघोरमयी ने कहा, "अरी, ओ बड़े बाप की बेटी ! मैं दिन-भर से उपवास किए बैठी हूँ। कुछ खाने-पीने का प्रबन्ध भी करोगी या नहीं ? इस प्रकार चली कहाँ जा रही है ?"

किरणमयी घूमकर खड़ी हो गई और स्वाभाविक स्वर में बोली, "इसीके लिए तो जा रही हूँ माँ।" फिर उपेन्द्र से कहा, "भाग मत जाना बबुआ, मुझे कुछ पूरियाँ तैयार करने में दस मिनट से अधिक समय न लगेगा।"

दिवाकर स्तब्ध; मूर्च्छितप्राय था। किरणमयी ने उससे कहा, "छोटे बाबू, चलो तुम्हारा भी खाना परोस दूं। माँ, दासी को जरा बाजार भेज दो, बबुआजी के लिए कुछ मिठाई ले आए।"

अघोरमयी या उपेन्द्र कोई भी उसकी बातों का उत्तर न दे सका। बहू के इस अपरिमित संयम और असीम अहंकार ने मानो एकबारगो बुद्धि के अधीन हो, कुछ क्षण के लिए सबको अवाक् कर दिया।

प्रायः घण्टे-भर बातचीत कर अघोरमयी सन्ध्या-वन्दन और जाप पूरा करने चली गई। किरणमयी ने पास आकर कहा, "अपने कमरे में तुम्हारे

खाने-पीने की व्यवस्था की है। बबुआ, वहीं चलो।"

उपेन्द्र चुपचाप उठकर आसन पर आ बैठा।

किरणमयी पास ही फर्श पर बैठ गई और बोली, "आज यही खा-पी लो देवरजी, और अधिक बनाने-पकाने में व्यर्थ रात बीतेगी।"

उपेन्द्र ने सिर उठाकर देखा। दीपक के क्षीण प्रकाश में उसका चेहरा पत्थर के समान कठोर दिखाई देखा था। भोजन की थाली को एक ओर सरकाकर वह बोले, "भाभी, खाने के लिए इतना ही बहुत है, किन्तु मैं आज खाना खाने नहीं आया हूँ, आपसे एकान्त में दो बातें करने आया हूँ।"

किरणमयी ने कहा, "मेरा अहोभाग्य, पर खाओगे क्यों नहीं ?"

क्षणभर एकटक देखते रहे उपेन्द्र। उनके मुँह की कठोरता मानो और भी बढ़ गई। उन्होंने कहा, "आपका छुआ खाना खाने में आज मुझे घृणा हो रही है।"

किरणमयी चुपचाप सिर झुकाए बैठी रही। कुछ देर के बाद धीरे-धीरे बोली, "तो खाने की आवश्यकता नहीं।" उसने फिर सिर नीचा कर लिया। फिर सिर ऊपर उठाकर जरा मुस्कराई, बोली, "घृणा होने की बात ही है, किन्तु मैंने कभी न सोचा था कि तुम्हारे मुँह से ऐसी बात सुनूँगी। वह केवल एक ही मनुष्य था, जो इस प्रकार घृणा से थाली सरका दे सकता था—वह सतीश है। तुम नहीं बबुआ।"

उपेन्द्र क्रोध और विस्मय के मारे मौन ही रहे। किरणमयी उसी प्रकार शान्त, कठोर भाव से कहने लगी, "मेरे ऊपर तुम्हारा जो यह क्रोध है, जो घृणा है, सो सब दिवाकर के ही लिए तो है; किन्तु मुझ विधवा के लिए जैसे तुम हो, वैसे ही वह है। उसके साथ मेरा सम्बन्ध कहाँ तक कैसा है, यह तुम लोगों का अनुमान मात्र है। किन्तु जिस दिन अपने मुँह से मैंने तुम्हारे प्रति अपना प्रेम प्रकट किया था, उस दिन तो मेरी दी हुई थाली इस प्रकार हटाकर दूर नहीं कर सके थे। अपनी बार, पराई औरत की दी हुई मिठाई में क्या प्रेम की मिठास बहुत अधिक होती है ?"

उपेन्द्र ने भीतर कठिनाई से दबाए जाने वाले क्रोध को बड़ी कठिनाई से रोककर कहा, "आपके आगे उसका नाम लेना भी उसका अपमान करना है, किन्तु फिर भी याद दिला देता हूँ कि अभी तक मेरी सुरबाला जीवित

है ! वह कहती है कि 'मुझे जो एक बार प्यार करता है, उसकी शक्ति नहीं, कि दूसरे को प्यार करे।' मैंने केवल इसी भरोसे पर दिवाकर को आपके हाथ सौंप दिया था। सोचा था कि इन विषयों में सुरबाला से कभी भूल नहीं हो सकती। पर···"

किरणमयी ने दोनों हाथ उठाकर कहा, "ठहरो बाबू, उनसे भूल हुई है तुमसे नहीं हुई, इस बात पर तुमने कैसे निस्संदेह विश्वास कर लिया ?"

एकाएक उपेन्द्र उठ बैठा, "रात होती जाती है, मुझे बहस करने के लिए समय नहीं है, भाभी ! मैं आपको अच्छी प्रकार पहचानता हूँ, पर यह बात निश्चयपूर्वक जान रखिए कि आप किसी से प्रेम नहीं कर सकेंगी, यह आपकी शक्ति के बाहर की बात है, आप केवल सर्वनाश ही कर सकेंगी। छि: ! छि: ! आखिर दिवाकर तुमको···।"

वह घृणा से भर आया। नीचे झुककर देखा कि किरणमयी का चेहरा ऐसा पीला हो गया है, मानो किसी ने उसकी छाती के बीच गोली मार दी हो।

अघोरमयी ने बाहर से पूछा, "खा चुका उपेन्द्र ?"

"ना मौसी, खाया नहीं, तबियत ठीक नहीं है।"

"तबीयत ठीक नहीं ? यह क्या बात है ? तो फिर आज यहीं रह जा, जा मत वेटा।"

"ना मौसी, मुझे जाना ही होगा।" कहकर उपेन्द्र बाहर निकल आए।

दिवाकर के कमरे के सामने आकर आवाज दी, "दिवाकर !"

दिवाकर रोशनी बुझाकर लेट रहा था। उसके हृदय के भीतर की अवस्था केवल भगवान् ही जानते थे। अस्फुट स्वर से 'हाँ' कहते और काँपते हुए पैरों से वह बाहर आया।

उपेन्द्र ने कहा, "अपना सामान बाँध ले। मेरे साथ चलना होगा।"

अघोरमयी चौंक उठी और घबड़ाकर बोली, "यह क्या उपेन्द्र, इतनी रात को लड़का कहाँ जाएगा ?"

"मेरे साथ जाएगा मौसी, चिन्ता क्या है ? बाँध ले सब सामान, शीघ्रता से सब कुछ ठीक कर ले, मैं गाड़ी ले आता हूँ।"

उपेन्द्र का हाथ पकड़ अघोरमयी खुशामद करने लगी, "ना बेटा, ना,

आज अमावस्या की रात में उसका किसी प्रकार भी जाना न होगा। लड़का है, शायद कुछ अनुचित ही कर गया हो। यहाँ न रखोगे, तो कल-परसों चला जाएगा—किन्तु आज रात को मैं किसी प्रकार भी जाने न दूंगी।"

उपेन्द्र ने रुकावट देख, हताश होकर कहा, "मौसी, उसे एक रात भी यहाँ रखने की मेरी इच्छा नहीं है। अच्छा, आज अमावस्या की रात बीत जाने दो, किन्तु कल सवेरे न रोकना। सवेरे दस बजे तक ज्योतिष के घर अवश्य भेज देना।" इसके बाद अघोरमयी को प्रणाम कर उपेन्द्र शीघ्रता से नीचे उतर गए। सदर दरवाजे पर पीछे से अँधेरे में उसका दुपट्टा खिच गया। पीछे मुड़कर देखा, किरणमयी ने झुककर उसने दोनों पाँव पकड़ लिए थे। कहा, "मेरा हृदय फटा जाता है बाबू; सब झूठी बातें हैं। छिः! छिः! क्या तुम्हारे आसन पर मैं कभी दिवाकर को···।"

"चुप!" कहकर उपेन्द्र ने असह्य घृणा से उसके सिर को जोर से ढकेल दिया, जिससे वह चित्त होकर गिर पड़ी। "झूठी, निर्लज्ज, अपवित्र!" कहकर उसकी ओर देखे बिना उपेन्द्र शीघ्रता से बाहर चले गए।

किरणमयी विद्युत्वेग से उठ बैठी। उसने मानो चिल्लाकर कुछ कहना चाहा, किन्तु गले से आवाज न निकली। केवल खुले दरवाजे की ओर देखती रही और उसकी आँखों से चिनगारियाँ-सी निकलने लगीं।

कुछ दिन पहले इसी स्थान पर, उसकी दोनों आँखों में ऐसी ही उन्मत्त, प्रज्वलित दृष्टि दिखाई पड़ी थी, जिस दिन सतीश के साथ पहले-पहल उपेन्द्र इस घर में आकर बाहर निकले थे। आज अन्तिम विदा के दिन फिर उसके प्रति उन्हीं दोनों आँखों में, उसी प्रकार आग जलने लगी।

"बहू! यहाँ क्यों बैठी हो?"

"क्या तू घर जाती है मुक्ता?" कहकर किरणमयी जल्दी से उठ खड़ी हुई और दासी का हाथ पकड़कर कहा, "जरा मेरे कमरे में चल, तुझसे दो बातें करनी हैं।" यों कहती हुई वह उसे बरबस घसीटती अपने कमरे में खींच ले आई और बत्ती का प्रकाश तेज कर सन्दूक खोला, सन्दूक से चांदी के दो कड़े निकालकर दासी के हाथ में रख दिए और कहा, "तेरी बेटी के लिए पहनने को दे रही हूँ। तुझे मेरे सिर की सौगन्ध, लेने से मना न कर, शायद फिर कभी भेंट न हो।" कहकर वह रोने लगी, आँखों से झर-झर

आँसू झरने लगे।

"क्या बात है बहू ?" दासी ने विह्वल दृष्टि से उसकी ओर देखकर पूछा।

किरणमयी ने आँखें पोंछते हुए कहा, "तेरे अलावा मेरा और कोई अपना नहीं है, मेरी रक्षा कर—मुझे बचा, मेरा यहाँ से उद्धार कर, यहाँ रहने से मेरा हृदय फट जाएगा।"

दासी ने किरणमयी को सिर से पैर तक देखा। अन्त में एक लम्बी साँस खींचकर कहा, "सब समझती हूँ बहू, मैं भी तो औरत हूँ। मेरे मर्द ने जिस तालाब के किनारे रोककर कहा था—'चलता हूँ मुक्ता, शायद अब फिर भेंट न होगी', तब मैंने भी तो उसके पाँव पकड़ रोते-रोते कहा था—मुझे साथ ले चलो। अकेली छोड़ जाने से मेरी छाती फट जाएगी। तो क्या कल सवेरे ही छोटे बाबू यहाँ से चले जाएँगे ?"

किरणमयी ने कहा, "हाँ, किन्तु कलकत्ते में अब हम न रहेंगे। कहाँ जाएँ, बता तो सही।"

दासी ने जरा भी चिन्ता न की, कहा, "तो अराकान जाओ बहू, सुख से रहोगी। वहाँ मेरी छोटी बहन भी है। मेरा नाम लोगी तो वह तुम लोगों को सिर-आँखों पर रखेगी। आज तो मंगलवार है। कल सवेरे ही जहाज खुलेगा, वहाँ जाओगी बहू ?"

किरणमयी दासी के गले से लिपट गई। दासी उसकी आँखों के आँसू पोंछ, सन्तोष देकर कहने लगी, "तो तुम तैयार रहना, मैं कल गाड़ी लेकर पहुँचूँगी, तुम दोनों को ले चलूँगी। चिड़िया तक न जान पाएगी कि तुम लोग कहाँ गए। जाओ बहू, जाओ, छोटे बाबू के बिना तुम न बचोगी।" कहकर दासी ने इस बार आँचल को अपनी आँखों में लगाया।

"ठाकुर !"

शायद प्रातःकाल हो गया था।

दिवाकर चौंककर उठ बैठा। ठीक सामने किरणमयी खड़ी थी। वह काले रंग की मखमली किनारी की साड़ी पहने थी। प्रकाश में अंगों पर गहने जगमगा रहे थे।

दिवाकर चौंककर बोला, "भाभी, तुम हो ?"

"हाँ देवरजी, मैं ही हूँ।" कहकर किरणमयी व्याकुल हो, सोए हुए दिवाकर की छाती के ऊपर एकदम झुक-सी पड़ी, बोली, "बाबू, मुझे छोड़कर तुम चले जाओगे ? कहाँ जाओगे ?"

दिवाकर एक बात भी न कह सका। केवल उसकी दोनों आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी।

किरणमयी उठ बैठी और आँचल से उसने आँसू पौंछकर कहा, "मर्द होकर भी रोते हो ?"

"भाभी, मेरा कोई वश नहीं, छोटे भैया ने आज सवेरे मुझे चले जाने को कहा है।"

उपेन्द्र का नाम लेते ही किरणमयी का मस्तक भनक गया। तीक्ष्ण स्वर से बोली, "वे कौन हैं ? मेरी अपेक्षा भी क्या वे तुम्हारे अधिक अपने हैं ? तुम्हें न देखने से क्या उनकी भी छाती फट जाएगी ? ना बाबू, संसार में किसीकी शक्ति नहीं, जो हम दोनों को पृथक् कर सके। बाहर गाड़ी खड़ी है, चलो हम दोनों चलें।"

"कहाँ भाभी ?"

"मैं जहाँ ले चलूँ।"

"अच्छा" कहकर दिवाकर उठने को प्रस्तुत हुआ। एक बार उसके मन में यह बात आई कि शायद वह जाग्रत् अवस्था में नहीं है, नींद के झौंके में स्वप्न देखता है, क़िन्तु तुरन्त ही किरणमयी का अनुसरण कर वह धीरे-धीरे कमरे से बाहर आ खड़ा हुआ।

चौंतीस

कोई कीड़ा जैसे पतंगे को अनायास खींच लाता है, उसी प्रकार मानो किसी अमोघ मन्त्र के बल से किरणमयी अर्धचेतन अभागे दिवाकर को जहाजघाट खींच ले गई और टिकट लेकर अराकान जाने वाले जहाज पर जा बैठी।

इस जहाज में भीड़ न रहने के कारण जहाज के अधिकारियों ने इन दोनों को पति-पत्नी समझकर एक ही केबिन में दिवाकर और किरणमयी को स्थान दे दिया।

उसी स्थान पर किरणमयी को बिठाकर दिवाकर डेक के एक एकान्त स्थान पर रेलिंग पकड़कर खड़ा हो गया।

क्रमश: डेक पर यात्रियों की भीड़ कम होने लगी, कुलियों का शोर बन्द हो गया और लंगर उठाए जाने के भयानक शब्द से जहाज के अन्दर बैठे दिवाकर के हृदय के अन्दर भी कम्पन होने लगा।

पलभर में ही जहाज भागीरथी के बीच में पहुँचा और अपार समुद्र में प्रवेश करने के उद्देश्य से धीरे-धीरे अग्रसर होने लगा। जब ठीक मालूम हो गया कि जहाज चल रहा है तब दिवाकर की दोनों आँखें आँसुओं से भर गईं और उसने अपनी दोनों हथेलियों से मुख को जोर से दबाकर किसी प्रकार रुलाई के आवेग को रोककर अपनी लज्जा को छिपा लिया।

पूर्व की ओर का आकाश उस समय बाल सूर्य की आभा से लाल हो उठा था और उधर उसके आने के विषय में सन्देह न रखने वाले उपेन भैया ज्योतिष साहब के घर में शय्या छोड़कर उठे नहीं थे। भाग जाने के उद्देश्य से बाहर निकल पड़ने के समय से जो भयंकर अव्यक्त ग्लानि दिवाकर के मन में एकत्रित होती जा रही थी, उसका अन्त कितना कुत्सित और दुःख-कर है, उसका दृश्य अब उसके नेत्रों के सामने स्पष्ट हो उठा। एक भले घर की गृहस्थ बहू को कुल से निकालकर वह स्वयं किसी अनजान देश में ले जा रहा है, ऐसी असम्भव बात उसके हृदय में अबतक आई ही नहीं थी। अपनी शिक्षा, अपने संस्कार, चरित्र, स्कूल, कॉलेज, देश, मित्र और सर्वोपरि अपने उपेन भैया, सभी से वह किस प्रकार कठोर भाव से विच्छिन्न होता जा रहा है, इस बात को वह उसी समय स्पष्ट रूप से समझ गया जिस समय कि उसने देख लिया कि वास्तव में जहाज का चलना आरम्भ हो गया है। अपने उपेन दादा के लिए वह आज एक बालक मात्र है। उसी उपेन भैया का मनोभाव, इस समाचार को सुनकर कैसा हो उठेगा, यह स्मरण करके उसकी छाती की धड़कन बन्द-सी होने लगी। उसी स्थान पर वह दोनों घुटनों के बीच माथा टेककर बैठ गया और एक ही क्षण में उसकी आँखों से आँसू

झरने लगे।

उसी समय किरणमयी उसके पास आ खड़ी हुई और उसके माथे पर हाथ रखकर प्यार-भरी आवाज में बोली, "बबुआ, जरा केबिन में चलो !"

दिवाकर बहुत प्रयत्न करके बड़ी देर में अपनी आँखों के आँसू रोककर मुँह झुकाए उठ खड़ा हुआ और धीरे-धीरे किरणमयी के पीछे केबिन में जा पहुँचा।

किरणमयी ने दरवाजा बन्द करके दिवाकर को अपने पास बिठाया, उसके दोनों हाथों को अपने हाथ में लेकर, मुँह को देखकर अत्यन्त करुण स्वर से पूछा, "तुम रो क्यों रहे थे भाई ?"

यह प्रश्न सुनकर दिवाकर के नेत्रों से आँसू झरने लगे।

किरणमयी ने अपने आँचल से उन्हें पोंछकर कहा, "सच-सच बताओ बबुआ, तुम मुझसे प्रेम करते हो या नहीं ?"

दिवाकर उत्तर में कुछ भी न कह सका। बिल्कुल ही छोटे बच्चे की भाँति व्याकुल होकर रोने लगा।

किरणमयी ने आँसू से भीगे उसके मुख को अपनी छाती पर खींचकर दबा लिया और धीरे-धीरे उसके माथे पर अंगुलियाँ फेरती हुई चुपचाप शांति-सी देने लगी।

इसी प्रकार बहुत समय बीत गया।

बड़ी देर में दिवाकर की अश्रुधारा अपने आप ही समाप्त हो गई, तो पहले की अपेक्षा उसका मन भी कुछ हल्का हो गया। वह उठ बैठा; फिर कुछ भी न कहकर दरवाजा खोलकर धीरे-धीरे केबिन से बाहर हो गया। जहाज उस समय नदी के तट से हटकर टेढ़ी-मेढ़ी चाल से, रेत से बचता हुआ, जल को नापता हुआ धीरे-धीरे समुद्र की ओर बढ़ रहा था और छोटी-छोटी डोंगियाँ और माल से लदी नावें, बड़े जहाज की बड़ी मर्यादा की रक्षा करती हुई दूर-ही-दूर रहकर अत्यन्त सावधानी से बढ़ती जा रही थीं।

दिवाकर रेलिंग के पास एक कुर्सी खींचकर उस पर बैठ गया और दूरी पर या निकट के जल-थल में जो कुछ उसे दिखाई पड़ने लगा, उसी से मन-ही-मन अत्यन्त पीड़ा तथा दुःख के साथ सदा के लिए विदाई लेने लगा और हृदय की असह्य पीड़ा भगवान् से निवेदन करने लगा।

थोड़ी देर में केबिन से पुकार हुई।

"दिन बहुत चढ़ आया, तुम स्नान कर आओ। तब तक मैं तुम्हारे खाने-पीने का कुछ प्रबन्ध करती हूँ।"

अभी-अभी वह स्वयं स्नान कर चुकी थी। पीठ पर भीगे बालों को फैलाकर केबिन के फर्श पर बैठकर हाँड़ी का मुँह खोलकर खाद्य-सामग्री का हिसाब लगा रही थी। रात में ही नौकरानी की सहायता से उसने यह सब सामग्री इकट्ठी कर ली थी।

दिवाकर ने उत्तर दिया, "तुम खाओ, मुझे भूख नहीं है भाभी।"

किरणमयी ने मुँह ऊपर उठाकर देखा। बोली, "यह नहीं होगा कि तुम न खाओगे। तुम इस समय मेरे सर्वस्व हो—तुमको खिलाए बिना मैं किसी प्रकार कुछ भी न खाऊँगी।"

दिवाकर लज्जा से गड़-सा गया और कोई भी बात न कहकर बाहर चले जाने को ज्यों ही प्रस्तुत हुआ कि किरणमयी ने उसे पकड़कर कहा, "यह तो सप्तरथी मार्ग का चक्रव्यूह है बबुआजी, भागकर कहाँ जा रहे हो? प्रवेश करने का मार्ग है, लेकिन बाहर निकलने का मार्ग क्या सभी जानते हैं? यदि यही इच्छा थी तो इस विद्या को अपने उपेन भैया से तुमने सीख क्यों नहीं लिया?" कुछ देर चुप रहकर फिर बोली, "यह हँसी की बात नहीं है बबुआजी, मेरी बात मानो—जाओ स्नान कर आओ, कुछ खा लो। उसके बाद बाहर रेलिंग पकड़कर जितनी इच्छा हो, रोते रहना, मैं रोकूँगी नहीं। लेकिन यह भी मैं बताए देता हूँ बबुआ कि आँखों के आँसू की इसके बाद तुम्हें आवश्यकता पड़ेगी। ये व्यर्थ में खर्च कर डालने से पीछे कहीं पछताना न पड़े।"

दिवाकर ने कोई उत्तर नहीं दिया। आने वाले दिनों के इस निष्ठुरतम पल के संकेत को जान, सिर झुकाए स्नान के लिए चुपचाप बाहर चला गया और सूने केबिन में किरणमयी भी चुपचाप होकर बैठी रही क्योंकि उसके उपहास के इस शूल ने केवल दिवाकर को ही नहीं बींध दिया था बल्कि वह सहस्रों गुना बढ़कर उसकी ही छाती में लौट आया था।

दिवाकर बाहर आकर इधर-उधर घूमने लगा।

फिर जहाज के जिस हिस्से में तीसरे दर्जे के यात्री एक-दूसरे से सटे हुए

बैठे थे, वहाँ चला गया और विभिन्न प्रान्तों के यात्रियों में रहकर अपने को भुला रखने का उपाय खोजने लगा। इस भारतवर्ष में कितनी विभिन्न जातियाँ हैं, कितने विचित्र पहनावे हैं, कितनी अज्ञात भाषाएँ हैं—यह पहले-पहल अपने जीवन में देखकर दिवाकर विस्मय में पड़ गया। जहाज के अन्दर भी वही जनता की भीड़ थी और तरह-तरह की भाषाओं के मिश्रण से जो अपरूप शब्द उठ रहे थे, वे भी बड़े विचित्र थे। सीढ़ियों से उतरकर दिवाकर वहाँ जा पहुँचा और निर्विकार आश्चर्य से मौन रहा।

थोड़े-से स्थान पर अधिकार जमाने के लिए इससे पहले यात्रियों में जो ठेला-ठेली और धक्का-मुक्की मची हुई थी, वह अब बन्द हो गई थी।

अपने-अपने अधिकृत स्थान पर बिस्तर बिछाकर, अपने सामने सामानों का घेरा डालकर वे यथासम्भव निश्चिन्त हो गए थे और अब उनको अपने निकट के यात्रियों पर ध्यान देने का भी अवसर मिला था। प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे का संतोषजनक परिचय पाने के लिए उतावला था।

एक स्थान पर दिवाकर की दृष्टि पड़ते ही उसने देखा कि एक बंगाली चिल्लाकर उसे बुला रहा है, "बाबू जी, इधर आइए, जरा इधर आइए।"

उस आदमी के पास एक हृष्ट-पुष्ट स्त्री बैठी हुई थी। उसने भी उत्सुकतापूर्ण नेत्रों से उस अनुरोध का समर्थन किया।

दिवाकर बड़े परिश्रम से बहुत से लोगों के तिरस्कार और झिड़कियाँ सहता भीड़ के बीच सावधानी से पैर रखता हुआ, उसके पास जा पहुँचा।

उसके पहुँचते ही उस मनुष्य ने अपने पास के सन्दूक पर बैठने का स्थान दिखाकर कहा, "यह मेरा असली लोहे का है, आप आराम से बैठिए। आप कौन हैं?"

दिवाकर ने कहा, "ब्राह्मण।"

उसी क्षण उस व्यक्ति ने दोनों हाथ बढ़ाकर दिवाकर के जूतों के ऊपर से ही पदधूलि लेकर अपनी जीभ पर, माथे पर, और गले पर लगाकर कहा, "सोच रहा था, ये कई दिन कैसे बीतेंगे। आप कहाँ बैठे हैं?"

दिवाकर ने अंगुली से ऊपर की ओर संकेत कर दिया।

उसने पूछा, "आप केबिन में हैं? चाहे जहाँ रहें, सन्ध्या को नित्य एक बार पदधूलि दे जाया करें। कहाँ जाइएगा, रंगून?"

दिवाकर ने सिर हिलाकर कहा, "ना, अराकान।"

"अराकन में मैं भी रहता हूँ। आज बीस वर्षों से मैं वहीं रह रहा हूँ। वहाँ तो मैंने कभी नहीं देखा। क्या पहली बार जा रहे हैं? वहाँ आपके कोई स्वजन सम्बन्धी हैं क्या? ना···कुछ चिन्ता मत कीजिए। लोगों की दया से मैं वहाँ एक मकान का स्वामी हूँ। मेरे मकान में बहुत-से कमरे खाली पड़े हुए हैं। आप मेरे साथ ही चलिए।" पास बैठी हुई स्त्री को दिखाकर कहा, "ये मेरी पत्नी हैं।"

यह स्त्री अब तक टकटकी बाँधे दिवाकर की ओर देख रही थी।

उसने बहुत ही मोटे गले से पूछा, "क्या आपकी स्त्री आपके साथ हैं?"

दिवाकर ने लज्जा से मुख लाल करके सिर हिलाकर किसी प्रकार बलता दिया, "हाँ साथ ही हैं।"

उस स्त्री की बातें टेढ़ी-मेढ़ी थीं, ललाट पर गोदना था, माँग में सिंदूर की चौड़ी रेखा थी, नाक में नथ थी और दोनों कानों में बीस-तीस बालियाँ थीं। आँचल का थोड़ा-सा भाग मस्तक पर था, वह भी उत्साह तथा आवेश से नीचे खिसक गया। उसने कहा, "बहुत बुरा स्थान है—मग लोगों का देश है—लेकिन मेरे मकान की ओर आँख उठाने का साहस किसी का नहीं है—मैं साधारण मकान वाली नहीं हूँ। उस देश में ऐसा कोई आदमी नहीं है जो कामिनी से न डरता हो। आप मेरे ही मकान में रहिएगा, डरने की कोई भी बात नहीं है। किराया पाँच रुपया है, आप चार ही रुपया महीना दीजिएगा। ऐ मकान वाले, आपके कारखाने में इनको कोई काम मिल सकता है?"

जरा हिचककर मकानवाले ने कहा, "कोई-न-कोई काम मिल ही जाएगा।"

दिवाकर ने पूछा, "आपका नाम?"

"हरीश भट्टाचार्य! ना-ना, ऐसा न करें—अपराध लगेगा। मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, केवट (मल्लाह) हूँ। थोड़ा-बहुत कुछ शास्त्र-वास्त्र का ज्ञान मुझे है, इसीलिए लोग आदर से भट्टाचार्य कहा करते हैं। कण्ठी-माला पहनता हूँ, मांस-मछली खाना छोड़ दिया है। अब क्यों यह सब करूँ, बहुत करके देख चुका। अभी थोड़े दिन हुए, दो-ढाई हजार रुपये खर्च करके चारों धाम घूम आया हूँ। इसीलिए अपनी पत्नी से मैं कभी-कभी कहता हूँ, ऐ मकानवाली,

अराकान में जो कुछ है, बेच-बाचकर चलो किसी तीर्थस्थान में जाकर रहें।" यह कहकर वह उदास मुख से ऊपर की ओर देखता हुआ चुप हो रहा। मकानवाली ने अपने स्वाभाविक भारी गले से उत्तर दिया, "मैं भी तो यही कहती हूँ।" कहकर वह भी ऊपर को आँखें उठाकर बैठी रही।

दिवाकर पक्का आदमी नहीं है, इन बातों का गूढ़ तत्त्व वह कुछ भी न समझ सका, चुप होकर बैठा रहा।

मकानवाली ने कहा, "ऐ मकानवाले, अब तो चिउड़ा भिगो दें।"

मकानवाले का ध्यान टूट गया। धीरे-धीरे उसने कहा, "भिगो दो।"

दुनियादारी से अज्ञान दिवाकर इस संकेत का अर्थ अब समझ गया। वह उठ खड़ा हुआ, बोला, "मैं अब जा रहा हूँ, फिर आऊँगा।"

रात की शीतल वायु तेज गति में बह रही थी। डेक पर प्रायः जन-शून्य था। माथे पर कृष्ण पक्ष का गम्भीर नीला आकाश था, नीचे वैसा ही समुद्र का नीला जल था। उसके ही बीच दिवाकर अपने हृदय की गम्भीर कालिमा को निमज्जित करने के लिए कुछ क्षण के लिए शान्ति अनुभव कर रहा था। एकाएक उसी समय किसीके कोमल हाथों के स्पर्श से उसका ध्यान भंग हो गया। घूमकर देखा, किरणमयी है।

किरणमयी ने कहा, "क्या हो रहा है बबुआ! तुम क्या आमरण अनशन-उपवास कर रहे हो?"

दिवाकर चुप रहा।

पलभर किरणमयी ने उसके उत्तर की प्रतीक्षा की, फिर—"कमरे में चलो," कहकर वह बरबस उसे केबिन में खींच ले गई और भूमि पर बिछाए हुए बिस्तर पर बिठाकर बोली, "कुछ भी यदि नहीं समझते तो कम-से-कम बताने से तो अवश्य समझ सकते हो कि बहुत रोने-धोने से जहाज तुमको देश वापस न ले जाएगा। बिना खाए, भूखे रहकर मर जाने पर भी नहीं, समुद्र के जल में कूद पड़ने पर भी नहीं, अराकान तुमको चलना ही पड़ेगा। तो क्यों व्यर्थ स्वयं सूखकर मुझे भी सुखा रहे हो? जो देती हूँ, ले लो, जितना खा सको खाओ, उसके बाद जहाज अराकान पहुँच जाएगा, तब जहाँ इच्छा हो उतर जाना, जब इच्छा हो लौट आना—तुम्हारी सौगन्ध खाकर कहती हूँ बबुआ, मैं रोकूँगी नहीं।" यह कहते-कहते किरणमयी का स्वर तीव्र हो

उठा और भूख-प्यास से दोनों नेत्र आग के समान जलने लगे।

दिवाकर सिर ऊपर उठाकर मूर्ख की भाँति निहारने लगा। आज इतने दिनों के बाद उसे ज्ञात हुआ, मानो परदे की ओट में उसे सत्य वस्तु अचानक ही दिखाई पड़ गई।

किरणमयी के दोनों सुन्दर नेत्रों की वासना-दीप्त भूखी दृष्टि के अन्दर और जो कुछ भी क्यों न हो, लेकिन उसके लिए तनिक भी प्रेम नहीं है। फिर भी उसने कोई बात नहीं कही, चुपचाप अपने नेत्र नीचे किए, दोनों घुटनों के बीच सिर छिपाए, पत्थर के समान बैठा रहा।

किरणमयी थोड़ी ही देर के बाद उठ पड़ी और एक हाँड़ी से कुछ मिठाई एक छोटी-सी तश्तरी में ले आई। दिवाकर के सामने तश्तरी रखकर घुटनों पर टेककर ऊँची हो बैठ गई और बलपूर्वक एक हाथ से उसका मुँह ऊपर को उठाकर एक-एक करके उसके मुँह में डालने लगी।

इसी प्रकार सब समाप्त करके किरणमयी ने पलभर कुछ सोचा, फिर दूसरे ही क्षण झुककर दिवाकर के भीगे हुए ओठों को चूमकर खिलखिलाकर हँस पड़ी।

इस विषमय चुम्बन और इस निष्ठुर हँसी को दिवाकर ने अपनी पूरी शक्ति लगाकर सह लिया, लेकिन रात को जब एक ही बिछौने पर सोने का प्रबन्ध होने लगा तब वह किसी प्रकार भी स्थिर न रह सका।

वह उठकर खड़ा हो गया और बोला, "यह नहीं होगा भाभी। यह मैं किसी दशा में भी न कर सकूँगा। मुझे तुम छोड़ दो, मैं जहाँ भी हो सकेगा, बाहर कहीं जाकर सो रहूँगा; लेकिन तुम्हारी आज्ञापालन करने के लिए किसी प्रकार भी मैं कोठरी में रात न बिता सकूँगा—कदापि भी नहीं।"

उस समय किरणमयी बिस्तर बिछा रही थी—पलटकर उसने देखा। दिवाकर फिर दृढ़ स्वर से बोला, "यह किसी प्रकार भी न होगा।"

किरणमयी ने पहले तो हँसने का प्रयत्न किया लेकिन हँसी नहीं आई, "क्या सोना नहीं होगा?"

उसके दोनों नेत्र घायल शेरनी की भाँति जल उठे। उसने दाँतों पर दाँत दबाकर धीरे-धीरे कहा, "तुम क्या समझते हो कि सारा अपराध मेरे सिर मढ़कर भले आदमी के समान घर लौटकर, अपने उपेन भैया के पाँव स्पर्श

करके शपथ खाकर कहोगे कि 'साधु हूँ' और तुम्हारे उपेन भैया सिर ऊपर उठाकर चल सकेंगे? यह न होगा बबुआ! तुम मेरी सब बात न समझ सकोगे, समझने की आवश्यकता भी नहीं है––तुम साधु हो या नहीं हो, इसके लिए भी कुछ चिन्ता नहीं करती। लेकिन अपराध के भार से जब मेरा सिर झुक जाएगा, तब मैं ऐसी दशा न होने दूंगी कि तुम्हारे उपेन भैया अपना सिर ऊपर उठाकर चल सकेंगे—यह तुम निश्चय से जान लो।"

यह कहकर वह बिस्तर बिछाने लगी और पास ही गद्दीदार बेंच पर दिवाकर सिर झुकाए बैठा रहा।

रात को दोनों एक ही बिस्तर पर सो रहे। भाग्य के फेर से सर्वस्व दान देकर जैसे हरिश्चन्द्र ने चाण्डाल के हाथ अपने को सौंप दिया था, वैसी ही घृणा के साथ दिवाकर ने किरणमयी के बिस्तर पर आत्म-समर्पण कर दिया लेकिन उसकी यह घृणा किरणमयी से छिपी न रही।

सारी रात लगातार उसके अर्द्धसुप्त दोनों कानों में कहीं से रुलाई का प्रवाह-सा पहुँचने लगा और उसके बीच में किसीकी क्रुद्ध लम्बी साँस रह-रहकर गरज उठने लगीं। प्रातःकाल शरीर हिल जाने से वह उठा और जागते ही समझ गया कि बाहर प्रचण्ड वेग से हवा बह रही है और जहाज का हिलना आरम्भ हो गया है। नेत्र खोलकर उसने देखा, किरणमयी का कोमल बायाँ हाथ उसकी छाती पर निद्रावस्था में सर्प के समान पड़ा हुआ है। पीछे वह जगकर कहीं उसे काट न खाए, इस भय से उसने मानो उठने का साहस नहीं किया, फिर नेत्र बन्द करके पड़ा रहा।

हवा और हिलने का वेग क्रमशः बढ़ने लगा और किरणमयी की नींद टूट गई।

दिवाकर की छाती पर पड़े हुए हाथ को जरा दबाकर उसने धीरे से पूछा, "बाहर यह क्या हो रहा है—तूफान आया है—क्या?"

दिवाकर ने कहा, "हाँ।"

"क्या होगा?"

दिवाकर ने कुछ भी उत्तर न दिया।

किरणमयी ने कहा, "सम्भवतः तुम भगवान् से यही प्रार्थना कर रहे हो कि जहाज टूट जाता तो अच्छा होता—यही बात है न बबुआजी?"

दिवाकर ने कहा, "ना।"

"एक छोटी-सी बात 'ना'—तुम मनुष्य नहीं हो, पत्थर के बने हो बबुआ !" यह कहकर उसने बलपूर्वक दिवाकर को अपनी छाती में खींच लिया और बोली, "जहाज यदि डूब जाए तो हम दोनों इसी प्रकार मरें। बहकर किनारे जा लगेंगे, लोग देखें, अखबारों में खबर छपेगी, तुम्हारे उपेन भैया पढ़ेंगे,—यह कैसी बात होगी बबुआ ?"

इस घृणित दुष्कल्पना ने दिवाकर को ठेलकर उठा दिया। किरणमयी के बन्धन से जोर लगाकर अपने को मुक्त कर धीरे-धीरे वह कोठरी के बाहर निकल गया।

पैंतीस

डेक पर एक चौकी पर बैठकर वह अपलक देखता रहा। भीतर कैसा करने लगा था, उसको अस्पष्ट रूप से अनुभव करने के अतिरिक्त बुद्धि द्वारा हृदयंगम करने की शक्ति उसमें नहीं थी।

जहाज पर ऊँची-ऊँची लहरें उन्माद के समान उछलती हुई गिर रही हैं, फिर चूर्ण-विचूर्ण होकर विलीन होती जा रही हैं, फिर दौड़ी हुई आ जाती हैं, फिर लुप्त हो जाती हैं—इसी के घात-प्रतिघात का खेल दिवाकर विचार-मग्न होकर देखने लगा।

पूर्व के आकाश में दिगन्त से धुँधले बादल पर्वत के समान उमड़ते जा रहे थे और उनके ही पीछे बालसूर्य उग चुका है या नहीं, इस खबर को नीचे पहुँचाने के लिए किरण की एक रेखा को भी मार्ग नहीं मिला। दूसरे ही क्षण डेक पर जहाज के खलासी घबराकर इधर-उधर आने-जाने लगे और ऊपर कप्तान का घण्टा बार-बार बजने लगा।

तूफान का वेग लगातार बढ़ता ही जा रहा है, भविष्य में और भी बढ़ जाएगा, इसका संकेत आकाश के बादलों और समुद्र की लहरों ने जहाज के कप्तान से लेकर नीचे की कामनी नामक मकानवाली औरत तक सभी को सुस्पष्ट रूप से दे दिया।

उसी समय एक खलासी ने आकर कहा, "बाबू, पानी बरसने में अब देर नहीं है, आँधी-पानी में बाहर बैठकर कष्ट क्यों पा रहे हैं, केबिन में चले जाइए। देखिए, वहाँ न जाने अब तक क्या हो रहा है ?"

दिवाकर ने घबराकर पूछा, "क्या हुआ है वहाँ ?"

खलासी चटगाँव का मुसलमान था। हँसकर, न समझने योग्य अपनी बोली में बोला, "कुछ भी नहीं हुआ है। लेकिन जहाज बहुत हिल रहा है न—इसलिए कह रहा हूँ बाबू, आप जाकर देखिए, वहाँ औरतें क्या कर रही हैं। इतना हिलोरा सहना बहुत ही कठिन है।"

दिवाकर उठ खड़ा हुआ और तुरन्त ही समझ गया कि खलासी की बात बिलकुल ही सच है। वह गिरने लगा था, उसे पकड़कर खलासी ने कहा, "चलिए बाबू, आपको पहुँचा आऊँ।"

उसी की सहायता से दिवाकर किसी प्रकार से केबिन के दरवाजे तक पहुँच गया। दरवाजा ठेलकर अन्दर जाकर उसने देखा, किरणमयी बिछौना छोड़कर पास की लोहे की बेंच पर उसके ही एक छोर को जोर से दबाकर पट्ट होकर पड़ी हुई है।

दिवाकर उसके सिरहाने जाकर बैठ गया, बोला, "कष्ट हो रहा है भाभी ?"

किरणमयी मौन। वह दिवाकर की गोद में अपना दायाँ हाथ रखकर पड़ी रही। जहाज उलटने-पलटने लगा। बाहर भयानक हवा साँय-साँय शब्दों से चिल्लाहट मचाने लगी और उत्ताल लहरों के उमड़ते हुए पानी के छींटे प्रबल वेग से छोटी खिड़की के मोटे शीशे पर बार-बार पछाड़ खा-खाकर गिरने लगे।

उसका सिर चकराने लगा। और बैठा रहना असम्भव जानकर उस पतली-सी बेंच पर ही किरणमयी के सिर के पास जाकर वह मूर्छित के समान लेट रहा।

किरणमयी ने सहलाकर उसका सिर छूकर मृदु स्वर से कहा, "लेट रहे हो, सिर में चक्कर आ रहा है क्या ?"

दिवाकर ने कहा, "हाँ।"

कुछ क्षण चुप रहकर किरणमयी ने पूछा, "अच्छा बबुआ, तूफान तो

बराबर बढ़ता ही जा रहा है, जहाज क्या डूब जाएगा, तुम्हारा यही विचार है क्या ?"

दिवाकर ने कहा, "ना-ना।"

किरणमयी ने कहा, "ना-ना—तुम कचहरी में गवाही दे रहे हो क्या, बबुआजी ?" यह कहकर वह बड़ी देर तक चुपचाप पड़ी रही। बहुत देर के बाद धीरे-धीरे बोली, "डूब जाने से ही अच्छा होता। यदि न भी डूबे तो भी इस प्रकार हम लोगों के कितने दिन बीतेंगे ?"

दिवाकर ने उत्तर नहीं दिया। अतः किरणमयी ने दिवाकर के सिर को हाथ से हिलाकर कहा, "सुन रहे हो न ?"

"सुन रहा हूँ। जितने दिन चल सकें, चलने दो।"

"उसके बाद ?"

"उसके बाद भी समुद्र में जल रहेगा, गले में बाँधने के लिए रस्सी भी मिल जाएगी। दोनों में से किसी एक को चुन ही लेना पड़ेगा।"

सहसा दिवाकर के मुँह से एक कड़ी बात सुनकर किरणमयी बड़ी देर तक मौन होकर पड़ी रही, उसके बाद वह स्वाभाविक स्वर से बोली, "ऐसा मत करो—घर लौट जाओ ! तुम तो पुरुष हो, जाकर कह देने से ही बात समाप्त हो जाएगी। सम्भव है कि इसकी भी आवश्यकता न पड़ेगी—तुम्हारे अपने लोग इस बात के लिए कोई चर्चा-बखेड़ा करना न चाहेंगे।"

दिवाकर चुप रहा।

ऐसा प्रस्ताव चाहे जैसा भी लोभनीय क्यों न हो, वह इसे ग्रहण न कर सका। बड़ी देर तक मौन रहकर बोला, "और तुम ?"

किरणमयी पहले के ही समान सहज-शान्त स्वर में बोली, "मुझे यहीं रह जाना पड़ेगा।"

दिवाकर ने कहा, "कैसे रहोगी, वहाँ कौन है ?"

किरणमयी ने कहा, "कोई नहीं।"

"तो फिर ?"

"तो भी रहना ही पड़ेगा।"

दिवाकर उत्कण्ठा से उठ बैठा। बोला, "जरा साफ बताओ न भाभी ! तुम कह रही हो कि कोई नहीं है फिर भी रह जाओगी कैसे, मैं तो समझ ही

नहीं पाता। तुम क्या वहाँ अकेली ही रहोगी ?"

किरणमयी हँस पड़ी। उस हँसी को दिवाकर देख न सका—देखता तो समझ जाता।

किरणमयी ने कुछ देर तक चुप रहकर कहा, "ना बबुआ, अकेली न रह सकूँगी—मेरी वह आयु नहीं ! लेकिन तुमसे इन बातों की आलोचना की आवश्यकता नहीं है।" यह कहकर उसने दिवाकर का दायाँ हाथ अपने मुख के पास खींचकर दुःख से कहा, "लेकिन तुमको मैंने व्यर्थ ही कष्ट दिया। इसके लिए क्षमा माँग रही हूँ।"

दिवाकर फिर नाराज-सा लेट रहा, लेकिन इतना समझ गया कि घर जाने के अँधेरे मार्ग के लिए जो आशा-दीप पल-भर पहले ही उसने मूर्ख की भाँति जला दिया था, उसको बुझा देने का समय आ गया है।

प्रदीप बुझ गया। उसकी दुर्गन्ध से भरी हवा से दिवाकर की छाती मानो भारी बोझ से दब गई। रुँधी हुई साँस की गम्भीर पीड़ा से वह उठ बैठा और तीखे स्वर से पूछा, "तुम क्या अब तक मुझसे हँसी कर रही थीं भाभी ?"

मुह-चोर, लजीले स्वभाव वाले दिवाकर की इस अचानक उग्रता से किरणमयी चौंक पड़ी। बोली, "कैसी हँसी बबुआजी ?"

"मेरे घर लौट जाने की बात। इस व्यंग्य की क्या आवश्यकता थी ?"

किरणमयी ने कहा, "परिहास या व्यंग्य तो मैंने कुछ नहीं किया।"

"तो क्या यह सच है ?"

"सच ही तो है भाई ?"

"तुम अकेली रह जाओगी, क्या यह भी सच है ?"

"हाँ, यह भी सच है।"

"ओह ! इसीलिए क्या तुम अराकान जा रही हो, लेकिन किसके पास, किस प्रकार रहोगी, सुनूँ तो ?"

किरणमयी ने प्रत्युत्तर में केवल एक लम्बी साँस ली।

फिर हँसकर उसने कहा, "किसके पास मैं किस रूप में रहूँगी, यह जान लेने से तुमको क्या लाभ होगा बबुआ ? जबकि तुम लौट ही जाओगे, फिर इस अनावश्यक कौतूहल की कुछ सार्थकता ही नहीं है।"

कुछ क्षण स्थिर हो रहा दिवाकर। फिर बोला, "लौट जाऊँगा ही, यह बात तो मैंने एक बार भी नहीं कही। वह तो तुम्हारे ही मुँह की बात है।"

किरणमयी ने कहा, "यह ठीक है। लेकिन मेरे मुँह से तुम्हारे मन की बात ही निकल पड़ी है।" यह कहकर यह तीव्र प्रतिवाद की आशा करके प्रतीक्षा करती रही। लेकिन प्रतिवाद नहीं हुआ।

किरणमयी उसको सोचने का समय देकर धैर्य धारण किए रही।

बहुत समय बीत गया—बाहर आँधी-पानी के लगातार आक्रमण से जहाज वेग से कांपने लगा। खलासियों का अस्पष्ट कोलाहल बीच में स्पष्ट सुनाई पड़ने लगा।

किरणमयी के धीरज के बाँध भी टूट जाने की नौबत आ गई, लेकिन काठ की बनी इस छोटी-सी कोठरी की शून्यता पूर्ववत् बनी रही।

दिवाकर प्रतिवाद न करेगा, इस बात पर किरणमयी के मन में जब तनिक भी संशय न रह गया तब उसने लम्बी साँस छोड़कर धीरे-धीरे कहा, "तो क्या तुम्हारा लौट जाना ही निश्चित रहा?"

दिवाकर ने कहा, "ना-ना।"

किरणमयी ने फिर कोई प्रश्न नहीं किया।

छत्तीस

उसी रात को तूफानी वर्षा बन्द हो गई। दिन-भर धूम मचाकर उन्मत्त समुद्र रात को मानो बहुत ही थक गया और भोर होते-होते शान्त हो गया। पर आकाश अब तक साफ न हुआ, वह मुँह-मलिन किए ही रहा।

प्रातः कुछ काल के लिए सूर्योदय हुआ किन्तु इस जहाज के डरे हुए, अधमरे यात्रियों को संतोष बँधाकर फिर चला गया अथवा आँखें लाल कर अन्तर्धान हो गया, यह ठीक समझ में न आया।

इसी समय दिवाकर बाहर आकर कनवास की एक आरामकुर्सी पर लेट रहा। न मालूम क्यों, आज आत्मग्लानि की आग ने उसे इस समय पहले के सामान नहीं जलाया। लज्जा का समुद्र भी आज वैसा गहन नहीं मालूम

हुआ। मानो हरे-हरे पौधों से ढँका एक धुँधला-सा किनारा उसे दीख पड़ने लगा। हृदय का असह्य बोझ इस प्रकार जब हल्का हो चला, तब स्थिर होकर दिवाकर फिर एक बार किरणमयी के विवाद पर सहानुभूति के साथ विचार करने लगा। कल रात को किरणमयी ने यह विवाद किया था कि "वास्तव में हम अन्याय तो तभी करते हैं जब किसी को उसके न्यायोचित अधिकार से वंचित करते हैं। इसलिए किसी काम में प्रवृत्त होने के पहले यह देखना चाहिए कि हम किसीके सच्चे अधिकार में हाथ डालते हैं या नहीं ! फिर यह अधिकार जैसा बाहर है, वैसा ही भीतर भी है। अपने ऊपर भी अपना एक न्यायिक अधिकार है। अपना होने के कारण वह किसीसे कम नहीं है—किसीसे तुच्छ नहीं है। उस अधिकार के बाहर किसीका हस्तक्षेप सहना अपने ऊपर अन्याय करना है।"

क्षणभर स्थिर रहकर उसने और भी कहा था कि "चोरी, डाकेजनी जिस प्रकार दूसरे के अधिकार में हाथ डालना अन्याय करना है, मतवाले के लिए पैसे की व्यवस्था कर देना भी ठीक वैसा ही अन्याय है, क्योंकि पैसे देकर हम उसे गर्त्त में ढकेलते हैं—अच्छे रहने के अधिकार से उसे वंचित करते हैं।"

दिवाकर मौन होकर सुन रहा था।

किरणमयी ने फिर कहा था, "यद्यपि सामाजिक मनुष्यों का यह अधिकार बहुत व्यापक है, कहाँ इसकी सीमारेखा है, कहाँ पाँव रखने से अनधिकारप्रवेश न होगा, इस विषय में अनेक द्वन्द्व, अनेक मतभेद हैं, तथापि सीमा कुछ है ही, इसमें किसीको भी सन्देह नहीं है।

"इस सीमा को बाँधने की शक्ति किसी में नहीं है, समाज में भी नहीं। समाज इस सीमा को पार कर दूसरे को ही नष्ट नहीं करता, बल्कि अपने को भी निर्बल बनाता है, नष्ट करता है। तुमको इस तरह मन उदास करके रहने की जरूरत नहीं होती, यदि एक बार इस बात को सोचकर देखते कि किसीके सच्चे अधिकार में हाथ डाला है या नहीं ! मैं विधवा हूँ, मुझपर किसीका न्यायसंगत अधिकार नहीं है, तुम अविवाहित हो, तुम्हारे हृदय पर भी किसीका अधिकार नहीं है। अतएव मुझसे प्रेम कर तुमने अन्याय नहीं किया, यह समझना तो कठिन नहीं है—बहुत ही सुगम बात है।"

दिवाकर ने आश्चर्यचकित होकर कहा था, "यह क्या भाभी ? यदि अवैध प्रेम भी अन्याय नहीं है, तब संसार में फिर अन्याय क्या है ?"

इसपर किरणमयी ने कहा था, "अवैध तुम क्यों समझते हो ! यों समझने का तुम्हारा संस्कार ही ठीक नहीं है। अच्छा, यह तो बताओ कि इसे अवैध समझते ही क्यों हो ?"

उत्तेजित होकर दिवाकर ने उत्तर दिया था, "जो विवाह के द्वारा पवित्र नहीं, जिसे समाज स्वीकार न करे, जिसे आत्मीय स्वजन, बन्धु-बान्धव घृणा की दृष्टि से देखें, वही अवैध है, यह तो बिल्कुल सीधी-सी बात है।"

किरणमयी ने हँसकर कहा, "सीधी बात कैसे है ? जरा सोचकर तो देखो, आप ही मालूम हो जाएगा कि सीधी-सी बात कभी-कभी ऐसी टेढ़ी हो जाती है कि संसार की अनेक टेढ़ी चीजें भी हार मान जाती हैं। तुमसे तो अनेक बार कहा है कि पवित्रता-अपवित्रता का तुम्हारा वह ज्ञान स्पष्ट और परिमार्जित नहीं है। इस संसार में अनेक स्त्री-पुरुषों का ऐसा समागम हुआ है, जिसको अपने दृष्टिकोण से पवित्र नहीं कह सकते। मैं उदाहरण सामने रखकर बात बढ़ाना नहीं चाहती, तुम्हारी इच्छा हो तो इतिहास-पुराण में पढ़ देखो। उन सब मिलनों को भी समाज ने स्वीकार किया था और ब्याह के मन्त्र से पवित्र बना लिए गए थे। हम लोगों के पथरियाघट्टे के उस मकान के पास यदि कण्व मुनि का आश्रम होता तो शकुन्तला ने जो रहस्यपूर्ण प्रणय-सम्बन्ध किया था, उससे केवल मुनि महाराज को ही अपने भाई-बन्धुओं के साथ नहीं, बल्कि पथरियाघट्टे के सब लोगों को जाति के बाहर होना पड़ता। उस प्रेम-कथा को पढ़कर सती-साध्वी का मुखमण्डल लज्जा से रँग नहीं जाता ? ···ना-ना···घबराओ नहीं बाबू ! मैं तो साध्वी स्त्रियों पर ताना नहीं मारती अथवा इस समय से उस समय की तुलना भी नहीं किया चाहती। यह समय ऐसे ही रहे और वे लोग जहाँ हैं, वहीं अच्छे होकर रहें। मुझे किसी प्रकार आपत्ति नहीं, किन्तु उस समय की शकुन्तला के प्रति आजकल के लोग घृणा का भाव क्यों नहीं रखते, यह एक विचित्र बात है।" क्षणभर चुप रहकर धीरे-धीरे उसने फिर कहा था, "जानते हो, लोग घृणा नहीं कर सकते इसका कारण यही है कि उनका मिलन, चाहे कैसा ही क्यों न रहा हो, मिलन के आदर्श को उन्होंने अधिकृत रूप में ही रखा

था। क्षणभर में ही जिस बन्धन से अपने को सदा के लिए बाँध लिया था, उस बन्धन के मजबूत होने में किसी प्रकार का सन्देह, किसी प्रकार का संकोच न रखा था। यदि वे संकोच करते, यदि उन्होंने सत्य को छिपा दिया होता तो कालिदास कितनी ही रोचक और कितना ही मधुर बनकर उसकी कथा लिखते पर किसीके हृदय को वे आकर्षित न कर सकते। जो वास्तविक बात है, उसपर ठीक प्रकार विचार करके देखो।"

दिवाकर को एक बात भी न जँची। वह असहिष्णु होकर बोल उठा, "आदर्श चाहे जैसा हो, आजकल का समाज उसे बिल्कुल स्वीकार न करेगा। आज जो समाज में स्वीकृत न होगा, वह वैध या अवैध हो, उससे समाज को हानि ही पहुँचेगी, समाज में रहकर समाज को हानि पहुँचाना और आत्म-हत्या कर लेना, दोनों ही समान हैं।"

किरणमयी ने कहा, "बाबू, समाज को हानि पहुँचाना और समाज के दम्भ को हानि पहुँचाना एक बात नहीं। तुमसे तो पहले ही कह चुकी हूँ कि सब चीजों में एक सच्चा अधिकार रहता है। समाज तैयार होकर जब सत्य की सीमा लाँघता है, तब उसे हानि पहुँचानी ही पड़ती है। इस धक्के से समाज मरता नहीं, उसका मोह छूट जाता है, शिक्षा पाने के लिए हो या देश के लिए हो, विलायत जाना तो समाज स्वीकार नहीं करता? इस सम्बन्ध में उसे बार-बार धक्के खाने पड़े हैं, किन्तु उसके हठी-प्राण आज तक न निकले। निकले या न निकले, यह बताओ कि समाज की बुद्धि-विवेचना की क्या तुम प्रशंसा करते हो? क्या तुम उसके विचारों को ठीक समझते हो?"

दिवाकर ने कहा, "ना-ना। ठीक समझने का कोई कारण नहीं है।"

किरणमयी ने कहा, "निश्चय ही नहीं है, किन्तु यह सन्देहरहित उत्तर तुम्हें कहाँ से मिला? अपनी बुद्धि-विवेचना से ही तो?"

दिवाकर ने उत्तेजित होकर कहा, "किन्तु सभी यदि सब कामों में अपना विचार लगाने लग जाएँ तो समाज नष्ट ही हो जाए!"

किरणमयी ने कहा, "मैं तो अब तक तुमसे यही बात कहने की चेष्टा करती हूँ। सब कामों में अपनी ही बुद्धि लड़ाने से जैसे समाज नहीं टिकता, समाज भी यदि सब समय और सब कामों में अपना ही मत चलाना चाहे तो

मनुष्य भी नहीं टिक सकता। मनुष्य ही भूल करना जानता है, अन्याय करना जानता है और समाज क्या नहीं जानता बाबू? दोनों की सीमा निर्दिष्ट है—मूर्खता से हो, प्रवृत्ति के झोंके से हो, अनुचित हठ के कारण हो या चाहे जैसे भी हो, उस सीमा का उल्लंघन करते ही अमंगल होता है। उस अनिष्ट को रोकने की शक्ति तुम्हारे भगवान् में भी नहीं है।"

दिवाकर ने इसके उत्तर में कोई बात नहीं कही।

किरणमयी कुछ क्षण तक चुप रहकर फिर बोली, "यह सीमा किसी समाज में सदा एक स्थान में टिकी नहीं रहती। आवश्यकता के अनुसार वह घटती-बढ़ती रहती है।"

दिवाकर ने पूछा, "कौन उसे खिसकाता है?"

किरणमयी ने कहा था, "जिस नियम से विश्व-ब्रह्माण्ड चलता है, उसी नियम से सीमा भी आप-ही-आप चलती रहती है परन्तु वह चलती है या नहीं, यह बात उसी समय ज्ञात होती है, जब कोई इसे हानि पहुँचाता है।"

किरणमयी के सब उदाहरणों को अपने भागने के अनुकूल बनाने का प्रयत्न अब तक दिवाकर कर रहा था, किन्तु मन में बाधा ही पहुँचती थी। एक तो इस काम की निकृष्टता के विषय में उसे कुछ भी सन्देह न था, दूसरे सब अपराधों को विनीत भाव से स्वीकार करने के लिए वह अपने आपको तैयार कर रहा था। किन्तु जब वह स्पष्ट रूप से समझ गया कि यह अभिमानी नारी इतने बड़े अपराध को अपराध की गिनती में नहीं लाना चाहती, बल्कि समाज को ही दोषी बनाना चाहती है, तब उसे उसकी बात असह्य प्रतीत होने लगी थी, किन्तु कोई कठोर बात कहना भी उसके लिए अति ही कठिन काम था। इसीसे उसने केवल आक्षेप भर किया था, कहा था, "अच्छी बात है, देखना है कि समाज को हम लोगों ने जो हानि पहुँचाई है, उससे समाज का कितना मान घटता है और कितना गर्व टूटता है!"

किरणमयी यह सुनकर कुछ देर के लिए सन्नाटे में आ गई थी, किन्तु फिर तत्काल ही दोनों घुटनों के बल बैठ, दिवाकर के मुँह की ओर देखकर उसने उत्तर दिया था, "हम लोगों ने धक्का कहाँ पहुँचाया? भय खाकर भाग खड़े होना और खड़े होकर धक्का पहुँचाना क्या ये दोनों बातें एक ही हैं, जो समाज का अभिमान चूर्ण होगा? किन्तु तुम तो बी०ए० तक पढ़े हो

न ?'' कहकर उसने जल्दी से लेटकर सिर से पैर तक चादर तान ली थी और सब वाद-विवादों का मुंह एक साथ ही बन्द कर दिया।

इस प्रकार से तर्क का प्रवाह रुका नहीं करता है। वह रुके हुए स्रोत की तरह फूल-फूलकर भीतर ही भीतर और भी जोर बाँधता है और देर से हो या जल्दी, रुकावट को तोड़ ही देता है। हुआ भी ऐसा ही। यह रुका तर्क केवल किरणमयी के भीतर ही चुपचाप उत्तप्त नहीं हो रहा था, नम्र प्रकृति दिवाकर के मन में भी उछल-कूद मचा रहा था। खासकर किरणमयी की वह अन्तिम बात—'तुम बी०ए० तक पढ़े हो न ?' गूंज रही थी।

यद्यपि उसके मन में कभी लिखने-पढ़ने का अभिमान स्पष्ट रूप में नहीं था, किन्तु बुद्धि की प्रतियोगिता के विचार से इस रमणी के मुँह से निकले ऐसी बड़ी लाँछना के वाक्य ने उसे युद्ध के लिए भीतर-ही-भीतर प्रस्तुत कर दिया था। किन्तु किस प्रकार युद्ध की घोषणा करे, किस प्रकार इस मौन को तोड़े, यह दिवाकर निश्चय न कर सका। और भी एक बात हुई थी—आज दो दिन की लगातार छेड़छाड़ से उसके प्राण होंठों पर आ रहे थे। बाहर जल की झड़ी जिस प्रकार विराम लेने नहीं देती थी, भीतर की आत्मग्लानि भी उसी प्रकार बिल्कुल बेचैन किए हुए थी। कहीं किसी ओर जाने या टिकने की जगह न पाकर आज जब वह खलासी का हाथ पकड़े हुए किरणमयी के कमरे के दरवाजे के सामने आ पहुँचा था, उस समय उसकी क्लान्त देह और अवश मन ने सन्धि की प्रत्याशा की थी किन्तु बीच से तर्क की जो उलटी धारा बह गई थी, उसने केवल उसको एक विपरीत स्थान पर ही नहीं पहुँचा दिया था, बल्कि उसके स्वस्थ होने की अस्पष्ट आशा को भी एक साथ ही नष्ट कर दिया था।

बाहर की मन्द पड़ी हुई झड़ी के शब्द को दबाकर जहाज के घण्टे में बारह बज गए। तब तक दिवाकर छाती के भीतर गरम गहरी साँस लिए मन-ही-मन फूल-सा रहा था।

एकाएक जब किरणमयी ने दबे गले से पुकारा 'बाबू !' तब दिवाकर चौंक पड़ा, हृदय में भय और आशा ने एक साथ ही हलचल मचा दी, जल्दी से उत्तर दिया, ''क्या है भाभी ?''

किरणमयी ने कहा, ''तुम लौट जाओ !''

दिवाकर ने जोर देकर कहा, "ना, कदापि ना।"

किरणमयी ने कहा, "ना क्यों ? बिना समझे-बूझे एक अनुचित काम कर बैठे हो, इसके लिए क्या जीवन-भर उसका बोझ लिए फिरना पड़ेगा ? इसकी क्या आवश्यकता है ?"

दिवाकर ने कहा, "तुम नहीं देखतीं, मैं देखता हूँ। इसके अलावा लौट जाने से क्या सिर से बोझ उतर जाएगा ?"

किरणमयी ने कहा, "आज ही उतर जाएगा, यह नहीं कहती किन्तु दो दिन बाद उतर भी जा सकता है।"

दिवाकर ने मृदु-कण्ठ से पूछा, "किन्तु जाऊँगा कहाँ ?"

किरणमयी ने कहा, "अपने घर, अपने सम्बन्धियों के पास। अपने उपेन्द्र भैया के पास। सभी तो तुम्हारे हैं।"

क्षण-भर चुप रहकर दिवाकर ने कहा, "जो कुछ मेरा है, वह मेरा नहीं है, यह तुम भी जानती हो। केवल उपेन्द्र भैया हैं। क्या तुम उनके पास लौट जाने को कहती हो ?" यह बात मुँह से निकालते हुए वह भीतर-ही-भीतर काँप उठा।

किरणमयी से भी यह छिपा नहीं रहा। मन-ही-मन क्रूर हँसी हँसकर बोली, "अच्छा तो है, उन्हीं के पास चले जाओ !"

कुछ समय तक दिवाकर चुप रहा। अनन्तर धीरे-धीरे बोला, "तुम उनको अच्छी तरह नहीं जानतीं। मैं भी नहीं जानता। शायद अच्छी तरह से जाने ही नहीं जा सकते, किन्तु बचपन से उनके पास रहने और उनके आदर-यत्न में लालित-पालित होने से कुछ-कुछ जान सका हूँ। उनके सामने जाकर खड़े होने की अपेक्षा मेरे लिए आग में कूद पड़ना आसान है।"

किरणमयी सहसा चकित हो उठी। घूमकर दिवाकर के मुख की ओर देखकर बोली, "क्यों, क्या ऐसे निष्ठुर हैं ? परन्तु इसमें तुम्हारा दोष नहीं है, यह समझाकर कह देने पर भी क्या वे तुम्हें दण्ड देंगे ? यह कभी नहीं हो सकता।"

किरणमयी के अचानक उत्साह की ओर दिवाकर का ध्यान नहीं था। दीवार पर चिमनी जल रही थी, उसकी ओर देखकर अनमने के समान उसने धीरे-धीरे कहा, "उनको कोई बात समझाकर नहीं कहनी पड़ती। न जाने

कैसे वे सब कुछ जान लेते हैं। अवश्य ही तुम्हारी तरह मैं यह नहीं सोच सकता कि यह जो काम मैंने किया है, इसमें मेरा दोष नहीं; किन्तु यदि तुम्हारी ही बात ठीक हो, यदि सचमुच ही मैं निर्दोष होऊँ तो जिस दिन उनके सामने जाकर खड़ा हूँगा उसी दिन वे सब कुछ जान लेंगे। उसी दिन मेरे विषय में वास्तविक निर्णय हो जाएगा। तुमने दंड की बात कही थी। कैसे जानूंगा भाभी कि वे क्या और कैसा दंड देंगे? कभी उन्होंने दंड दी नहीं, आज···" इसके आगे वह और कुछ बोल न सका। दोनों हाथों से आँखें ढँक चुप हो रहा।

किरणमयी ने कोई बात न की। दोनों आँखें फाड़कर वह उसके मुँह की ओर देखती रही। उसके भीतर की हलचल को केवल अन्तर्यामी ही जान सके।

दिवाकर क्षण-भर बाद अत्यन्त दुःखी स्वर में कहने लगा, "कभी मैं ठीक-ठीक नहीं कह सकता, आज भी मैं अपने मन की बात तुमसे न कह सकूँगा, किन्तु तुमसे यह अनुरोध करता हूँ कि उनकी बात न छेड़ो। शायद मुझे सब सह्य हो जाएगा, किन्तु उनके विषय की बातें कैसे सहूँगा?" कुछ ठहरकर वह फिर बोला, "दो दिनों से मैं केवल उन्हीं की बातें सोचता हूँ। जिस दिन हम लोग कलकत्ते से आए, उस दिन उन्होंने एक बार मेरे घर के बाहर खड़े होकर पूछा—'तूने अपनी किताबें जुटा लीं?' मैंने कहा 'हाँ।' इसपर उन्होंने केवल यही कहा था—'सावधानी से रहना और जब जिस वस्तु की आवश्यकता हो, मुझे लिखना—समझा!' कहकर ही मेरे पाँवों के पास नोटों का एक बण्डल फेंककर वे चले गए थे।"

उसने जरा चुप रहकर फिर कहा, "केवल इसी से मैं चिन्तित रहता हूँ। मैंने जो दण्ड उनको दिया है, उसकी तुलना में वे मुझे जितना और जैसा भी दण्ड देंगे, थोड़ा ही होगा।"

दिवाकर की आँखों से टप-टप आँसू टपकने लगे। दिवारगीर के पास स्वच्छ प्रकाश में वे चमक उठे और किरणमयी पत्थर की मूर्ति के समान चुपचाप देखती रही।

क्षणभर बाद दिवाकर ने कोट की आस्तीन से आँसू पोंछ डाले और गम्भीर कण्ठ से कहा, "कल तुमने कहा था कि उपेन्द्र भैया का सिर नीचा

कर दोगी। उस रात को तुम लोगों में क्या बातें हुई थीं, जिससे ऐसी बातें कहीं, यह मैं अभी तक समझ न सका हूँ। तुम्हारा तात्पर्य चाहे जो हो, किन्तु सिर नीचा करने का दुःख कितना अधिक होता है, यह बात यदि तुम जानती होतीं तो ऐसी बात मुँह से न निकालतीं। इसके अलावा उनका सिर यदि नीचा हो जाएगा, तो क्या इससे हम लोगों के सिर ऊँचे रहेंगे? तुम वह प्रयत्न न करो। जब तक वे स्वयं सिर नीचा कर हम लोगों की ओर न देखें तब तक उनका सिर नीचा कर देने की शक्ति विधाता में भी नहीं है, आज मैं तुम्हें यह बात साफ ही बता देना चाहता हूँ।"

किन्तु कुछ भी बतलाने की आवश्यकता न थी। किरणमयी स्वयं सब कुछ जानती थी, इसलिए अब तक वह मौन रहकर ध्यान से उसकी बातें सुन रही थी। बात पूरी होते ही वह स्वप्न से जगे की तरह बोल उठी, "क्या तुम उनके प्रति सचमुच ऐसी भक्ति करते हो बाबू?"

भक्ति! यह कैसा अनोखा प्रश्न है!

दिवाकर हतबुद्धि के समान कुछ क्षण किरणमयी के चेहरे की ओर देखता रहा, फिर हाथ जोड़ और उन पर सिर झुकाकर धीरे-धीरे बोला, "भक्ति तो उनकी सभी करते हैं।"

फिर आलोचना बन्द हो गई थी। समस्त तर्क-वितर्क वाग्-वितण्डा, समाज और संसार की भलाई-बुराई, व्यष्टि और समष्टि का अधिकार, अपना और पराया, सुख-दुःख आदि सबका मानो एकाएक क्षणभर में अन्त हो गया।

दो प्रतिकूल प्रकृतियाँ रात के उस मध्य भाग में अचानक किसी अदृश्य आकर्षण से एक ऐसी जगह आ मिलीं, जहाँ विरोध न था, जहाँ बोलने की अपेक्षा, सुनने और समझने की अपेक्षा, सोचने की इच्छा ही प्रबल हो उठती है, जहाँ बुद्धि काम नहीं देती, अनुभव करना पड़ता है और जहाँ बोलते नहीं बनता, चुपचाप मनन करना पड़ता है। वहाँ जाकर दोनों हृदय लबालब भरकर स्थिर हो रहे और जिस सन्धि की आशा इसके पहले नष्ट हो गई थी, उसका विचार कर दिवाकर मन-ही-मन दुःखित हो रहा था, वही सन्धि अपना दल-बल सब साथ लेकर किसी सुनसान मार्ग से चुपचाप लौटकर आ विराजने लगी थी। दोनों में से किसीका भी ध्यान इधर नहीं गया।

नींद टूटने पर दिवाकर ने देखा कि सोई हुई किरणमयी का एक हाथ कल के समान आज भी छाती पर पड़ा हुआ है और यद्यपि वह पारिजात की माला का भ्रम पैदा न कर सका, तथापि वह कल के समान आज सर्प का धोखा भी न पैदा कर सका, बल्कि उठकर बाहर आते वक्त वह उस हाथ को प्रसन्न चित्त से, ममता के साथ बिस्तर पर रख आया।

सवेरे किस समय दिवाकर बिस्तर से उठ गया था, यह किरणमयी जान न सकी थी। इससे नींद टूटते ही वह दिवाकर के लिए बेचैन हो उठी। कल रात को बातों-ही-बातों में किरणमयी अनेक बातें जान गई थी। दिवाकर सचमुच निस्सहाय है और उपेन्द्र बाबू से पृथक् होना उसके लिए कितना दुःखद है, यह जब से किरणमयी निःसंशय रूप से समझ सकी है, तब से वह अपने एकान्त अन्तस्थल में जरा भी शांति न पाती थी। इस सरल, विनीत, सत्यवादी और सच्चरित्र युवक को उसके जीवन के आरम्भ में ही बिना कारण ब्रह्मचर्य-भ्रष्ट कर देने का अपराध निद्रावस्था में भी चुभता था। इसी से नींद टूटते ही उसने नए स्नेह के साथ दुःखी मन से उस निरपराध अभागे की ओर पहले ही मुँह फेरा। पर दिवाकर नहीं था। बाहर ढूँढ़ा, पर वह दिखाई न दिया। जहाज के खलासी को बुलाकर ढूँढ़ने को कहा, पर उसे भी न मिला।

उसी समय से किरणमयी उत्कण्ठा में बहुत दूर से आई हुई मृदुमदिर गंध समान एक स्पष्ट आनंद का आभास पा, उसका हृदय आनंद से पुलकित हो रहा था।

जिस तुच्छ दिवाकर ने उससे किसी दिन प्रेम नहीं किया, जो किसी दिन मन से प्यार न कर सका, बुद्धि-विपर्यय के कारण उसी के साथ घर करना होगा? प्रेम का अभिनय करना होगा? जब से वह जहाज पर चढ़ी है, तभी से उसके मन के तारों को यह ग्लानि ठोकरें मार-मारकर झंकृत कर रही है और झंकार को भगवान् के सिवा दूसरा कोई भी सुन नहीं सकता था।

उस ग्लानि का कहीं पता नहीं था। इस बनावटी प्रेम का सूत्र एक-न-एक दिन टूटेगा ही, यह लुका-छिपी एक-न-एक दिन अत्यन्त अरुचिकर सिद्ध होगी।

डॉक्टर अनंगमोहन ने इस बात की शिक्षा उसे अच्छी तरह दी थी। उस बुरे दिन का, उस बुरी सायत में घृणा की जो फाँसी उसके गले में धँस-बैठ जाएगी, उसे वह किस शस्त्र से काटेगी, यह दुश्चिन्ता उसको सोते-जागते उठते-बैठते दुःख दे रही थी। किन्तु कल अँधेरी रात में, उपेन्द्र के सिंहासन के नीचे बैठकर संधि-पत्र पर जब दोनों के हस्ताक्षर हो गए, तब उसकी मानो नींद टूट गई और इस नादान युवक के लिए करुणा से वह इधर जिस तरह व्यथित हो उठी थी, उसी प्रकार उधर अवश्यम्भावी घृणा की विभीषिका से मुक्ति पाकर वह एक लम्बी साँस भरकर शान्त हो गई थी।

सन्नाटों-भरे कमरे में बैठ ठंडी सांस छोड़ती हुई वह बार-बार कहने लगी, 'अब मुझे कोई डर नहीं। जिससे प्रेम न कर सकूँगी, प्यार के साथ कम-से-कम उसके मन की कालिमा तो कुछ अंशों तक पोंछ अवश्य सकूँगी।' तथापि उस मन में एक भय होने लगा, वह यही कि यदि बाद को दिवाकर अग्नि का प्रलोभन सँभाल न सके और पतंगे के समान जल भरने के लिए उठ खड़ा हो, तब क्या होगा? उसके रूप के आकर्षण में कैसी बलवती शक्ति है, यह उसे मालूम था।

उसे मृत स्वामी की कथा याद आई। वह शुष्क, कठोर, विद्या का मूर्तिमान अभिमान, जो विज्ञान की मजबूत चहार-दीवारी से अत्यन्त सावधानी के साथ दिन-रात अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करते रहते थे। उसके पास तो वह एक दिन भी न जा सकी थी—तब भी दिन कटे थे। लिखने-पढ़ने, रसोई बनाने, सास की बकझक सहने, घर के काम-काज करने में ही बीत जाता था, रात में भविष्य के विरुद्ध, आत्मा के विरुद्ध लड़ाई लड़कर, नालिश-फरियाद कर, ग्लानि उगलकर और ताने मार-मारकर, कमरे की दीवारों तक को गालियों के विष से भरकर थक जाने पर किसी वक्त सो जाती; फिर सवेरा होता, फिर रात आती, इस तरह महीने-पर-महीने, साल-पर-साल बीत गए थे, कोई भिखारी कभी द्वार पर भीख माँगने न आया, किसी पड़ोसी ने भी कभी नहीं पूछा कि कैसी हो? एक दिन के लिए भी सूर्य की किरणों ने कभी उस मकान में प्रकाश नहीं किया, एक क्षण के लिए आकाश की वायु ने रास्ता भूलकर भी भीतर प्रवेश न किया। तब भी दस वर्ष बीत गए थे, माँ-बाप की बात तो याद नहीं आती, केवल स्मरण है, कि

बचपन में कालना के पास एक छोटे गाँव में रहने वाले दुखित मामा के घर से बहू के वेश में निकल, उसने उस घर में प्रवेश किया था। स्वामी ने छोटी-सी छात्रा के समान उसे ग्रहण किया। उस समय से मरते समय तक गुरु-शिष्य का वह कठोर सम्बन्ध कभी टूटने न पाया। स्वामी ने एक दिन भी आदर नहीं किया, प्यार करते हैं या नहीं, यह बात भी किसी दिन नहीं कही।

बंगला, संस्कृत और अंग्रेजी पढ़ाते थे। पाठ कंठस्थ न करने पर अपमान करते थे, मारते भी थे। क्रोध या मान करने पर कभी मनाते न थे। रोते-रोते सो जाने पर किसी दिन खिलाते भी न थे, यही उसके वधू-जीवन का इतिहास है।

सास की परीक्षा और भी भयानक थी। उनके निकट बहुत ही छोटी मामूली-सी भूल के लिए भी क्षमा न भी। अघोरमयी ने रसोईघर की लकड़ी और सँडसी से लेकर जलती हुई लकड़ी तक का चिह्न इस छोटी बहू के शरीर में अंकित कर दिया था।

एक दिन एक अपराध के दण्ड-स्वरूप उसके सिर के सब बाल काट दिए थे। दुःख और अभिमान से जब वह रसोईघर के कोने में मुँह ढँककर फूट-फूटकर रोने लगी तब पीठ पर जलती लकड़ी से मारकर चुप होने की आज्ञा दी थी। पीठ जल गई थी, घाव के अच्छे होने में एक महीना लगा था।

आज एकाएक मानो वह घाव फिर ताजा हो आया। किरणमयी कुछ क्षण के लिए चंचल हो फिर स्थिर होकर बैठ गई।

कब किशोरावस्था पारकर उसने युवावस्था में पाँव रखे, यह उसे याद नहीं आया। इसकी याद दिलाने के लिए कोई स्मृति अवशेष न रह गई थी। शायद उषा के समान वह चुपचाप प्रभात के उज्ज्वल प्रकाश में खिल उठी थी।

यौवन में जब शरीर सौंदर्य पूर्ण होने लगा तब वह स्वामी के साथ सूक्ष्म विचार में व्यस्त हो रही थी। क्यों उसकी शैशवास्था पूरी हो गई, क्यों वह गृहिणी हो चली, यह बात एक बार भी सोचने का उसे अवसर न मिला।

स्वामी ने कहा था, "सुख ही जीवन का एकमात्र लक्ष्य है और सब उपलक्ष्यमात्र हैं। दया, धर्म, पुण्य···ये सब उपलक्ष्य हैं। इस लोक की हो या

परलोक की, अपनी हो या पाँचों पंचों की, स्वदेश की हो या विदेश की, किस प्रकार से सुख की समष्टि बढ़ाई जा सकती है, यही जीव का कर्म है, और जानकर हो या बिना जाने, इसी चेष्टा में जीव का तमाम जीवन समाप्त होता है। यही एकमात्र ऐसा तुलादण्ड है जिससे सब भले-बुरे का वजन किया जा सकता है। किरण, तुम इसे समझने का प्रयत्न करना कि इससे सुख की मात्रा बढ़ती है या नहीं।"

किरण ने कहा, "ठीक ऐसा ही करूँगी। किन्तु कैसे जानूँगी कि मेरे कामों से लोगों के सुख की समष्टि बढ़ती है? सबके निकट सुख का स्वरूप तो एक जैसा नहीं होता?"

क्षणभर तक हारान ने अपनी ज्योतिहीन दृष्टि से छत की मैली, काली कड़ियों की ओर देखकर कहा, "टुकड़े-टुकड़े कर देखने से एक नहीं मालूम होता, किन्तु समग्र भाव से एक है। तुमको इस पर विचार करना चाहिए।"

किरणमयी के निकट सुख का कोई रूप ही स्पष्ट नहीं था। वह असहिष्णु होकर बोल उठी, "टुकड़े-टुकड़े कर या समग्र-भाव से आदि शब्द केवल कहने के लिए बने हैं। अपने को कैसे सुख मिलता है, विशेषकर इतना ही मनुष्य समझ सकता है। वह भी सब समय और सब अवस्थाओं में नहीं, जब अपने सम्बन्ध में ही मनुष्य भूल जाता है, तब संसार का उत्तरदायित्व लेने का जिसे साहस हो उसे हो, मुझे तो नहीं होता। उस पार के जूट-मिल वाले शायद सोचें कि यदि सम्भव हो तो काशी के सब मन्दिरों को तोड़कर जूट की मिल खड़ी करने से मनुष्य का सुख बढ़ेगा, किन्तु क्या सब लोग ऐसा ही सोच सकते हैं? सुख क्या वस्तु है, यह जब तक मुझे न समझा सकोगे, तब तक मैं कोई बात न सुनूँगी।"

किरणमयी को उठते देखकर, हारान हाथ पकड़कर कहते थे, "जरा बैठो तो सही, इतना पढ़-लिखकर भी यदि तुम इतने में ही अप्रसन्न हो गई, तो सब व्यर्थ गया। देखो किरण, मैं तुमसे सच कहता हूँ, सुख क्या चीज है, मुझे मालूम नहीं, किसी देश में किसीको मालूम था, यह भी मुझे मालूम नहीं। शायद वह जाना ही नहीं जा सकता। हमारे देश में बहुत पहले दुःख-निवृत्ति की चेष्टा तीन प्रकार से हुई है, उन तीनों को पृथक् करने पर जो बचा रहता है, वही सुखी है, कहने से भी काम नहीं चलता।"

किरणमयी इन सब बातों को संतोष से सुन भी नहीं सकती थी। वह अधीर हो उठती, "जब कुछ भी कहने से काम नहीं चलता है तब किसीके सुख-कल्पना का परिहास करना जैसा असंगत है, साधारण भाव में संसार के सुख-परिमाण बढ़ाना भी वैसा ही पागलपन है। भला-बुरा तौलने के पहले तुम्हारे तुला-दंड का ठीक होना आवश्यक है। उसे तुम किस आदर्श पर ठीक करोगे, मैं यह नहीं समझ पाती !"

क्षणभर चुप रहकर हारान कहते, "किरण, जानता हूँ तुम्हारे मन की गति किस ओर झुकी है। किन्तु जब तक तुम काल की कल्पना, आत्मा की कल्पना, ईश्वर की कल्पना आदि झगड़ों को मन से हटा न सकोगी तब तक तुमको संशय रहेगा ही, सुख ही जीवन की चरम सार्थकता है, समझकर भी न समझोगी। केवल मन में यह बात उठती रहेगी कि शायद और कुछ है। और 'इस' और भी 'कुछ' का पता खोजने से भी नहीं मिलेगा। तुम में इच्छा जगाएगा किन्तु सन्तोष न देगा, मार्ग की कहानी कहेगा किन्तु कभी मार्ग न दिखा सकेगा।"

इसी प्रकार शिक्षा और गृहस्थी में पड़कर किरण छोटी-सी बालिका से समझदार औरत वन गई थी।

आज एक-एक कर सब बातें याद आने लगीं। उसकी चिन्तन की धारा जब वर्तमान दुःख को लाँघकर बहुत दूर निकलकर बीते दिनों के अगाध-अतुल दुःखरूपी सागर में धँसी जा रही थी, इसी समय कहीं से दिवाकर सूखा-सा मुँह लिए केबिन के भीतर आया। उसको देखते ही किरणमयी के दुःस्वप्नों का नशा पलभर में विलीन हो गया। वह अपने चेहरे को प्रेमभरी मुस्कराहट से खिलाकर उपलंभ के स्वर में बोली, "बात क्या है बाबू ? किस फिराक में घूम रहे हो। खाना-पीना नहीं ? वाह, अच्छे आदमी हो तुम !"

आज दिवाकर उसके कंठस्वर से एकाएक चौंक पड़ा। मानो उसने कभी भाभी का ऐसा कंठस्वर सुना ही नहीं। उस स्वर में द्वेष या आक्षेप की अग्नि नहीं थी, जो स्वर वास्तव में प्रेम के दुःख से कोमल होकर निकलता है, मनुष्य के कान वहाँ भूल नहीं करते, किसी तरह उसे पहचान लेते हैं।

दिवाकर मौन रहा।

फिर मुस्कराते हुए किरणमयी ने कहा, "सुबह से अब तक कहाँ थे बाबू ?"

दिवाकर ने धीरे से कहा, "नीचे।"

"नीचे ? इतनी देर तक क्यों बैठे रहे ? एक बार ऊपर आकर जरा कुछ खा-पी जाने का भी अवकाश नहीं मिला ?"

दिवाकर टकटकी बाँधकर देखता रहा। मुँह से एक शब्द भी न निकाला।

किरणमयी ने फिर पूछा, "हाँ तो नीचे क्या करते थे ?"

उसके मुह पर वही स्वच्छ प्रेमपूर्ण हँसी थी, स्वर में वही मधुरता थी, जिसे कलकत्ते में आकर और पहले दिन पाकर दिवाकर कृतार्थ हो गया था।

आनन्द से उसकी आँखों में आँसू भर आए, पर उसने किसी प्रकार आँसुओं को रोककर कहा, "भाभी, नीचे एक बंगाली अपनी स्त्री के पास अराकान जा रहा है, वहीं उसका घर भी है…"

किरणमयी ने उत्सुक होकर पूछा, "क्या कहा ?"

दिवाकर ने कहा, "सच कहता हूँ, वे लोग मुझे तो भले आदमी ही जान पड़ते हैं…"

किरणमयी बीच में ही बोल उठी, "ऐसा है तो हम दोनों भी उनके घर जाकर ठहर सकते हैं। उस स्त्री के साथ बातचीत करने का अवसर नहीं मिल सकता ?"

दिवाकर ने प्रसन्न होकर कहा, "क्यों नहीं ? मकानवाली भी तुमसे मिलना चाहती थी।"

किरणमयी ने आश्चर्यचकित होकर पूछा, "मकानवाली कौन ?"

दिवाकर ने कामिनी दासी का संक्षिप्त परिचय देकर कहा, "हरीश बाबू अपनी स्त्री को इसी नाम से पुकारते हैं क्योंकि उनका एक मकान भी है।"

किरणमयी मौन रही क्योंकि किराये पर मकान देने के कारण जो औरत मकानवाली कहलाती है, उसकी गणना अच्छे घर की स्त्रियों में नहीं होती। इसीसे दिवाकर जब उसको साथ लाने के लिए तैयार हुआ, तब

किरणमयी ने मुस्कराकर संदिग्ध भाव से पूछा, "वे भले आदमी तो हैं बाबू ?"

सिर हिलाकर उत्साह के साथ दिवाकर ने कहा, "हाँ-हाँ, अच्छे आदमी हैं। एक बार बातचीत करके···"

किरणमयी बोली, "ना, आज रहने दो, और किसी दिन···"

दिवाकर, "ना भाभी, तुम्हारे पाँव पड़ता हूँ, वह यहाँ आना चाहती है। जब उसके घर जाकर ठहरना ही होगा तो उसे बुला लाता हूँ···" कह कर दिवाकर अधीर हो खड़ा हुआ और साथ-ही-साथ उसकी आँख, मुँह और कंठस्वर के अन्दर से प्रेम-भरी हठ किरणमयी की भूल को मानो आग में तपाई हुई बर्छी बनाकर उसके हृदय को बेध दिया। वह प्रबल वेग की लहर अंग-अंग में फैल गई।

किरणमयी ने आँखों में आए हुए आँसुओं को छिपाने की गरज से मुँह घुमाकर दबी हुई आवाज में कहा, "अच्छा तो जाओ !"

बात सच है, किसी अज्ञात-अनजाने स्थान को जाते समय यदि कोई साथी मिल जाता है, तो बड़े सौभाग्य की बात मानी जाती है। अन्त में यही सोचकर शायद वह दिवाकर के कहने को टाल न सकी थी, किन्तु जब वह सचमुच ही उसे बुलाने के लिए शीघ्र ही पाँव बढ़ाता हुआ बाहर निकल गया तो अपनी अवस्था की बात सोचकर किरणमयी के मन में एक अनोखा झमेला खड़ा हो गया। वह अब शीघ्र आ पहुँचेगी, बंगाल की स्त्री है, अवस्था प्रौढ़ है, शायद उसकी आँखों को धोखा न दिया सके। दिवाकर और मेरी उम्र में जितना अन्तर है उतना अन्तर बंगाली समाज में पति-पत्नी में नहीं हुआ करता, क्या यह बात उसकी आँख में खटके बिना रह सकेगी ? इसी एक बात का विचार कर किरणमयी अत्यन्त दुःखी हो उठी।

दिवाकर के पीछे-पीछे तुरन्त ही वह मकानवाली आ उपस्थित हुई। उसकी ओर आँखें उठाते ही किरणमयी समझ गई कि यह भले घर की स्त्री नहीं है। कलकत्ते में दासी का काम करने के लिए जो स्त्रियाँ घूमती-फिरती हैं, यह उन्हीं की श्रेणी की है।

किरणमयी के हृदय से एक बोझ-सा उतर गया, उसने मुस्कराते हुए कहा, "आओ बैठो !"

रूप देखकर मकानवाली क्षणभर स्तब्ध हो खड़ी रही।

अनन्तर गले में आँचल डाल, झुककर प्रणाम किया और दरवाजे के पास बैठकर कहा, "बाबू से आपकी बात सुनकर मकानवाले ने कहा कि जा देवीजी को प्रणाम तो कर आ। आप बदमाशों के देश में जाती हैं सही, किन्तु ऐसा कोई माँ का लाल नहीं जो कामिनी दासी के मकान में जरा भी छेड़छाड़ करे, कोई चूँ तक करेगा तो झाड़ू मारकर उसका विष उतार दूँगी ?" यों कहकर झाड़ू के स्थान पर उसने अपना हाथ ऊँचा उठाकर हिला दिया।

किरणमयी खुशी जाहिर करती हुई बोली, "अब निश्चिन्त हुई। नई जगह जाने में वास्तव में बहुत भय मालूम होता था, हम दोनों इस विषय में कितनी ही बातें सोच-विचार रहे थे।"

मकानवाली ने कहा, "डर क्या है? कामिनी दासी का मकान डकसाइड में है। इतना सुनते ही यमराज भी रास्ता छोड़ देगा। वहीं चलो, तुमको कोई दुःख न होगा। किराया केवल पाँच रुपया है, पर तुम चार ही रुपया देना। फिर बाबू की नौकरी-चाकरी लगने पर देखा जाएगा। और इसके लिए कोई सोच न करो बहू ! मेरा मकानवाला जिस साहब को पकड़ेगा, वह फिर 'ना' नहीं कर सकेगा। तुम्हारे आशीर्वाद से हम लोग ऐसा-वैसा मान नहीं रखते।" यह कह कामिनी दासी ने होंठ फैलाकर गर्दन को दाहिने-बायें हिलाया।

एक साँस भरकर किरणमयी ने कहा, "भगवान् तुम लोगों का भला करे !"

उसके चेहरे पर मकानवाली की तीव्र दृष्टि पड़ी। वह देखकर बोली, "यह क्या बात है बहू ! सिर ऐसा धोया है कि माँग में सिन्दूर का जरा भी चिह्न न रह गया है ? सिन्दूर की डिब्बी दो, माँग भर दूँ। सुहागिन स्त्री को क्या इस प्रकार रहना चाहिए ?"

किरणमयी इसके लिए सवेरे से ही प्रस्तुत थी। बायाँ हाथ दिखाकर कहा, सिर धोने से सिन्दूर नहीं धुला है। मेरा चढ़ाया हुआ सिन्दूर एक साल से कालीजी के पैरों में बँधा हुआ है। उस साल बाबू के प्राणों की आशा न थी। सिन्दूर चढ़ाकर इन चूड़ियों की रक्षा कर सकी हूँ।" कहकर उसने एक

लम्बी साँस ले, दिवाकर की ओर कनखियों से देखा। उसका चेहरा लज्जा से बिलकुल पीला हो गया था।

"ओ यह बात है ?" कहकर मकानवाली से सहानुभूति प्रकट की। "तो हमारे अराकान में भी कालीजी का मन्दिर है। पहुँचते ही पूजा चढ़ाकर सिन्दूर वन्धक से छुड़ा लेना बहू, नहीं तो क्या जाने कौन क्या सोचे और क्या कहे ? अराकान जैसा बुरा स्थान शायद तीनों लोक में कहीं नहीं है। पर हमारे भय से सभी गुंडे-वदमाश थरथर काँपते रहते हैं। नहीं तो…।"

किरणमयी ने मुस्कराते हुए कहा, "यही सब बातें तो आज दो दिनों से बाबू से हो रही हैं। तुम लोगों की जितनी बड़ाई की है, वह तुम्हारे सामने क्या कहूँ। जबसे जहाज पर हमने पैर रखे हैं, तभी से मारे भय के प्राण सूखे जा रहे थे। न जाने वहाँ…"

बात पूरी भी न होने पाई, "भय क्या है बहू !" कह और अभय दान देकर मकानवाली ने अपनी प्रशंसा की झड़ी लगा दी और देखते-देखते दोनों की घर-गृहस्थी की, सुख-दुःख की कहानी ऐसी जमी कि उसे देखकर कोई यह नहीं कह सकता था दस मिनट पहले तक इन दोनों की आपस में जान-पहचान तक न थी।

दिवाकर आते ही पास की कुर्सी पर बैठ गया था।

किरणमयी कितनी झूठी बातें बना-बनाकर विना रुकावट के और कैसी ढिठाई और सफाई के साथ बोल सकती है, यह देख-सुनकर उसे काठ-सा मार गया। वहुत देर के बाद एकाएक मानो होश में आकर वह बाहर जाने लगा। यह देखकर किरणमयी बोल उठी, "सारा दिन बीत गया, अभी तक खाया-पीया नहीं और फिर बाहर जाते हो ?" उत्तर में दिवाकर ने क्या कहा, सो उसने सुना भी नहीं पर समझ गई।

किरणमयी ने व्यस्त होकर कहा, "ना-ना, यह न होगा। मैं भली-भाँति जानती हूँ, तुम बाहर जाओगे तो शीघ्र ही न लौटोगे !" मकानवाली के चेहरे की ओर देखकर मुस्कराते हुए उसने कहा, "मेरे सास-ससुर नहीं हैं, इसी का बड़ा दुःख है। खिलाने-पिलाने के लिए बहुत आरजू-मिन्नतें करनी पड़ती हैं।" फिर कुछ रुककर मुस्कराकर बोली, "मैं ही ऐसी हूँ कि बरबस

खिला-पिला देती हूँ, और कोई औरत होती तो उसके दिन रोते और उपवास करते ही बीतते।"

दिवाकर का सिर लज्जा से एक बारगी झुक पड़ा।

मकानवाली हँसकर बोली, "हां बाबू, क्या इसी प्रकार दोनों विदेश जाकर गृहस्थी चलाओगे! किन्तु मेरे मकान में रहकर यह न हो सकेगा। बहू को तुम कष्ट न दे सकोगे, यह मैं अभी से बताए देती हूँ।"

किरणमयी के मुँह की ओर देखकर वह एकाएक पूछ बैठी, "बाबू शायद आयु में तुमसे बड़े नहीं हैं, दोनों की आयु समान ही दिखाई देती है?"

किरणमयी ने सिर हिलाकर मुस्कराते हुए कहा, "कुलीन का घर ठहरा! मैं आयु में बड़ी नहीं हुई, यही मेरा अहोभाग्य है! दोनों एक ही आयु के हैं। उनका जन्म वैशाख में और मेरा जन्म आषाढ़ में हुआ। यही दो महीने की छोटाई-बड़ाई है। पर बहुत से लोग मुझी को आयु में बड़ी ठहराते हैं। कैसी लज्जा की बात है!" कहकर किरणमयी मुँह बन्द कर हँसने लगी।

पर मकानवाली ने मुस्कराने में उसका साथ नहीं दिया, बल्कि गम्भीरतापूर्वक कहा, "सुनती हूँ, कुलीन के घर लज्जा की क्या बात! दस साल के वर के साथ पचास वर्ष की बूढ़ी का ब्याह हो जाता है, इसके लिए कोई बात नहीं। अराकान पहुँच, पूजा देकर सिंदूर अवश्य पहन लेना, नहीं तो सुहागिन नहीं जान पड़ती हो। अब जाती हूँ, तुम लोग खाओ-पीओ। समय मिला तो रात को फिर आऊँगी।"

फिर मकानवाली किरणमयी के पाँवों की धूल सिर पर चढ़ाकर उठ खड़ी हो गई।

सैंतीस

सतीश के एकान्तवास की व्यवस्था यद्यपि आज भी वैसी ही है लेकिन उसके उस वैराग्य-साधना की धारा इसके मध्य ठीक मार्ग से हटकर कितनी

दूर चली गई है, यह बात जिस किसी ने उसे दो महीने पूर्व देखी है, उसी की दृष्टि में पड़ जाएगी।

जो मनुष्य अपनी इच्छा से निर्वासन का दण्ड ग्रहण कर इस स्वजन-शून्य स्थान में अकेले रहने के लिए आया है, उसका एकाएक वेशभूषा के प्रति प्रेम बढ़ जाने का कारण क्या है और किसलिए पक्षियों के गान के बदले में उसकी अपने गाने की पुस्तक फिर पेटी के अन्दर से निकल पड़ी है और सारंगी, सितार, बाँसुरी आदि बाजे क्यों अपने-अपने अनादृत स्थान को छोड़कर फिर पुराने मित्रों की भाँति मेज के ऊपर आ जमा हुए और उसके मुख की वह मलिन छाया भी किस प्रकार अचानक नष्ट हो गई, यह सब विचारणीय बातें हैं।

दो-तीन महीने पहले सतीश और इस समय के सतीश में वास्तव में इतना अन्तर हो गया है कि एकाएक उसको पहचानना भी कठिन हो गया है।

परन्तु इस इतने बड़े अनोखे परिवर्तन का कारण खोलकर न बताने से भी शायद काम चल सकता था लेकिन केवल वही भय हो रहा है कि कहीं सन्थाल परगने की असाधारण आबोहवा अच्छी समझकर कितने मूर्ख लोग उस ओर दौड़ न पड़ें।

तव इतना ही बता देना जरूरी है कि यद्यपि किसी ओर से विवाह का प्रस्ताव अभी तक स्पष्ट रूप से उठाया नहीं गया है फिर भी आत्मीयस्वजनों के निकट सतीश-सरोजिनी के मन की बात स्पष्ट हो जाने में कुछ भी शेष नहीं था।

सरोजिनी की माँ जगत्तारिणी की इच्छा ही इस विषय में सबसे सबल है, यह बात एक वर्ष पूर्व कलकत्ते में ही मालूम हो गई थी। लेकिन आग्रह और व्याकुलता के अधिक रहने के कारण ही सम्भवतः केवल जगत्-तारिणी के मन में ही इस संदेह की एक छायामात्र पड़ी थी कि उनकी शिक्षाभिमानिनी कन्या, पुराने समाज और संस्कारों को अच्छा न समझकर सतीश को ग्रहण करने की इच्छुक होगी या नहीं।

अभी थोड़े दिन हुए, वे अपने नैहर शान्तिपुर गई थीं। जाते समय वे इस बात का संकेत कर गई थीं कि वहाँ से लौटते ही वे यह बात पक्की कर देंगी।

सवेरे सतीश बेंहले पर नया तार चढ़ा रहा था। उसी समय बिहारी के साथ एक भले आदमी आ गए। ये ज्योतिष के घर के मुनीम थे। जगत्-तारिणी के साथ वे शान्तिपुर गए थे, फिर उनके साथ ही लौट आए हैं।

मुनीम ने नमस्कार करके कहा, "माँजी ने आपको निमन्त्रण भेजा है। वहीं भोजन करना पड़ेगा।"

यह सूचना पाकर सतीश की छाती का खून उछल उठा, उसने पूछा, "वे कब लौटीं?"

मुनीम ने कहा, "आज तीन दिन हुए।"

प्रायः छः-सात दिनों से सतीश उस ओर गया ही नहीं था। अपने सम्बन्ध की बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाने के बाद से ज्योतिष बाबू के घर जब-तब जाने में उसे लज्जा जान पड़ती थी।

उसने कहा, "अच्छा आप माँजी से कह दीजिएगा, मैं दस-ग्यारह बजे के भीतर ही आ जाऊँगा।"

"जैसी आज्ञा!" कहकर वह आदमी नमस्कार करके चला गया।

सतीश को निमन्त्रण भेजकर भी जगत्तारिणी भोजन का कोई उद्योग न करके ही निश्चिन्त थीं क्योंकि उनकी धारणा थी कि सतीश साँझ के पहले न आवेगा। अब मुनीम के मुँह से यह समाचार सुनकर वे घबरा गईं और प्रसन्न भी हो उठीं।

आज एकादशी थी। उनको अपने लिए कोई तैयारी करने की आवश्यकता नहीं थी। और जो विधवा ब्राह्मणी उसके घर रसोई पकाती थी, वह भी दो दिनों से शान्तिपुर में ही मलेरिया ज्वर से बीमार पड़ गई थी।

उन्होंने बहुत ही झुँझलाकर मुनीम से कहा, "तुम इस समय के लिए निमन्त्रण क्यों दे आए? तुमको क्या जरा भी बुद्धि नहीं है?"

मुनीम ने डरते हुए कहा, "मैंने तो कहा नहीं, उन्होंने स्वयं ही इस समय आने की बात कही थी।"

तब जगत्तारिणी ने क्रोध करके कहा, "तो तुम ही जाओ, देखो मछली कहाँ मिलती है, जाकर शीघ्र ही खरीद लाओ!"

आज सवेरे ही जिस लिए उनका मन बिगड़ गया था उसका कारण था।

सतीश के पास निमन्त्रण भेजने के बाद ही उनको समाचार मिला कि कल रात को सहसा शशांकमोहन फिर आ पहुँचे हैं। इस आदमी को उसके अंग्रेजी चाल-ढाल के कारण वे किसी दिन अच्छी दृष्टि से नहीं देखती थीं और विशेष रूप से उन्होंने सुना था कि वह सरोजिनी से विवाह करना चाहता है, तभी से वह मनुष्य उनकी दोनों आँखों का काँटा-सा बन गया था।

बीस दिन पूर्व जब वह किसी काम के बहाने कलकत्ते से यहाँ आया था तब जगत्तारिणी ने उससे एक प्रकार से स्पष्ट रूप से कह दिया था कि उनकी कन्या के साथ उसका विवाह होना असम्भव है। तो भी, यह निर्लज्ज बिना सूचना दिए ही फिर आ गया है, सुनकर उनका चित्त भय से त्रस्त हो उठा था। इसके अलावा यह समाचार कुछ पहले ही मिल गया होता तो वे शायद सतीश को निमन्त्रण ही नहीं भेजतीं। क्यों यह सूचना ठीक समय पर उनको नहीं दी गई, इसके लिए वह ज्योतिष से लेकर घर के नौकर तक पर बिगड़ पड़ी थीं।

सरोजिनी बाहरी बैठकखाने से निकलकर किसी प्रकार माँ की दृष्टि से बचकर ऊपर चली जा रही थी—शशांकमोहन के आने का समाचार वह भी नहीं जानती थी; लेकिन जगत्तारिणी ने उसे सिर से पैर तक क्षणभर निरीक्षण किया और क्रोध के स्वर से कहा, "घूमना हो गया न ? अब जूता-मोजा तो थोड़ी देर के लिए खोल डालो बेटी। सतीश आज यहाँ खाएगा, मैं स्वयं रसोई न पकाऊँगी तो वह तुम्हारे इस क्रिस्तान के घर में पानी तक भी न छूएगा। जाओ, घंघरे-टंगरे को उतारकर मेरे रसोईघर में आओ। बूढ़ी माँ की जरा सहायता करने से तुम्हारे ईसा मसीह अप्रसन्न न होंगे बेटी, आओ।"

क्रोध में आने पर माँ किस प्रकार उग्रता की मूर्ति-सी बन जाती थीं और सच-झूठ की सीमा लाँघकर जो मुँह से निकलता था, बोल जाती थीं, यह बात किसी से छिपी नहीं थी। सरोजिनी ने कुण्ठित होकर कहा, "मैं अभी आती हूँ माँ।"

इससे भी माँ का क्रोध शान्त नहीं हुआ।

उन्होंने कहा, "आकर ही क्या मुझे निहाल कर दोगी बेटी ! सत्रह-अट्ठारह साल की आयु हो गई, आज तक थोड़ा-सा भात पकाना भी नहीं

सीखा। मैं भी गरीब घर की लड़की नहीं थी बेटी, लेकिन उसी आयु से गृहस्थी चलाती आ रही हूँ। यदि वह ब्राह्मण आज चला जाए, तो मुझे खाना न मिलने से मर जाना पड़ेगा। जिस घर में धर्म-कर्म नहीं है, उस घर में लड़के-लड़कियों का पैदा होना ही व्यर्थ है !" इस कठोर मंतव्य को अत्यन्त कड़े स्वर से कह करके जगत्तारिणी मुँह झुकाकर स्वयं ही रसोई-घर में चली गईं। लेकिन क्यों उनको अपने लड़के-लड़की पर और घर के आचार-व्यवहार पर यह हृदय से क्रोध है, यह बात उनके पहले इतिहास से कुछ समझ में आ जाएगी।

जगत्तारिणी के स्वर्गवासी पति परेशनाथ ने वकालत करके बहुत धन इकट्ठा करके जब बड़ी आयु में और भी अधिक उपार्जन करने की आशा से बैरिस्टर बनने का संकल्प कर लिया तो स्त्री ने रोना-धोना मचाकर उपवास करके, माथा पटककर, अनेक प्रकार से बाधा देने की चेष्टा की, फिर भी उसमें सफल न हो सकीं।

परेशनाथ ने कोई बात नहीं मानी। जगत्तारिणी को, बारह वर्ष के पुत्र ज्योतिष और छः साल की कन्या सरोजिनी को गाँव के घर में छोड़कर वे विलायत चले गए। पहले कई दिनों तक जगत्तारिणी बिल्कुल ही दुःख में डूबी रहीं लेकिन बाद को सँभलकर मुनीम-गुमाश्ते की सहायता से काम-काज सँभालने लगीं। लेकिन पति के प्रति उनका मन सदा के लिए उचट गया।

चंद दिनों के बाद परेशनाथ बैरिस्टर होकर लौटे और आशा से अधिक रुपया कमाने लगे। कलकत्ते में नई अट्टालिका खड़ी करके नए ढंग से घर-द्वार सजने लगे। बावर्ची-खानसामे रखे गए, लेकिन जगत्तारिणी चुपचाप पृथक् ही रहीं। पति के काम-काज में उन्होंने बिल्कुल सहयोग नहीं दिया।

उसी प्रकार दिन-पर-दिन पति-पत्नी का विच्छेद घोर दुःखकर होने लगा। बातचीत तो बन्द ही थीं, कुशल-समाचार लेना भी प्रायः बन्द हो गया।

एक दिन ज्योतिष ने आकर कहा, "माँ, बाबूजी मुझे विलायत भेजना चाहते हैं।"

यह भय उन्हें पहले से ही था। उन्होंने अत्यन्त कठोर होकर पूछा, "कब ?"

ज्योतिष ने कहा, "शायद दो महीने के भीतर ही।"

"अच्छा" कहकर मुँह उदास बनाकर माँ अन्दर चली गईं। विलायत-यात्रा के दिन उन्होंने अपना दरवाजा बन्द रखा, ज्योतिष बन्द दरवाजे के सामने से ही प्रणाम करके चला गया।

परेशनाथ सरोजिनी को साथ लेकर बम्बई तक पहुँचाने गए। लौट आने पर उन्होंने सुना, जगत्तारिणी शान्तिपुर अपने मायके चली गई हैं। इसके कारण के विषय में पूछताछ करने पर मालूम हुआ कि इसीके बीच उनके ससुर के भाई गोविन्द बाबू भेंट करने के लिए आए थे, लेकिन इस घर में उन्होंने भोजन नहीं किया। इसीलिए स्त्री के घर त्यागकर चले जाने का कारण समझने में उनको समय नहीं लगा।

वापस लाने के लिए आदमी भेजा लेकिन जगत्तारिणी नहीं आईं। परेशनाथ ने सरोजिनी को बोर्डिंग हाउस में रख दिया और प्रैक्टिस छोड़कर प्राय: घर में अनोखे काम करने लगे।

जगत्तारिणी नैहर में रहने की दशा में पति के अध:पतन की सारी बातें सुन चुकी थीं; लेकिन बाधा डालने का प्रयत्न तनिक भी उन्होंने नहीं किया। जो पति उनको आत्मीय समाज के बाहर खींचकर फेंक गए हैं, उनपर जगत्तारिणी के अनुरोध का अन्त नहीं रहा।

धीरे-धीरे पाँच वर्ष का लम्बा समय बीत गया। ज्योतिष लौट आने पर माँ को लाने गया, लेकिन माँ अटल बनी रहीं, घर नहीं लौटीं।

उन्होंने रोकर कहा, "सब तो तू सुन चुका है ज्योतिष, अब जिससे तुम लोग सुख में रह सको, वही जाकर करो बेटा, लेकिन मुझे उस नरक में अब मत घसीटो—मैं यह सब सहन न कर सकूँगी।"

ज्योतिष ने कहा, "हम लोग एक अलग मकान में रहेंगे माँ, तुमको उस मकान की छाया में भी न रहना पड़ेगा। मैं जो कमाऊँगा, उसी से हम लोगों के दु:ख-कष्ट से, किसी प्रकार दिन कट जाएँगे। तुम चलो!"

जगत्तारिणी बड़े कष्ट से जाने को सहमत हुईं और लड़के को कलकत्ता में पृथक् मकान ठीक करने के लिए कहकर कलकत्ता जाने की तैयारी करने लगीं। ज्योतिष यह कहकर चला गया कि एक सप्ताह में ही मैं लौट आऊँगा और तुमको ले चलूँगा। लेकिन इतनी देर की आवश्यकता नहीं हुई। पाँच

दिनों के बाद ही वह लौट आया, लेकिन वह नंगे शरीर पर एक शाल ओढ़े हुए था। यह देखकर जगत्तारिणी चीख मारकर रोने लगीं। ज्योतिष जिस दिन कलकत्ते लौटा था, उसके बाद तीसरी रात को ही एकाएक हृदय रोग से परेशनाथ की मृत्यु हो गई थी।

एक दिन अभिमानवश जगत्तारिणी घर त्यागकर चली गई थीं, पाँच वर्ष बाद फिर एक दिन रोते-रोते उसी घर में लौट आईं, लेकिन पति के साथ इस लोक में फिर भेंट नहीं हुई।

लड़की को स्कूल से नाम कटवाकर घर ले आईं और उसको आदि से अन्त तक बार-बार निरीक्षण करके भय तथा आश्चर्य से स्तब्ध हो रहीं।

एक ओर ज्योतिष को बुलाकर उन्होंने कहा, "अब बहन का ब्याह कैसे करोगे, बताओ तो ?"

माँ के हृदय का भाव समझकर ज्योतिष ने कहा, "इससे भी अधिक आयु की लड़कियों का ब्याह हो रहा है, माँ, तुम चिन्ता न करो।"

जगत्तारिणी ने आश्चर्य से आँख ऊपर उठाकर कहा, "चिन्ता कैसे न करूँगी ? तेरे पिता जो कुछ कर गए हैं, उसे तो अब लौटाया नहीं जा सकता, यह मैं जानती हूँ। लेकिन मैं जब तक जीवित रहूँगी तब तक तो ब्राह्मण की कन्या मुसलमान-ईसाई के हाथ में सौंप न सकूँगी—इससे चाहे लड़की का ब्याह हो न हो। तेरे लिए मैं चिन्ता नहीं करती, एक प्रायश्चित कर डालने से ही काम चल सकता है—इसका विधान काका के पास से जानकर ही आई हूँ। लेकिन हजार प्रायश्चित करने से भी तो लड़की की आयु घटाई न जा सकेगी।"

ज्योतिष ने कहा, "माँ, तुमको आयु घटानी न पड़ेगी, लेकिन दो दिन सन्तोष रखना पड़ेगा। मैं कुलीन ब्राह्मण का लड़का ला दूंगा, तुमको मुसलमान-क्रिस्तान का घर ढूंढ़ना न पड़ेगा।"

जगत्तारिणी ने अप्रसन्न होकर कहा, "तू मुझे और धीरज रखने की बात कहता है ज्योतिष ?"

ज्योतिष ने उत्तर दिया, "इसमें मेरा तो दोष नहीं है माँ कि धीरज रखने की बात कहने से अपराध हो जाएगा। दोष तुम्हारा है और पिताजी का है। मैं तो विदेश में था।"

यह बात सच है, इसे जगत्तारिणी मन-ही-मन समझ गईं लेकिन कुलीन घर का ब्राह्मण लड़का कहाँ, किस प्रकार मिलेगा, यह बात उनकी समझ में नहीं आई।

उन्होंने कहा, "जो अच्छा जान पड़े, वह कर बेटा, लेकिन मैं किसी काम में भी शामिल नहीं हूँ, यह मैं पहले से ही बताए देती हूँ।" यह कहकर सारा बोझ हृदय में लिए वे अपने काम-काज करने चली गईं।

ज्योतिष ने पिता का श्राद्ध प्रायश्चित के पश्चात् किया।

थोड़े दिन बाद एक पात्र मिल गया। वह था विलायत से लौटा हुआ एक बंगाली साहब। बैरिस्टरी पास करके वह दो साल पहले देश लौटा था।

शशांकमोहन का रंग तो था देशी, लेकिन स्वभाव था विलायती। वे बंगला अशुद्ध बोलते थे और अंग्रेजी भी अशुद्ध बोलते थे। थोड़े ही दिनों में उनका आना-जाना नियमित हो गया और सरोजिनी के प्रति उसके मन का भाव स्पष्ट से स्पष्टतर हो चला।

जगत्तारिणी पर्दे की आड़ से भावी दामाद को देखकर क्रोध से जल उठीं और उन्होंने उस क्रोध को उतारा अपनी कन्या पर।

उसको एकान्त में बुलाकर भर्त्सना करके कहा, "तू निर्लज्ज की भाँति जिसके-तिसके सामने बाहर क्यों निकल पड़ती है, बता तो?"

सरोजिनी संकुचित होकर चुप खड़ी रही। क्रुद्ध माता और कुछ न कहकर शीघ्र दूसरी ओर चली गईं। इसके बाद शशांकमोहन अनेक बार आए-गए, लेकिन जिसके लिए यह आना-जाना होता था, उसे देख न पाते थे।

माँ के अनुशासन को याद कर सरोजिनी अत्यन्त सतर्क होकर पर्दे में रहने लगी।

ज्योतिष ने यह लक्ष्य करके एक दिन बहन से कहा "तू आजकल इस तरह भागी-भागी क्यों फिरती है री?"

सरोजिनी ने सिर झुकाकर अस्पष्ट स्वर में कहा, "माँ!"—और कुछ भी कहना न पड़ा, ज्योतिष चुपचाप चले गए।

लगभग दो महीने के बाद एक दिन सवेरे उस पात्र की ओर से ही प्रस्ताव लेकर ज्योतिष माँ के पास गया और खूब झिड़कियाँ उसे खानी पड़ीं।

लड़के को चुपचाप रहते देखकर माँ ने कुछ नम्र होकर कहा, "अच्छा, तू भी तो विलायत में था बेटा, लेकिन तू भी क्या उसी प्रकार का हो गया है ?"

धीरे से ज्योतिष ने कहा, "सभी एक ही समान नहीं हो जाते माँ। कोई कुछ-कुछ बदल जाते हैं। लेकिन इसलिए क्या ऐसे लड़के को हाथ से जाने देना उचित है ? शशांक बैरिस्टर बनकर आया है, इसी बीच उसने अच्छा नाम भी पा लिया है। मैं तो ऐसा नहीं समझता कि उसके साथ ब्याह होने से सरोजिनी कुपुत्र के हाथ में पड़ जाएगी। चाल-चलन में थोड़ा-सा अन्तर आ गया है। माँ, यदि तुम उसे क्षमा कर सको तो भविष्य में विचार है कि भला ही होगा।"

माँ ने कहा, "ज्योतिष, वह किसी दिन अच्छा न हो सकेगा। इसके अलावा विदेश में जाकर ही जो विदेशी बन जाता है, उसपर मैं कभी विश्वास नहीं कर सकती। और यह भी कैसी बात कि हिन्दुस्तान में जाकर हिन्दुस्तानी बन जाए, काबुल में जाकर काबुली बन जाए, कटक में जाकर उड़िया बन जाए—ना-ना, ज्योतिष, तू इसे विदा कर दे बेटा। वह मनुष्य नहीं, बन्दर है। सिर फोड़कर मर जाने पर भी मैं बन्दर के हाथ में लड़की न सौंपूंगी।"

जगत्तारिणी को किसीके विषय में मत प्रकट करने में जिस प्रकार देर न लगती थी, उनके व्यक्त किए गए मत में भी उसी प्रकार संशय-दुविधा का तनिक भी अवकाश नहीं रहता था। इसके अतिरिक्त जिस अपराध में वे पति तक का भी त्याग कर सकी थीं, उस अपराध को वे किसी भी लोभ से क्षमा न कर सकेंगी, इस बात को निश्चित समझकर ज्योतिष चुपचाप चला गया। लेकिन थोड़ी ही देर बाद वापस आकर बोला, "माँ, एक बात और है जिस पर तुम्हें सोच-विचारकर देख लेना चाहिए।"

माँ ने पूछा, "कौन-सी बात ?"

ज्योतिष ने कहा, "सरोजिनी को तुम लोगों ने जैसी शिक्षा दी है, उसको देखते हुए उसकी सहमति के बिना भी काम करने से न बनेगा माँ। वह भी सबसे बुरा काम होगा। बचपन से ही तुम लोगों ने उसका बोझ अपने ऊपर नहीं लिया, भार दे दिया विदेशी मेमों पर। अब सयानी हो जाने

पर उसके मन का खिचाव किधर रहेगा, यह समझना कठिन नहीं है माँ।"

जगत्तारिणी मौन।

इस बात को वे मन-ही-मन अस्वीकार न कर सकीं, फिर भी प्रकट रूप से स्वीकार भी सम्भव नहीं था।

कुछ देर तक चुप रहकर बोलीं, "अच्छी बात तो है ज्योतिष, तुम सभी लोग यदि साहब-मेम बन जाना चाहते हो तो बन जाओ, लेकिन उसके पहले मुझे काशी भेज दो। जबकि मैं इतना सब सह सकी हूँ तब इतना और भी सह लूँगी।"

ज्योतिष ने झुककर माता के चरणों की धूलि सिर पर चढ़ाकर हँसकर कहा, "तो मुझे भी काशी ही जाकर रहना पड़ेगा। माँ को छोड़कर मेरा भी रहना न होगा, यह बात तो देश वापस आने पर ही मैंने सोच रखी थी माँ।"

जगत्तारिणी ने मुँह ऊपर उठाकर देखा, उनके मन की अग्नि पलभर में जलकर ठण्डी हो गई। पलभर बड़े स्नेह से पुत्र का मुँह देखकर लम्बी साँस छोड़कर बोलीं, "ना बेटा, तू अपना काशी वाला मकान खाली कर देने के लिए चिट्ठी लिख दे, मैं सदा ही यहाँ रहकर अपने मत के विषय में तुम लोगों को दुःखी करती रहूँ, यह ठीक नहीं है, इसकी आवश्यकता भी क्या है?"

ज्योतिष ने हँसकर कहा, "यह ठीक होगा माँ, हम सभी जाकर काशी में ही रहें।"

माँ-बेटे में उक्त संवाद कलकत्ते के मकान में जिस दिन हुआ उसके कुछ दिन बाद उपेन्द्र सतीश को साथ लिए ज्योतिष के घर आ उपस्थित हुए थे। इसके बाद क्या हुआ, यह पाठक जानते ही हैं।

जगत्तारिणी ने सतीश को देखा। उसके गले में मोटा जनेऊ है, वह सन्ध्या-वन्दन करता है, वह मुसलमान का छुआ पावरोटी-बिस्कुट नहीं खाता, वह स्वरूपवान है, निष्ठावान है, इसके पिता के पास बहुत धन है···

एकदम मोहित हो गईं जगत्तारिणी। फिर धीरे-धीरे जबकि आभास के संकेत से उन्होंने अनुभव किया कि सतीश ने यद्यपि विलायत जाकर कुछ

पास नहीं किया, यहाँ तक कि बहुत से पुराने कुसंस्कारों के रहते भी उसके प्रति लड़की के मन में अश्रद्धा का भाव नहीं है। कौन जाने शायद मन-ही-मन तभी से जगत्तारिणी के मन से संशय की छाया फिर वदल गई और इतने दिनों की संचित व्यथा सहज भाव से निकल जाने का मार्ग पा गई।

उसके बाद बहुत दिनों तक सतीश फिर दिखाई न पड़ा। इस समय का प्रत्येक दिन जगत्तारिणी को काँटे-सा चुभता रहा तो भी स्वयं उद्योग में निरन्तर इस सम्बन्ध में कोई उपाय भी खोज निकालने का प्रयास उन्होंने नहीं किया। उनको यह भी भय था कि चेष्टा करने पर कोई अमंगल ही न सुनना पड़े।

वे मन-ही-मन जानती थीं, उनकी अपनी कन्या की इच्छा पर ही केवल विवाह का सब फलाफल निर्भर नहीं है क्योंकि सतीश के वृद्ध पिता अभी तक जीवित हैं। वे क्या कहेंगे। यह कौन जानता है? इसके अतिरिक्त सतीश स्वयं भी विलयत से लौटने वाले के घर की कन्या के साथ ब्याह करने में पीछे न हट जाएगा, इसका भी कोई निश्चय नहीं था।

अनेक दिन, अनेक दुःखों और दुश्चिन्ताओं में बिताकर उस दिन जब एकाएक वैद्यनाथ में आकर देखा कि सतीश बैठकर बातें कर रहा है तब आनन्द से उनके आँसू भर आए।

सतीश ने पास आकर प्रणाम किया और उनकी पदधूलि सिर पर चढ़ा ली।

वह कलकत्ते से भागकर यहाँ आया था और एकान्तवास कर रहा था।

सरोजिनी ने ही उसको यहाँ खोज निकाला है, यह बात ज्योतिष ने बातचीत के सिलसिले में माँ को सुनाई। अपनी कन्या के दुर्घटना का विवरण सुनकर उन्होंने सतीश के माथे पर हाथ रखकर उसको असंख्य आशीर्वाद दिए और इसी सिलसिले में अंग्रेजी सीखकर अंग्रेजी का अनुकरण करने की बहुत ही शिकायत करके बोलीं, "बेटे सतीश, तुमने जो इस लड़की की रक्षा की है यह बात कभी उसे जीवन में भूल न जानी चाहिए। लेकिन जंगल में अकेले रहने की क्या आवश्यकता है बेटा? तुम इस घर के लड़के हो, जब तक हम यहाँ हैं तब तक इसी घर में आकर क्यों नहीं रहते?"

सतीश ने हँसकर कहा, "वहाँ अच्छी तरह हूँ माँ, मुझे वहाँ कोई कष्ट नहीं है।"

जगत्तारिणी ने कहा, "कष्ट के लिए नहीं बेटा, अकेले रहने में कितनी ही विपत्तियाँ हैं। इस घर में बहुत कमरे खाली हैं। तुम चले आओ। हवा-पानी वहाँ जैसा है, यहाँ भी वैसा ही है।"

सरोजिनी ने बीच में ही कहा, "हमारे यहाँ रहने से तो इनकी जात चली जाएगी।"

जगत्तारिणी भीतर की बातें नहीं जानती थीं। मन-ही-मन बहुत दुःखी होकर बोलीं, "तू तो बड़ी अच्छी लड़की है। क्यों, हम लोग कौन हैं कि हमारे यहाँ रहने से इनकी जात चली जाएगी ? ना बेटा सतीश, तुम उसकी बातों पर विश्वास मत करना। और यदि ऐसी ही बात होती तो उपेन्द्र बहू को लेकर हमारे घर इतने दिनों तक कैसे ठहरे थे ? उनकी तो जात नहीं गई ! तू इस प्रकार झूठमूठ ही इसे डर मत दिखा, मैं कहे देती हूँ।"

सरोजिनी मुँह फेरकर हँसने लगी।

सतीश ने कहा, "ना माँ, जात क्यों जाएगी ? मैं तो प्रायः प्रतिदिन ही आता हूँ, रात का खाना-पीना भी मेरा इसी घर में होता है।"

जगत्तारिणी प्रसन्नचित हो कहने लगीं, "हाँ, ऐसा ही करना बेटा, तुम आना। कम-से-कम जब तक मैं यहाँ हूँ तब तक मेरे यहाँ तुमको खाना पड़ेगा।" यह कहकर वे उसी क्षण भोजन का प्रबन्ध करने के लिए चली गईं।

उनके चले जाने पर सरोजिनी ने कहा, "आपने तो मुझे गाना सिखाने को कहा था न ?"

सतीश ने कहा, "मैं तो प्रायः नित्य गाता हूँ, आप चाहें तो सीख सकती हैं।"

सरोजिनी ने कहा, "आपके आते ही तो बहुत से भले आदमी आपका गाना सुनने के लिए आ जाते हैं—उन लोगों के बीच में ही क्या सीखा जा सकता है ?"

सतीश ने हँसकर कहा, "नो एडमिशन लिखकर फाटक पर दरबान तैनात क्यों नहीं कर देतीं ?"

सरोजिनी ने कहा, "इससे तो यही अच्छा है कि माँजी कहती हैं वही कीजिए। उस जंगल में अब मत पड़े रहिए।"

लेकिन जंगल में रहने की आवश्यकता और किसी से भले ही कह दी जाए, सरोजिनी से तो कही नहीं जा सकती। सतीश मौन रहा।

सरोजिनी ने फिर कहा, "अच्छा, भैया ने कहा है कि पाँच-छः दिन बाद वे कलकत्ता जाएँगे, उस समय हम लोगों की देख-भाल कौन करेगा?"

सतीश ने कहा, "कितने दिनों के लिए जाएँगे?"

सरोजिनी ने कहा, "कम-से-कम सात-आठ दिन तो उनको वहाँ लग ही जाएँगे।"

सतीश ने कहा, "तो उस दशा में इसका प्रबन्ध वे करके ही जाएँगे। और इतना भय भी किसलिए है? आप तो हमारे हिन्दू घर की स्त्रियों के समान सख्त पर्दे में रहने वाली नहीं हैं जो घर में किसी पुरुष के न रहने से संकट में पड़ जाएँगी। आप ही लोग बल्कि कितने ही पुरुषों के···"

क्षणभर के लिए सरोजिनी का मुख लाल हो उठा। बोली, "हम क्या करती हैं, सुनूँ तो? क्या हम पुरुषों के कान काट लेती हैं? क्या हम हिन्दू घर की लड़की नहीं हैं?"

सतीश ने लजाकर झटपट इस बात को समाप्त कर डालने के लिए मुँह ऊपर उठाते ही देखा, सामने शशांकमोहन बैरिस्टर को साथ लिए ज्योतिष घर में आ रहे हैं। प्रतिदिन के समान आज भी उन्होंने स्टेशन पर घूमने के लिए जाने पर देखा कि बैरिस्टर साहब फर्स्टक्लास के डब्बे से उतर रहे हैं।

शशांकमोहन कमरे में कदम रखते ही सरोजिनी की ओर हाथ बढ़ाकर तेजी से आगे बढ़ गए। फिर हाथ मिलाकर उन्होंने कुशल-प्रश्न पूछा और अपने इस प्रकार आ जाने के विवरण में बोले, "क्यों एकाएक मुझे कलकत्ता असह्य जान पड़ा, क्यों मैंने कुछ भी न सोचकर स्टेशन पर आकर देवघर के लिए फर्स्टक्लास का टिकट खरीद लिया, इसका कारण मैं स्वयं ही आज तक नहीं जानता!"

इसके बाद वे भी एक कुर्सी खींचकर बैठ गए और व्यर्थ में बहुत-सी बातें कहने लगे लेकिन सरोजिनी के पीले मुँह से दो-चार साधारण शब्दों के

अलावा और कोई भी बात न निकली ।

दस मिनट के बाद सतीश को उठकर जाते हुए देखकर उनकी दृष्टि उसकी ओर खिंच गई । अपनी गरदन जरा टेढ़ी करके आश्चर्य-भरे स्वर से उन्होंने सरोजिनी से कहा, "जान पड़ता है कि इनको मैंने कहीं अवश्य देखा है । ठीक है न ?"

सरोजिनी का पीला चेहरा चमक उठा । संक्षेप में उसने कहा, "मैं बता सकती हूँ कि आपने इन्हें कहाँ देखा है ।"

जगत्तारिणी ने जब भोजन परोसकर सतीश को बुला भेजा तब ज्ञात हुआ कि सतीश किसीसे बिना कुछ कहे ही चला गया है ।

तीन दिन बाद सतीश से भेंट न होने पर जगत्तारिणी मन-ही-मन क्रुद्ध हो उठीं । लड़के को एकान्त में बुलाकर कड़ाई के साथ उन्होंने पूछा, "यह आदमी और कितने दिन यहाँ रहेगा ज्योतिष ? मैं कहती हूँ कि तुम लोग उससे स्पष्ट कह दो कि यहाँ रहने की आवश्यकता अब नहीं है ।"

ज्योतिष ने माता की आज्ञा का पालन किस प्रकार किया, यह मैं नहीं कह सकता; लेकिन प्रस्थान करने के पहले शशांकमोहन असन्दिग्ध रूप से जान गए कि जिस काम के लिए उनका आना होता है उसके पूर्ण होने की आशा जरा भी नहीं है । और सतीश ही वह भाग्यवान पात्र है, यह भी जान लेना उनको शेष न रहा ।

शशांक का चेहरा काला पड़ गया, लेकिन इस चोट को उन्होंने शिष्ट-भाव से ही सह लिया । यहाँ तक कि जाते समय उन्होंने सरोजिनी के साथ भेंट करने तक का भी प्रयत्न नहीं किया ।

ट्रेन पर चढ़कर जाने के क्षणभर पहले एकाएक उन्होंने ज्योतिष से पूछा, "सतीश बाबू कहीं डॉक्टरी सीखने का प्रयत्न कर रहे थे । वह काम हो गया ?"

ज्योतिष ने सिर हिलाकर कहा, "सम्भवतः ना । होमियोपैथी स्कूल में कुछ दिन पढ़े अवश्य थे ।"

"ओहो ! होमियोपैथी स्कूल में !" यह कहकर शशांकमोहन ने दूसरी बात का प्रसंग शुरू किया ।

अड़तीस

अप्रत्याशित रूप से भाई की बीमारी का तार पाकर जगत्तारिणी को बड़ी शीघ्रता से शान्तिपुर जाना पड़ा था। इसलिए सतीश के समीप प्रस्ताव पेश करने का सुयोग उस समय न मिला। आज उसे अच्छी तरह खिला-पिलाकर बात चलाएँगी, मन-ही-मन यह संकल्प कर सवेरे उठते ही उन्होंने मुनीम को सतीश को भोजन के लिए निमन्त्रण दे आने के लिए भेज दिया।

इसी मध्य में यह घटना हो गई जिसका किसीको ध्यान तक न था। जिसका आना सबसे अधिक अखरने वाला है, वही शशांक मोहन सवेरे की ट्रेन से आ धमका है--सुनकर उनके क्रोध की सीमा न रही। मनुष्य की अत्यन्त इच्छित वस्तु के पाने में बाधा पहुँचने पर उसके सन्देह का ठिकाना नहीं रहता। इसीलिए बाहर से सरोजिनी को आते देखकर सारे शरीर में विष की अग्नि-सी फैल गई और यह विचार उत्पन्न हुआ कि शशांक का एकाएक फिर यों आना शायद इस अभागी लड़की के इशारे से हुआ है। अपने बैरिस्टर लड़के का तो वे कभी पूर्णतया विश्वास ही नहीं करतीं। वास्तव में उन्हें भी दोष नहीं दिया जा सकता। उनके आचार-भ्रष्ट बेटी-बेटे सतीश की आचारनिष्ठा को प्रेम की दृष्टि से भी देख सकते हैं, इस बात पर वे पूर्ण विश्वास नहीं कर सकती थीं।

लड़की को खरी-खोटी सुना, रसोईघर में जाकर दासी को रसोई का सामान ठीक कर रखने के लिए आज्ञा देकर वे स्नान करने चली गईं।

लगभग घण्टे-भर बाद आकर लड़की की ओर देख माता की आँखें प्रेम से भर गईं। इसी बीच सरोजिनी स्नान कर रेशमी साड़ी पहन, माँ के रसोई-घर में जा अभ्यस्त हाथों से तरकारी सँवार रही थी और दासी निकट ही बैठी बता रही थी।

क्षणभर जगत्तारिणी ने चुप रहकर कहा, "ब्राह्मण की लड़की को इसके सिवा भला और कोई पोशाक अच्छी लगती है? बेटी, तुझे देखकर इतना आनन्द मुझे आज से पहले कभी नहीं हुआ।"

सरोजिनी लज्जा से सिर नीचा कर काम करने लगी।

माँ उसको देखकर व्यंग्य से कहने लगीं, "मैं सब समझती हूँ बेटी, सब

समझती हूँ। चाहे वह कितना ही पास करे, मैं उसे बन्दर के सिवा और कुछ न कहूँगी। वह निर्लज्ज चाहे किसीका संकेत पाकर फिर आए, मेरे जीते वह बात न होगी, यह मैं सौगन्ध खाकर कहे देती हूँ बेटी।"

कुछ समय चुप रहकर फिर बोलीं, "ज्योतिष कहता है कि लड़कपन में जिसे जैसी शिक्षा मिलती है, उनके मन का खिचाव उसी ओर होता है, किन्तु यह बात मैं नहीं मानती। जो दिन-रात हैट-कोट पहने नहीं रहेगा, वह अच्छा नहीं लगेगा, यह भला किस शास्त्र में लिखा है ?"

हैट-कोट की बात किसी शास्त्र में लिखी है या नहीं, सरोजिनी न जानती थी। वह सिर झुकाए चुप रही।

जगत्तारिणी सब सामान इकट्ठा कर रसोई बनाने बैठीं और एक बार बोलीं, "मेरी इच्छा यदि भगवान् पूरी करें तो तू देखेगी बेटी कि उससे तेरा ही भला होगा ?"

सरोजिनी सिर झुकाए माँ की मनोकामना की बात साफ-साफ सुनने की आशा से कान लगाए रही किन्तु जगत्तारिणी ने उसे प्रगट नहीं किया। वे बड़ी लगन से रसोई में लगीं। वे चुपचाप मन-ही-मन क्या सोचने लगीं, सरोजिनी यह समझ गई और हैट-कोट पहनने वाले शशांक मोहन के सम्बन्ध में जिस लज्जाजनक अपवाद का संकेत कर उन्होंने उसे बार-बार चोट पहुँचाई, उसका प्रतिवाद करना भी कठिन न था; किन्तु असहिष्णु स्वभाव वाली जगत्तारिणी को कोई बात अन्त तक सुनाई नहीं जा सकती, यह सोचकर वह मौन ही बैठी रही। दस बजे के लगभग मुनीम कहीं से खोज-खाजकर एक बहुत बड़ी रोहू मछली ले आया।

जगत्तारिणी ने रसोईघर से झाँककर मछली देख ली और प्रसन्न होकर बोलीं, "वाह ! बड़ी अच्छी मछली है लेकिन…"

सरोजिनी ने कहा, "सतीश बाबू के आने में अभी देर है माँ, अभी दस नहीं बजे हैं।"

जगत्तारिणी ने हँसकर कहा, "बजने-बजाने की बात नहीं, आज एकादशी है, मैं तो मछली छुऊँगी नहीं। सोचती हूँ कि क्या तुम्हारा रसोइया बना सकेगा ? अच्छा देख तो सही, उस घर की रसोई कहाँ तक बन चुकी है ?"

दासी के बाहर जाते ही सरोजिनी ने लजाते हुए धीरे-धीरे कहा, "तुम बताती जाओगी तो क्या मैं न बना सकूँगी ?"

जगत्तारिणी ने आश्चर्य से पूछा, "तू बना सकेगी ?"

"हाँ माँ ! तुम केवल बतलाती जाना।"

दासी ठिठककर खड़ी रह गई। ऐसी पुष्ट बढ़िया मछली अनजान के हाथ में पकड़कर खराब न हो जाए, इस भय से डर गई, बोली, "ना, ऐसा करना क्या ठीक होगा ? यदि बिगड़ गई तो ?"

जगत्तारिणी न मालूम क्या सोचती रहीं, फिर बोलीं, "सतीश कुछ बाहरी आदमी तो है ही नहीं। वह हमारे घर का ही तो लड़का है। सुकेशी, तू खड़ी मत रह, उधर के चूल्हे को अच्छी प्रकार लीप-पोतकर मछली काट ला। और बेटी, तू एक काम कर। रेशमी साड़ी पहनने से आसानी न होगी। अच्छा—रहने दे, आँचल को ठीक तरह से कमर में लपेट ले।" मुस्कराकर कहा, "आज मछली पकाने से तेरी पाक-विद्या का श्रीगणेश होता है, आशीर्वाद करती हूँ, आज के दिन से तू सदैव मछली ही पकाया कर।"

सरोजिनी ने इस आशीर्वाद से मुँह और भी नीचा कर लिया। प्रायः घंटे-भर बाद किसी काम से ज्योतिष माँ के पास रसोईघर के दरवाजे के पास आकर आश्चर्य से देखने लगे। अच्छी तरह देखकर कहा, "कौन रसोई बनाती है माँ, सरोजिनी है क्या ?"

माँ ने जरा हँसकर कहा, "देख तो सही, पहचान सकता है या नहीं ?"

"बात तो कुछ ऐसी ही है माँ ! पर क्या वह सचमुच ही रसोई बनाती है, या तुम बरबस उसके गले में ढोल बाँध रही हो !"

माँ ने कहा, "रसोई बनाने का काम क्या हिन्दू की लड़की को सिखाना पड़ता है, यह तो हम जन्म से ही सीख लेती हैं। लेकिन..."

"लेकिन क्या ?"

जगत्तारिणी ने बेटे को जरा एक ओर ले जाकर कहा, "लेकिन चिन्ता इस बात की है कि सतीश यदि सुन लेगा तो उसके हाथ का बनाया खाएगा या नहीं ?"

सरोजिनी ने मुँह ऊपर उठाकर देखा। ज्योतिष ने कहा, "माँ, तुम सतीश को सचमुच मनु या पराशर समझती हो क्या ?"

माँ ने कहा, "पर वह तुम लोगों से तो अच्छा है।"

ज्योतिष ने कहा, "क्या अच्छा है, जरा यह भी तो सुनूं। उस रात को सरोजिनी ही तो भात-दाल बना आई थी, नहीं तो वच्चू को उपवास ही करना पड़ता—कुछ जानती भी हो?"

माँ ने गद्गद होकर आश्चर्य से पूछा, "कब रे!"

उस रात की सारी घटना ज्योतिष ने विस्तारपूर्वक कह सुनाई।

उन्होंने आनन्द से विह्वल हो प्रेम के स्वर में बेटी से कहा, "धन्य है बेटी, मैं कब से सोच रही हूँ और तू चुप है?"

ज्योतिष ने मुस्कराकर कहा, "उसे क्या मालूम कि तुम मन-ही-मन चिन्ता कर मरी जा रही हो। किन्तु उस दिन मैं खा नहीं सका था। आज खाकर देखूंगा कि बिना शिक्षा पाए इसने रसोई बनाने की विद्या कैसे सीख ली है।" यों कहकर ज्योतिष दूसरी ओर चला गया।

बेटी के लज्जा से झुके हुए मुँह की ओर देखकर बड़े प्रेम से जगत्तारिणी ने कहा, "शरमाती क्यों हो बेटी, आत्मीय-स्वजनों को रसोई बनाकर खिलाएगी, इससे अधिक सौभाग्य की बात स्त्री-जाति के लिए और हो ही क्या सकती है! मैं तब तक पूजा कर आती हूँ"—कहकर कुछ क्षण के लिए वह बाहर चली गईं।

इसके बाद सारा दिन बीत गया, किन्तु सतीश के दर्शन न हुए। आने का कारण भी किसीने आकर नहीं बताया।

जगत्तारिणी दिन-भर व्याकुलता के साथ उसकी प्रतीक्षा करती रहीं। शाम होने पर ज्योतिष को बुलाकर कहा, "हो न हो, उसकी तबीयत कुछ खराब हो गई है। किसीको उसका समाचार लेने क्यों नहीं भेज दिया?"

ज्योतिष ने लापरवाही के साथ उत्तर दिया, "किसको उतनी दूर भेजने जाऊँ माँ।"

जगत्तारिणी ने आश्चर्य से पूछा, "क्यों, क्या दरबान एक बार नहीं जा सकता?"

"आवश्यकता क्या है?"

"तू कहता क्या है ज्योतिष? उसकी तबीयत ठीक है या नहीं, एक बार समाचार तो लेना चाहिए था।"

"परन्तु इसकी आवश्यकता क्या है। बस हम लोग न तो आत्मीयस्वजन हैं और न सम्बन्धी हैं और न कोई हित-मित्र ही हैं। इसी से उसके लिए इतनी चिन्ता कर मरने की कोई आवश्यकता मैं नहीं समझता।" कहकर ज्योतिष बाहर चला गया।

सतीश के सम्बन्ध में लड़के के मुँह से ऐसा उत्तर सुनकर जगत्तारिणी निराश हो गईं।

इतनी ही देर में सतीश उनका कोई नहीं! उनके मुँह पर लड़के का ऐसा कोरा उत्तर उनको दुःस्वप्न के समान मालूम हुआ।

वे उसी प्रकार काठ की पुतली के समान खड़ी हो रहीं। कुछ ही देर में उनके उपवास से निर्बल दिमाग में कितनी ही लहरें हिलोरें दे-देकर चली गईं पर वे इस विषय में कुछ निश्चय न कर सकीं।

धीरे-धीरे ऊपर जा, अपनी चारपाई पर लेट रहीं और सरोजिनी को बुला, उसके चेहरे की ओर देखकर और भी भयभीत-सी हो गईं।

दीपक के धुँधले प्रकाश में भी उन्होंने साफ देखा कि उसके चेहरे पर मानो किसीने कालिख पोत दी है। जरा देर चुप रहकर बोलीं, "सरोजिनी, सतीश क्यों नहीं आया, जानती है?"

सरोजिनी ने कहा, "ना।"

कन्या के इस लघु उत्तर से जगत्तारिणी उठ बैठीं, बोलीं—"ना···यदि नहीं जानती तो आदमी भेजकर जानने में क्या हुआ था? यह भी क्या मेरी ही कहने की बात थी?"

धीरे-से सरोजिनी ने कहा, "भैया ने कहा है कि आदमी भेजने की आवश्यकता नहीं है।"

"क्यों आवश्यकता नहीं, यही मैं जानना चाहती हूँ। जाओ, अभी दरबान को भेज दो, उसका समाचार ले आवे।"

"वह नहीं है माँ, भैया ने उपेन्द्र बाबू को तार देने के लिए उसे तारघर भेजा है।"

"उपेन्द्र बाबू को! एकाएक उसको तार क्यों देना पड़ा?"

"माँ, मैं सब बातें नहीं जानती, तुम भैया से ही पूछो।" कहकर सरोजिनी माँ की एक प्रकार से उपेक्षा कर दूसरी ओर चली गई।

उसके जाते ही जगत्तारिणी के मन में एकाएक यह विचार पैदा हुआ कि सतीश को आने के लिए अवश्य मना करा गया है। इसका कारण क्या है, वह उनसे कोई प्रकट करना भले ही न चाहे, किन्तु कोई विशेष कारण अवश्य है। इस भीषण अनिष्ट का मूल शशांकमोहन है। इसी दुरभिसन्धि को साथ लेकर वह फिर यहाँ आया है, इसमें उन्हें कोई सन्देह न रहा। किन्तु कारण चाहे कैसा ही भयानक क्यों न हो, उनके जीवित रहते लड़के-लड़की ने उनकी आज्ञा लिए बिना चुपके से सतीश को आने के लिए मना कर दिया है। यह विचार करते ही उनका हृदय क्रोध से भर गया।

तुरन्त सुकेशी से ज्योतिष को बुलाकर कहा, "तूने सतीश को आने के लिए मना कर दिया ?"

ज्योतिष ने आश्चर्यचकित होकर कहा, "ना। पर यह तुमसे कहा किसने ?"

"सतीश के सम्बन्ध में तूने उपेन्द्र को तार भेजा है ?"

"हाँ।"

"क्यों ? सतीश ने क्या किया है ?"

ज्योतिष जरा चुप रहकर बोला, "जो किया है, वह यदि सत्य है तो उनके साथ हम लोगों का सम्बन्ध नहीं रह सकता।"

"तुझे यह सूचना किसने दी, शशांकमोहन ने ? वह दुष्ट है, नीच है, उनकी बातों का मैं जरा-सा भी विश्वास नहीं करती।"

ज्योतिष ने कहा, "मैं भी विश्वास नहीं करता हूँ किन्तु उनकी यदि आधी बात भी सच्ची हों तो मैं कहता हूँ माँ कि सतीश की छाया से भी घृणा करनी चाहिए।"

जगत्तारिणी ने लड़के की गरम बात सुनकर नम्र होकर कहा, "अच्छा, मुझसे साफ-साफ बताया क्यों नहीं है ! बेटा ! क्या हुआ ? सतीश ने कोई चोरी-डकैती भी नहीं की, खून-खराबी करके छिपकर भाग नहीं आया कि उसकी छाया से तुम्हें घृणा करनी होगी ? जवान लड़का है, मन की भूल से शायद कुछ दोष उसने किया ही हो—कितने लोग तो ऐसा करते हैं···पर सुधरते क्या देर लगती है ?"

ज्योतिष ने सिर हिलाकर कहा, "ना माँ, वे सब अपराध क्षमा नहीं

किए जा सकते, और कोई चाहे करे भी, पर सरोजिनी न कर सकेगी, यह मैं तुमसे निश्चयपूर्वक कहता हूँ।"

जरा सोचकर जगत्तारिणी बोलीं, "मगर क्या अपराध किया है, कुछ, सुनूँ भी तो?"

"कल सुनना माँ। उपेन्द्र की चिट्ठी न पाने तक इस आलोचना की आवश्यकता नहीं।" इतना कहकर ज्योतिष कुछ सुनने के पहले ही कमरे से बाहर चला गया।

जगत्तारिणी इतनी देर जोश में आकर बिस्तर पर बैठी हुई थीं। लड़के के चले जाने पर एकदम निर्जीव के समान लेट रहीं। लम्बी साँस भर कर बोलीं, "भगवान्! इस कलिकाल में तुमने किसी को भी विश्वास के योग्य नहीं रखा?"

बातों और संकेतों से वे बहुत कुछ अनुमान कर सकती थीं, यहाँ केवल सतीश के लिए नहीं, स्वामी की बातें याद करके भी उनकी दोनों आँखों से आँसू बहने लगे।

रात में एक बार लड़की को भी बुला भेजा था, किन्तु सुकेशी ने सरोजिनी की आहट न पा, लौटकर कहा कि दीदी सो गई हैं।

दोनों हाथों से सिर पीटकर मन में कहा, जो लड़की ऐसा बुरा समाचार सुनकर भी निश्चिन्त हो सो सकती है, वह सतीश के बजाय मन-ही-मन उस बन्दर को अधिक चाहती है, अब इसमें सन्देह का स्थान नहीं। लड़की के प्रति उनके क्रोध और दुःख का अन्त न रहा।

दूसरे दिन तीन बजे फाटक के एक किनारे साइकिल रोककर सतीश ने बाहर बैठकखाने में प्रवेश किया।

सतीश के सूखे मुँह, मैले-रूखे बालों ने सबकी दृष्टि आकर्षित की। सरोजिनी ने सिर उठाकर देखा, कुछ बोली नहीं।

ज्योतिष ने पूछा, "क्या आपकी तबीयत ठीक नहीं, सतीश बाबू?"

जरा मुस्कराने की चेष्टा करके सतीश ने कहा, "ना।"

पर सब-के-सब चुप हो रहे। कोई न बोला, यह देखकर सतीश मन-ही-मन आश्चर्यचकित हुआ। वह सोचता हुआ जा रहा था कि आज उपस्थित होते ही मुझपर भाँति-भाँति के दोषारोपित किए जाएंगे। इसी से

उसने उस समय घर में भीतर की ओर पैर बढ़ाकर स्वयं कहा, "मैं कल के अपराध के लिए पहले माँ से क्षमा माँग आता हूँ, और बातें पीछे होंगी।"

शशांक अब तक तेज दृष्टि से सतीश की ओर देख रहा था, वह बोला, "माँ इस समय सोई हुई हैं, जगाकर क्षमा माँगने की इतनी जल्दी क्या पड़ी है? जरा बैठिए, आपके साथ कुछ बातें करनी हैं।"

उसकी बातों के ढंग से सतीश ने अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर कहा, "मेरे साथ? कैसी बात है?"

शशांक ने कहा, "इच्छा न होने पर भी कहनी ही पड़ेगी।" ज्योतिष की ओर उँगली उठाकर सतीश ने कहा, "आप अवश्य जानते हैं—मैं इनका एक परम बन्धु हूँ। ना-ना ज्योतिष बाबू, आप उठे क्यों? आपके चले जाने से कैसे काम चलेगा? अपनी फरियाद आप लोगों के ही सामने करना चाहता हूँ। आप दोनों ही बैठिए···" कहकर उसने सरोजिनी की ओर कनखियों से देखा किन्तु सरोजिनी इस प्रकार सिर झुकाए बैठी थी कि उसने कुछ देखा ही नहीं।

शशांक ने सामने की मेज पर हाथ पटकते हुए कहा, "मेरा बचपन से यह स्वभाव है जिनसे प्रेम रखता हूँ उनके सम्बन्ध में किसी प्रकार भी आँखें मूँदकर उदासीन नहीं रह सकता। इसीसे कल इनका गुप्त वृत्तान्त सुनकर मन-ही-मन कहा था, यह तो अच्छी बात नहीं है। सतीश बाबू के इस निर्जनवास का कारण जानना ही पड़ेगा। आप शायद अप्रसन्न होंगे सतीश बाबू, किन्तु मैं तो अपने स्वभाव के विरुद्ध चल नहीं सकता। क्या कहते हैं ज्योतिष बाबू?"

ज्योतिष सिर झुकाए चुपचाप बैठा रहा।

सतीश भी चुपचाप देखता रहा।

चुप्पी के बीच शशांक की उत्तेजना का वेग आप ही कम पड़ गया। उसने अपेक्षाकृत संयत कण्ठ से कहा, "ज्योतिष मेरे परम बन्धु हैं, इसलिए आपसे कुछ पूछने का मुझे अधिकार है। आप तो जानते हैं···"

सतीश बीच में ही सिर हिलाकर बोला, "ना, मैं बन्धुत्व की बात कुछ भी नहीं जानता। यह बताइए कि आपका प्रश्न क्या है?"

शशांक ने कण्ठ को ठीक करके कहा, "आप यहाँ क्यों आए हैं, यह मैं जानना चाहता हूँ ?"

सतीश ने कहा, "मेरी इच्छा, क्या आप कुछ और पूछना चाहते हैं ?"

कुछ कुण्ठित हो ज्योतिष के मुँह की ओर देखकर शशांक कहने लगा, "सतीश बाबू का कलकत्ते का घर खोजने में मुझे कितना कष्ट उठाना पड़ा है, यह मैं आपसे क्या कहूँ ? राखाल बाबू को आप जानते हैं। उन्होंने कहा है···" सतीश की आँखें अंगारे के समान जल उठीं, कहा, "जहन्नुम में जाएँ राखाल बाबू ! आप अपनी बात कहिए।"

ज्योतिष ने इस पर सिर उठाकर कहा, "सतीश बाबू, शशांक मेरी ही इच्छा से आपसे पूछते हैं। आपकी इच्छा न हो तो उत्तर भी न दे सकते हैं, किन्तु उनका अपमान न करें। हम लोगों के साथ आपने जो व्यवहार किया है, उसे देखते हुए आपसे कोई भी बात पूछने की आवश्यकता न थी, केवल माँ के कारण ही आपके मुँह से एक बार सुन लेने की आवश्यकता जान पड़ी। अच्छा, मैं ही पूछता हूँ, सावित्री कौन है ? और उसके साथ आपका कैसा सम्बन्ध है ?"

कुछ क्षण चुपचाप देखकर सतीश बोला, "सावित्री कौन है, यह मैं नहीं जानता ज्योतिष बाबू, और उसके साथ मेरा क्या सम्बन्ध है, इसका उत्तर देने की मैं आवश्यकता नहीं समझता।"

"क्यों ?"

"इसलिए कि कहने से भी आप लोग न समझ सकेंगे।"

"जैसे भी हो, हम लोगों को समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है। अच्छा, उसे कहाँ लाकर रखा है, यह बता देने से ही शायद हम समझ जाएँगे।"

ज्योतिष की ओर सतीश ने जलती आँखों की टकटकी लगाए शान्त कण्ठ से कहा, "ज्योतिष बाबू, मैंने किसी दिन खुशामद कर आप लोगों के साथ घनिष्टता करने की और प्रश्नोत्तर के बहाने अप्रिय वाद-विवाद करने की भी आवश्यकता नहीं समझी। मैं समझ गया हूँ कि बात क्या है। इसलिए आप लोगों को जितना जानने की आवश्यकता है, उतना मैं स्वयं बतलाता हूँ। सावित्री कहाँ गई, मुझे मालूम नहीं। यह आप क्यों जानना चाहते हैं? ये सब बातें बिलकुल अनावश्यक हैं। फिर भी, यह बात एकदम

सच्ची है कि सावित्री चाहे कोई हो, यदि अपनी इच्छा से वह मुझे छोड़कर चली न जाती, तो मैं जब तक जीता, उसे अपने सिर-आँखों पर रखता, यह बात आप लोगों के ही सामने नहीं, समस्त संसार के सामने स्वीकार करने में मुझे लज्जा नहीं मालूम होती। आशा करता हूँ अब और कुछ आप लोगों को पूछना नहीं है, हो भी तो मैं उत्तर नहीं दे सकता।"

ऐसा स्पष्ट और अत्यन्त संक्षिप्त उत्तर सतीश का सुनकर भी सब एक साथ टकटकी लगा, उसकी ओर देखते हुए पत्थर की मूर्ति के समान बैठे रह गए।

सरोजिनी के आते ही सतीश की इस अमानुषिक स्पर्द्धा ने उसकी असीम निर्लज्जता को बहुत पीछे छोड़कर मानो आकस्मिक वज्राघात के समान सबके होश-हवास नष्ट कर दिए। बहुत देर तक स्तंभित की तरह बैठे रहकर ज्योतिष ने बड़ी चेष्टा से अपने को सँभाल, सिर हिलाकर कहा, "हम लोगों को अब आपसे और कुछ पूछना नहीं है। जो कुछ था, उपेन्द्र के उत्तर से वह पूरा हो गया है।" इतना कह उसने लिफाफे से तार निकालकर सतीश के आगे फेंक दिया।

"उपेन्द्र भैया का तार कहाँ है, देखूँ?" कहकर सतीश ने व्यग्र हाथों से कागज उठा लिया। सब पढ़कर कागज वापस दे दिया और कुछ क्षण चुप रहा। इसके बाद लम्बी साँस लेकर बोला, "सब सच है, उपेन्द्र भैया कभी झूठ नहीं बोलते, सचमुच ही मैं अच्छा आदमी नहीं हूँ। वास्तव में ही मेरे साथ किसीको किसी प्रकार का सम्पर्क रखना उचित नहीं, शायद मैंने भी यह बात स्वयं सोची थी। इसीसे इस जंगल में इस प्रकार एक दिन भाग आया था।" कहते-कहते मानो किसी जंगली मंत्र-बल से उसका कण्ठ-स्वर आर्द्र हो आया और उसका कण्ठ-स्वर गद्‌गद हो गया। किन्तु किसीने कोई बात नहीं कही और सतीश स्वयं भी मौन हो बैठा रहा।

फिर तुरन्त ही फटी छाती की एक लम्बी साँस के साथ उसे जान पड़ा कि एक बहुत बड़ी जटिल समस्या की आज विचित्र मीमांसा हो गई। कल सवेरे जगत्तारिणी का निमंत्रण मिलने के साथ-साथ कितनी ही चिन्ताएँ मन में उत्पन्न हुई थीं। सरोजिनी के हृदय को पाने की इच्छा एकाएक कब उसके अन्तःकरण में पहले-पहल जग उठी थी, उसे वह इस समय याद नहीं

आता था, किन्तु अन्तःकरण में गुप्त रीति से उसकी इच्छा तो उपस्थित थी ही। परन्तु ऐसा हुआ क्योंकर? यह अमृत किस समुद्र को मथने में पैदा हुआ? और मैं विरोधी समाज के शासन में यह अमृत लेकर क्या करूँगा, कहाँ रखूँगा, कैसे ग्रहण करूँगा, कैसे इस मथित समुद्र से प्रेम करूँगा, बहुत दिनों से यह चिन्ता भीतर-ही-भीतर मुझे क्यों दुःखी कर रही थी? सावित्री को खोते समय मैंने इस बात का पता लगा लिया था कि युवती रमणी का मन पाना एक बात है, किन्तु उसका व्यवहार कर सकना दूसरी बात है। पाने की क्रिया जब नर-नारियों के गुप्त हृदय में छिपे पूरी हो जाती है, तब बाहर वाले उसकी भनक नहीं पाते, परन्तु जिस दिन पाने वाला उसके सर्वथा अधीन हो जाता है, उसे जताए बिना—उसकी सम्मति लिए बिना एक पाँव भी आगे नहीं बढ़ा सकता, दिन बड़ा ही दुःखद होता है। ऐसी वस्तु का पाना कितना कठिन है, बाहर के लोग इसका विचार नहीं करते। यह रत्न कितना कठिन है, बाहर के लोगों का इस ओर ध्यान भी नहीं जाता। वे केवल शास्त्र, समाज और लोकाचार लेकर कोलाहल करते फिरते हैं, बाधा देते हैं, हो-हल्ला करते हैं, मानो ऐसा करना उनके लिए परम आवश्यक है।

यदि सरोजिनी को पाने की इच्छा सतीश के हृदय में उत्पन्न न हुई होती तो यह चिन्ता उसके मन में सूल के समान आकर क्यों विद्ध होती?

जिसको प्रेम किया है, उसकी प्रतिष्ठा अपने किस श्रेष्ठ स्थान में करूँगा, इस विषय में किसीसे वाद-विवाद नहीं करना चाहिए था, किन्तु जो समाज प्रतिकूल है, जो मुझे नहीं चाहता, वह किसी प्रलोभन से सुई की नोक के बराबर स्थान भी मुझे देने के लिए राजी न होगा।

कल भी वृद्ध पिता का चिन्तित मुख बार-बार याद आता था। उपेन्द्र भैया के घर के भट्टाचार्य महाशय का रूखा-रूखा, तीव्र स्वर हजारों बार मेरे हृदय पर बहुत बार धक्का मार गया था, तब इस विरोधी संसार के सब लोगों की सम्मिलित अस्वीकृति और अपमानजनक व्यवहारों के बीच में केवल सरोजिनी का मौन लज्जाजनक मुख ही मुझे बलवान तथा तेजवान बनाए हुए था।

आज अब मुझे कोई भय नहीं रहा। एक ही दिन में अचिन्तनीय उपायों

से सब गाँठें खुल गईं, सब दुश्चिन्ताएँ दूर हो गईं, संकट टल गए।

सोचते-सोचते उसने चौंककर आँखें उठाकर देखा, सभी उसी प्रकार सिर नीचा किए चुपचाप बैठे हैं।

सरोजिनी के मुँह की ओर उसने आशा-भरी आँखों से देखा, पर सभी सिर नीचा किए थे, इस पर उसने कहा, "आप मेरे कलकत्ता वाले घर में जाकर एक दिन जिनकी साड़ी सूखने के लिए फैलाई हुई देख आई थीं, उसी का नाम सावित्री है। मैंने सोचा था कि एक दिन स्वयं सब बातें आपको सुनाऊँगा किन्तु किसी दिन वह सुअवसर न मिला, वैसा साहस भी कभी मेरा न हुआ।"

वह उठ खड़ा हुआ, बोला, "ज्योतिष बाबू, दोष मेरा है, यह मैं जानता था। इसी से मेरे मन में अशान्ति थी।" फिर जरा ठहरकर बोला, "मैंने किसी विषय में किसी को धोखा नहीं दिया है। धोखाधड़ी से मेरा कोई सरोकार नहीं है। बस मुझे अब कुछ कहना नहीं है।"

ज्योतिष ने कुछ कहना चाहा, किन्तु उसके मुँह से कोई बात न निकली।

एक लम्बी साँस लेकर सतीश ने कहा, "मैं जाता हूँ, मेरा आपसे एक अनुरोध है। मेरी बातों की आलोचना कर आप लोग मन खराब न कीजिएगा। मैं कभी किसी बहाने से आप लोगों के सामने फिर न आऊँगा। आप लोग मुझे भूल जाइएगा।" फिर वह धीरे-धीरे बाहर हो गया।

ज्योतिष ने बगल की ओर डरते हुए देखा कि सरोजिनी का सिर बिलकुल उसके घुटने के पास झुक गया है। "सरोजिनी, सरोजिनी!" कहकर उसके चिल्ला उठते ही सरोजिनी की ढीली मुट्ठियाँ कुर्सी की बाँह से पृथक् हो गईं और वह नीचे दरी पर मूर्च्छित होकर गिर पड़ी।

अभिमान और अपमान के क्रोध से ज्योतिष की बुद्धि पर ऐसा पर्दा पड़ गया था कि उसे इस बात का जरा भी विचार न था कि सरोजिनी के आगे सतीश का विदा होना उसे कैसी कठिन चोट पहुँचाएगा।

इसीसे बहुत देर की सेवा के पश्चात् सरोजिनी होश में आ, जब काँपती और तलमलाती हुई अपने कमरे में चली गई, जब ज्योतिष के सिर पर मानो एक साथ ही वज्र गिर पड़ा।

बहन को वह केवल प्राणों से अधिक प्यार ही नहीं करता था, बल्कि अपनी सर्वांग-सुन्दरी, लावण्यमयी, शिक्षित बहन के आत्म-मर्यादा ज्ञान पर भी उसे पूरा विश्वास था। किन्तु भीतर-ही-भीतर वह इतना प्रेम कर सकती है, अपने समस्त गुण-गौरवों को भूलकर ऐसे चरित्रहीन, लम्पट के पैरों में सब कुछ न्योछावर कर, होश-हवास गंवाकर, सूखी घास के समान गिर पड़ सकती है, इसकी स्वप्न में भी कभी उसने कल्पना नहीं की थी और उसके चेहरे पर व्यथा का जो चित्र अंकित हो गया था, वह व्यथा कितनी गहरी है, इसका निरूपण करने की शक्ति उसमें न थी, तो भी वह देर तक पत्थर के समान बैठा रह गया।

इसके बाद शशांकमोहन की ओर देखकर बोला, "आप शायद आज ही रात की गाड़ी से कलकत्ते लौट जाएंगे!"

शशांक ने कहा, "ना, वहाँ वैसा कोई आवश्यक काम नहीं है।"

ज्योतिष ने और कोई प्रश्न न किया। वह उठकर भीतर चला गया और अपने घर में जा, दरवाजे बन्द कर लेट रहा।

उस रात को शशांक मोहन को अकेले ही बैठकर भोजन करना पड़ा।

एक-एक कर सब बातें बेटे के मुँह से जगत्तारिणी ने सुनीं। वे गहरी साँस ले बहुत देर तक मौन रहीं। अनन्तर बोलीं, "ज्योतिष, यह सब मेरे ही फूटे भाग्य का फेर है।" अपने मरे हुए स्वामी का स्मरण कर उन्होंने कहा, "जब उनके रहते ही मैं जीवन-भर जलती-झुलसती रही तब फिर अब का तो कहना ही क्या है? तुम लोगों के कारण यदि जलना न पड़ा, तो पाप का पूरा प्रायश्चित ही कहाँ हुआ? अच्छा बेटा, तुम्हें जो पसन्द हो, उसीके साथ बहन का ब्याह कर दो। मैं अब कुछ न बोलूंगी।" इतना कहकर और एक लम्बी साँस भरकर बोलीं, "इसीसे एकाएक उसके आने की बात सुनकर उस दिन मेरा हृदय धड़क उठा था!"

ज्योतिष ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह मन-ही-मन भलीभाँति समझ गया था कि यह काम ऐसा सहज नहीं है। इसलिए जो कुछ हो गया, वह हो गया—यों कहकर उपेक्षा करने और आंखें मूंदकर बैठे रहने से काम न चलेगा। शायद किसी दिन इस चरित्रहीन के पास स्वयं मुझे जाना पड़ेगा और उसे समझा-बुझाकर लौटा लाना पड़ेगा।

दूसरे दिन उसने सरोजिनी को एक बार भी घर के बाहर आते नहीं देखा। आज शाम को चाय पीने के पहले ही से वह वहाँ आकर बैठी हुई है और शशांक मोहन से धीरे-धीरे बातें कर रही है।

ज्योतिष पास आ, एक कुर्सी खींचकर चुपचाप बैठ गया। यद्यपि बहन के उतरे हुए चेहरे को देखकर उसे कुछ समझना शेष न रहा तथापि उसके हृदय पर से मानो भारी बोझ हट गया।

चाय पीने के बाद भी कुछ देर तक बहुत-सी बातें हुईं, किन्तु उस दिन की किसीने कोई चर्चा नहीं की।

शाम के बाद बहन को बहुत कुछ निश्चिन्त-सी देखकर ज्योतिष ने सोचा कि उस दिन की घटना से मैंने जैसा अनुमान किया था, बात वहाँ तक नहीं पहुँची है। मेरा विचार गलत था। सम्भवतः थोड़े ही दिनों में फिर सब कुछ ठीक हो जाएगा।

उस रात को बड़ी देर तक दोनों मित्रों में बातचीत होती रही। यहाँ तक कि ज्योतिष ने अपनी आशा की बात भी संकेत से बताने में कोई कमी न रखी।

अपने आन्तरिक प्रेम के प्राथमिक थपेड़े की चोट सँभाल लेने के बाद सतीश के घृणित आचरण के साथ मन-ही-मन शशांक मोहन की तुलना सरोजिनी अवश्य करेगी, इस बात पर दोनों एक प्रकार से सहमत हो गए।

दूसरे दिन।

दोपहर को खाने-पीने के बाद सरोजिनी अपने ऊपर वाले सोने के कमरे में खुली खिड़की के सामने एक कुर्सी पर बैठ मार्ग की ओर देख रही थी।

सहसा मालूम हुआ कि कुछ दूर पर सामान से लदी एक बैलगाड़ी के पीछे-पीछे दो आदमी छाता लगाए हुए चले आ रहे हैं, उनमें से एक बिहारी है। सरोजिनी सावधानी से खिड़की की छड़ पकड़कर खड़ी हो गई।

गाड़ी धीरे-धीरे उसकी खिड़की के सामने आ पहुँची और एक आदमी ने सिर ऊपर उठाकर खिड़की की ओर देखा। देखते ही स्पष्ट मालूम हो गया कि वह बिहारी है। सरोजिनी ने हाथ के संकेत से उसे बुलाया।

बिहारी अपने साथी को आगे चलने के लिए कह छाता बन्द कर खिड़की के नीचे आ खड़ा हुआ।

सरोजिनी के कहने पर बिहारी दरवाजे के पास ही सीढ़ी के मार्ग से सरोजिनी के कमरे में पहुँचा और उसे प्रणाम कर उसके पाँवों की धूल कण्ठ और मस्तक से लगाई।

सरोजिनी ने मन-ही-मन उसे आशीर्वाद देकर कहा, "तुम लोगों की तो गाड़ी रात को ग्यारह बजे के बाद मिलेगी, अभी बहुत समय है। रसोइया भी तो साथ में है, वह कुली से सामान उतरवाकर रखवा लेगा, तुम जरा बैठो।" बिना पूछे ही सरोजिनी समझ गई थी कि सतीश वहाँ से कहीं और जा रहा है।

बिहारी अपने दुपट्टे के छोर से माथे का पसीना पोंछ, चटाई पर बैठ गया।

कुछ देर तक सरोजिनी चुप रही, फिर बोली, "बिहारी, तुम तो ब्राह्मण के आगे कभी भी झूठ नहीं बोलते?"

बिहारी ने दाँत तले जीभ दबाकर कहा, "ऐसा करने से क्या मेरा उद्धार होगा? सात जन्म काशीवास करने पर भी ऐसा पाप न छूटेगा!"

सरोजिनी ने स्निग्ध दृष्टि से उस देहाती, धर्मभीरु बूढ़े के चेहरे की ओर देखकर हँसते हुए कहा, "यह तो जानती हूँ बिहारी कि तुम कभी झूठ नहीं बोलते। किन्तु मैं कुछ पूछूँगी, वह किसी से कहोगे तो नहीं?"

बिहारी ने कहा, "बहन, मुझे किसीसे कहने की क्या आवश्यकता है!"

सरोजिनी ने सूखे गले को गीला करके पूछा, "अच्छा, सावित्री कौन है बिहारी?"

बिहारी ने सरोजिनी के मुँह की ओर देखकर कहा, "सावित्री··· हमारी सावित्री? मैंने उन्हें बराबर अपनी कन्या के समान जाना है और माता के समान आदर-मान किया है। क्या तुम उन्हीं की बात पूछती हो बहन? आह! नहीं जानता, वे किस शाप से पृथ्वी पर जन्म लेकर इतना दुःख पाती हैं? अहा, वह साक्षात् लक्ष्मीस्वरूपा हैं।"

बिहारी को बहुत दिन हुए, सावित्री का नाम लेने का भी अवसर न

मिला था। उसका नाम याद आते ही बिहारी का स्वर गद्‌गद हो गया, आँखों में आँसू भर आए।

सावित्री का नाम सुनते ही उसकी यह अवस्था होती देख, सरोजिनी आश्चर्यचकित हो गई।

बिहारी हाथ से आँखें पोंछकर बोला, "मेरी माई सावित्री जिस दिन गई, वह दिन मेरे हृदय के अन्दर आज भी अंकित है।"

धीरे-धीरे सरोजिनी ने पूछा, "वे अब कहाँ हैं बिहारी ?"

बिहारी ने इस प्रश्न का सहसा उत्तर नहीं दिया, मुँह देखता चुप रहा।

सरोजिनी ने फिर पूछा, "क्या मालूम नहीं है, बिहारी ?"

इस बार बिहारी ने सिर हिलाकर कहा, "ठीक-ठीक पता नहीं है लेकिन तो भी कुछ जानता हूँ। किन्तु यह बात वताने के लिए उन्होंने ही मना कर दिया है, कैसे बताऊँ ?"

सरोजिनी ने पूछा, "क्यों मना किया ?"

यह बात बिहारी के लिए भी एक समस्या थी, इस विषय में वह बहुत कुछ सोचता, पर किसी निश्चय पर पहुँच नहीं पाता था। फिर भी इस आज्ञा को मानकर सदा चलना, सावित्री कैसी है और कैसे जीवन बिता रही है, इसका कुछ भी पता न चलना, एक बार फिर आँखों से देख न पाना, यह सब बिहारी के लिए कितना कठिन था। खासकर जब सतीश किसी वात में सावित्री पर व्यर्थ में आपेक्ष करता था तव सब बातें खोलकर कह देने के लिए उसके मन में भावनाओं का तूफान उठ खड़ा होता था किन्तु बूढ़े ने आज तक सावित्री की दी हुई शपथ नहीं तोड़ी, सतीश को उसका वास्तविक हाल नहीं बताया। यदि किसी दिन असह्य मालूम हुआ है, तो उसने निरन्तर इसी का स्मरण किया है कि सावित्री जब निरपराधिनी होकर भी इतना बड़ा कलंक चुपचाप सह रही है, तब निश्चय ही इसके भीतर कोई विशेष वात है जो उसकी वुद्धि में नहीं आती। सावित्री पर उसका अटल विश्वास था—अविचल श्रद्धा थी। किन्तु एक परम स्नेह-भाजन बालिका जव सब बातें जानने के लिए उत्सुकता प्रकट करने लगी तब वह भी कुछ कहने के लिए व्याकुल हो उठा। कुछ क्षण चुप रहकर बोला, "बता सकता हूँ, बहन ! यदि तुम मेरे बाबू से न कहो।"

सरोजिनी मन-ही-मन बहुत चकराई।

बिहारी जानता है और सतीश नहीं जानता और उसी से कहने के लिए सावित्री की आज्ञा नहीं है, इसका क्या कारण है, वह कुछ समझ न सकी। बोली, "ना-ना बिहारी, मैं किसीसे न कहूँगी, तुम बताओ !"

थोड़ी देर चुप रहकर और शायद यह सोचकर कि इससे झूठ बोलने का पाप तो नहीं लगेगा, बिहारी धीरे-धीरे कहने लगा। डाक्टरी पढ़ने के लिए कलकत्ते जाकर सतीश जब पहले-पहल राखाल बाबू के मेस में ठहरा था, तब से लेकर इस निर्जन स्थान में आकर रहने तक का सारा इतिहास उसने सुना दिया।

सावित्री सतीश को प्राणों से अधिक प्यार करती थी, इसी कारण राखाल ने जलकर झगड़ा किया था और उसने सतीश को मेस छोड़ने के लिए लाचार किया था।

कभी-कभी सतीश शराब भी पीता था इत्यादि कोई भी बात बिहारी ने सरोजिनी से न छिपाई।

मन्त्रमुग्ध के समान सरोजिनी सब कुछ सुनती रही। शायद ऐसे एकाग्र-चित्त से, ऐसे ध्यान से और किसी की बातें नहीं सुनी होंगी। राखाल नामक जिस आदमी से शशांक मोहन ने सतीश के विषय में कुछ बातें जानी थीं, संयोगवश उस व्यक्ति का इतिहास भी आज सरोजिनी को मालूम हो गया।

सावित्री का घर कहाँ है, उसके मायके या ससुराल वालों का परिचय क्या है, ये बातें यद्यपि बिहारी को मालूम न थीं, किन्तु उसने बार-बार कहा, "ब्राह्मण की लड़की है, विधवा है, सुन्दरी है, लिखना-पढ़ना जानती है, केवल भाग्य फूट जाने से नौकरी करने आई थी।" यह बात बार-बार कहकर वह बोला, "बाबू उन्हें इतना प्यार करते थे, तो भी उनसे ऐसे डरते थे, जैसे शेर से बकरी डरती है। शराब पीकर मेस में उनको आने का साहस न होता था। विपिन नामक बाबू का एक आवारा मित्र था, उसके साथ मिलकर गाते-बजाते थे, एक बुरे स्थान में जाते-आते थे, यह खबर माईजी के कान में पड़ते ही उनका वहाँ जाना एकदम बन्द हो गया। ऐसा साहस न हुआ कि सावित्री माई की बात काटकर उस स्थान पर जाते।" यह कह-कर बिहारी ने गर्वपूर्वक सरोजिनी के मुँह की ओर देखा।

सतीश पर एक अन्य स्त्री के ऐसे बड़े अधिकार की बात सरोजिनी की छाती में सूल के समान गड़ गई; तथापि उसने धीरे-धीरे पूछा, "अच्छा बिहारी, सतीश बाबू को उससे इतना भयभीत होने की क्या जरूरत थी ?" इसके उत्तर में बिहारी ने कहा, "वे बड़ी तेजस्विनी थीं। केवल मेरे बाबू ही नहीं, मेस-भर के लोग भीतर-ही-भीतर उनसे डरते थे। जिस दिन वे मेस से चली गईं, उस दिन बाबू ने कहीं से शराब पीकर शराब की बोतल बगल में दबाए घर में घुसते ही ज्यों ही सुना कि सावित्री घर में ही हैं, मारे डर के उन्होंने त्योंही शराब की बोतल बाहर फेंक दी। उनके सिवा क्या और कोई बाबू को वश में ला सकेगा !"

कुछ क्षण चुप रहने के बाद सरोजिनी बोली, "सतीश बाबू क्या अब भी शराब पीते हैं, बिहारी ?"

बिहारी ने सिर हिलाकर कहा, "ना-ना। किन्तु फिर शुरू करने में कितनी देर लगेगी ! पिछले दो दिनों से यही सोच रहा हूँ कि इस कुसमय में यदि मेरी सावित्री माई एक बार आ जाती तो बड़ा अच्छा होता।"

सरोजिनी ने उत्सुक होकर पूछा, "क्यों बिहारी, ऐसा क्यों सोच रहे हो ?"

बिहारी ने कहा, "मैं बहुत दिनों से देखता आता हूँ कि मन खराब होने पर ही बाबू शराब पीना आरम्भ करते हैं। एक उपेन्द्र बाबू से डरते थे, पर न मालूम उनके साथ भी क्या हो गया है। उस दिन रात को घर में घुसते ही उनकी दृष्टि सावित्री पर पड़ी और उसी दम लौट गए। उसके बाद कोई किसीका नाम नहीं लेता। अब तुम्हीं बताओ बहन कि उसके सिवा बाबू को और कौन सँभाल सकता है ?"

बिहारी फिर कहने लगा, "बीमारी की सूचना पाकर बाबू ने ये पाँच-छः दिन किस तरह बिताए हैं, यह तो मैंने अपनी आँखों देखा है। परसों नींद खुलने के साथ तार से समाचार पाते ही मुँह जो ढँककर चारपाई पर पड़े सो दिन-भर पड़े ही रहे। इसके बाद रात की गाड़ी से घर चले गए। मुझे केवल यही कह गए कि—बिहारी, तुम सब चीज-वस्तु लेकर घर चले आना।"

सरोजिनी ने घबड़ाकर पूछा, "कौन बीमार है, बिहारी ?"

बिहारी ने आश्चर्य में आकर कहा, "यहाँ से जाते समय क्या बाबू तुम लोगों से कुछ कह नहीं गए बहन ?"

सरोजिनी ने सिर हिलाकर कहा, "ना, कौन बीमार है ?"

बिहारी ने लम्बी साँस लेकर कहा, "तो भूल से सीधे चले गए हैं, इस घर में नहीं आए। जिस दिन सवेरे निमन्त्रण में यहाँ आने की बात थी, उसी दिन चिट्ठी आई कि उनके पिताजी बीमार हैं। इसी से खाने न आ सके। तार देखकर दिन-भर स्वयं डाकखाने में खड़े रहे, किन्तु कोई सूचना न आई। इसके बाद परसों सवेरे अन्तिम समाचार आया। रात की गाड़ी से बाबू घर चले गए।"

सरोजिनी चौंक उठी, "सतीश बाबू के पिता मर गए ?"

बिहारी ने कहा, "हाँ, बहन !"

"क्या बीमारी थी ?"

"बहुत आयु हो गई थी, किसी साधारण बीमारी के बहाने से प्राण निकल गए।" कहकर बिहारी ने आँखें पोंछकर कहा, "और किसी बात के लिए दुःख नहीं करता बहन ! चिन्ता केवल इस बात की है कि पिता की मृत्यु से बाबू को अपना कहने के लिए और कोई न रह गया। इससे दो दिन से यही चिन्ता करता हूँ, अब से वे क्या करने लगेंगे, यह माँ दुर्गा ही जाने।" कहकर बुड्ढे ने दुपट्टे के छोर से फिर एक बार सजल आँखों को अच्छी प्रकार पोंछ डाला।

सरोजिनी की अपनी आँखों में भी मानो आँसू भर आए।

उसने कहा, "इस समय से सतीश बाबू चाहें तो अच्छे भी हो सकते हैं। बुरा मार्ग ही पकड़ेंगे, यह भय तुम्हें क्यों है बिहारी ?"

बिहारी ने अनमना-सा होकर कहा, "क्या पता ?" इसके बाद सिर उठाकर बोला, "तुम्हारे मुँह में घी-मिश्री पड़े बहन ! बाबू सच्चरित्र ही हों⋯और किसी बुरी ओर उनकी मति-गति न हो। किन्तु जाते समय गाड़ी पर चढ़कर कहा था, जाने दो, इस प्रकार से रक्षा ही हुई, संसार में अब किसी के लिए भावना-चिन्ता न करनी होगी। तुमसे सच कहता हूँ बहन, जब से यह बात सुनी, तभी से हृदय के अन्दर बार-बार घबराहट-सी पैदा होती है। अब हाथ में अधिक धन आ जाएगा। बाबू के संगी-साथी भी अच्छे नहीं हैं।

बुरे मार्ग पर चलने से अब कौन उन्हें रोकेगा ? केवल वे ही रोक सकती हैं !"

बिहारी ने मानो फिर एक बार सरोजिनी की छाती पर आघात कर दोनों हाथ सिर पर दे पटके।

सरोजिनी ने चोट सहकर मृदुकंठ से कहा, "तो बिहारी, उनको आने के लिए चिट्ठी क्यों नहीं लिख देते ?"

बिहारी बोला, "पता तो मालूम नहीं है। यदि एक बार काशी जा सकता, तो जैसे भी होता, पता लगाकर लौटा लाता, किन्तु मुझे तो वैसी आसानी भी नहीं। बाबू को अकेले छोड़ जाने को मन नहीं चाहता। इसके सिवा, मैं कभी काशी गया नहीं, उस शहर की कुछ भी जानकारी मुझे नहीं है।"

उसने निरुपाय के समान सरोजिनी के मुँह की ओर देखा। उसकी उस दृष्टि से यह बात साफ-साफ समझ में आ जाती थी कि यह परम हितैषी वृद्ध नौकर स्वामी के अवश्यम्भावी अमंगल के भय से उद्विग्न होकर सरोजिनी से आश्वासन पाने की प्रतीक्षा कर रहा है, किन्तु सरोजिनी ने उसे कोई आश्वासन नहीं दिया। वह केवल चुप रही।

"अच्छा, तो अब जाता हूँ।" कहकर बिहारी ने उसके पाँवों तले माथा टेककर प्रणाम किया और कमरे से बाहर निकल गया। फिर उसी क्षण वह सहसा ही लौट पड़ा और हाथ जोड़कर सामने आ खड़ा हुआ।

"क्या है बिहारी ?" सरोजिनी ने पूछा।

"एक विनती करूँ।"

सरोजिनी ने बड़े कष्ट से सूखे होंठों पर मुस्कराहट लाकर कहा, "क्या है ?"

उसी प्रकार हाथ जोड़े हुए बिहारी ने करुणकंठ से कहा, "मैं गँवार, मूर्ख ग्वाला हूँ फिर भी बुड्ढा हूँ। इतनी बातें करने में न जाने क्या-क्या भूलें मैंने की हैं, यदि कटु वचन कहा हो तो क्षमा करेंगी।"

सरोजिनी की आँखों में जल आ गया। किन्तु प्राणपण से उसे रोककर उसने कहा, "अच्छा।"

उसके मुँह से एक मात्र 'अच्छा' शब्द सुनकर मानो बिहारी का भय जाता रहा। यद्यपि उसने गँवार, मूर्ख आदि शब्दों से अपनी बुद्धिहीनता का

परिचय दिया तथापि वह मूर्ख न था। सरोजिनी ने सावित्री की बातें पूछने के लिए क्यों रास्ते से बुलाया था, क्यों उसने इतने ध्यानपूर्वक उसकी बातें सुनीं—इन सब बातों का मतलब तुरन्त अब उसकी समझ में स्पष्ट रूप से आ गया। उसके मन की बात पहले न समझकर इतनी देर से उसने इस तरुणी को जो मर्म-पीड़ा पहुँचाई, उसके लिए उसे बहुत ही पछतावा हुआ।

इस बार बिहारी ने बहुत ही करुणकंठ से कहा, "मैं समझता हूँ, तुम्हारी बातों की बाबू कभी उपेक्षा न कर सकेंगे। तुम भी इच्छा करने पर असमय में बाबू की रक्षा कर सकती हो माँ, किन्तु मेरा मन कहता है, तुमने भी उनको त्याग दिया है।"

बिहारी ने यही पहले-पहल सरोजिनी को 'माँ' कहकर सम्बोधन किया। माँ कहकर काम निकालने का ढंग बूढ़ा खूब जानता था।

सरोजिनी के आँसू अब न रुक सके। दोनों आँखें आँसुओं में डूब गईं और बिहारी के सामने ही आँसुओं की बड़ी-बड़ी बूँदें टपकने लगीं।

शीघ्र ही उन्हें पोंछकर सरोजिनी ने कहा, "ना बिहारी, मुझसे कुछ भी न होगा—मैं अब कभी उनकी बातों में नहीं पड़ूँगी।"

बिहारी ने सिर हिलाकर कहा, "मैं तुम्हारा सेवक हूँ। उनसे जो कुछ अपराध हुआ हो, उसे मैं अपनी भूलें मानता हूँ।" कहकर फिर सरोजिनी के पाँवों की धूल माथे पर लगाकर बोला, "किन्तु तुम तो मेरे बाबू को जानती हो। इस विपत्ति के समय में क्रोध करके, रोष करके तुम उनको मार डालोगी, और इसे मैं अपनी आँखों देखता रहूँगा, यह मुझसे न हो सकेगा।"

सारा क्रोध नष्ट हो गया सरोजिनी का। उसका हृदय मोम की तरह पिघल गया, वह सतीश को क्षमा करने के लिए एक बार प्रस्तुत हो गई, किन्तु साथ-ही-साथ बूढ़े के मुँह से सुनी हुई सावित्री के सम्बन्ध की बातें उसे याद हो आईं और उसका द्रवित मन पलक मारते ही फिर सूखकर काठ हो गया।

उसने सिर हिला, धीरज धरकर कठोर स्वर में कहा, "ना बिहारी, तुम डरो नहीं, सावित्री के आते ही सब कुछ ठीक हो जाएगा। किन्तु मेरे द्वारा तुम लोगों का कोई भला न होगा।"

बिहारी को उससे ऐसा कठोर उत्तर सुनने की आशा न थी। अपने सर्व-विजयी प्रेम के निकट यह शुष्क कण्ठ-स्वर उसे ऐसा कठोर मालूम हुआ कि कुछ क्षण के लिए वह विह्वल की तरह केवल चुपचाप देखता रहा। फिर सरोजिनी को प्रणाम करके निकल गया।

उनतालीस

यक्ष्मा से ग्रस्त हुई पत्नी को लेकर उपेन्द्र पाँच-छः महीने तक नैनीताल में रहकर अभी कुछ दिन हुए बक्सर लौट आया है। यह है सुरबाला की अन्तिम इच्छा।

उस दिन संध्या के बाद दीपक के प्रकाश में बड़ी देर तक चुप देखते रहने के बाद यह परलोक की यात्री धीरे-धीरे पति के हाथ पर अपना दायाँ हाथ रखकर बोली, "तुम्हारी बातों पर अब किसी दिन सन्देह नहीं होता। आज मुझे एक बात सचाई के साथ बता दोगे? धोखे में नहीं डालोगे न?"

उपेन्द्र ने स्त्री के मुँह पर झुककर कहा, "कौन-सी बात पशु?"

पलभर चुप रहकर सुरबाला बोली, "तुमको मैं फिर पाऊँगी तो?"

उपेन्द्र ने स्त्री के सिर पर से रुखे बालों को हटाकर शान्त-दृढ़ स्वर से कहा, "अवश्य पाओगी।"

"अच्छा कितने दिन में पाऊँगी? मैं तो शीघ्र ही जा रही हूँ, लेकिन उतने दिनों तक कहाँ तुम्हारे लिए बैठी रहूँगी?"

"स्वर्ग में रहोगी। वहाँ से तुम मुझे बराबर देख सकोगी।"

"लेकिन मैं अकेली किस प्रकार रहूँगी? अच्छा, सभी डॉक्टर उत्तर दे चुके हैं? ऐसी कोई दवा नहीं है जिससे मैं बचूं? मेरे चले जाने से तुमको बहुत कष्ट होगा।"

एक बूंद आँसू का जल किसी प्रकार भी उपेन्द्र सँभाल न सका—टपक-कर के सुरबाला के मस्तक पर चू पड़ा।

उसके सम्पूर्ण हृदय को मथित करके व्याकुल पुकार फूट निकली,

"भगवान् पति के हृदय में तुमने केवल इतना प्यार दिया, लेकिन इतनी भी शक्ति नहीं दी कि स्नेहास्पद को एक दिन भी अधिक पकड़ रखें।"

सुरबाला अपने दुबले हाथ को उठाकर पति की आँखें पोंछकर बोली, "तुम्हारी रुलाई मैं सहन नहीं कर सकती—मेरी और एक बात मानोगे?"

उपेन्द्र ने सिर हिलाकर कहा, "मानूंगा।"

सुरबाला ने कहा, "तब तो मेरी छोटी बहन शची के साथ छोटे बबुआ जी का ब्याह कर देना। मैंने बहुत दिनों से उनको देखा नहीं है, दो-चार दिनों में उनकी पढ़ाई में कौन बड़ी हानि हो जाएगी—एक बार कलकत्ता से आने के लिए तार दे दो न!"

उपेन्द्र के हृदय में फिर एक बाण बिंध गया।

दिवाकर को सुरबाला कितना प्यार करती थी, इसे वह जानता था। तो भी उसकी अन्तिम इच्छा पूरी करने का कोई उपाय नहीं है। दिवाकर की उत्तम कीर्ति को बहुत दिन तक उसने अपनी स्त्री से छिपा रखा था, आज भी उसको प्रकट नहीं किया। तार देने के अनुरोध को बातों से बहलाकर कहा, "लेकिन उसके साथ शची का ब्याह करने की राय पहले तो तुम्हारी नहीं थी पशु! केवल मेरी सलाह से अन्त में तुमने अपनी राय दी थी। अब मेरा अपना विचार भी बदल गया है। शची के लिए बहुत-से अच्छे विवाह-सम्बन्ध मैं ठीक कर दूंगा; लेकिन इस ब्याह की आवश्यकता नहीं है पशु।"

सुरबाला ने कहा, "ना, यह नहीं होगा, छोटे बबुआजी के साथ ही शची का ब्याह कर देना।"

उपेन्द्र आश्चर्य में बोला, "क्यों, बताओ तो?"

सुरबाला ने कहा, "उसका मुँह देखकर तुम किसी दिन फिर हमारे लिए पराए न हो सकोगे, इसके अलावा वह मकान में रहेगी तो तुमको भी देख सकेगी।"

उपेन्द्र ने अनमने होकर कहा, "अच्छा यदि असम्भव न हो तो कर दूंगा।"

तीन दिन बाद सूचना पाकर उपेन्द्र के मना करते रहने पर भी माहेश्वरी आ गई।

सुरबाला ने उसकी गोद में सिर रखकर कहा, "मेरे चले जाने पर उनपर जरा ध्यान रखना बहन। मैं तो जाती हूँ, वे फिर ब्याह न करेंगे, लेकिन भारी कष्ट होगा। तुम सभी लोग उनको देखना, तुम लोगों से मेरी यही अन्तिम विनती है।" यह कहकर उसकी आँखों से आँसू झरने लगे।

माहेश्वरी उसकी छाती पर औंधी गिरकर रो उठी, मुँह से एक भी बात न निकाल सकी।

तीन-चार दिन बीत गए। उसके बाद एक दिन सवेरे पति की गोद में सिर रखकर, समूचे मुहल्ले को शोक-समुद्र में निमग्न करके वह सती-साध्वी स्वर्ग को चली गई।

शान्त-स्थिर भाव से उपेन्द्र पत्नी का अन्तिम संस्कार पूरा करके माहेश्वरी को साथ लेकर अपने घर लौट आए। उपेन्द्र के पिता शिवप्रसाद बाबू पुत्र के लिए अत्यन्त उत्कण्ठित हो गए थे। लेकिन अब लड़के का मुँह देखकर बहुत कुछ आश्वस्त हुए। मन-ही-मन में बोले, 'ना, जितना मैं डर गया था, उतना नहीं है।' यहाँ तक कि उन्होंने निकट भविष्य में और एक सुन्दर बहू घर में लाने की आशा को भी हृदय में स्थान दे रखा था। लेकिन भगवान् ने सम्भवतः छिपे रहकर बूढ़े के लिए उस दिन लम्बी साँस ले ली।

उपेन्द्र को कुछ ही दिनों के बाद कोर्ट के लिए घर से निकलते देखकर शिवप्रसाद ने अत्यन्त सन्तोष का अनुभव किया, यहाँ तक कि आनन्द की अधिकता से पुत्र को कुछ क्षण के लिए अपने पास बुलाकर संसार की नश्वरता के विषय में बहुत-सी लाभदायक बातें कहकर अन्त में बोले, "उपेन्द्र, तुमको और क्या समझाऊँ बेटा, तुम स्वयं ही सब कुछ जानते हो, सब कुछ समझते हो। इस संसार में कुछ भी चिरस्थाई नहीं है—आज जो है कल वह नहीं रहेगा, सब ही माया है। इस बात को सदा स्मरण रखना बेटा, कभी भविष्य को नष्ट मत करना। प्राणपण से उन्नति करने का यही समय है। कौन किसका है? शास्त्रों में लिखा है—'चलाचलमिदम् सर्वं कीर्तियस्य स जीवति!' अर्थात् सम्मान कहो, प्रतिष्ठा कहो, सब कुछ है रुपया। रुपया कमाने पर ही सब कुछ निर्भर है। देखो न सतीश के बाबूजी किस प्रकार रुपया रख गए हैं बताओ तो?" यह कहकर गम्भीर भाव से वे सिर हिलाने लगे।

उपेन्द्र मुँह नीचा किए चुपचाप सब सुनकर 'जैसी आज्ञा' कहकर कचहरी चला गया।

कचहरी में सतीश के भैया से भेंट हो गई। उन्होंने इस दुर्घटना के लिए अति दुःख प्रकट करके अन्त में सतीश की चर्चा छेड़ दी।

उपेन्द्र की धारणा थी कि सतीश पिता की मृत्यु के बाद से घर पर ही है, लेकिन अब जब उसने सुन लिया कि वह घर पर तो है अवश्य, लेकिन यहाँ नहीं, गाँव के घर पर है। टुनू बाबू सतीश के सौतेले बड़े भाई हैं। किसी दिन भी उसको उन्होंने अच्छी दृष्टि से नहीं देखा—एक घर में रहतें हुए भी कभी उसका समाचार तक भी लेने की आवश्यकता उन्होंने नहीं समझी। वस्तुतः सतीश के साथ उनका सम्बन्ध नहीं था, यह कहना भी अनुचित नहीं है। पिता की मृत्यु होने से आधे का हिस्सेदार बनकर वह भैया की और भी विषदृष्टि में पड़ गया है। वे बोले, "इसके बीच ही प्रायः तीस हजार रुपया खर्च करके उसने खूब ही बड़ी दो डिस्पेन्सरियाँ खोल दी हैं। सौ रुपए मासिक वेतन पर एक डॉक्टर रख लिया है। इसके अलावा मकान को भी अस्पताल में बदल दिया है।"

उपेन्द्र ने सरलता से कहा, "हाँ, यह इच्छा उसकी बहुत दिनों से थी, केवल रुपए के अभाव से ही वह इतने दिनों तक काम न कर सका था।" टुनू बाबू ने व्यंग्य करके कुछ हँसकर कहा, "ऐसा तो मुझे भी जान पड़ता है उपेन। लेकिन, केवल डिस्पेन्सरी खोलने की इच्छा ही तो तुम जानते थे, उसके साधन-भजन का अर्थ तो तुम नहीं जानते थे भैया।"

उपेन्द्र ने आश्चर्य में पड़कर पूछा, "साधन-भजन कैसा?"

टुनू बाबू बोले, "यही जैसे चक्र, कारण, पंचमकार इत्यादि। केवल फिलानथ्रिपिष्ट नहीं है जी, 'सतीश स्वामी' अब एक उच्च कोटि के साधक हैं, गेरुआ वस्त्र पहनते हैं, बड़ी-बड़ी दाढ़ी-मूँछ हैं, रुद्राक्ष की माला, ललाट पर सिंदूर का तिलक—सदा ही घूमते हुए नेत्र। उसका एक हस्ताक्षर लेने के लिए रासबिहारी को मैंने भेजा था, वह तो भूत के मारे दो दिन पास तक नहीं जा सका था—और इस चिट्ठी को पढ़कर देखो, उसके नौकर बिहारी ने मेरे पास लिख भेजी है—अभी तक उत्तर नहीं दिया गया, इसलिए जेब में ही यह घूम रही है।" यह कहकर उन्होंने एक पीले रंग का मुड़ा हुआ

कागज निकालकर उपेन्द्र के सामने रख दिया। निरुपाय होकर बिहारी ने सतीश के बड़े भाई के पास उपाय करने की प्रार्थना करके चिट्ठी भेजी है। सम्भवतः उसने गाँव के किसी अनजान लड़के को पकड़कर चिट्ठी लिखवा ली है। आदि से अन्त तक चिट्ठी पढ़ी न जा सकी, लेकिन जितनी पढ़ी गई, उतनी ही ने उपेन्द्र को बड़ी देर तक स्तम्भित रखा।

उसका छोटा भाई, उसके बचपन का सुहृदय, दायाँ हाथ—वही सतीश आज अधःपतन के इतने निम्न स्तर पर उतर गया है कि गाँव में खुले तौर से यह सब वीभत्स कीर्तियाँ करके घूमते रहने में लज्जा अनुभव तो करता ही नहीं, वरन् धर्म-साधना समझकर कर रहा है, आत्म-प्रसाद प्राप्त कर रहा है। सम्भवतः उस नीच दासी से भी सहयोग कर लिया है। इसके अतिरिक्त बिहारी की चिट्ठी के भाव से यह भी समझने में आता है कि गाँव के निकम्मे कुछ लोग भी उसके साथ जुट गए हैं।

अन्यमनस्क होकर उपेन्द्र चिट्ठी पॉकेट में डालकर कचहरी से घर लौट आया, टुनू बाबू को लौटा देने की बात उसको याद न रही।

बिहारी ने चिट्ठी डाक में छोड़ दी।

शुरू में कई दिनों तक वह स्वयं टुनू बाबू की प्रत्याशा में उतावला हो रहा था। बाद को एक उत्तर के लिए अधीर होकर दिन बिताने लगा। लेकिन दिन-पर-दिन बीत गए, नहीं आए बड़े बाबू, नहीं आया उनका उत्तर।

बिहारी विशेषतः 'थाको बाबा' के अत्याचार से ही परेशान हो उठा है। ये हैं तान्त्रिक साधु, सिद्ध पुरुष—सतीश के मन्त्रगुरु हैं। आठों पहर मदिरा-गाँजा सेवन से स्वभाव दुर्वासा से भी तेज हो चला है। मुँह इतना खराब है कि केवल क्रोध करने की दशा में ही नहीं, उनकी स्वाभाविक मानसिक अवस्था की बातचीत में भी कानों में उँगली देनी पड़ती है।

तान्त्रिक सिद्ध साधु का लक्ष्य यही है सम्भवतः। इनके अतिरिक्त सतीश के गुरु भी तो हैं। बिहारी अपनी ओर से इनके प्रति कम श्रद्धा-भक्ति नहीं रखता था। लेकिन पहले ही बताया जा चुका है कि सतीश के किसी प्रकार के अनिष्ट की गन्ध पाते ही बिहारी भलाई-बुराई का ज्ञान खो बैठता था।

गुरु बाबा के शिक्षण में सतीश और उसके दल के निशीथ की निभृत

चक्र-साधना और उससे भी अधिक निभृत अमानुषिक अनुष्ठान आदि इतने दिनों तक बिहारी ने किसी प्रकार सहन कर लिया था, लेकिन जिस दिन मदिरा और गाँजा बाबा का प्रसाद पा गया, उस हृदय को यह बूढ़ा नौकर किसी तरह भी सहन न कर सका।

सतीश की अनुपस्थिति में वह कमरे में घुसकर उनकी पद-धूलि लेकर हाथ जोड़े भक्तिपूर्वक बोला, "बाबा, आप दिन के समय फिर कभी बाबू को गाँजा-शराब मत पिलाइए।"

आग में घृताहुति पड़ गई।

बाबा एक ही क्षण में सातवें सुर पर चढ़कर चिल्ला उठे, "तू साला मदिरा कहता है।"

बिहारी ने विनीत स्वर से कहा, "क्या जानूँ बाबा, हमारे देश में तो इसे मदिरा ही कहते हैं।"

बाबा ने कहा, "मदिरा! लेकिन साले, इससे तेरा क्या बनता-बिगड़ता है। तू बोलनेवाला कौन है?"

बिहारी को भी बाबा जी की बातें असह्य होती जा रही थीं। उसने भी दृढ़ स्वर से कहा, "मैं हूँ बाबूजी का नौकर।"

"वाह रे मेरे नौकर!" कहकर बाबाजी अश्लील गाली-गलौज सुनाकर दाँत कटकटाकर बोल उठे, "लेकिन मैं हूँ तेरे बाबू का भी बाबा, क्या तू यह जानता है?"

बिहारी बैठा हुआ था। झटपट उठा और चिल्लाकर बोला, "खबर-दार! मेरे सामने तुम ये सब बातें मत कहो, बताए देता हूँ।"

थाको बाबा तो यों ही दिन-रात प्रायः ही अचेत रहा करते थे, बिहारी के अपमान से बिलकुल ही कर्तव्य-ज्ञान से शून्य हो गए। बोले, "तू क्या करेगा रे साले!" यह कहकर सामने की खड़ाऊँ उठाकर बिहारी का सिर लक्ष्य बनाकर उन्होंने जोर से फेंक दिया।

बिहारी की नाक से रक्त की धारा बहने लगी और क्षणमात्र में ही उसके हृदय के किसी अज्ञात स्थान से चालीस साल पहले का गरम खून मस्तिष्क में चढ़ गया।

पल-भर में उसने कमरे के कोने से बाबा का चार हाथ का लम्बा

त्रिशूल बाबा के माथे पर तान दिया। डरकर अपने दोनों हाथों को सामने उठाकर बाबा कुत्ते के समान चिल्ला उठे और अमानुषिक चिल्लाहट से बिहारी भी सँभल गया। वह हाथ का त्रिशूल यथास्थान पर रखकर नाक का खून पोंछते-पोंछते चला गया।

एक घण्टा बीत जाने पर सतीश ने पूछा, "क्या यह सच है ?"

बिहारी ने कहा, "हाँ !" लेकिन उसने खून निकलने का उल्लेख नहीं किया।

क्षणभर चुप रहकर सतीश बोला, "तुझे अब मैं इस घर में न रहने दूंगा। लेकिन मना भी न करूँगा। दो सौ रुपए लेकर तू अपने घर चला जा, मैं तेरा वेतन महीने-के-महीने तेरे घर भेज दिया करूँगा।"

बिहारी ने सिर झुकाकर कहा, "जो आज्ञा !"

उसने दुःख प्रकट नहीं किया, क्षमा-याचना नहीं की, दो सौ रुपए चादर के छोर में बाँधकर, स्वामी के चरणों की धूल माथे पर चढ़ाकर सन्ध्या के पहले ही गाँव छोड़कर चला गया।

सतीश ऊपर के बरामदे से जब तक दिखाई पड़ता रहा, उसे देखता रहा। क्रमशः विधुपाल की दूकान की ओट में वह ओझल हो गया तब वह लम्बी लाँस लेकर बोला, 'जाने दो, इतने दिनों में बिहारी भी चला गया।'

आश्विन के प्रथम सप्ताह में ही महामाया की पूजा है। अभी उसमें विलम्ब है, लेकिन सतीश की मित्र-मण्डली में अभी से ही परामर्श चल रहा है कि इस बार देवी की पूजा में क्या-क्या करना चाहिए। महाअष्टमी के लिए अभी से तैयार हो जाना चाहिए। लेकिन भादों के मध्य में मलेरिया का प्रकोप बहुत बढ़ गया था। यहाँ तक कि दो-चार सन्निपातिक ज्वर के कारण भी डॉक्टर की दौड़-धूप शुरू हो गई।

कई दिनों से आज सतीश की तबीयत अच्छी नहीं है। बिहारी जिस दिन चला गया, उसी रात को उसने ज्वर का लक्षण स्पष्ट अनुभव किया। सम्भवतः एकादशी के कारण ऐसा हो गया है, सोचकर उसने दूसरे दिन सवेरे उसे खत्म कर देना चाहा, लेकिन जो वास्तव में है, उसे इस प्रकार सहज में मिटाया नहीं जा सकता। सारा दिन उसको मानना ही पड़ा कि वह स्वस्थ नहीं है।

पूर्व प्रथानुसार तीन दिनों के बाद चतुर्दशी की रात को भी धूम-धाम से पूजा की तैयारी हुई थी, लेकिन सतीश ने स्वयं सम्मिलित होना अस्वीकार किया।

तीसरे पहर गुरु बाबा ने आकर सतीश के माथे पर शान्ति का जल छिड़ककर कमण्डलु दिखाकर हँसते हुए कहा, "बेटा, इसपर तो यम का भी अधिकार नहीं है। इनके अतिरिक्त तुम्हीं तो मूल आधार हो, तुम्हारे न रहने से तो सब ही चौपट है।"

सतीश गुरुजी की बात को टालता नहीं था, इसीलिए अपनी इच्छा के विरुद्ध भी वह सहमत हो गया। वास्तव में बिहारी को विदा करने के बाद से सब बातों पर मन-ही-मन विचार करके यह कुछ भी उसे अच्छा नहीं लग रहा था। यद्यपि किसी प्रकार उसको विश्वास नहीं होता था कि बिहारी बिलकुल ही चला गया है, फिर न आएगा, तथापि जितना शीघ्र हो सके, उसको फिर पाने के लिए उसका हृदय व्याकुल हो उठा।

इसके अतिरिक्त एक और चिन्ता उसको अन्दर-ही-अन्दर कष्ट दे रही थी। कौन जाने, बिहारी घर ही गया है या हम लोगों के पश्चिम वाले मकान पर गया है। कहीं ऐसा न हो कि सारी बातों का प्रचार करके कोई बखेड़ा मचाने की चेष्टा करता हो या और कोई चाल चल रहा हो। जो भी हो, उसे फिर एक बार आँखों से देखे बिना सतीश किसी प्रकार भी चैन नहीं पा रहा था।

सन्ध्या के पूर्व ही दुमंजिले के कमरे में एकत्र होकर दो-एक प्याले पी लेने पर सतीश का वह निर्जीव भाव कट गया था। लेकिन फिर भी हृदय की ग्लानि उसे दुःख दे रही थी। ठीक उसी समय पास के कमरे में बिहारी की आवाज सुनकर सतीश प्रसन्न हो उठा और आश्चर्य से चौंक पड़ा।

उसने पुकारा, "बिहारी है क्या रे !"

बिहारी दरवाजे के निकट आकर नत-मस्तक हुए बोला, "जी हाँ, क्या आज्ञा है ?"

गुरु थाको बाबा का चेहरा काला पड़ गया। उन्होंने कहा, "यह उल्लू फिर आ गया बेटा ? तो यह साला इस कमरे में घुस क्यों आया ?"

इसी कमरे में उनके निशीथचक्र का आयोजन हो रहा था।

इन सब प्रश्नों का उत्तर न देकर सतीश ने बिहारी से पूछा, "क्या तू अपने घर नहीं गया था रे ?"

"ना, मैं काशी गया था।"

"काशी ! काशी क्यों गया था ?"

"माँजी को लाने।"

सतीश चौंक उठा।

बिहारी किसको 'माँ' कहता है, सतीश यह जानता था।

उसने कहा, "वह क्या काशी में रहती है ?"

"हाँ !"

"तू उसका पता-ठिकाना जानता था ?"

बिहारी ने कहा, "ना। लेकिन मैं जानता था, माँ जहाँ भी क्यों न हों, विश्वनाथ बाबा के मन्दिर में किसी दिन भेंट हो ही जाएगी।"

"भेंट हुई थी ?"

"हाँ !"

सतीश के हृदय के अन्दर हलचल-सी मचने लगी।

कुछ समय तक मौन रहकर अपने को सँभालकर रूखे स्वर से उसने कहा, "लेकिन मुझे खबर न देकर वहाँ जाना ठीक नहीं था। उस स्त्री के मान-सम्मान, लज्जा-शरम कुछ भी नहीं है। तेरे जैसे अहमक को पाकर यदि वह तेरे साथ चली आती तो आज तू किस संकट में पड़ जाता, बता तो ?"

बिहारी मौन खड़ा रहा।

तब आप-ही-आप सतीश फिर कहने लगा, "घर में घुसने तो देता ही नहीं—फाटक के बाहर से ही दरवाजे से निकलवा देता। उसको लेकर इतनी रात को तू कैसी विपत्ति में पड़ जाता, सोच तो ले भला, क्या व्यर्थ ही लोग तुझे गँवार-मूर्ख कहते हैं ! कालीचरण, जरा ठीक से प्याला दे देना भैया !"

कालीचरण ने आज्ञा मिलते ही मूलसाधक के हाथ में एक प्याला दे दिया।

बिहारी ने कहा, "बाबू, माँजी आपको बुला रही हैं।"

सतीश प्याला मुँह में लगाने जा रहा था। चौंककर बोला, "कौन बुला रही है ? तू क्या कहता है ?"

बिहारी बोला, "माँजी।"

सतीश हतबुद्धि के समान हाथ के प्याले को नीचे उड़ेलकर बोला, "तेरे साथ आई है क्या ? तो तूने पहले क्यों नहीं बताया ?"

बिहारी ने उसका उत्तर न देकर फिर कहा, "वे इसी समय आपको बुला रही हैं।"

सतीश ने धीमे स्वर से कहा, "तू जाकर कह दे बिहारी, बाबू को ज्वर हो आया है, इसलिए बाहर के कई इष्ट-मित्र उनको देखने आए हैं। आध घण्टे बाद आऊँगा, जा कह दे।"

बिहारी ने अपने हाथ के पास के द्वार को दृष्टि के संकेत से दिखाकर धीरे से कहा, "माँजी यहीं तो खड़ी हैं, एक बार बाहर चले जाइए।"

सतीश ने चौंककर अँगुली के संकेत से पूछा, "इसी कमरे में ?"

बिहारी ने गरदन हिलाकर कहा, "हाँ, यहीं तो हैं।"

झटपट दो-चार लौंग-इलायची मुँह में डाल सतीश उठ पड़ा। धीरे-धीरे बाहर जाकर उसने देखा कि उसके पास के किवाड़ की ओट में ही सावित्री के आँचल का छोर दिखाई पड़ रहा है। वह अपने कानों से सब बातें सुन चुकी है, इसमें कुछ भी सन्देह उसे नहीं रहा। उसकी इच्छा हो रही थी कि मूर्ख बिहारी के गाल पर अच्छी तरह दो थप्पड़ जमा दे !

सावित्री ने झाँककर धीरे से कहा, "भीतर आओ !"

इस कण्ठस्वर के सुर से उसके हृदय के सब तार एक ही साथ बज उठे।

उसके कमरे में घुसते ही सावित्री ने कहा, "तुम कह रहे थे कि ज्वर हो आया है ?"

सतीश ने सिर हिलाकर कहा, "ज्वर तो आ ही गया है।"

"कहाँ देखूँ ?" कहकर सतीश के पास आकर हाथ बढ़ाकर उसके माथे का ताप अनुभव करके वह चौंक पड़ी। बोली, "हाँ, सचमुच ही ज्वर है, शरीर मानो जल रहा है—आओ मैं बिस्तर बिछा देती हूँ, चलो कमरे में सो रहो। बिहारी, बाबू के कमरे में बत्ती जला दे।" यह कहकर तिमंजिले

की सीढ़ियों की ओर वढ़ चली। उसने घर में आते ही बाबू का शयनगृह बिहारी से पूछ लिया था।

पलंग पर बिछौना तैयार ही था, केवल आँचल से जरा झाड़ देते ही सतीश शान्त बालक के समान नेत्र बन्द करके लेट गया।

सिरहाने और पैर की ओर की दोनों खिड़कियाँ बन्द करके उसने बिहारी से पूछा, "साधु बाबा किस कमरे में रहते हैं?"

बिहारी ने पास का कमरा दिखा दिया।

सावित्री ने कहा, "उनकी क्या-क्या वस्तुएँ हैं, वहाँ नीचे रख आओ बिहारी! बाहर तो कितने ही कमरे खाली पड़े हैं—उसमें से किसी एक में वे ठीक तरह से रह सकते हैं।"

बिहारी चला जा रहा था। सावित्री ने पुकारकर कहा, "और बाबू को जो लोग देखने आए थे, उनको भी जाने को कह देना। कहना, बाबू को खूब ज्वर आया है, अब नीचे न उतर सकेंगे।"

सतीश मुह छिपाए लेटा रहा।

बिहारी वीर की भाँति दर्प दिखाता हुआ आदेश का पालन करने चल पड़ा।

उसके चले जाने पर सावित्री ने कहा, "अब तुम उठना मत! मैं खाने-पीने की व्यवस्था ठीक करके आती हूँ।" यह कहकर द्वार बन्द करके वह दबे पाँव चली गई। उसे भय था कि साधु बाबा विद्रोह कर बैठेंगे। इसीलिए वह छिपकर किवाड़ों की ओट में जा खड़ी हुई थी।

दूसरे ही क्षण उस ओर के दरवाजे से प्रवेश करके बिहारी ने जोर से कहा, "माँजी ने कहा है आप लोग घर चले जाइए। बाबू का ज्वर बढ़ गया है, आज वे नीचे न उतरेंगे।" फिर बाबाजी की ओर देखकर बोला, "महाराज, आपकी चीज-वस्तु नीचे निवारण के कमरे के पास वाले कमरे में रख देने की आज्ञा माँजी ने दी है। आपको वहीं रहना पड़ेगा।"

बाबा ने क्रोध नहीं दिखाया।

उन्होंने शान्त भाव से पूछा, "माँजी कौन हैं बिहारी?"

कड़े स्वर से बिहारी ने उत्तर दिया, "इस खोज-पूछ की आपको क्या आवश्यकता है महाराज जी? जो कह रहा हूँ, वही करो।" मन-ही-मन

बोला—'कौन है, इसका पता तुमको लग जाएगा। मुफ़्त की शराब-गाँजा पीकर खड़ाऊँ मारने की कसर अब मैं निकालूँगा।'

सभी हतबुद्धि की भाँति एक-दूसरे के मुँह की ओर देखने लगे और उठने की तैयारी करने लगे। कोई भी समझ न सका कि क्या बात है। लेकिन आदेश जब सच्चे आदेश के रूप में अकुण्ठित रूप में निकल आता है, तो वह जिसके मुँह भी से क्यों न आया हो, लोग निश्चित रूप से समझ जाते हैं कि इसको न मान लेने से काम नहीं चलेगा।

बिहारी ने रसोईघर में जाकर देखा, सावित्री रसोइया महाराज से दूध गरम कराने का उद्योग कर रही है।

उसने कहा, "रात हो गई, अभी तक तो तुमने सन्ध्या-पूजा नहीं की। चलो, पहले तुमको स्नान का स्थान दिखा दूँ, तब तक बाबू का दूध गरम हो जाएगा।" यह कहकर वह सावित्री को एक प्रकार से बलपूर्वक ही ले गया।

उसको भेजकर बिहारी ने बाबू के लिए तम्बाकू चढ़ाया। हाथ में गुड़गुड़ी लेकर चुपके से किवाड़ ठेलकर बाबू के कमरे में चला गया।

सतीश चुपचाप पड़ा हुआ था। आँखें खोलकर बोला, "कौन! बिहारी है क्या?"

"हाँ बाबू, तम्बाकू चढ़ाकर लाया हूँ:"

"यहाँ आ! वह कहाँ है रे?"

बिहारी ने कहा, "अभी तक एक बूंद पानी भी उसके मुँह में नहीं गया है, इसलिए स्नान करने के लिए भेजकर आया हूँ बाबू!"

सतीश ने कहा, "अच्छा किया है। लेकिन तुझे मैं रोज खोज रहा था बिहारी।"

बिहारी घबरा उठा, बोला, "क्यों बाबू, इस समय तबियत कैसी है?"

सतीश ने सिर हिलाकर कहा, "अच्छी नहीं है बिहारी। इसलिए मैं तुझे खोज रहा था। दरवाजे की कुण्डी लगाकर मेरे पास आकर जरा बैठ।"

बिहारी दरवाजा बन्द करके भयभीत मन से मालिक के पैरों के पास आकर भूमि पर घुटने टेककर बैठ गया।

सतीश ने पूछा, "अच्छा बिहारी, तू ग्रहकोप मानता है?"

बिहारी ने आश्चर्य से कहा, "ग्रहकोप ? ग्रहों का कोप भला मैं न मानूँगा ? पोथी-पत्रा का लिखा क्या कभी झूठ हो सकता है बाबू ?"

जरा चुप रहकर सतीश बोला, "इस बार मेरा एक बहुत बड़ा ग्रहकोप है बिहारी ।"

बिहारी सिर उठाकर बोला, "ना-ना, ऐसी बात आप मत कहिए बाबू ।"

सतीश ने अपने ही मन से दो बार सिर हिलाकर कहा, "मुझे पता लग गया है बिहारी, यह ज्वर मेरा अन्तिम ज्वर है—इस बार बच नहीं पाऊँगा ।"

तुरन्त बिहारी स्वामी के दोनों पैर पकड़कर बोल उठा, "इस बात को मुँह से मत निकालिए बाबू, आपकी सारी आफत लेकर मैं ही मर जाऊँ तो ठीक होगा । मेरी परमाणु लेकर आप जीवित रहिए बाबू, नहीं तो हम सभी लोग मर जाएँगे ।" यह कहते-कहते बिहारी जोर से रोने लगा ।

सतीश ने गम्भीर होकर कहा, "मरने-जीने की बात तो ठीक बताई नहीं जा सकती बिहारी, यदि मैं न भी बचूँ, तुझसे मैं जो कुछ पूछता हूँ, सच-सच बताएगा तो ?"

बिहारी ने रोते-रोते कहा, "मैं आपके पाँव छूकर शपथ खा रहा हूँ बाबू, मैं झूठ नहीं बोलूंगा ।"

"कुछ भी तू छिपाएगा नहीं बता ?"

"ना बाबू, कुछ भी नहीं ।"

सतीश ने कहा, "अच्छा बैठ जा !"

बिहारी आँखें पोंछकर अपने स्थान पर बैठ गया ।

सतीश ने पूछा, "सावित्री तुझे कहाँ मिली, बता तो ?"

"यह तो मैं कह चुका हूँ, काशी में ।"

"क्या वहाँ विपिन बाबू के साथ तेरी भेंट हुई थी ?"

बिहारी जीभ काटकर घृणा के साथ बोल उठा, "राम ! राम ! वह हरामजादा हम लोगों का क्या लगता है कि उससे भेंट होती बाबू ।"

सतीश ने कहा, "लेकिन तूने तो अपनी आँखों से उसको उसके बिस्तर पर···!"

दोनों हाथ उठाकर विहारी ने सतीश की बात पूरी भी न होने दी। एकाएक वहुत उत्तेजित होकर अपने गालों पर, मुँह पर कई चपतें जड़कर कहने लगा, "उसका दण्ड यही है! यही! यही! तो भी विना जाने ही कह दिया था, इसीलिए अब भी पाँच आदमियों के सामने मुँह दिखा सकता हूँ, नहीं तो मेरी यह जीभ इतने दिनों में सड़कर गिर गई होती।"

सतीश ने आश्चर्य में पड़कर कहा, "क्या हो गया है रे तुझे?"

तब लज्जित होकर विहारी स्थित भाव से बैठ गया और एक-एक कर सारी बातें कहने लगा। कुछ भी उसने बढ़ाया नहीं। एक वात भी उसने छिपाई नहीं। स्वयं जो कुछ जानता था, मोक्षदा के मुँह से, चक्रवर्ती से जो कुछ सुन चुका था, सावित्री से जो बातें जान सका था—सब एक-एक करके उसने सच-सच सुना दीं।

सतीश पत्थर की मूर्ति के समान स्तब्ध होकर बैठा रहा।

बिहारी भी गूँगा बना रहा।

बड़ी देर के वाद सतीश ने एक लम्बी साँस लेकर कहा, "इतने दिनों से ये सब बातें तूने मुझे वताई क्यों नहीं थीं रे, बिहारी?"

बिहारी ने कहा, "कितने ही दिनों से बताने के लिए मेरा हृदय मानो फटता जा रहा था बाबू, लेकिन किसी प्रकार मुँह खोल नहीं सकता था?"

"क्यों, सुनूँ तो?"

"माँजी ने ही सिर की सौगन्ध दिलाकर मना कर दिया था वाबू।"

फिर कुछ देर चुप रहकर सतीश वोला, "अच्छा, मान लेता हूँ कि यही बात है, लेकिन उस रात सावित्री अपने मुँह से कह गई थी कि वह विपिन के अलावा और किसीको नहीं चाहती, उनके ही साथ वह चली जा रही है। इसका क्या अर्थ है, वता तो?"

बिहारी बोला, "यह बात मैं भी समझ नहीं सकता बाबू। फिर भी मैं ठीक जानता हूँ, वह झूठ है! बिलकुल झूठ है! यदि वह झूठ न हो तो मेरा एक भी बच्चा जीवित न बचे वावू। माँजी के जाते समय रोकर मैंने कहा था—क्यों इस झूठे कलंक के बोझ को तुमने स्वयं ही अपने सिर पर उठा रखा माँ? तो भी माँजी ने मुझे बता देने की आज्ञा नहीं दी। स्वयं भी रोते-रोते उन्होंने मुझसे कहा—बिहारी, मेरे सिर की कसम है भैया, ये सब

बातें बाबू से तुम कभी मत कहना। वे मुझसे घृणा करें और कभी मेरा मुँह भी न देखें, यही मेरे लिए अच्छा होगा, तो भी उनसे मत बताना कि मैं अपने ही पाँवों पर कुल्हाड़ी मारकर चली गई हूँ।" यह कहकर उस रात की याद के दुःख से बिहारी टप-टप आँसू गिराकर रोने लगा।

लेकिन स्वामी की आँखों से भी आँसू की धारा बह रही थी, बूढ़ा नौकर यह न देख सका।

सतीश ने बहुत देर बाद धीरे से आँसू पोंछकर कहा, "तू समझ नहीं सकता बिहारी, लेकिन मैं समझ गया हूँ कि किसलिए उसने अपने ही पाँवों पर कुल्हाड़ी मारी थी। लेकिन झूठ की तो जीत नहीं होती बिहारी।"

तभी द्वार पर हाथ की चोट पड़ी, "यह क्या! दरवाजा बन्द करके सो गए क्या? सिटकनी खोल दो!"

बिहारी ने स्वामी के मुख की ओर देखा। लेकिन स्वामी नेत्र बन्द करके चुपचाप लेटे हुए थे।

फिर बाहर से आवाज आई, "दरवाजा खोल दो न! हाथ जल रहा है।"

बिहारी ने उठकर दरवाजा खोल दिया और वहाँ से चुपचाप बाहर निकल गया।

चालीस

सावित्री गरम दूध का कटोरा हाथ में लिए कमरे में प्रविष्ट हुई और उसे जल्दी से तिपाई पर रख दिया। सफेद रेशमी साड़ी उसने पहन रखी थी। भीगे हुए लम्बे बाल पीठ पर बिखर नीचे की ओर लटक रहे थे। कुछ छोटे बाल मुख पर और गालों पर आ पड़े थे। सतीश ने कनखियों से देखा। उसे लगा, मानो उसने सावित्री को आज प्रथम बार ही देखा हो।

परन्तु सावित्री सतीश के सजल नेत्रों को दीपक के मन्द प्रकाश में न देख सकी। कुछ और निकट आकर मुस्कराती हुई बोली, "किवाड़ बन्द कर स्वामी और नौकर में क्या विशेष बातें हो रही थीं? इस ढीठ और आफत

को किस प्रकार बाहर निकाला जाए, यही न ?"

सतीश कुछ भी उत्तर न दे सका।

कहीं बोलने से कण्ठ स्वर में भीतर की कमजोरी प्रकट न हो जाए, इसी भय से वह चुप ही रहा।

सावित्री बोली, "लड़कपन में बिल्ली के गले में घण्टी बाँधने वाली चूहों की कहानी तो तुमने अवश्य सुनी होगी। मैं भी देखना चाहती हूँ कि यहाँ घण्टी बाँधने कौन आगे बढ़ता है, तुम स्वयं या तुम्हारे बिहारी।"

सतीश ने फिर भी मुँह न खोला। जैसे चुप पड़ा था, वैसे ही वह पड़ा रहा।

एक कुर्सी सरकाकर सावित्री पास ही बैठ गई, किन्तु इस बार उसका स्वर गम्भीर हो गया।

उसने कहा, "हँसी जाने दो, बात क्या है, मुझे समझा सकते हो। उपेन्द्र भैया के साथ झगड़ा किया, अन्त में सरोजिनी तक से झगड़ा कर चले आए। झगड़ा एक दिन मिट जाएगा, किन्तु यह सब क्या हो रहा है! तुमने मेरा शरीर छूकर सौगन्ध खाई थी कि तुम शराब न छूओगे। शराब तो शराब —गाँजा तक पीने लगे। और वह भी असाधारण रूप से, लुक-छिपकर नहीं, इन आवारा मनुष्यों को इकट्ठा कर, गेरुआ वस्त्र पहनकर और तन्त्र-मन्त्र का ढोले पीटकर, खुल्लम-खुल्ला छाती फुलाकर पीते हो।"

सतीश का शरीर सावित्री के मुँह से सरोजिनी का नाम सुनकर एकदम जल उठा। वह समझ गया कि बिहारी ने सब कुछ कह दिया है। एक बार उसके होंठों पर यह बात आ गई कि तेरे ही कारण मेरा सर्वनाश हुआ है। तू ही मेरे लिए शनिग्रह है। किन्तु यह सब बात रोककर उसने केवल धीर-गंभीर स्वर से थोड़े में कहा, "छाती फुलाकर शराब या गाँजा पीने में क्या दोष है ?"

"दोष क्या है, यह तुम नहीं जानते ?"

"ना।"

"अच्छा, यदि नहीं जानते, तो इतना तो जानते हो कि मेरा शरीर छूकर प्रतिज्ञा की थी कि अब कभी न पीएँगे।"

"तुम मेरी होती ही कौन हो ? कभी जबरदस्ती कसम खिला दी थी,

क्या यही एक बड़ी बाधा हो गई ?"

सावित्री किसी प्रकार हँसी दबाकर और सिर हिलाकर बोली, "मैं तुम्हारी कोई नहीं हूँ ? सच कहते हो, कोई नहीं हूँ ?"

सतीश ने भी सिर हिलाकर कहा, "हाँ, कोई नहीं हो ।"

"फिर शराब का गिलास पीकदानी में उड़ेलकर, इलायची चबाते हुए क्यों आए थे ?"

"केवल इसी भय से कि तुम व्यर्थ शोर मचाओगी ।"

सावित्री ने हँसकर कहा, "फिर भी सावित्री कोई नहीं है ? अच्छा, अब जरा दूध पीकर सो जाओ ।" यह कहकर वह उठकर दूध का कटोरा हाथ में ले सतीश के सामने आकर खड़ी हो गई ।

सतीश ने कोई आपत्ति न की । वह उठ बैठा और सब दूध पीकर सो गया ।

सावित्री हाथ में कटोरा लिए लौटी जा रही थी कि सतीश ने पुकारकर पूछा, "तुम स्नान कर चुकी हो ?"

सावित्री ने घूमकर कहा, "हाँ ।"

"क्या खाया ?"

"अभी खाया नहीं । अब जाकर खा लूंगी ।"

"सोओगी कहाँ ?"

"देखूंगी, फाटक के बाहर कहीं कोई स्थान है या नहीं, न होगा तो पेड़ के नीचे ही सो रहूँगी ।" कहकर वह आप-ही-आप हँसकर बोली, "अच्छा, यह बात मुँह से निकालते तुम्हें कष्ट नहीं होता ! धन्य हो तुम !" कहकर बड़े ही प्रेम से सतीश के माथे पर लटके हुए बालों को हाथ से हटाते हुए उसके माथे का ताप देखकर सावित्री चौंक पड़ी ।

बिहारी ने कमरे के भीतर पाँव रखकर पूछा, "माई जी, तुम्हारा बिस्तर..."

सावित्री ने पास की कोठरी की ओर हाथ से संकेत कर कहा, "इसी कोठरी में । बाबू को ज्वर कुछ अधिक मालूम होता है । मैं इसी बगल वाली कोठरी में सोऊँगी, बीच का दरवाजा खुला रहेगा । तुमको भी आज इसी घर में फर्श पर सोना होगा ।"

सतीश से सावित्री ने कहा, "अब और अधिक जागो नहीं, सोने का प्रयत्न करो।" इसके बाद वह धीरे-धीरे किवाड़ बन्द कर नीचे चली गई।

थोड़ा-सा खा-पीकर थोड़ी देर बाद सावित्री आई और पास की कोठरी में ही एक चटाई बिछाकर लेट रही। उसकी दोनों थकी आँखें गम्भीर नींद से बन्द हो गईं।

तड़के सवेरे नींद टूटते ही सावित्री अचकचाकर उठ बैठी और उस कमरे में जाकर देखा कि बिस्तर पर सतीश छटपटा रहा है। सिर पर हाथ रखकर देखा तो ज्वर से जला जा रहा था। उसके ठंडे हाथों के स्पर्श से सतीश ने आँखें खोलीं—दोनों आँख उड़हुल के फूल के समान लाल थीं। ज्वर की तीव्र ज्वाला का अनुभव कर सावित्री मारे भय के उसी बिस्तर पर बैठ गई। कुछ पूछने तक की शक्ति उसमें न रही।

उसका हाथ खींच, अपने जलते हुए माथे पर रखकर सतीश बोला, "कल ही मैंने बिहारी से कहा था कि यह ज्वर मेरा अन्तिम ज्वर है। इस बार मैं न बचूंगा!"

उसने तेज ज्वर की झोंक में इस प्रकार यह बात हाँफते हुए कही कि सावित्री उसे धैर्य दिलाने की शक्ति गँवा बैठी, रुलाई आ जाने के कारण उसका अपना ही कण्ठ बन्द हो गया। वह सारी रात निश्चिन्त होकर क्यों सोती रही, इस दुःख से दुःखी हो उसे यही इच्छा होने लगी कि सिर फोड़कर यहीं प्राण दे दूँ।

सतीश ने कहा, "पर तुम मेरे पास हो, मुझे केवल यही एक भरोसा है।" कहकर वह करवट बदलकर लेट गया।

कल रात को जिसे उसने अभिमान की स्पर्द्धा से कहा था, 'तुम मेरी कौन हो', आज वही उसका सबसे अधिक सहारा है!

सावित्री में क्षणभर में वह भी शक्ति न रही कि वह बिहारी को बुलाकर डॉक्टर बुला लाने को कहे। केवल सतीश की बाँह पर हाथ रख वह पत्थर की मूर्ति के समान बैठी रही।

कुछ देर बाद ही फिर सतीश ने करवट बदली। सावित्री के हाथ को खींच, अपने माथे पर रखकर उसने कहा, "मैंने कुछ डॉक्टरी पढ़ी है, मैं

निश्चय से जानता हूँ कि मुझे शाम तक इतना होश भी न रहेगा, किन्तु इस समय मुझमें पूरी चेतना उपस्थित है। यदि इतना ज्ञान मुझमें फिर कभी लौट न आए तो उपेन्द्र भैया से कहना कि इस दराज में मेरा वसीयतनामा है। मैं जानता हूँ, वे मेरा मुँह न देखेंगे किन्तु मेरे मरने के बाद मेरी अन्तिम इच्छा को वह टाल न सकेंगे। सावित्री, तुम्हारे बाद संसार में उनके अलावा मेरा और कोई विशेष आत्मीय नहीं है।''

सावित्री को वसीयतनामे की चर्चा ने आत्म-विस्मृत कर दिया और इतने दिनों के संयम का बाँध आज उस क्षणभर के आवेश में ही टूट गया, सतीश की छाती पर सिर रखकर वह बच्चे के समान रोने लगी।

बिहारी प्रायः सारी रात जगकर प्रातःकाल सो गया था, वह चौंककर उठ बैठा और हकबकाकर देखता रहा।

सतीश ने अपने दोनों हाथों से सावित्री के मुँह को ऊपर उठाया, क्षण-भर वह उसकी ओर एकटक देखता रहा और उसकी दोनों आँखों से वहते हुए आँसुओं के प्रवाह को अपने अग्नि जैसे गरम होंठों से खींचकर चुपचाप पड़ा रहा। उसका मुँह, उसकी ठोड़ी, उसका गाल, सबको सावित्री की दोनों आँखों की अश्रुधारा ने डुबो दिया और उसमें यों डूबने के कारण ज्वर जनित सबल प्रवाह भी बहुत कुछ ठंडा हुआ। यद्यपि भगवान् से छिपा न रहा, तथापि संसार में बूढ़े बिहारी के विस्मय विमुग्ध विह्वल नेत्रों के अलावा उस दृश्य का अन्य कोई भी साक्षी न था।

वाहर शरद् का स्निग्ध प्रभात दिन के प्रकाश में प्रस्फुटित हो रहा था। सावित्री अपने को सँभालकर उठ बैठी और आँचल से अपनी आँखें पोंछ, उसने प्रियतम के मुख से आँसू के सब चिह्न सावधानी से पोंछ और उठकर सब दरवाजे और खिड़कियाँ खोल दीं। दरवाजे और खिड़कियाँ खुलते ही सूर्य की सुनहरी किरणों से कमरा भर गया।

उस समय बिहारी की आँखों से आँसुओं की बड़ी-वड़ी बूँदें गिर रही थीं।

सावित्री अपने मुँह की बात को सँभालकर सहज-शान्त स्वर से बोली; "डरने की कोई बात नहीं है बिहारी ! मेरे रहते इनका कोई अनिष्ट नहीं हो सकता, बाबू अच्छे हो जाएँगे। मैं बाबू का बिस्तर बदल देती हूँ, तब

तक तुम डॉक्टर को बुला लाओ।" कहकर वह फिर सतीश के बिस्तर पर आ बैठी।

डिस्पेंसरी के डॉक्टर आकर अच्छी प्रकार से सतीश की जाँच कर मुँह बिगाड़कर बोले, "लक्षण तो मलेरिया के देखता हूँ। पर भयभीत होने की बात नहीं, रोग अब भी अधिक बढ़ नहीं सका है।"

डॉक्टर आशा-भरोसा देकर अपने हाथ से दवा तैयार करने के लिए नीचे चले गए।

सतीश ने हँसने की चेष्टा करते हुए सावित्री के मुँह की ओर देखकर कहा, "मैं मृत्यु से जरा भी नहीं डरता।" यह कहकर तकिये के नीचे से चाबियों का एक गुच्छा बाहर निकालकर और दिखाकर कहा, "इसे पहचानती हो, सावित्री? स्वयं अपनी इच्छा से जिसे किसी दिन आँचल में बाँधे रहती थीं, आज मैं ही उसे तुम्हारे आँचल में बाँध देता हूँ।"

सतीश ने सावित्री के आँसुओं से भीगे आँचल को खींचकर धीरे-धीरे अपनी चाबियों का गुच्छा बाँध दिया और सिर से कोई भारी बोझ उतर जाने की मुद्रा में लम्बी साँस लेकर करवट बदल ली।

सावित्री पर बिहारी का अटूट विश्वास था। उसके धीरज दिलाने से वह पहले तो प्रसन्न हो उठा, लेकिन वह लड़का तो था नहीं, अतः कुछ दिनों बाद सावित्री के मुँह की उदासी देखकर मन-ही-मन डर गया। वह स्पष्ट देखता था कि इस अपूर्व कर्मनिष्ठ, सहिष्णु रमणी के शान्त मुख पर पीलेपन की छाया क्रमशः दुगुनी होती जाती है।

उसने आठ-दस दिन बाद सावित्री को एकान्त में पाकर गद्गद कण्ठ से कहा, "माई, इस बूढ़े को धोखे में क्यों रखती हो? तुम्हारा कोमल हृदय जो कुछ सह सकेगा, वह क्या इस बूढ़े की कठोर हड्डी न सह सकेगी? तुम सब बातें मुझसे खोलकर कह दो। मैं भी देखूँ कि कोई उपाय मेरे किए हो सकता है या नहीं।"

जरा स्थिर रहकर सावित्री ने कहा, "तुमसे अब तक नहीं कहा था बिहारी, किन्तु तुम्हारे नाम से आज सवेरे उपेन्द्र बाबू को मैंने एक पत्र लिख भेजा है। दो दिन तक प्रतीक्षा करती हूँ, यदि वे न आए तो तुमको स्वयं एक बार उनके पास जाना होगा।"

बिहारी उत्कण्ठित होकर बोला, "मुझसे पूछे बिना यह काम क्यों किया ?"

"क्यों बिहारी, क्या वे न आएँगे ?"

बिहारी ने सिर हिलाकर धीरे-धीरे कहा, "आ भी सकते हैं, किन्तु एक बार मुझसे पूछा क्यों नहीं ?"

"क्यों बिहारी ?"

बिहारी लज्जा से चुप हो रहा। कहना आवश्यक था, किन्तु वह अत्यन्त अपमानसूचक बात उसके मुँह से सहसा बाहर न निकल सकी।

सावित्री ने कहा, "इस समय उनका आना बहुत आवश्यक है, बिहारी।"

बिहारी ने बहुत कष्ट से संकोच दूर कर कहा, "यह तो जानता हूँ। किन्तु तुम्हारे पास न रहने पर संसार के सब लोग यदि बाबू का बिस्तर घेरे रहें, तो भी वे उनको नहीं बचा सकेंगे, यह बात तो तुम जानती हो, फिर उस पर क्यों नहीं विचार करतीं ?"

सावित्री ने कहा, "सब कुछ सोच-विचार चुकी हूँ, बिहारी ! इस घर में कहीं छिपी रहकर अपना काम करती रहूँगी, किन्तु उपेन्द्र बाबू के आए बिना काम न चलेगा। इसके अलावा मैं औरत हूँ, इस मुसीबत के समय भला-बुरा क्या समझूँगी ? नहीं बिहारी, उनका आना ही अच्छा है।"

बिहारी ने कहा, "मैं उपेन्द्र बाबू की बात नहीं जानता, किन्तु अपने बाबू की बात जानता हूँ। मैं मूर्ख बेशक सही, किन्तु साठ वर्षों से दुनिया को तो देखा है। कितने पुरुष तुम्हारी अपेक्षा किसी बात की भला-बुराई को अधिक समझते हैं ? यह सब छोड़ो, तुम्हारे हट जाने से बाबू अच्छे न हो सकेंगे, यह बात मैं तुम्हारे पाँव की शपथ खाकर कह सकता हूँ। सुनो, तुम मेरे बाबू को त्यागकर कहीं न जाओ, मत जाओ।"

यह बात बिहारी की अपेक्षा सावित्री कुछ कम जानती हो, ऐसी बात न थी, फिर भी वह मौन रही। उसके पास न रहने पर सतीश की व्याकुलता कितनी बढ़ जाएगी, यह सतीश ही जाने किन्तु ऐसी भयानक बीमारी की दशा में सावित्री ही सतीश को अपनी आँखों से ओझल कर कैसे रह सकेगी ? यह बात उसे ज्ञात थी कि उससे और सतीश से उपेन्द्र घृणा करते हैं। उनके

आने पर उसे अपने आपको छिपाना ही पड़ेगा। इन सब बातों पर सावित्री ने खूब विचार करके देखा था, जिसके कारण अब तक उसने इतने दुःखों का सामना किया है, उसके कारण यह दुःख भी सहेगी, ऐसा स्थिर कर उसने बीमारी का सब विवरण उपेन्द्र को खोलकर लिख भेजा था और आने के लिए अनुरोध भी किया था।

सावित्री ने दृढ़ कण्ठ स्वर से कहा, "ना-ना बिहारी, यह मैं न होने दूँगी। यदि वे परसों तक न आए तो तुमको स्वयं जाकर उनको बुला लाना होगा।"

बिहारी ने उदासीन भाव से कहा, "ऐसा क्यों कहती हो माई, मैं तो तुम्हारा नौकर हूँ, मुझे जो आज्ञा दोगी, वह मुझे करना ही होगा, किन्तु मैं भी मनुष्य हूँ। तुम्हारा छिपकर रहना यदि किसी दिन सह न सकूँ तो मुझे गाली न देना, यह पहले ही बता देता हूँ।" यह कहकर वह मुँह उदास किए चला गया।

सावित्री की वह चिट्ठी उपेन्द्र को मिली ही नहीं। पिता और माहेश्वरी के बार-बार अनुरोध करने से अपनी बिलकुल इच्छा न रहते भी, वे प्रायः एक महीना हुआ, जलवायु बदलने के लिए घर से पुरी चले गए थे। वहाँ किसी से परिचय न होने के कारण पहली रात को उन्हें एक छोटे से भोजनालय में ठहरना पड़ा था। उनकी इच्छा थी कि दूसरे दिन सवेरे कोई अच्छा स्थान खोज लेंगे, किन्तु भोजनालय के मालिक भुवन मुखोपाध्याय ने उनका पूरा आतिथ्य किया और उन्हें किसी बात का कष्ट न हो, इसपर विशेष ध्यान रखा। एक पृथक् कोठरी में बिछौना बिछवा दिया और विश्वास दिलाया कि जब तक चाहें, रहें, सेवा-सुश्रूषा में कोई कमी न होने पाएगी।

सुबह एक प्रौढ़ा स्त्री कमरे में झाड़ू देने आई और उपेन्द्र को बार-बार देखकर अन्त में झाड़ू फेंक पाँव में गिरकर प्रणाम किया और पूछा, "आपको क्या कोई रोग हो गया है? बहुत निर्बल दिखाई देते हैं। अब न तो वह पहले का सा चेहरा है और न शरीर की शोभा ही वैसी है।"

उपेन्द्र ने अचम्भे के साथ पूछा, "क्या तुम मुझे पहचानती हो?"

स्त्री ने कहा, "बाबू, मैं आपकी दासी मोक्षदा हूँ। आपको पहचानूंगी नहीं?"

उपेन्द्र को याद आया कि मोक्षदा वही है जो बहुत दिन पहले सतीश आदि के निवास-स्थान में नौकरी करती थी। पूछा, "शायद तुम नौकरी करती हो!"

मोक्षदा ने कुछ लजाते हुए कहा, "ना, लेकिन हाँ, एक प्रकार से नौकरी ही करती हूँ। मुखोपाध्याय महाशय ने कहा—कलकत्ता में क्या पड़ी हुई हो, चलो किसी तीर्थस्थान में चलकर रहो। और कुछ न होगा तो एक होटल-ओटल खोलकर…।"

उपेन्द्र बीच में बोल उठे, "होटल अच्छी प्रकार चलता तो है?"

उसकी बातें सुनने की जो अनिच्छा उपेन्द्र में उत्पन्न हुई, वह मोक्षदा ने उसके चेहरे से ही ताड़ ली। उसने कहा, "यों ही चला जा रहा है। बाबू, इस आयु में अब मुझसे नौकरी नहीं होती और न मुखोपाध्याय का आश्रय ही छोड़ सकती हूँ। सच कहा जाए तो लड़की को मैंने ही एक प्रकार से पालापोसा था। वह मुझे मौसी कहती थी। अपनी ही लड़की के समान मैंने उसे छाती से लगा रखा था, इस बात को कौन नहीं जानता? सावित्री कहती थी, मौसी, मुझसे यह सब न होगा। वही सही। मैंने बाबू लोगों के मेस में नौकरी लगा दी। बाबू लोग उसे नौकरानी नहीं समझते थे, घर की मालकिन के समान मानते थे। न वह जाती और न मुझे आज यह सब करना पड़ता, किन्तु बाबू साँच को आँच क्या, छोटे बाबू के कारण ही हम लोगों को आज इतना दुःख सहना पड़ा है।"

उपेन्द्र ने उत्सुक होकर पूछा, "छोटे बाबू कौन, सतीश?"

मोक्षदा ने कहा, "हाँ। उस छोकरी ने न जाने किन आँखों से छोटे बाबू को देखा कि उन्होंने उसके लिए अपना सर्वस्व त्याग दिया। पर इतना करने पर भी क्या उसने छोटे बाबू को कभी अपना शरीर तक छूने दिया? कभी नहीं। विपिन बाबू जैसे लखपती जमींदार ने मेरे दरवाजे पर आ-आकर पाँवों के तलवे घिस डाले, सोने-चाँदी के जड़ाऊ गहनों के लिए दस हजार रुपया देना चाहा, किन्तु छोकरी ने उनकी ओर दृष्टि उठाकर भी नहीं देखा। छोकरी के मुख पर एक अपूर्व तेज था! दस-दस हजार रुपए की भेंट को तुच्छ समझकर घृणा के साथ पाँवों से ठुकराकर घर-द्वार, चीज-वस्तु सब कुछ त्यागकर केवल एक साड़ी पहने चली गई और चेतला के

किसी ब्राह्मण के घर छः महीने तक नौकरी की। काम करते-करते बेचारी के शरीर की हड्डी-पसली तक निकल आईं। अन्त में कहाँ चली गई, माँ दुर्गा ही जानें ! बेचारी मर गई या जीती है, यह भी पता नहीं।" मोक्षदा की आँखों से आँसू गिरने लगे।

उपेन्द्र स्तब्ध हो उसकी ओर देखते रहे।

मोक्षदा ने आँखें पोंछकर रुलाई-भरे स्वर में पूछा, "बाबू, अब छोटे बाबू कहाँ हैं ? एक बार भेंट होती, तो पूछती कि वे उसकी कुछ सुध रखते हैं या नहीं ?"

उपेन्द्र ने मृदु स्वर से कहा, "सतीश इस समय कहाँ है, यह मैं भी ठीक-ठीक नहीं जानता। सुना है, अपने देश चला गया है। अच्छा, यह सावित्री कौन है मोक्षदा ?"

मोक्षदा क्रोध से जलकर बोली, "कौन है ? कुलीन ब्राह्मण की लड़की है ! नौ वर्ष की आयु में विधवा होकर उस घर में रहती थी। यही मुँहजला मर्द—'ब्याह करूँगा, राजरानी बनाऊँगा' कहकर, उसे फुसलाकर निकाल लाया और बाद को फूटी हाँड़ी के समान पटककर भाग गया। मैं ही ऐसी औरत हूँ जो इसका साथ निबाह रही हूँ। वह ब्राह्मण नहीं, शूद्र है। चमार के हाथ का पानी पी ले, पर इसके हाथ का नहीं।"

उपेन्द्र बातों को ठीक-ठीक समझ न सका। उसने पूछा, "किसकी बात कहती हो मोक्षदा ?"

मोक्षदा ने कटुता से कहा, "यही मुँहजला भुवन मुखोपाध्याय की ? दूसरा ऐसा चमार तीनों लोक में कौन है ? यही उसकी बड़ी बहन का पति है, इसका यह कार्य ! राम ! राम !"

उपेन्द्र ने अत्यन्त विस्मय में आकर पूछा, "जिनका यह होटल है ?"

मोक्षदा ने कहा, "हाँ, बाबू हाँ, वही कंगाल—वही मनहूस।" इसके बाद अनुपस्थित भुवन मुखोपाध्याय का नाम लेकर कहने लगी, "तू उसका क्या कर सका ? अथाह समुद्र में उसे डूबो दिया। इसके सिवा क्या कभी उसका शरीर तक छू सका ! ले आने पर आज नहीं कल करके जब महीने-भर का समय टालकर तूने कहा कि 'ब्याह नहीं होगा' उसी दिन तेरे मुँह पर उसने लात मार दी। छोकरी थी, थोड़ी बुद्धि थी, तो भी क्या उसके

घर की चौखट तक तू कभी लाँघ सका ? वह मोक्षदा नहीं थी कि दो-चार बातें कहने से ही फन्दे में आ जाती। वह थी सावित्री, जिसने दस हजार रुपए के जड़ाऊ गहनों को घृणा के साथ लात मार दी।"

कुछ क्षण मौन रहकर उपेन्द्र ने कहा, "अपने मुखोपाध्याय महाशय को जरा बुला सकती हो, कुछ बातें पूछूँगा ?"

मोक्षदा ने कहा, "अभी वह बाजार गया है।" जरा ठहरकर फिर बोली, "इस बीच में एक दिन रास्ते में चक्रवर्ती से भेंट हो गई। चक्रवर्ती रोता था और कहता था—'उसे सब कोई चाहता था। जैसा रूप था, वैसा ही गुण था और वैसी ही दया-माया भी उसमें थी'।"

उपेन्द्र ने पूछा, "चक्रवर्ती कौन ?"

मोक्षदा ने कहा, "वे बाबू लोगों के मेस में रसोईदार थे, सब बातें जानते थे। बिहारी के मुँह से सुनकर उसने मुझसे कहा—'चेतला के किसी ब्राह्मण के यहाँ काम करते समय बीमार पड़कर बेचारी लड़की ने छुट्टी माँगी तो उसने बड़ी निर्दयता से कहा, 'तुम्हारी दवा-दारू और पथ्य-पानी में सात रुपए खर्च हुए हैं, देकर चली जाओ।' क्या ब्राह्मण मात्र ही ऐसे निष्ठुर होते हैं ? जो हो, रुपए चुकाने की इच्छा से साबित्री बाबू के घर तक पैदल ही गई। बाबू का स्वभाव इधर खूब ऊँचा हो गया था, रुपया-पैसा चाहे जितना कोई माँगे, कभी मना नहीं करते थे ! किन्तु उसका ऐसा दुर्भाग्य कि उसी रात को बाबू का एक नासमझ मित्र परिवार के साथ आया। दिन-भर के बाद स्नान कर बेचारी ज्योंही घर में गई, त्योंही वे लोग आ पहुँचे। वे रात-भर ठहर सकते थे, पर नहीं, उसे देखते ही उसी समय क्रोध के कारण अपनी स्त्री का हाथ पकड़ उलटे पाँवों लौट गए। छोटे बाबू तो भौंचक्के से हो गए। किन्तु मेरी सावित्री बड़ी अभिमानिनी लड़की है, वह क्या यह अपमान सह सकती थी ? उसने जल तक न पीया, तुरन्त वहाँ से चली गई। तब से उसकी कुछ सुध नहीं मिली।"

उपेन्द्र मौन बैठे रहे।

उस रात का निष्ठुर इतिहास उनकी आँखों में नाचने लगा और बार-बार यह प्रश्न मन में उठने लगा कि यदि मोक्षदा की आधी बात भी सच हुई तो जिसके नाम तक से मैं घृणा करता आ रहा हूँ, वह कैसी अनोखी स्त्री है।

मोक्षदा तो अपने काम पर चली गई, परन्तु उपेन्द्र वहीं चुपचाप गूँगे की तरह बैठे रहे। छः महीने पहले वह सब बातें सुनते भी नहीं थे। जो असत्य है, मिथ्या है, जरा भी कलंक के पाप से कलुषित है, वह सदा ही उनके लिए विष की तरह त्याज्य है। सतीश को जो छोड़ सका है, मोक्षदा की बातों से उसकी आँखों की पलकें भारी हो गईं और दृष्टि धुँधली हो गई। उनका संगमरमर-सा शुभ्र हृदय पत्थर की तरह कठोर था, फिर क्यों आज एक अज्ञात नारी की कलंकित प्रणय-वेदना की कथा सुनकर उस निष्कलंक शुभ्रता पर छाया आ पड़ी, इस पर विचार कर देखने से ज्ञात हो जाता है कि यह दुर्बलता उसी पत्थर के बीच दबी हुई थी। केवल जब सुरबाला उनकी आधी शक्ति हरण करके चली गई, तब सुयोग पाकर ये ही सब विशाल झरने की भाँति उसकी पत्थर सदृश छाती को भेदकर बाहर निकल आए हैं। सुरबाला उनको कितना शक्तिहीन बना गई है, यह बात जान लेने पर उपेन्द्र आज भयभीत हो जाते हैं।

लेकिन उस ओर उनका लक्ष्य नहीं था। वह केवल शून्य दृष्टि से सामने की ओर निहारते हुए बैठे रहे और किसी अनजान सावित्री के प्रेम का इतिहास उनकी सुरबाला की उन अनिर्वचनीय करुण दोनों आँखों की भाँति उनकी आँखों पर आँखें रखकर स्थिर हो गया।

उनको चेत हुआ भुवन मुखर्जी का कण्ठ-स्वर सुनकर। उसने आहट देकर कमरे में घुसकर कहा, "बाबू, आपने क्या मुझे बुलाया था?"

उपेन्द्र ने कहा, "बैठो! तुम सावित्री को जानते हो?"

मुखर्जी ने सिर झुकाकर कहा, "हाँ, जानता हूँ।"

"उसके सम्बन्ध में तुम जो कुछ जानते हो, मुझे बता सकते हो?"

"जी हाँ, बता सकूँगा।" यह कहकर इस निर्लज्ज मनुष्य ने अपने गम्भीर इतिहास का अपराध एक-एक करके बता दिया। अन्त में बोला, "मैं भी भले आदमी का लड़का हूँ बाबू, लेकिन पहले यदि मैं उसे पहचान सकता, तो इस मार्ग में कदम रखकर रसोईदार ब्राह्मण का काम करके दिन बिताने न पड़ते। केवल मेरी यही धारणा है कि उसके शरीर में प्राण रहते कोई भी उसका बिगाड़ न कर सकेगा।"

उपेन्द्र ने पूछा, "उसके प्रति तुम्हारी क्या धारणा है?"

मुखर्जी ने कहा, "फिर भी मैं यह कह सकता हूँ कि वह भ्रष्ट नहीं हुई है।"

उसको विदा कर उपेन्द्र पूर्ववत् निर्जीव मूर्ति की भाँति बैठे रहे। केवल उनका मन लगातार यह कहकर उन्हें कोसने लगा, तुमने अच्छा नहीं किया उपेन, अच्छा नहीं किया। निरुपाय नारी इतने बड़े प्रलोभनों को अनायास ही जीतकर चली जा सकती है, उसका अपमान करने का तुम्हें अधिकार नहीं था।

उसी दिन अपराह्ण में उपेन्द्र भुवन मुखर्जी के यहाँ से चले गए।

लेकिन किसी प्रकार भी समुद्र की जलवायु उन्हें खड़ा न कर सकी। ज्यों-ज्यों दिन चढ़ता जाता था आँख-मुँह में जलन होने लगती थी, और ज्वर भी आ जाता था। और प्रतिदिन उन्हें तिल-तिल करके परलोकवासिनी पतिहीन सुरबाला के निकट ही ले जाने को बढ़ता जा रहा है, यही मानो वह अपने हृदय में स्पष्ट अनुभव करने लगे।

इस प्रकार समुद्र-तट के इस निर्जन स्थान में उनकी इस लोक की अवधि जब प्रतिदिन समाप्त होने लगी तब एक दिन प्रात: की डाक से बिहारी की चिट्ठी घर के पते से पुन: भेजी जाने पर उपेन्द्र के हाथ में आ पहुँची।

जिसका स्मरण आते ही उनकी छाती में सुई चुभ जाने की भाँति पीड़ा होने लगती थी, अपने उसी चिरकाल के मित्र का अपमान, उसके त्याग देने का दु:ख उनके हृदय में दिन-पर-दिन कितना बढ़ता जा रहा था, इसे केवल अन्तर्यामी ही जान रहे थे लेकिन जब उसी मित्र की बीमारी का समाचार लेकर बिहारी के पत्र ने चिकित्सा और सुश्रूषा की अभावपूर्ति का निवेदन किया, तब अनेक दिनों बाद उपेन्द्र के सूखे होंठों पर हँसी आ गई। वह बेचारा तो जानता नहीं है कि जिसके जीवन के दिन अब गिने जाने की दशा पर आ पहुँचे हैं, उसीके हाथ में एक और मनुष्य की सेवा का भार सौंपना चाहता है! फिर भी उपेन्द्र उसी दिन अपना सामान बाँधकर पुरी से रवाना हो गए।

इकतालीस

ज्योतिष ने हाईकोर्ट से वापस लौटकर घर में पाँव रखते ही देखा कि सामने के बरामदे में दो आरामकुर्सियों पर शशांक और सरोजिनी दोनों आमने-सामने बैठकर बातचीत कर रहे हैं।

शशांक उठ खड़ा हुआ और हंसकर लापरवाही से बोला, "आज काम-काज कुछ जल्दी पूरा हो गया। मैंने सोचा कि यहाँ ही चाय पीकर एक साथ ही क्लब चले जाएँगे।"

"अच्छा, अच्छा !" कहकर ज्योतिष अपनी हँसी को दबाकर घर के अन्दर चला गया।

सरोजिनी भैया के साथ अन्दर जाने की तैयारी करने लगी तो ज्योतिष घूमकर खड़ा हो गया और बनावटी भर्त्सना के स्वर में बोला, "अतिथि को अकेला छोड़कर, यह तेरी बुद्धि कैसी हो गई है सरोजिनी ?"

सरोजिनी लाल मुँह किए फिर कुर्सी पर बैठ गई। बहन की यह लज्जा ज्योतिष की आँखों से छिपी न रही।

माँ के आदेश से उसे कचहरी से लौट आने पर कपड़े बदलकर हाथ-मुँह धोकर जलपान करना पड़ता था। माँ से भेंट होते ही उसने कहा, "शशांक आए हैं, आज जलपान की वस्तुएँ बाहर ही भेज दो ना।"

माँ ने कहा, "अच्छा ! सरोजिनी सम्भवतः बाहर है ?"

ज्योतिष ने सिर हिलाकर बताया। फिर कुछ चुप रहकर बोला, "अच्छा माँ, ऐसा आदमी तुम्हारी समझ में कहीं है, जिसमें कोई दोष न हो, केवल गुण-ही-गुण हों ?"

इस प्रश्न को जगत्तारिणी प्रसन्नचित से ग्रहण न कर सकीं। बोलीं, "क्यों तू मुझसे बार-बार यही बात पूछता रहता है ज्योतिष ? मैं तो अनेक बार कह चुकी हूँ, अब मुझे कोई आपत्ति नहीं। तू अच्छा समझे तो उसके ही हाथ में सरोजिनी को सौंप दे न।"

ज्योतिष ने कहा, "दोष के बिना कोई मनुष्य नहीं है माँ। मैंने अनेक प्रकार से विचार करके देख लिया है, सरोजिनी दुःखी न रहेगी। इसके अतिरिक्त वह बड़ी भी हो चुकी है। उसकी सम्मति के बिना काम करना

भी उचित नहीं है।" यह कहकर उसने देखा कि सरोजिनी आकर धीरे-धीरे भैया की पीठ के पास खड़ी हो गई है।

माँ भण्डारघर के भीतर से ही बातें कर रही थीं, इसीलिए कन्या के आने का उन्हें पता न चला। ज्योतिष की बात के उत्तर में उन्होंने विरक्त के स्वर में कहा, "यह बात तो मैंने कभी नहीं कही ज्योतिष, कि इस लड़की का ब्याह उसकी सम्मति के बिना ही हो। मेरी जो इच्छा थी उसे जब तुम दोनों भाई-बहनों ने मिलकर पूरा न होने दिया, तभी क्या लड़की के मन का भाव मैं नहीं समझ गई बेटा। मैं सब समझती हूँ। समझकर ही तो मुँह बन्द किए बैठी हूँ। अब मुझे झूठमूठ का उलाहना देना व्यर्थ है ज्योतिष।" यह कहकर वह जलपान की वस्तुएँ सजाने लगीं। संकोच से, लज्जा से सरोजिनी गढ़-सी गई; लेकिन माँ को कुछ भी ज्ञान न हुआ। ज्योतिष के उत्तर देने के पूर्व ही वह अपनी बात की पुनरावृत्ति के रूप में फिर कहने लगीं, "जिसको देने से तुम्हारी बहन सुखी रहे, उसे ही दे दो बेटा। मेरी सम्मति अब बार-बार जानने की आवश्यकता नहीं है। मेरा मत जो है, मैं तुमसे कहे देता हूँ।"

बहन के अत्यन्त संकोच से ज्योतिष स्वयं बड़ा ही संकुचित हो रहा था। फिर भी बरबस मुसकराकर बोला, "लेकिन मत प्रसन्न मन से देना चाहिए माँ।"

जगत्तारिणी ने कहा, "प्रसन्न मन से ही दे रही हूँ बेटा, प्रसन्न मन से ही दे रही हूँ। मुझे अब तुम लोग तंग मत करो।"

ज्योतिष ने क्षणभर मौन रहकर सोचकर स्थिर किया कि बात जब यहाँ तक पहुँच गई है तब माँ की विरक्ति रहते भी आज ही उसका निर्णय कर लेना ठीक है। क्योंकि, उनके क्लब में, लाइब्रेरी में आजकल प्रायः ही इस बात की चर्चा हो रही है। पर उचित क्या होगा, यह बात भी समझ में नहीं आ रही है। घर में यह बात प्रायः ही उठ जाती है, लेकिन इसी प्रकार रुक जाती है—आगे बढ़ने नहीं पाती। शशांक को भी इस तरह अनिश्चित अवस्था में बहुत दिनों तक छोड़कर रखा नहीं जा सकता। इसीलिए वर-कन्या की सुनिश्चित इच्छा के विरुद्ध माँ की स्पष्ट अनिच्छा को ज्योतिष ने सिर पर धारण करके जो कुछ भी हो, इसी क्षण निश्चय

कर डालने के लिए कहा, "तो मैंने सोच लिया है माँ कि दो-चार इष्टमित्रों के सामने परसों रविवार को ही यह वात पक्की हो जाए। क्या कहती हो?"

माँ ने कहा, "अच्छा तो है।"

सरोजिनी धीरे-धीरे अपने कमरे में चली गई।

रविवार को सवेरे से ही ज्योतिष का बैठकखाना इष्ट-मित्रों से भरता जा रहा था। नवदम्पती की विवाह-सम्बन्धी बात पक्की हो जाने पर वहीं दोपहर के भोजन का भी आयोजन किया गया था। आज शशांक की वेश-भूषा में ही केवल विशेष सजावट नहीं दिखाई पड़ रही थी, बल्कि उसके अंग-अंग से ऐसी श्री फूट उठी थी, जिससे वह अत्यन्त सुन्दर दिखाई दे रहा था। कई स्त्रियाँ भी उपस्थित थीं, लेकिन उपस्थित नहीं थी केवल सरोजिनी। बेयरे से बुलवाने के बाद ज्योतिष स्वयं जाकर उसके कमरे के दरवाजे पर कराघात करके शीघ्र आने के लिए अनुरोध कर आया था। किसी दूसरे दिन उसके इस व्यवहार की गणना अपराध में की जा सकती थी, लेकिन आज उसे क्षमा पाने का अधिकार है, जानकर भी अतिथिगण केवल स्नेहपूर्ण कौतुक से ज्योतिष को डाँट रहे थे।

उसके बाद अनेक बुलाहट-पुकार आने पर लगभग, दस बजे जब सरोजिनी उपस्थित हुई तब उसका मुख देखकर सभी आश्चर्य में पड़ गए। उसका मुँह पीला पड़ गया था, नेत्रों के नीचे स्याही छा गई थी, मानो सारी रात वह एक क्षण भी नहीं सोई। ज्योतिष निर्वाक् होकर केवल बहन के मुख की ओर निहारता हुआ बैठा रहा—बहन की आकृति देखकर वह मानो हत्बुद्धि हो गया। लेकिन इसकी अपेक्षा भी सौ गुना बड़ा विस्मय क्षणभर बाद ही उसके भाग्य में वदा था, इसे वह जानता नहीं था। वह विस्मय मानो उपेन्द्र की छाया लेकर घर के अन्दर आ गया। ज्योतिष ने चौंककर कहा, "उपेन्द्र हो क्या?"

सरोजिनी ने कहा, "उपेन्द्र बाबू!"

वस्तुतः दिन का समय न रहता तो उसको सम्भवतः ये लोग पहचान ही न सकते। सहसा अपनी आँखों को मानो विश्वास नहीं होता, मानो सोचा ही नहीं जाता कि मनुष्य का चेहरा इतना बदल सकता है। उपेन्द्र

एक कुर्सी पर बैठकर बोले, "शरीर अच्छा नहीं है, पुरी से आ रहा हूँ। आज यहाँ क्या है?"

सरोजिनी ने आकर उपेन्द्र का हाथ अपने हाथ में लेकर उसके मुँह की ओर देखकर कहा, "क्या कोई बीमारी हो गई है उपेन बाबू?" कहते ही उसकी दोनों आँखें अश्रुपूर्ण हो गईं। उपेन्द्र ने अपने मुरझाए हुए होंठों पर हँसी लाकर कहा, "बीमारी तो कोई नहीं है बहन।"

उपेन्द्र ने आज पहले-पहल सरोजिनी को बहन कहकर सम्बोधित किया। सरोजिनी ने झटपट आँखों के आँसू पोंछकर कहा, "चलिए, उस कमरे में चलकर बैठें।" यह कहकर उनका हाथ पकड़कर उस जनाकीर्ण कमरे से वह धीरे-धीरे बाहर चली गई, और उसके साथ ही इस कमरे का आनन्दोत्सव मानो बुझ-सा गया। ज्योतिष ने आकर जब सरोजिनी से कहा, "उपेन्द्र थोड़ी देर तक विश्राम करें, तुम एक बार उस कमरे में तो चलो।"

सरोजिनी ने सिर हिलाकर उसी क्षण कहा, "नहीं, आज रहने दो।"

जगत्तारिणी ने समाचार पाकर कमरे में घुसकर रोने के स्वर में कहा, "कैसे इतना दुबला हो गया। लेकिन और कहीं तुम्हारा रहना न होगा उपेन, मेरे ही यहाँ रहकर डॉक्टर को दिखाना पड़ेगा। नहीं तो, यह बीमारी अच्छी न होगी।"

सरोजिनी ने जोर देकर कहा, "हाँ उपेन भैया, तुमको हम लोगों के यहाँ ही रहना होगा।" उसने भी आज ही पहले-पहल उपेन्द्र को भैया कह कर पुकारा। उपेन्द्र चिकित्सा कराने के लिए पुरी से चले आए हैं, यह बात पूछे बिना ही सब लोग समझ गए थे।

उपेन्द्र ने हँसकर कहा, "फिर लौटकर हो सका तो आप लोगों के ही यहाँ रहूँगा, लेकिन आज मुझे एक घंटे के भीतर ही छोड़ देना होगा।"

जगत्तारिणी ने आश्चर्य से कहा, "आज ही, इसी क्षण? क्यों उपेन?"

उपेन ने सतीश की बीमारी का उल्लेख करके उसके दातव्य का, चिकित्सालय आदि का समाचार जितना जानता था, सुनाकर जेब से

बिहारी की चिट्ठी को निकालकर सरोजिनी के हाथ में देकर कहा, "साढ़े ग्यारह बजे की ट्रेन है, जो कुछ भी हो, थोड़ा-सा खा-पीकर उसी से मुझे जाना पड़ेगा। यदि लौटकर आ सका तो आप लोगों के ही आश्रय में रहूँगा।"

जगत्तारिणी का मातृ-हृदय पिघल उठा। उनके नेत्रों में फिर आँसू दिखाई पड़े। सतीश को वह मन-ही-मन अत्यन्त स्नेह करती थीं। वही सतीश आज बीमार पड़ा है। लेकिन उपेन्द्र यह शरीर लेकर उसकी सेवा करने चला है, सुनकर उनकी छाती फटने लगी। वह आँखें पोंछते-पोंछते उपेन्द्र के खाने की व्यवस्था करने के लिए कमरे से बाहर चली गई।

सरोजिनी ने चिट्ठी को आदि से अन्त तक दो बार पढ़ डाला, फिर उसे लौटाकर वह कुछ क्षण तक स्तब्ध होकर बैठी रही। उसके बाद बोली, "तुम्हारे साथ मैं भी चलूंगी उपेन भैया!"

उपेन्द्र ने कहा, "इतना दिन चढ़ आने पर व्यर्थ ही स्टेशन जाकर क्या करोगी बहन?"

सरोजिनी ने कहा, "स्टेशन नहीं, सतीश बाबू के घर। मुझे तुम अपने साथ ले चलो।"

उपेन्द्र ने अवाक् होकर कहा, "पागल हो गई हो क्या? तुम वहाँ कैसे जाओगी?"

"तुम्हारे साथ।"

उपेन्द्र ने कहा, "छि:! यह क्या हो सकता है? ये लोग तुमको क्या जाने देंगे? और तुम भी वहाँ क्यों जाओगी?"

सरोजिनी ने दृढ़ता से सिर हिलाकर कहा, "नहीं, मैं जाऊँगी अवश्य।" यह कहकर वह चली गई।

ऑफिस के कमरे में कोच पर बैठ ज्योतिष एकान्त में शशांक से बात-चीत कर रहा था, सम्भवतः इसी विषय पर आलोचना हो रही थी। सरोजिनी ने धीरे-धीरे जाकर भैया की पीठ के पास खड़ी होकर उनके कन्धे पर हाथ रखा। ज्योतिष चौंक उठे, मुँह फेरकर बोले, "क्या है रे सरोजिनी?"

सरोजिनी ने भैया के कानों के पास मुँह ले जाकर धीरे से कहा, "सतीश

बाबू बहुत बीमार हैं।"

ज्योतिष ने सिर हिलाकर दुःखित होकर कहा, "यही तो मैंने भी सुना है। उपेन इसी ग्यारह बजे की गाड़ी से जा रहा है क्या ?"

सरोजिनी ने कहा, "हाँ, मैं भी उनके साथ जाऊँगी।"

ज्योतिष ने चौंककर कहा, "तुम जाओगी ? कहाँ जाओगी ?"

सरोजिनी ने कहा, "वहीं।"

ज्योतिष उसकी ओर घूमकर बैठ गया, बोला, "वहाँ, कहाँ ? सतीश के घर पर क्या ?"

सरोजिनी ने कहा, "हाँ !"

शशांक दोनों आँखें विस्फारित करके निहारता रहा। ज्योतिष ने उत्तेजित स्वर से कहा, "तू पागल हो गई है क्या रे ? तू क्यों जाएगी ?"

सरोजिनी ने शान्त-दृढ़ कंठ से कहा, "मैं न जाऊँगी तो कौन जाएगा ? नहीं, भैया, वह बहुत बीमार हैं। मुझे जाना ही होगा।" और कुछ वह बोल न सकी, रुलाई से गला रुँध जाने के कारण वह भैया के कन्धे पर मुँह छिपाकर सिसक-सिसककर रोने लगी।

ज्योतिष के नेत्रों पर से बहुत दिनों का एक काला परदा मानो प्रचंड आँधी के आ जाने से पलभर में फटकर उड़ गया। कुछ क्षण वह मौन बैठा रहा, फिर बहन के माथे पर हाथ रखकर धीरे-धीरे सहलाते हुए बोला, "अच्छा, जा। साथ में दासी और दरबान जाएँ। वह किस दशा में रहता है, पहुँचकर तुरन्त ही तार भेज देना। कल-परसों तक मैं भी डॉक्टर को साथ लेकर आ जाऊँगा।" यह कहकर उसने ज्योंही उसको सामने खींच लाने की चेष्टा की, त्योंही सरोजिनी दोनों हाथों से मुँह ढककर कमरे से दौड़ती हुई भाग गई।

शशांक ने मूढ़ की भाँति निहारते रहने के बाद वही प्रश्न किया, "सतीश बाबू बीमार हैं, तो वह क्यों जाएंगी, यह तो मैं समझ नहीं सका ज्योतिष बाबू ? यह सब क्या बात है, बताइए तो ?"

ज्योतिष के कानों में यह प्रश्न पहुँचा या नहीं, बताना कठिन है। वह मानो स्पष्ट देखकर आवेश में उठने वाले मनुष्य की भाँति कहते-कहते बाहर चला गया, "उसके लिए यह इतनी व्याकुल हो उठेगी, यह तो मैंने स्वप्न में

भी नहीं सोचा था। यह कहती है एक तरह, करती है कुछ दूसरी तरह—ये सब कैसी बातें हैं !"

स्टेशन से उतरकर उपेन्द्र ने जिस भद्र युवक से सतीश के गाँव का मार्ग पूछा—भाग्य से यह उसी की डिस्पेन्सरी का कम्पाउण्डर था। उसके किसी काम से स्टेशन आया था। अपने बाबू के ही मकान पर ये लोग जाने वाले हैं, सुनकर, वह दौड़-धूप करके केवल एक पालकी सरोजिनी के लिए ठीक कर सका और उपेन्द्र से बोला, "वह महेशपुर दिखाई पड़ रहा है, चलिए न बातचीत करते-करते पैदल ही चले चलें ! जाने में आध घंटा भी न लगेगा। नहीं तो बैलगाड़ी से जाने में बहुत देर लगेगी।"

उपेन्द्र की अवस्था पैदल चलने की नहीं थी। लेकिन बैलगाड़ी के भय से उन्होंने पैदल चलना ही स्वीकार कर लिया।

सरोजिनी को पालकी में बैठाकर और दरवान तथा दासी को उसके साथ करके उपेन्द्र उसके साथ रवाना हो गए। उसकी अवस्था सत्रह-अठारह वर्ष से अधिक नहीं थी—खूब चतुर और फुर्तीला था। नाम एककौड़ी था। उसे आशा थी, अपने पास किए डॉक्टर साहब के साथ और एक साल तक रहने से वह भी अलग प्रैक्टिस कर सकेगा। उसके मत से डॉक्टरी कोई विद्या नहीं है, केवल हाथ में थोड़ा-सा यश रहना चाहिए। नहीं तो जिसे बचना है, वह बचता है, जिसको मरना है, वह किसी प्रकार भी नहीं बचता।

उपेन्द्र ने उससे कहा कि इस विषय में उसके साथ उसका कोई मत-भेद नहीं है, इसके बाद उन्होंने पूछा, "तुम्हारे बाबू अब कैसे हैं ?"

एककौड़ी ने कहा, "बाबू ! आज बाईस दिन हुए, वह तो अच्छे हो गए हैं। महाशय, सभी दवाइयाँ मैंने ही दी हैं।" कहकर उसने कई बार अपनी छाती आप ही ठोकी।

उपेन्द्र ने बहुत कुछ निश्चिन्त होकर पूछा, "बीमारी क्या बहुत बढ़ गई थी एककौड़ी बाबू ?"

एककौड़ी ने कहा, "बहुत। वह तो मर ही गए थे। माँजी आ नहीं जाती तो वह शिवजी के लिए भी असाध्य रोग था। होगा नहीं महाशयजी,

दिन-रात थाको बाबा के साथ रहकर शराब और गाँजा। कालीजी को सिद्ध कर रहे थे न ? खाक कर रहे थे। इन सब बातों पर क्या हम डॉक्टर लोग विश्वास करते हैं महाशय ! हम लोग हैं साइण्टिफिक मैन। लेकिन माँजी ने आते ही थाको बाबा की बाबागिरी खतम कर दी, खींचकर उनका त्रिशूल फेंक दिया। उस उल्लू ने कई दिनों तक क्या कम उपद्रव किया ? विश्वास कीजिए, सबको बाबू मारने-खदेड़ने दौड़ता था। एक दिन साधारण-सी बात पर मेरे ऊपर ऐसा दाँत कटकटा दिया महाशय ! लेकिन मैं तो बहुत भला आदमी हूँ, किसी से मैं झगड़ा-विवाद करना नहीं चाहता। नहीं तो दूसरा कोई होता तो उस उल्लू का सिर काट लेता।" कहकर एककौड़ी ने अपना छाता आकाश में उछाल दिया।

उपेन्द्र ने आश्चर्य में पड़कर कहा, "माँजी कौन हैं ?"

एककौड़ी ने कहा, "यह क्या मैं जानता हूँ महाशय ! सभी लोग कहते हैं माँजी, मैं भी कहता हूँ माँजी ?"

उपेन्द्र ने कहा, "उनको तुमने देखा है ?"

एककौड़ी ने कहा, "हाँ, मैं एक प्रकार से देखता ही तो हूँ !"

उपेन्द्र ने पूछा, "उनकी उम्र क्या होगी, बता सकते हो ?"

एककौड़ी ने सोचकर कहा, "सम्भवतः चालीस-पचास की होंगी; नहीं तो दूसरा कोई क्या बाबू को नियन्त्रण में रख सकता था महाशय ? डॉक्टर साहब तो कहते हैं कि वह न आतीं तो सब समाप्त हो चुका था।"

एककौड़ी के साथ उपेन्द्र जब सतीश के घर पहुँचे तब दिन डूब ही रहा था। सरोजिनी पहले ही पहुँच गई थी। फाटक के बाहर बरगद के पेड़ के नीचे उनकी पालकी रखवाकर दरबान प्रतीक्षा कर रहा था। सामने ही दातव्य चिकित्सालय था, वहाँ लोगों की बहुत भीड़ लगी हुई थी।

एककौड़ी सबको साथ लिए नीचे के बैठकखाने में बिठाकर बिहारी को बुलाने गया, लेकिन उससे भेंट नहीं हुई। डॉक्टर साहब भी बाहर रोगी देखने के लिए गए हुए थे। सभी लोग भीड़ लगाकर उनके लिए प्रतीक्षा कर रहे थे।

उपेन्द्र को इन माँजी के विषय में अत्यन्त सन्देह था, इसीलिए सरोजिनी को वहीं रुकने के लिए कहकर वह सीधे सीढ़ियों से ऊपर चढ़ गए।

सतीश बिछौने पर सो रहा था। उसके सिरहाने बैठकर सावित्री ध्यान से कागज देख रही थी। उस ओर की खुली खिड़की से सूर्यास्त की लाल आभा फर्श पर बिखर रही थी।

ऐसे ही समय में दरवाजे का भारी परदा हटाने की आवाज सुनकर सावित्री ने मुँह ऊपर उठाकर देखा, एक अपरिचित भले आदमी आ गए हैं।

घबराहट के साथ माथे का घूंघट ऊपर खींचकर उठकर खड़ी होने की चेष्टा करते ही आगन्तुक ने निकट आकर कहा, "आप उठिए मत, मैं हूँ उपेन। आप सावित्री हैं न!"

सावित्री ने सिर हिलाकर बताया, "हाँ।" लेकिन भय से, लज्जा से, संकोच से वह मानो मर-सी गई।

उपेन्द्र ने पूछा, "सतीश सो रहा है? अब कैसा है?"

सावित्री ने पहले की ही तरह सिर हिलाकर बताया, "अच्छा है।"

उपेन्द्र तब धीरे-धीरे आकर पलंग के कोने पर बैठ गए। अपना कर्तव्य उन्होंने पहले ही निश्चित कर लिया था। बोले, "मुझे वह चिट्ठी आपने ही लिखी थी, यह मैं अब समझ गया हूँ। मुझे आने के लिए लिखकर अपने सुख-दुःख, अपने भले-बुरे को आपने कितना तुच्छ बना दिया था, आप यह मत समझिए कि इन बातों को मैं समझता नहीं हूँ। यह तो स्वजन का परिचय है।"

सावित्री को ऐसा जान पड़ा मानो वह स्वप्न देख रही हो। यह मानो कोई दूसरा ही व्यक्ति है, सतीश का वह उपेन भैया नहीं है।

उपेन्द्र ने थोड़ी देर तक मौन रहकर कहा, "तुमसे मैं उम्र में बड़ा हूँ। तुमको मैं सावित्री कहकर पुकारूँगा। तुम मुझे भैया कहकर पुकारना। आज से मेरी छोटी बहन हो।"

सावित्री ने चुपचाप उठकर उपेन्द्र के पाँवों के पास झुककर प्रणाम किया और दोनों हाथ बढ़ाकर उपेन्द्र के जूते का फीता खोलते-खोलते सिर झुकाए हुए पूछा, "आने में इतनी देर क्यों हुई? चिट्ठी क्या ठीक समय पर नहीं मिली?"

उपेन्द्र ने सावित्री के काम में बाधा नहीं दी। सहज भाव से बोले,

"नहीं बहन, मिली नहीं। परसों पुरी में तुम्हारी चिट्ठी पाकर चला आ रहा हूँ। लेकिन तुमको एक बहुत ही सहज काम करना है बहन···!"

यहीं पर उपेन्द्र के मुँह की बात रुक गई।

सावित्री ने जूते खोलकर एक ओर रख दिए। मोजा खोलते-खोलते उसने पूछा, "कौन काम है भैया?"

फिर भी उपेन्द्र चुप ही रहे। इसके बाद मानो जोर लगाकर भीतर का संकोच दूर करके बोले, "लेकिन तुम्हारे अतिरिक्त और किसी में यह काम करने की शक्ति नहीं है। एक और इस काम को कर सकती थी, वह थी सुरबाला।"

सावित्री चुपचाप प्रतीक्षा कर रही है, देखकर उपेन्द्र ने कहा, "सरोजिनी का नाम सुना है?"

सावित्री ने सिर हिलाकर कहा, "सुना है।"

"सम्भवतः सब कुछ सुन चुकी हो?"

सावित्री ने उसी प्रकार सिर हिलाकर बताया, उसे सब कुछ मालूम है।

तब उपेन्द्र ने धीरे-धीरे कहा, "सतीश की बीमारी की बात सुनकर उसे किसी प्रकार भी रोका नहीं जा सका। मेरे साथ वह भी चली आई है। नीचे के कमरे में बैठी हुई है। उसका कोई उपाय करो बहन।"

सावित्री शीघ्रता से उठ खड़ी हुई। बोली, "वह आई हैं। मैं अभी जाकर···लेकिन मैं क्या उनके पास जा सकती हूँ भैया?"

इस संकेत को उपेन्द्र समझ गए। दोनों आँखें फैलाकर मुक्त कण्ठ से बोल उठे, "तुम जा नहीं सकतीं? मेरी छोटी बहन क्या संसार में किसी भी स्त्री से छोटी है कि कहीं भी उसे सिर ऊँचा करके खड़ी रहने में संकोच होगा? मेरी बहन होना क्या संसार में साधारण परिचय है बहन?"

सावित्री और न रुकी। पलभर में उसका सिर उपेन्द्र के दोनों पाँवों पर गिर पड़ा। बार-बार उन दुबले-पतले दोनों पाँवों की धूल सिर पर चढ़ाकर जब वह उठ खड़ी हुई तब उसके मुँह पर आवरण नहीं था, दोनों आँखों से आँसू झर रहे थे। आँसू से भीगे हुए उस मुख पर नारी चरित्र की वृहत् महिमा उपेन्द्र टकटकी बाँधे निहारने लगे।

आँखें पोंछकर ज़ब सावित्री कमरे से बाहर आई तब उपेन्द्र ने पीछे से

कहा, "जिसको बहन कहकर अपना परिचय दोगी, उससे कहना कि हम दोनों भाई-बहन ने आज तक कभी संसार में छोटा काम नहीं किया है।"

सावित्री के चले जाने पर उन्होंने सोए हुए सतीश की ओर देखकर पुकारा, "सतीश ! ओ सतीश !"

सतीश की नींद टूट गई। हड़बड़ाकर वह उठ बैठा। आँखें मलकर निहारता रहा।

"तेरा उपेन भैया हूँ, मुझे तू पहचान नहीं रहा है ?"

"उपेन भैया !" सतीश विह्वल नेत्रों से निर्वाक् होकर निहारता रहा।

"क्यों रे, अभी तक तू मुझे पहचान न सका ?"

सतीश ने मानो नींद के नशे में बात कही। मानो अभी तक उसका नशा टूटा नहीं था—इस प्रकार के रुख से बोला, "पहचान गया। तुम आ गए उपेन भैया !"

"हाँ भाई, मैं आ गया हूँ।"

"तो अपने दोनों पाँवों को एक बार ऊपर उठाओ न उपेन भैया। बहुत दिनों से तुम्हारे पाँवों की धूल सिर पर मैं चढ़ा नहीं सका हूँ।"

उपेन्द्र ने दोनों हाथ बढ़ाकर अपने मित्र को छाती से लगा लिया। कुछ देर तक अचेतन मूर्ति की भाँति दोनों एक-दूसरे की छाती से लगे रहे। फिर उपेन्द्र ने धीरे-धीरे कहा, "अब और देरी मत कर सतीश, कुछ शीघ्र ही रोगमुक्त हो जा भाई, मेरे बहुत से काम तेरे लिए पड़े हुए हैं।"

"कौन काम उपेन भैया ?" कहकर सतीश ने किसी के पाँवों की आहट सुनकर पीछे की ओर देखा तो स्तम्भित हो गया। सावित्री का हाथ पकड़े सरोजिनी चली आ रही थी।

वह एक बार उपेन्द्र की ओर देखकर फिर एक बार अच्छी तरह आँखें मलकर इन दोनों रमणियों के मुँह को चुपचाप निहारता रहा। वह अपनी आँखों पर विश्वास नहीं कर पा रहा है, यह बात उपेन्द्र और सावित्री दोनों ही समझ गए।

सरोजिनी क्षणभर सतीश के कंकाल जैसे पीले मुख की ओर देखकर जल्दी से आगे बढ़कर उसके पाँवों के पास बिछौने पर औंधी पड़कर अपनी रुलाई के वेग को रोकने लगी। किसी ने कोई बात नहीं कही। लेकिन इस

रुलाई के भीतर बड़ी वेदना और क्षमा-याचना थी, वह किसी को समझना शेष नहीं रहा। सतीश चुपचाप मूर्ति की भाँति बैठा रहा। उसके हृदय का एक अंश अव्यक्त आनन्द की बाढ़ से जिस प्रकार तरंगित हो उठने लगा, दूसरा अंश उसी प्रकार कठिन समस्या के घात-प्रतिघात से भीत और क्षुब्ध हो उठा। बहुत देर तक किसी के मुँह से कोई बात नहीं निकली। सन्ध्या के अन्धकारपूर्ण शान्त कमरे में केवल सरोजिनी की दुर्निवार रुलाई का वेग उसके प्राणपण से दबा रखने के कारण रह-रहकर और भी उच्छ्वसित हो उठने लगा। यह नीरवता भंग हुई उपेन्द्र के कण्ठ-स्वर से। उन्होंने सरोजिनी के माथे पर धीरे-धीरे अपना दाहिना हाथ फेरकर कहा, "अपराध चाहे जिससे भी क्यों न हुआ हो सतीश, मेरी इस बहन को आज तू क्षमा कर दे। उसके हृदय के भीतर के अनेक दिनों से संचित दुःखों ने आज तेरी सेवा के लिए ही मेरे साथ उसे भेज दिया है। लेकिन सावित्री बहन, इस प्रकार मुँह उदास बनाए खड़ी रहने से तो काम ही न चलेगा। तुम्हारे इस मरणोन्मुख भाई के अनेक उत्पातों और बोझों को आज से तुमको ही सहन करना पड़ेगा बहन। आओ, मेरे पास आकर बैठो!"

सावित्री का नाम सुनकर सरोजिनी लज्जा, पीड़ा, वेदना सब कुछ भूलकर मुँह ऊपर उठाकर खड़ी हो गई, इतनी देर तक वह उपेन्द्र की कोई आत्मीय ही समझ रही थी। सावित्री चुपचाप आकर उपेन्द्र के निकट भूमि पर बैठ गई। उपेन्द्र ने उसके सिर पर हाथ फेरकर कहा, "तुम यह खयाल मत करना बहन कि तुमसे क्षमा माँगकर मैं तुम्हारी अमर्यादा करूँगा। लेकिन सतीश, तू मुझे क्षमा कर दे। तेरा जितना अपमान, जितना अनिष्ट मैंने किया है, सब भूल जा भाई।"

सतीश क्या कहता! वह अवाक् होकर टकटकी लगाए निहारता रहा।

उपेन्द्र ने म्लान हँसी हँसकर कहा, "मैं समझ गया हूँ सतीश, तुम लोग क्या सोच रहे हो। सोच रहे हो कि गम्भीर उपेन भैया बच्चों की तरह इतना बक क्यों रहा है! लेकिन तुम लोग तो जानते नहीं हो भाई, कितने दिनों तक तुम लोगों के उपेन भैया का मुख एकदम ही मूक हो गया था। इसीलिए जितनी बातें इकट्ठी हो गई थीं, सभी आज मतवाले की तरह बाहर निकल रही हैं।"

उपेन्द्र के वार्तालाप के ढंग से सतीश का हृदय एक प्रकार की अज्ञात आशंका से उथल-पुथल मचाने लगा, कोई एक बात उसने जान भी लेनी चाही, लेकिन न तो उसे प्रश्न ही स्मरण पड़ा, न ही उसके मुँह से बात ही निकली, वह जैसे निहार रहा था, वैसे ही निहारता रहा।

दूसरे ही क्षण सरोजिनी के मुँह की ओर देखकर उपेन्द्र ने सतीश से कहा, "तुम अच्छे हो जाओ। आशीर्वाद देता हूँ तुम सुखी बनो—मैं अपनी इस बहन को लेकर चला जाऊँगा।" यह कहकर उपेन्द्र ने धीरे-धीरे सावित्री के सिर पर अँगुली से थपथपाकर कहा, "तुम्हारे अतिरिक्त मेरा भार लेने वाला और कोई नहीं है बहन। और जैसी बीमारी है और किसी को अपने पास बुलाने का साहस भी नहीं होता। होना उचित भी नहीं। केवल तुम्हारी तरह जिसका जीवित रहना दूसरों की भलाई के ही लिए है, बहन को ही अपने को सौंप दे सकता हूँ। चलोगी बहन, मेरे साथ? सतीश को छोड़ जाने में कष्ट होगा। होने दो। उसकी अपेक्षा भी कितना अधिक दुःख-कष्ट भगवान् मनुष्य से सहाते हैं तब उसे सच्ची मानवता तक पहुँचा देते हैं।"

सतीश के मन में इतनी देर का वही भूला हुआ प्रश्न मानो बिजली की भाँति नाच उठा। वह सहसा बोल पड़ा, "उपेन भैया, हमारी भाभी कैसी हैं? उनकी बीमारी सुनकर ही मैं चला आया था।"

उपेन्द्र ने एक क्षण के लिए दाँतों से होंठों को जोर से दबाया। उसके बाद अपने अभ्यास के अनुसार ऊपर की ओर देखकर बोले, "पशु अब नहीं है, चली गई है।"

सरोजिनी चिल्ला उठी, "सुरबाला भी नहीं हैं?"

"नहीं।"

सतीश मोटे तकिये पर कुहनी टेककर मूर्च्छा से आहत हुए की भाँति शून्य दृष्टि से बैठा देखता रहा।

"सुरबाला नहीं है, वह चली गई।" यह बात उपेन्द्र के मुँह से सहज ही में निकल पड़ी। लेकिन यह 'नहीं' रहना कैसा है। यह 'जाना' कैसा जाना है, सतीश से अधिक कौन जानता है! सरोजिनी की अपेक्षा किसने अधिक देखा है। सावित्री की अपेक्षा किसने अधिक सुना है।

फिर भी सुरबाला नहीं है, वह मर गई है। सतीश के मुँह की ओर

देखकर उपेन्द्र ने हँसकर कहा, "भगवान् ने ले लिया, उसकी फिर नालिश क्या ! लेकिन इस समय यदि दिवाकर पास रहता ! माँ-बाप नहीं हैं, बचपन से पाल-पोसकर इतना बड़ा किया, वह भी जाने कहाँ चला गया। मालूम नहीं मरने से पूर्व एक बार उसे देख पाऊँगा या नहीं।"

सतीश ने उसी प्रकार मूर्च्छाहत की भाँति पूछा, "दिवाकर का क्या हुआ उपेन भैया ?"

उपेन ने कहा, "क्या जाने उसका क्या हुआ। कलकत्ता में हारान बाबू के घर में रहकर पढ़ने को ठीक कर दिया था। यह अत्यन्त लज्जा की बात किसी से कही भी नहीं जाती, कहने की इच्छा भी नहीं होती। घर के लोग आज तक जानते हैं कि वह कलकत्ता में पढ़ रहा है, सुरबाला उसको बहुत स्नेह करती थी, उस वेचारी ने मरने के पूर्व उसे देखना चाहा था; लेकिन उसकी यह साध भी मैं पूरी न कर सका। हारान बाबू की स्त्री के साथ वह कहाँ चला गया, इसका कुछ पता नहीं है।"

तीनों श्रोता एक ही साथ अव्यक्त कण्ठ से "क्या !" कहकर चिल्ला उठे, स्पष्ट रूप से कुछ भी समझ में नहीं आया।

इसके बाद सभी चुप हो रहे। समूचा कमरा एक शून्य श्मशान की भाँति नीरव हो गया।

कोई भी उपेन्द्र के मुँह की ओर निहार भी न सका। लेकिन प्रत्येक को ही यह ज्ञात होने लगा कि उन लोगों का इतने दिनों का दुःख-कष्ट मान-अभिमान मानो इस आकाशभेदी वेदना के सामने अत्यन्त तुच्छ हो गया है। सावित्री, सतीश से सभी बातें सुन चुकी थी। सभी बातें वह जानती थी। वह सोचने लगी, इस विपुल शून्यता को इस मनुष्य ने किस वस्तु से भर रखा है ! इस व्यथा को वह किस तरह अपने प्रतिदिन की जीवन-यात्रा में ढोता फिरता है।

उसने पाँवों पर धीरे-धीरे हाथ फेरते-फेरते कहा, "भैया, इन सब बीमारियों में तुम्हारे लिए पहाड़ की हवा खूब अच्छी होगी, ठीक है न ?"

उपेन्द्र ने उसके माथे पर हाथ रखकर कहा, "हाँ बहन, यही बात तो डॉक्टर भी कहते हैं, लेकिन भगवान् जिसको बुलाते हैं, उसको कुछ भी फायदा नहीं करता। जाना ही पड़ता है।"

सावित्री ने कहा, "कुछ भी हो भैया, लेकिन हम लोग पहाड़ पर ही जाकर रहें।"

उपेन्द्र ने हँसकर कहा, "अच्छा, ऐसा ही करना।"

महामाया की पूजा निकट आ गई।

सतीश के स्वस्थ होने के पूर्व ही बंगालियों के सर्वश्रेष्ठ आनन्दोत्सव के दिन, सुख-स्वप्न की भाँति बीत गए।

कुछ दिन यहाँ रहने की बात थी, लेकिन उपेन्द्र के शरीर की अवस्था देखकर सावित्री ने त्रयोदशी के दिन यात्रा करने का दिन निश्चित कर लिया। उपेन्द्र की आपत्ति के विरुद्ध उसने हठ करके कहा, "यह नहीं होगा भैया। सतीश बाबू को बीमारी अब नहीं है। उनका शरीर सबल हो जाने तक प्रतीक्षा करने से तुमको मैं ढूँढ़कर भी न पाऊँगी। परसों हम लोगों को यहाँ से जाना होगा। तुम कोई बाधा मत दो भैया।"

उपेन्द्र ने मुस्कराकर कहा, "अच्छा, देखा जाएगा। लेकिन ऐसा होने से क्या तुम मुझे ढूँढ़कर पा जाओगी बहन ?"

सावित्री विवाद न करके चली गई।

उपेन्द्र के दिन यहाँ शान्ति से बीत रहे थे, इसलिए जाने के लिए उनको कोई शीघ्रता नहीं थी और यात्रा का दिन इतना निकट है, इस पर भी शायद उन्होंने विश्वास नहीं किया, लेकिन सतीश का मुँह सूख गया; क्योंकि इस हठ के साथ उसका घनिष्ठ परिचय था। इसे वह भली प्रकार जानता था कि यह कोई भी बाधा नहीं मानती और जो कोई इसके सम्पर्क में है, उसी को अब तक दबकर रहना पड़ता है। इसलिए त्रयोदशी किसी प्रकार भी नहीं टलेगी, इसमें उसके मन में जरा भी सन्देह नहीं रहा; लेकिन उसने कोई बात नहीं कही। दूसरे दिन भी इस सम्बन्ध में वह चुप ही रहा। उसके सामने ही बिहारी ने जब सजल नेत्रों से पूछा—अब कितने दिनों में दर्शन दोगी, माँ, तब भी सतीश चुप ही रहा।

सतीश के मुँह की ओर कनखियों से देखकर गम्भीरता से सावित्री ने कहा, "तुम्हारे बाबू का जिस दिन विवाह होगा बिहारी, उसी दिन फिर भेंट होगी। अवश्य ही तुम्हारे बाबू यदि कृपा करके बुलावेंगे तब।"

लगभग दस दिन पूर्व सरोजिनी को ले जाने के लिए जब ज्योतिष

स्वयं आए थे, तभी उपेन्द्र की मध्यस्थता में विवाह की बात पक्की हो गई थी।

सतीश ने कुछ भी आपत्ति नहीं की। स्थिर हो गया था कि उसका समयाशौच बीत जाने पर ही विवाह हो जाएगा।

सावित्री ने उसी बात की ओर संकेत किया और सतीश ने चुप होकर मान लिया।

उपेन्द्र ने जाने के दिन चिन्ता में पड़कर पूछा, "तेरी तबियत क्या अच्छी नहीं है सतीश। कल से क्यों तुम बहुत उदास दिखाई पड़ रहे हो?"

सतीश ने उदास कंठ से कहा, "ना, खूब अच्छी तरह हूँ।"

उपेन्द्र के चले जाने पर सावित्री कमरे में आई। उसकी दोनों आँखें लाल थीं, पलकें भीगकर भारी हो गई थीं, वह उसकी ओर देखने से ही मालूम हो गया। सिर की सौगन्ध की बात बार-बार याद दिलाकर उसने कहा, "बात रखोगे न?"

सतीश ने कहा, "हाँ।"

"शराब-गाँजा हाथ से कभी न छुओगे?"

"ना।"

"मुझसे पूछे विना तन्त्र-मन्त्र की ओर भी न जाओगे।"

"ना।"

"जितने दिनों में शरीर एकदम ठीक न हो जाएगा, तब तक दो दिन के अन्तर से चिट्ठी लिखते रहोगे?"

"लिखूंगा।"

"उसमें कोई भी वात न छिपाओगे?"

"ना।"

"तो अब मैं जा रही हूँ।" कहकर सावित्री शीघ्रता से नमस्कार करके वाहर चली गई।

सतीश बिस्तर पर लेटा रहा। विदा करने के लिए नीचे उतरने की चेष्टा नहीं की।

बाहर दो पालकियाँ तैयार थीं। उपेन्द्र पास खड़े रहकर डॉक्टर साहब के साथ धीरे-धीरे बातचीत कर रहे थे। मोटी चादर से सारा शरीर ढक-

कर सावित्री धीरे-धीरे ज्योंही दूसरे कमरे में जाने लगी, त्योंही बिहारी ने दौड़ते हुए आकर चुपके-से कहा, "एक बार लौट चलो माँ, बाबू किसी विशेष काम से बुला रहे हैं।"

सावित्री फिर लौट गई।

उपेन्द्र ने बातें करते-करते उस पर लक्ष्य किया। सावित्री ठीक इसी भय में थी। कमरे में प्रवेश करके उसने देखा, सतीश दूसरी ओर मुँह किए लेटा है। बिस्तर के पास जाकर हँसी का भान करके उसने कहा, "बात क्या है? हम लोगों की ट्रेन छुड़ा दोगे क्या?"

सतीश ने मुँह फेरकर हाथ बढ़ाकर सावित्री की चादर को जोर से पकड़कर कहा, "बैठो, तुमको जाने न दूँगा। यह मेरा गाँव है, मेरा मकान है। मेरी इच्छा के विरुद्ध तुमको जबरदस्ती कोई ले जा सके, यह सामर्थ्य दस उपेन्द्रों में भी नहीं है।"

उसने देखा, सतीश की आँखों में एक ऐसी तीव्र हिंस्र दृष्टि है जिसे किसी प्रकार भी स्वाभाविक नहीं कहा जा सकता।

सावित्री समझ गई, जबर्दस्ती करने से काम न चलेगा। बिस्तर के एक छोर पर बैठकर भर्त्सना के स्वर से उसने कहा, "छिः! यह कैसी बात तुम कह रहे हो, वे तो मुझे जबरदस्ती नहीं ले जा रहे हैं। उनकी स्त्री नहीं है, भाई नहीं है, तुम नहीं हो—इतनी बड़ी भयंकर बीमारी में सेवा करने वाला कोई नहीं है, इसीलिए तो वे तुमसे माँगकर मुझे ले जा रहे हैं। इसको क्या जबरदस्ती ले जाना कहते हैं?"

सतीश ने जोर से सिर हिलाकर कहा, "यह झूठी बात है, मुझे बहकाना है। वे अपने मित्र ज्योतिष बाबू का मुँह देखकर ही केवल तुमको मेरे पास से हटा लेना चाहते हैं। उधर दो दिनों से दिन-रात भली प्रकार सोच-विचारकर मैंने देख लिया है, जो चुप रहकर सहता रहता है, सभी उस पर अत्याचार करते हैं। इसका कोई भी कारण क्यों न हो, मैं तुमको न जाने दूँगा। जाने दो, इस बात को लेकर तर्क-वितर्क करके मैं माथा खपाना नहीं चाहता। बिहारी से कहलवा दो कि तुम्हारा जाना न होगा। बिहारी···"

सावित्री ने अपने हाथ से उसका मुँह दबाकर कहा, "तुम क्या पागल हो गए? अच्छा मान लेती हूँ कि उनका मतलब अच्छा नहीं है, लेकिन तुम

ही मुझे लेकर आज क्या करोगे, बताओ तो भला ?"

क्षण-भर मौन रहकर सतीश ने कहा, "यदि मैं कहूँ कि तुमसे ब्याह करूँगा !"

सावित्री ने कहा, "यदि मैं कहूँ कि यह मेरी इच्छा नहीं है ।"

सतीश ने कहा, "तुम्हारे मतामत से कुछ नहीं होता !"

सावित्री ने डरते हुए हँसकर कहा, "क्या तुम जबरदस्ती मुझसे ब्याह करोगे ?" यह कहकर वह अपने मुँह की हँसी को गम्भीरता में परिणत करके उसके माथे पर से सूखे बालों को प्यार से धीरे-धीरे हटाती हुई बोली, "छिः ! ऐसी बात कभी भ्रम से भी विचार में मत लाना । मैं हूँ विधवा, मैं हूँ कुलत्यागिनी, मैं हूँ समाज में लाँछिता, मुझसे ब्याह करने का दुःख कितना बड़ा है, इसे तुम तो समझते ही नहीं हो, लेकिन जो जन्म से ही शुद्ध हैं, शोक की आग ने जिन्हें जलाकर हीरे के समान निर्मल बना दिया है, वे समझ गए हैं, इसलिए इस अभागी को आश्रय देने के लिए ही अपने साथ लिए जा रहे हैं। उनकी मंगलकामना को आज तुम आवेश में रहने के कारण देख न सकोगे, लेकिन इसी कारण उन पर झूठ-मूठ दोषारोपण करके तुम अपराधी मत बनो—" यह कहते-कहते उसकी आँखों से आँसू लुढ़क पड़े ।

ये आँसू आज सतीश को शान्त न कर सके। वह और भी उत्तेजित होकर बोला, "झूठ है। तुमने इसी प्रकार अपने को मुझसे पृथक् रखकर मेरा सर्वनाश किया है। उपेन भैया ने ही कहा है, तुम संसार में किसी से भी छोटी नहीं हो, यह सच है ।"

सावित्री ने कहा, "ना, यह बात नहीं है। भैया अब समाज से परे हैं, इस लोक से परे हैं, उनके मुँह की जो बात सच है, दूसरे के मुँह से दूसरे की आवश्यकता के अनुसार ठीक नहीं है । तुम कहोगे, सच हो या झूठ, मैं समाज को नहीं चाहता, मैं तुमको चाहता हूँ । लेकिन मैं तो यह नहीं कह सकती। समाज मुझे नहीं चाहता, यह मैं जानती हूँ, लेकिन मैं तो समाज को चाहती हूँ, मैं तो उसे मानती हूँ । मैं तो जानती हूँ, श्रद्धा के अलावा प्रेम स्थिर नहीं रह सकता । समाज जिस स्त्री को उसके सम्मान का आसन नहीं देता, किसी भी स्वामी की सामर्थ्य नहीं है कि अपने बल से उसके उस आसन को बचा-कर रख सके ।"

सतीश दोनों हाथों से सावित्री के दोनों हाथ जोर से दबाकर बोला, "सावित्री, इन सब बातों को सुनने का धैर्य आज मुझमें नहीं है, समझने की शक्ति भी नहीं। आज केवल मुझे छूकर तुम यह सच बात साफ बता दो कि तुम मुझे प्यार करती हो या नहीं ?" यह कहकर वह मानो समस्त इन्द्रियों को, समूचे शरीर तक को उन्मत्त करके सावित्री के मुँह की ओर देखता रहा।

इन अत्यन्त व्यग्र और व्यथित दोनों नयनों की ओर देखकर सावित्री की आँखों से फिर आँसू झरने लगे।

उसने कहा, "प्यार करती हूँ या नहीं ? वर्ना किस बल से तुम पर मेरा इतना बल है ? जिसके लिए मेरा इतना सुख है, इतना बड़ा दुःख है ? इसलिए तो मैंने तुमको इतना दुःख दिया, लेकिन किसी प्रकार अपना यह शरीर तुमको दे न सकी।" यह कहकर आँचल से अपनी आँखें पोंछकर बोली, "आज मैं तुमसे कोई बात न छिपाऊँगी। यह मेरा शरीर आज तक अवश्य नष्ट नहीं हुआ है, लेकिन तुम्हारे पाँवों में सौंप देने की योग्यता भी तो इसमें नहीं है। इसी शरीर से जो मैंने इच्छापूर्वक बहुतों का मन मोहित किया है, यह बात मैं किसी प्रकार भी भूल न सकूँगी। इससे चाहे जिसकी सेवा हो, पर तुम्हारी पूजा न हो सकेगी। आज किस प्रकार मैं तुमको यह बात समझाऊँ। इतना प्यार यदि तुम्हें न करती तो इस प्रकार तुमको छोड़कर आज मुझे जाना न पड़ता।" यह कहकर सावित्री ने बार-बार अपनी आँखें पोंछी।

कुछ क्षण सतीश स्तब्ध भाव से पड़ा रहा, फिर एकाएक बोल उठा, "तो मैं और नहीं चाहता ? लेकिन तुम्हारा मन ? इससे तो तुमने किसी को कभी मोहित नहीं किया, यह तो मेरा है।"

"इससे किसी दिन किसी को मैंने मोहित करना नहीं चाहा, वह तुम्हारा ही है। यहाँ तुम ही चिरकाल से स्वामी हो।" यह कहकर उसने छाती पर हाथ रखकर कहा, "अन्तर्यामी जानते हैं, जितने दिन मैं जीवित रहूँगी, जहाँ जिस दशा में रहूँगी, चिर दिन तुम्हारी ही दासी बनी रहूँगी।"

उसका हाथ अपने दाएँ हाथ में लेकर सतीश ने तुरन्त कहा, "भगवान् का नाम लेकर तुमने यह जो स्वीकृति दे दी है, यही मेरे लिए पर्याप्त है,

इससे अधिक मैं कुछ नहीं चाहता।"

उसकी बातों से सावित्री मन-ही-मन फिर घबरा उठी।

ऐसे ही समय में बिहारी ने दरवाजे के बाहर से पुकारकर कहा, "माँ जी, बाबू ने कहा है अब तो देर हो रही है।"

"चलो, आ रही हूँ।" कहकर सावित्री उठ रही थी। सतीश ने उसे जोर से पकड़कर कहा, "कभी तुमसे मैंने कुछ नहीं माँगा—आज जाते समय मुझे एक भिक्षा देती जाओ।"

"मेरे पास क्या है जो तुमको मैं दूँगी ? लेकिन क्या चाहिए बताओ ?"

सतीश ने कहा, "मैं यह भिक्षा चाहता हूँ, यदि कोई कभी हम दोनों के सम्बन्ध की बात पूछे तो तुम मेरा स्वामित्व स्वीकार करोगी। बताओ ?"

इस अनोखी हठ से सावित्री हँस पड़ी। बोली, "बताओ, साक्षियों के बल से अन्त में मुझे घर में डाल तो नहीं लोगे ?"

सतीश ने कहा, "तुम्हारे हृदय में रहने वाले भगवान् ही मेरे साक्षी हैं—दूसरे साक्षी की मुझे कोई आवश्यकता नहीं है। और बाहर के बल से अन्त में तुमको घर में डाल लूँगा, यही भय तुमको है ? लेकिन अपने जोर से आज ही यदि मैं तुमको घर में डाल लूँ, तो कौन मुझे रोकने वाला है, बताओ तो ?"

सावित्री मौन रही।

सतीश ने कहा, "तुम्हारा जहाँ-तहाँ अपनी इच्छा के अनुसार रहना मुझे स्वीकार नहीं है।"

सावित्री का मुख उत्तरोत्तर पीला पड़ता जा रहा था, लेकिन इस अवस्था में सतीश को उत्तेजित करने के भय से वह मौन ही रही।

सतीश बोला, "उपेन भैया हैं पत्थर के देवता, यदि वे रक्त-मांस के देवता होते तो मैं कभी भी साथ न भेजता। अच्छा, आज जा रही हो तो जाओ, लेकिन जान पड़ता है कि वहाँ अधिक दिनों तक तुम्हारे रहने से मुझे सुविधा न होगी।"

"तुम्हारी जैसी इच्छा !" कहकर सावित्री नमस्कार करके चली गई।

बयालीस

अपराह्न को पाँच बजे।

लकड़ी के कारखाने की छुट्टी होने पर दिवाकर आराकान के एक मार्ग से जा रहा है। धूल, धुएँ और लकड़ी के बुरादे से उसका सारा शरीर मैला हो रहा है। शरीर पर एक मैला पुराना कुरता है, वह भी कई स्थानों से सिला हुआ, धोती भी कुछ-कुछ वैसी ही है। दाहिने पाँव के जूते की एड़ी टूट जाने से वह बिल्कुल चट्टी बन गया है। पाँव का अँगूठा जूते से बाहर निकलकर दिखाई दे रहा है।

अब दिवाकर वह दिवाकर नहीं है। देखने से वह जल्दी पहचाना नहीं जाता।

दिन-भर से पेट में अन्न नहीं गया, ऐसी दशा में वह हाँफता-हाँफता कामिनी दासी के घर आ उपस्थित हुआ। निचले तले में चार रुपए माह-वारी किराए पर एक कोठरी लेकर रहता है। छोटे बरामदे में एक ओर रसोई है, और लकड़ी, कंडा, पानी की बाल्टी आदि पास-ही-पास रखी हुई हैं।

दिवाकर के पाँवों की आहट पाकर, पास की एक कोठरी से बाड़ीवाले ने बाहर निकलकर धीमे स्वर में कहा, "आ गए बाबू? तुम लोग यह सब क्या करते हो? रसोई नहीं होती, नहाना-खाना नहीं होता, केवल रात-दिन झगड़ा, किच-किच, दाँत पीसना—यह हम लोगों को दरिद्र बनाने का उपाय कर रहे हो क्या?"

दिवाकर ने अपने उदास मुँह को नीचे की ओर झुका लिया।

वह दोपहर के समय खाना खाने आकर किरणमयी से झगड़कर बिना कुछ खाए-पीए ही काम पर चला गया था। अब छुट्टी होने पर लौटा है। किन्तु उसकी अवस्था देखकर मकान वाली का क्रोध शान्त नहीं हुआ।

उसने फिर कहा, "वह तुम्हारी ब्याही बहू नहीं है बाबू, जो उस पर इतना अत्याचार करते हो? निकालकर जिस तरह लाए हो, वैसा ही उसने भी धरम रखा है। ये चार-पाँच महीने जेवर-गहने बेचकर जिस प्रकार से हो सका, तुमको खिलाया-पिलाया है, घर का किराया दिया है। अब

तुम्हारी भी नौकरी लग गई है, तुम उसका साथ न निभा सको तो अलग रहो। क्यों उस बेचारी को दुःख देते हो ? ऐसी सुन्दर जवान औरत खाए-पहने बिना सूखकर लकड़ी हो गई।" जरा चुप रहकर उसने फिर कहना शुरू किया, "तुम न होते, तुमने उसे यों बाँध न रखा होता, तो उसे अपने लिए क्या चिन्ता थी ? उस मोड़ पर रहने वाले सेठजी मेरे पास नित्य ही आदमी भेजते हैं। कहते हैं, सारा शरीर सोने से मढ़ दूँगा। औरत को क्या चिन्ता है, बाबू ? चावल बिखेरने वाले को कौओं की क्या कमी ! जाओ, अब चले जाओ। मेरी बात मानो, कितने दिनों से मैं कह रही हूँ। अब तक जो हुआ, अब तुम दोनों में कभी भी मेल न हो सकेगा।"

दिवाकर ने उसे शीघ्रता से रोककर कहा, "ठहरो-ठहरो, मुझसे बहुत कुछ कहने की आवश्यकता नहीं, किन्तु उनका मन क्या है ? जरा मैं यह भी तो जान लूँ। तुम तो ठहरीं उनकी परामर्शदात्री।"

तभी किरणमयी अपनी कोठरी से बाहर निकली। अवस्था के बदल जाने से मनुष्य में शारीरिक, मानसिक सब प्रकार का परिर्वतन कितना शीघ्र और आश्चर्यजनक ढंग से हो जाता है, यह देखकर आश्चर्यचकित हो जाना पड़ता है।

आज उसकी ओर देखकर कौन कहेगा कि यह वही सौन्दर्य की मूर्ति किरणमयी है !

छः महीने पहले यही गए दिन समाज और धन का अपमान, मनुष्यत्व को पैरों से कुचलकर एक मूर्ख, अपरिणामदर्शी युवक को रूप और प्रेम के मोह में फाँसकर सब प्रकार की सार्थकताओं से वंचित कर यहाँ लाई थी। आज उस धोखेधड़ी की फाँसी को किरणमयी स्वयं अपने ही हाथों अपने गले में लगा बैठी।

पाप के साथ असफल क्रीड़ा करते रहने के कारण दिवाकर के हृदय के भीतर से आज वासना का राक्षस बाहर निकल आया है, उससे आत्मरक्षा करने के लिए उसके साथ दिन-रात लड़ते-लड़ते किरणमयी अब जर्जर हो गई है।

उसके सिर के बाल रूखे और बिखरे हुए, वस्त्र मैला और फटा-पुराना है। मुख पर एक प्रकार की शुष्क-भूख मानो अधीरता की चरम सीमा पर

पहुँच गई है, अंगों की कुत्सित श्रीहीनता देखकर आँखों को दुःख पहुँचता है। मूर्तिमती अलक्ष्मी के समान वह धीरे-धीरे आकर बरामदे के खम्भे के सहारे खड़ी होकर दोनों की ओर चुपचाप देखने लगी।

उसको देखते ही दिवाकर घायल भेड़िये के समान उछलकर चिल्ला उठा।

आह ! निर्लज्जता चरम सीमा को पहुँच चुकी थी। वही मुँहचोर दिवाकर आज मकान-भर के लोगों के आगे ऐसी-ऐसी बातें चिल्लाकर कह सकता है, यह विश्वास करने को भी मन नहीं चाहता। परन्तु वास्तव में उसने चिल्लाकर कहा, "क्यों भाभी, क्या यही बात है? आह ! इसी से दिन-रात झगड़ा ! इसी से मैं तुम्हारी आँखों का काँटा हो गया हूँ?"

एकाएक किरणमयी कुछ समझ न सकी, वह चुपचाप उसका मुँह ताकती रही, किन्तु उसका उत्तर दिया मकान वाली ने। उसने एक पाँव आगे बढ़ाकर, हाथ हिलाकर और आँखें मटकाकर कहा, "क्यों न आवश्यकता हो? हम कुछ गृहस्थ की बहू तो हैं नहीं कि एक के पास जीवन बिता देंगी? हम हैं सुख के पंक्षी, स्वतन्त्र घूमने वाली, जहाँ जिसके पास सुख मिलेगा, उसीके पास जाएँगी, इसमें लज्जा क्या है?"

दिवाकर ने क्रोध से जलकर उसको धमकाकर कहा, "चुप रह हरामजादी ! जिससे पूछता हूँ, जो कहना है, वही कहेगी। तू क्यों चिल्लाती है!"

इस बार मकानवाली भी बारूद की तरह भड़क उठी, मारने को तैयार होकर बोली, "क्यों रे ! मेरे घर में रहता है और मुझे ही हरामजादी कहता है? निकल जा अभी मेरे घर से!"

दिवाकर भी क्रुद्ध हो गया।

छः महीने पहले बुरे-से-बुरे स्वप्न में भी शायद यह कल्पना करना सम्भव न होता कि दिवाकर एक अछूत जाति की गणिका के मुँह से इतने अपमान की बात सुनकर भी कमर कसकर उसके साथ इस प्रकार तर्क करेगा! किन्तु वह तो अब उपेन्द्र की सुरबाला के प्रेम और आदर में लालित-पालित होने वाला दिवाकर नहीं रह गया है।

इसीसे वह भी आँख-मुँह लाल कर गरज उठा, "मैं क्यों निकलूँ? क्या तू किराया नहीं लेती!"

मकानवाली ने धमकाकर कहा, "वाह रे किराया देने वाला ! औरत की कमाई पर इतना दिमाग ? धिक्कार है तुझे ! डूब मरने के लिए चुल्लू-भर पानी भी नहीं मिलता क्या तुझे ? निकल जा यहाँ से, नहीं तो झाडू मारकर निकाल वाहर करूँगी।"

"अच्छा निकलता हूँ।" कहकर, उसने दाँत पीसते हुए पागल के समान दौड़कर किरणमयी के गले में हाथ डालकर जोर से ढकेल दिया। दिन-भर की भूखी, प्यासी, थकी किरणमयी धक्का न सह सकी ! पहले तो वह रंग की एक खाली बाल्टी पर गिरी और वहाँ से लुढ़ककर उपलों के ऊपर औंधे मुँह के बल जा गिरी।

दिवाकर ने क्रोधित होकर उसकी पीठ पर लात मारकर कहा, "चलो निकलो ! कौन तुम्हारा मारवाड़ी है, दूर हो !" कहकर वह घर के भीतर जा घुसा।

मकानवाली भयानक स्वर में चिल्ला उठी।

कारखाने से अभी-अभी लौटे हुए लोग जो अपने हाथ-मुँह धो रहे थे, जोर की चिल्लाहट सुन, विस्मित हो, साबुन फेंककर दौड़ आए।

मकानवाली नकिया-नकिया कर नालिश करने लगी, "अरे बेचारी बहू को मार डाला रे ! मार डाला। अभागे छोकरे को तुम लोग मारते-मारते निकालकर बाहर कर दो—मेरे घर न आने पावे !"

मकानवाली की प्रार्थना सुन, वे इकट्ठे होकर कोठरी के भीतर घुसने को तैयार हुए। इतने में किरणमयी उठ खड़ी हुई और उसने घूँघट डालकर कठोर स्वर में कहा, "लड़ाई-झगड़ा किसके घर में नहीं होता ? मुझको मारा है तो तुम लोगों का क्या बिगाड़ा ? चलो, तुम लोग अपने घर जाओ।" यह कहकर शीघ्रता से कोठरी के भीतर जाकर उसने किवाड़ बन्द कर लिए।

लोग अपनी बहादुरी दिखाने का अवसर खोकर उदास हो लौट गए।

मकानवाली गाल पर हाथ रख अपने आप ही बोली, "कैसा अनोखा चरित्र है !"

दरवाजा बन्द कर किरणमयी ने दियासलाई निकाल, बत्ती जलाई। लकड़ी का घर बहुत अच्छा न होने पर भी लम्बा है। एक ओर रस्सी की

बुनी खटिया पर दिवाकर का बिस्तर लगा है, दूसरी ओर चौकी पर किरणमयी का बिस्तर लिपटा रखा है। पाँव की ओर कुछ मिट्टी के बर्तन एक के ऊपर एक रक्खे हुए हैं और उसी कोने में लकड़ी के सींकचे पर हाँडी, कड़ाही, कलछी आदि रखी हुई हैं।

यही इन दोनों की गृहस्थी का सारा सामान है।

किरणमयी दरवाजे के पास स्थिर होकर बैठ गई। किसी के मुँह से भी कोई बात न निकली—खाट पर दिवाकर सिर झुकाए चुप बैठ गया।

इस तरह बहुत देर तक दोनों चुपचाप बैठे रहे। तत्पश्चात् किरणमयी उठकर धीरे-धीरे सामने आई और स्वाभाविक स्वर से बोली, "हाँडी में भात रखा है, परोस देती हूँ, चलो, खा लो।"

दिवाकर ने रुँधे हुए गले से कहा, "ना।"

उसके कंठस्वर से मालूम हुआ कि वह अब तक रो रहा था।

किरणमयी बोली, "ना क्यों? दिन-भर कुछ खाया नहीं! आज न खाओ, कल तो खाना ही होगा। भोजन-वस्त्र से रूठने पर गुजर नहीं चलती। हाथ-मुँह धो आओ, जो भाए थोड़ा खा लो, मैं भात परोस देती हूँ।"

दिवाकर चुप रहा। वह दुःख और आत्मग्लानि से जल रहा था। वह सचमुच ही किरणमयी को हृदय से चाहने लगा था।

जब से यहाँ आया, तब से बहुत दिनों तक बाहर किसी के कुछ न जानने पर भी दोनों में अत्यन्त गुप्त भाव से आसक्ति और विरक्ति का जो निर्मम संग्राम नित्यप्रति हुआ करता था, उसके सभी आघात दिवाकर चुपचाप सहता आया था।

कई दिनों से यह संघर्ष प्रगट और अत्यन्त कठोर होने पर भी ऐसी उत्तेजना की आग बहुत बार भड़की थी, किन्तु आज से पहले उसने किसी दिन इस प्रकार आत्म-विस्मृत हो, ऐसा पाशविक व्यवहार नहीं किया था। किस कारण से, किस अत्याचार के फल से वह किरणमयी पर हाथ उठा सकता है और यह जो पहले-पहल अभी उसने उठाया है, उसे वह ठीक प्रकार से नहीं समझ सका था। पहले तो वह बिल्कुछ अचेत के समान घर के भीतर घुस, खाट पर आ बैठा था, किन्तु जब किरणमयी ने स्वयं ही

अपनी सब लांछनाओं को स्वेच्छा से झाड़कर दौड़कर आए हुए लोगों के आक्रमण से उसे बचाकर कोठरी के द्वार भीतर से बन्द कर लिए, तब मानो उसे चेतना आई और वह आप ही अपनी करनी पर पछताने लगा। अब किरणमयी का अनुरोध शेष होते-न-होते वह उसके पाँवों पर इस प्रकार लोट गया, जैसे पहाड़ की जड़ पर लहरें टकराती हैं। वह किरणमयी के दोनों पाँवों पर अपना मुँह रखकर सिसकियाँ भर-भरकर रोने लगा। रोते-रोते उसने कहा, "मैं पशु हूँ, मुझे क्षमा करो भाभी।"

क्षण-भर किरणमयी ने स्थिर तथा विकाररहित भाव से चुप रहकर पूर्ववत् स्वाभाविक स्वर से कहा, "तुम्हारा कुछ दोष नहीं—मनुष्यमात्र को ही ये सब काम पशु बना देते हैं। मुझे भी पशु बनाने में लेशमात्र की कमी नहीं रखी है।"

दिवाकर ने जोर से सिर हिलाकर कहा, "ना-ना, और किसी से मुझे काम नहीं भाभी, किन्तु आज के मेरे अपराध का प्रायश्चित कैसे होगा, मुझे बता दो। प्राण देकर भी मैं इसका प्रायश्चित करूँगा।"

किरणमयी ने कहा, "तुमने ऐसा कौन-सा अपराध किया है? सुनते नहीं, क्रोध में मनुष्य मनुष्य का खून कर डालता है। तुमने तो मुझे केवल एक लात ही मारी है। मैंने क्या कोई अपराध नहीं किया है बाबू! सब क्या तुम्हारा ही दोष है? जाने दो यह सब, सारे अभियोगों, अनुयोगों का आज अन्त हो गया—इससे भविष्य में तुमको भी आवश्यकता न पड़ेगी और मुझे भी नहीं। अब आओ, हाथ-मुँह धोकर भात खाने बैठो। मुझसे अब खड़ा भी नहीं रहा जाता।"

दिवाकर धीरे-धीरे उठ बैठा।

किरणमयी के स्वर से उसने समझा था कि वह और बातें करना भी नहीं चाहती।

दिन-भर के उपवास के बाद दिवाकर पेट भर खाकर बाहर मुँह धोने गया। उसके मन की ग्लानि भी प्रायः दूर हो गई थी। मुँह धोकर घर के भीतर लौटा, तो कुछ विस्मित होकर देखा कि किरणमयी ने उसका बिस्तर लपेटकर चारपाई के नीचे रख द्रिया है। उसने पूछा, "मेरा बिस्तर नीचे क्यों रखा है?"

किरणमयी ने दृढ़ता से कहा, "पहले कहती तो शायद तुम न खाते-पीते। आज से हम दोनों में कभी मिलाप न होगा। रात अभी बहुत नहीं बीती, आज काली जी के मन्दिर में जाकर सो रहो, कल अपने रहने के योग्य कोई स्थान खोज लेना और यदि इस देश में रहना न चाहो, तो परसों स्टीमर जाएगा, मैं रुपए दे दूंगी, घर लौट जाना। बात यही है, अब जो तुम्हारे मन में आए, करो। मेरे साथ अब तुम्हारा लेशमात्र भी सम्बन्ध न रहेगा।"

दिवाकर हत्‌बुद्धि होकर सब बातें सुन रहा था।

उसे ऐसा जान पड़ा था मानो किरणमयी के ममताहीन शब्द कठोर पत्थर के टुकड़ों के समान उन दोनों के बीच सदा के लिए एक अभेद्य दीवार खड़ी कर रहे हैं।

उसकी बातें पूरी होने पर उसने मानो स्वप्न से जागकर कहा, "और तुम ?"

किरणमयी ने कहा, "मेरी सुनने से तुम्हें कुछ लाभ नहीं, फिर यदि इस देश में रहोगे तो कल-परसों तक सुन ही लोगे।"

दिवाकर ने कहा, "तो मकान वाली की ही बात सच है ? वह असभ्य सेठ..."

किरणमयी ने शान्त किन्तु कठोर स्वर से उत्तर दिया, "हो भी सकता है। खैर, चाहे कुछ हो, तुम्हारे कन्धों के सहारे नीच मार्ग में उतरी थी, तो क्या अन्त तक तुम्हारे ही आश्रय में रहकर चलना होगा ? इसका कोई अर्थ नहीं है। मेरी तबियत ठीक नहीं है, सोने जाती हूँ। अब तुम व्यर्थ देर मत करो, जाओ। कल सवेरे तुम्हारी सब वस्तुएँ तुम्हारे पास भेज दूंगी।"

दिवाकर ने कहा, "इतनी जल्दी ! आज रात को भी तुम मुझे यहाँ रहने न दोगी ?"

किरणमयी ने कहा, "ना।"

क्षण-भर दिवाकर ने मौन रहकर कहा, "तो केवल मेरा सर्वनाश करने के लिए ही मुझे इस मार्ग पर खींच लाई थीं ? किसी दिन प्यार तक नहीं किया ?"

किरणमयी ने कहा, "ना, किन्तु तुम्हारा नहीं, एक और मनुष्य का

सर्वनाश करने का निश्चय करके ही मैंने तुम्हारा सर्वनाश किया है। और मेरा, जाने दो मेरी बात। किन्तु मुझसे आदि से अन्त तक भूल हुई और इन भूलों के लिए ही मैं आज तुम्हारे पाँव पकड़कर तुमसे क्षमा माँगती हूँ।"

दिवाकर ने उस निर्विकार पत्थर-मूर्ति के समान चेहरे की ओर देखकर लम्बी साँस भरकर कहा, "मेरे सर्वनाश की तुम कल्पना तक नहीं कर सकती हो, इसीसे तुम इतनी सुगमता से क्षमा माँग सकी हो। किन्तु इस सर्वनाश की अपेक्षा भी मेरा प्रेम बहुत बड़ा है, इसीसे अब तक जीवित हूँ, नहीं तो जहाज के ऊपर ही शायद मेरी छाती फट जाती और मैं मर जाता, किन्तु एक बात किसी प्रकार भी समझ में नहीं आती। आज तुम जिसके पास जाओगी, उससे भी तो प्रेम नहीं है। शायद पहचानती भी नहीं, तो फिर मुझे छोड़कर उसके पास जाना क्यों चाहती हो ? मैंने तो कभी तुम्हारा अमंगल नहीं किया ! किन्तु क्या तुम सचमुच ही किसी और के पास चली जाओगी ?"

किरणमयी ने सिर हिलाकर कहा, "हाँ, जाऊँगी।"

तत्पश्चात् बहुत देर तक फर्श की ओर चुपचाप देखती रही, पीछे सिर उठाकर बोली, "ना, आज अब कुछ भी न छिपाऊँगी। मैं भगवान् को नहीं मानती, आत्मा को नहीं मानती, जन्मान्तर को नहीं मानती, स्वर्ग-नरक यह सब झमेला भी नहीं मानती—यह सब मेरे लिए व्यर्थ है, बिल्कुल मिथ्या है। मानती हूँ केवल इस संसार और इस शरीर को। इस जीवन में केवल एक व्यक्ति के निकट एक दिन मुझे हार मानकर सिर नीचा कर लेना पड़ा था और वह थी सुरबाला। किन्तु जाने दो इस बात को। हाँ, मैं केवल इस संसार और इस देह को मानती हूँ। इस जीवन में इस जले शरीर ने और कुछ भी नहीं चाहा, चाहा केवल प्रेम ! इसकी यह भिक्षा किसी प्रकार पूर्ण न हो सकी और न अब पूर्ण हो ही सकेगी। पर मैं अपने अभिमान को नष्ट नहीं कर सकती ! इसी से डॉक्टर अनंग को भी एक दिन मैंने फँसाना चाहा था। यह भी भाग्य की मारी थी।" कहकर एक छोटी-सी साँस छोड़कर किरणमयी चुप हो रही।

उसने सहसा फिर कहा, "इसके बाद एक दिन—जिस दिन मैंने सचमुच

ही प्रेम किया, उसी दिन मैं समझ गई कि क्यों मेरा सारा शरीर इतने दिनों तक इसके लिए इतनी उत्कण्ठा के साथ प्रतीक्षा कर रहा था।"

दिवाकर ने उत्सुक होकर पूछा, "किसके लिए ?"

किरणमयी मुस्कराकर मानो अपने मन में कहने लगी, "सोचा था, मेरे इस प्रेम की तुलना शायद तुम्हारे स्वर्ग में भी नहीं है, किन्तु मेरा वह अभिमान टिक न सका। उस दिन परलोक के विषय में तर्क-वितर्क कर जिस स्त्री से हार आई थी, फिर उसी से हारना पड़ा। इस लोक के प्रेम के द्वन्द्व में भी उसके आगे सिर नीचा कर मुझे लौट आना पड़ा। मोह का पर्दा फट गया, स्पष्ट देखा कि मेरी जैसी करोड़ों रूपवती नारियों में ऐसी शक्ति नहीं, जो उसको ठग सकें।"

दिवाकर को ऐसा ज्ञात हुआ मानो उसकी आँखों के आगे एक गाढ़ा काला पर्दा धीरे-धीरे दूर हटता चला जा रहा हो।

किरणमयी कहने लगी, "उस स्त्री के निकट एक बात सीखने का मुझे बड़ा लाभ हुआ था—अपने स्वामी से प्रेम करना, शायद सीख भी सकती, किन्तु इस जले भाग्य के दोष से वह मार्ग दो ही दिन में बन्द हो गया। हाँ तो क्या पूछा था तुमने ? यही न, कि तुमसे प्रेम क्यों नहीं करती हूँ ? कौन कहता है कि प्रेम नहीं करती ? प्रेम अवश्य किया था ? किन्तु मैं तुमसे आयु में बड़ी हूँ, इसी से जिस दिन तुम्हारे उपेन्द्र भैया तुमको मेरे हाथ में सौंप गए थे, उस दिन से मैंने छोटे भाई के समान, अपने बच्चे के समान ही तुम्हें प्यार किया था! इसी से तो इन छः महीनों से एक घर में रहने पर भी तुमको यह शरीर नष्ट करने के लिए न दे सकी, इसी से तो तुम्हारी आँखों की भूख से, तुम्हारे मुँह की प्रेम-प्रार्थना सुनने में मेरा सारा शरीर घृणा और लज्जा से काँप उठता है। इसी से तुम्हारी लात खाकर आज मेरा मन इस प्रकार विरक्त हो उठा है। जाओ दिवाकर, चले जाओ। मुझे पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक कुछ भी न चाहिए, किन्तु इस शरीर पर जो तुम्हारी लोलुप दृष्टि गड़ी है, वह तुमको नरक के अन्धकूप में जन्म-जन्मान्तर तक डूबा रखेगी, यह आज मुझे मालूम हो रहा है।" कहते-कहते उसकी दोनों आँखें किसी तीव्र ज्वाला से मानो सहसा ही प्रज्वलित हो उठीं और दिवाकर बेंत खाए हुए कुत्ते के समान संकुचित हो दरवाजे के पास सरक गया।

किरणमयी ने बिस्तर उठाकर दिवाकर के आगे फेंक दिया और कहा, "अब तुम पर मेरा विश्वास नहीं रहा। मेरा एक छोटा भाई आज जीवित है। उसी सतीश का मुँह देखकर मुझे सदा तुमसे आत्मरक्षा करनी पड़ेगी। तुम जाओ !"

दिवाकर ने और कुछ न कहकर बिस्तर उठा लिया और अँधेरे में घर से निकल गया।

तैंतालीस

प्रभात-वेला। किरणमयी आलस्य और थकावट से काम कर रही थी।

कामिनी मकान वाली आकर दरवाजे के सामने खड़ी होकर खूब हँसकर बोली, "चला गया छोकरा। बला दूर गई। कल तो मुझे मारने को ही तैयार हो गया था वह ! अरे तेरा काम है औरत रखना ? बकरों से यदि जौ पर दंवरी चल सकती तो लोग बैल क्यों पालते ?"

किरणमयी ने पूछा, "किसने कहा कि वह चला गया ?"

मकान वाली ने हँसकर आँखें मटकाकर कहा, "लो, अब नखरा करने की आवश्यकता नहीं है। किसने कहा ? मैं हूँ मकान वाली, मुझसे कहेगा कौन ? मैंने अपने कानों सुना है। नहीं तो क्या इतने दिनों तक मैं यह मकान रख पाती ? किसी समय भी मुझे पाँच भूत मिलकर खा गए होते, यह क्या तुम जानती हो ?"

किरणमयी चुपचाप घर का काम करने लगी। उत्तर न पाकर मकान वाली स्वयं कहने लगी, "मैं तो कितने दिन से कह रही थी बहू कि निकाल बाहर करो इस बला को। यहाँ नहीं रहने दो। कहाँ जाएगा ? अरे कहाँ जाएगा, यह मैं क्या जानूँ ? इतना सोचते रहने से तो काम नहीं चलता। खाओ, पहनो, सुगन्धित तेल लगाओ, सोना-दाना शरीर पर चढ़ाओ, साथ ही साथ मौज भी उड़ाओ, ऐसा तो करोगी नहीं, तो यह देश की दुनिया से बाहर आकर यह कैसा प्रेम करना है बेटी ?"

एक बार मुह ऊपर उठाकर किरणमयी ने अपनी आँखें झुका लीं। मकानवाली ने समझा कि उसकी सुन्दर उपदेशावली काम कर रही है। "और यह क्या बेटी, तुम्हारा प्रेम करने का समय है। अभी तो चढ़ी जवानी है, इस समय तो दोनों हाथों से लूटो। इसके बाद तो पैसे हाथ में रखकर चैन से बैठना, आयु बढ़ जाने पर प्रेम करना। तुमको मना कौन करता है। हाथ में पैसे रहने पर क्या छोकड़ों की कमी रहेगी? कितने चाहिए?"

किरणमयी अनमनी थी। क्या पता सभी बातें उनके कानों में पहुँचीं या नहीं। उसने कोई बात नहीं कही।

मकानवाली को अपने घर का काम-धन्धा करना था। इसलिए वह देर न कर सकने के कारण दोपहर को फिर आने को कहकर चली गई।

इस मकान में रहने वाले प्रायः सभी कारखानों में नौकरी करते हैं। सवेरे काम पर जाते हैं, दोपहर को खाने का अवकाश मिलने पर घर चले आते हैं और स्नान-भोजन करके फिर काम पर चले जाते हैं। सन्ध्या के कुछ ही पूर्व उन्हें छुट्टी मिलती है।

आज भी मर्दों के काम पर चले जाने पर दो-ढाई बजे के बाद मकान-वाली आकर फिर दरवाजे के पास खड़ी हो गई। मधुर स्वर में कहने लगी, "क्या खाना-पीना हो गया बहू? क्या रसोई बनी थी?"

किरणमयी ने आज चूल्हे में आग तक भी नहीं जलाई थी। तो भी मकानवाली के पूछने पर बोली, "हाँ, हो गया है। आओ बैठो।"

मकानवाली दरवाजे के पास ही बैठ गई। वह कमरे में घुसते ही समझ गई थी कि किरणमयी का मन आज ठीक नहीं है। इसलिए सहानुभूति के स्वर से बोली, "यह तो होगा ही बेटी, दो दिन मन खराब रहेगा। एक पशु-पक्षी को पालने-पोसने से मन कैसा उदास हो जाता है और वह तो आदमी है। जैसे-तैसे छः-सात महीने तक उसके साथ घर-गृहस्थी भी तो चलानी पड़ी है। यह दशा दो-चार दिन ही रहेगी, फिर कोई नाम तक नहीं लेता बहू।"

किरणमयी ने बरबस हँसकर कहा, "यह तो सच नहीं है।"

मकानवाली ने आँख-मुँह नचाकर कहा, "सच तो नहीं है! तुम ही बताओ न बेटी, क्या सच नहीं है? फिर नया आदमी आएगा, नए ढंग से

आमोद-प्रमोद करो—बस, सब ठीक हो जाएगा। क्या कहती हो, यही बात है न ?"

किरणमयी ने सिर हिलाकर सम्मति तो अवश्य प्रकट कर दी लेकिन इस प्रकार इच्छा के विरुद्ध उसके वार्तालाप से उसका चित्त उद्भ्रान्त होता जा रहा था।

मकानवाली ने एकाएक आँख-मुँह सिकोड़कर स्वर को धीमा करके कहा, "अच्छी बात याद आ गई बहू, उस गँवार मनुष्य के पास तो मैंने सवेरे ही खबर भेज दी थी। उससे तो अब सहा नहीं जाता। कहता है, लोग काम पर चले जाएँगे तो दोपहर को ही आऊँगा। कौन जाने, वह इसी समय न आ जा…"

किरणमयी ने भयभीत होकर कहा, "यहाँ क्यों ?"

इस बात को मकानवाली ने अत्यन्त कौतुकजनक समझकर बनावटी क्रोध दिखाकर कहा, "मर जा छोकरी, वह न आए तो क्या तू वहाँ जाएगी ? तेरी बातें सुनने से तो हँसते-हँसते पेट की अंतड़ी तक टूट जाती हैं।" यह कहकर सूखी हँसी की छटा से लुढ़ककर बिलकुल ही किरणमयी के ऊपर जा गिरी।

किरणमयी ने कोई बात नहीं कही, केवल कुछ सरककर बैठ गई। मकानवाली ने आत्मीयता के आवेश में आज पहले-पहल उसे 'तू' कहकर सम्बोधन किया था।

सतीत्व की यह अत्यन्त घनिष्ठता बढ़ाने वाली बातों ने इस नीच औरत के मुँह से निकलकर किरणमयी का हृदय भीतर जाकर एकदम तीर के समान बींध दिया।

उसके हृदय में आज भी जो महिमा मूर्च्छाहत की भाँति पड़ी हुई थी, इस एक ही शब्द की चोट से उसकी नींद टूट गई और क्षण-भर में भद्र कुलवधू की लुप्त मर्यादा उसके मन में जल उठी। लेकिन फिर भी, अपने को सँभालकर चुप ही रही।

मकानवाली ने इस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। अब अपनी ही झोंक में बढ़ने लगी, "तू देख लेना बहू, छः महीने में यदि मैं तेरा भाग्य न पलट दूँ तो मेरा नाम कामिनी मकानवाली नहीं। तू केवल मेरे कहने के अनुसार

ही चलना। मैं और कुछ भी नहीं चाहती।"

किरणमयी मौन हो सुनती रही।

मकानवाली ने कहा, "मूर्ख मारवाड़ी है, दो पैसे पास हैं, जोश में आ गया है, दोनों हाथ से दुह ले। उसके बाद वह उल्लू चला जाय भाड़ में। और कितने ही आ फँसेंगे। तूने इस प्रकार अपने को बना रखा है, नहीं तो तेरा रूप क्या कोई मामूली रूप है बहू!"

उसी समय बाहरी बरामदे से किसी के टूटे गले से पुकार आई, "मकानवाली!"

"अब तो जाती हूँ" कहकर मकानवाली जाने लगी, लेकिन किरणमयी ने दोनों हाथ बढ़ाकर उसका आँचल जोर से पकड़कर कहा, "ना-ना, यहाँ किसी प्रकार भी नहीं—इस कमरे में कोई भी आने न पाए।"

मकानवाली ने हत्‌बुद्धि होकर कहा, "क्यों, क्या कोई है यहाँ?"

किरणमयी ने कहा, "कोई रहे या न रहे, यहाँ नहीं, किसी प्रकार भी नहीं..."

आगन्तुक का पद-शब्द क्रमशः निकट आने लगा।

मकानवाली ने कहा, "तू तो अब किसी की कुलवंती बहू नहीं है। लोग तेरे घर में आएँगे, बैठेंगे, इसमें भय क्या है, सुनूँ? तू है वेश्या।"

किरणमयी चिल्ला उठी, "क्या मैं वेश्या हूँ?"

उसको जान पड़ा जैसे आग की धारा उसके पैरों के तलवे से उठकर उसके मस्तक को छेदती हुई बाहर निकल गई।

उसकी लाल आँखें और तीव्र कण्ठ-स्वर से मकानवाली ने आश्चर्य-चकित और चिढ़कर कहा, "वेश्या नहीं तो और क्या है? नखरा करने से शरीर जलने लगता है। जो हम हैं, तुम भी वही हो। भला आदमी आ रहा है। उसे घर में बैठा।"

इस भले आदमी से मकानवाली पहले ही रुपए ले चुकी थी। और भी कुछ पाने की आशा कर रही थी। भला आदमी दरवाजे के निकट आकर खड़ा हो गया और दाँत निकालकर हँसकर बोला, "क्यों मकानवाली, सब ठीक है न?"

मकानवाली ने अपना आँचल खींचकर विनय के साथ कहा, "सब तुम

लोगों की कृपा है। जाओ कमरे में जाकर बैठो ! मैं पान लगाकर ला रही हूँ।" जरा हँसकर फिर बोली, "अब तो यह घर-द्वार सब तुम्हारा ही है बाबूजी, इसे अच्छी प्रकार सजाना पड़ेगा, यह मैं बताए देती हूँ।"

"अच्छा-अच्छा, यह सब हो जाएगा," कहकर वह आदमी जरा भी संकोच न करके कमरे में घुसकर खटिया पर बैठने लगा।

किरणमयी की स्नायु-शिराओं में लोहे से भी कड़ी दृढ़ता थी; इसीलिए इतनी देर तक वह सहन कर सकी थी, लेकिन अब न कर सकी। उसके रूप-यौवन पर लुब्ध इस अपरिचित ग्राहक के कमरे में घुसते ही वह बेहोश होकर वायु के झोंके से उखड़े हुए केले के वृक्ष के समान भूमि पर गिर पड़ी।

वह मनुष्य चौंककर देखने लगा और इस अचानक विपत्ति के आने से हत्‌बुद्धि हो गया।

मकानवाली की चिल्लाहट से मकान की सभी स्त्रियों की कच्ची नींद टूट गई, तुरन्त ही वे दौड़कर चली आईं और कोई जल लाकर, कोई पंखा लाकर उस अभागिन की सेवा करने में लग गईं।

मकानवाली दरवाजे पर बैठकर ऊँचे स्वर से लगातार घोषणा करने लगी कि इसी मकान में उसने अपने बाल पका दिए, लेकिन आज तक इस प्रकार के नखरे और ढोंग न सीख सकी। आज तक भी नागर को देखकर दाँत लगाने की युक्ति उसने नहीं सीखी।

इस दुर्घटना के बीच फिर कोई एक नया बाबू आया और दिवाकर तथा भाभी कहकर बड़ा शोर-गुल मचा रहा है। नौकर से मकानवाली इस आगन्तुक बाबू का विशेष परिचय पूछ रही थी कि उसी समय एक लम्बे शरीर का पुरुष एक बहुत बड़ा चमड़े का बैग हाथ में लिए सामने आकर गम्भीर स्वर से पुकार उठा, "भाभी !"

उसके दाएँ हाथ की अँगुली में हीरे की एक अंगूठी सूर्य की किरणों से चमक उठी।

मकानवाली ने आदर के साथ खड़ी होकर पूछा, "किसको खोज रहे हैं ?"

"दिवाकर यहाँ रहता है ?"

मकानवाली ने कहा, "ना।"

"मेरी भाभी किरणमयी किस कमरे में रहती हैं ?"

मकानवाली के साथ-ही-साथ और भी दो-चार स्त्रियाँ गरदन बढ़ाकर देख रही थीं।

उनमें से किसी ने कहा, "यही तो मूर्छित होकर पड़ी हुई है जी।"

"मूर्छित हुई है, कहाँ, देखूँ !" कहकर आगन्तुक सज्जन भीड़ को ठेलकर कमरे में जा पहुँचा।

उस समय भी बेहोश किरणमयी भूमि पर पड़ी हुई थी। सारा शरीर पसीने से तर हो रहा है—आँखें मुँदी हैं, चेहरा पीला पड़ गया है, बाल भीगे-बिखरे हुए हैं, शरीर का कपड़ा हट गया है।···

आगन्तुक था सतीश। उसकी दृष्टि उस हिन्दुस्तानी पर जा पड़ी। इस समय वह पास आकर टकटकी लगाए किरणमयी को देख रहा था।

सतीश ने विस्मित और अत्यन्त क्रुद्ध होकर पूछा, "ऐ, तू कौन है ?"

उसकी ओर से मकानवाली ने उत्तर दिया, "अहा ! ये तो हमारे मारवाड़ी बाबू हैं। यही तो···।"

लेकिन परिचय देना समाप्त होने के पूर्व ही सतीश ने उस व्यक्ति को दरवाजा दिखाकर कहा, "बाहर जाओ !"

अपनी हीनता को छिपाने के लिए मारवाड़ी बोला, "क्यों ?"

असहिष्णु सतीश ने फर्श पर जोर से पैर पटककर, धमकाकर कहा, "बाहर जाओ, उल्लू !"

सब लोगों के साथ मकान तक हिल उठा और फिर कुछ न कहकर मारवाड़ी एकदम बाहर चला गया।

सतीश किरणमयी के शरीर को उसके खिसके हुए कपड़े से ढककर एक पंखा लेकर जोर से हवा करने लगा और इन दोनों को घेरकर उपस्थित स्त्रियाँ विचित्र बड़बड़ करने लगीं। इन लोगों की तरह-तरह की आलोचना से थोड़ी ही देर में सतीश बहुत-सी बातें जान गया।

मकानवाली क्षोभ और अत्यन्त आश्चर्य प्रकट करके बार-बार कहने लगी, "इतनी बड़ी उमर बीत जाने पर भी दुनिया में ऐसी औरत मैंने कभी नहीं देखी कि वेश्या कहने से वह आँखें उलटाकर अचेत हो जाए !"

कुछ देर बाद होश आने पर किरणमयी माथे का कपड़ा सँभालकर

उठ बैठी।

क्षणभर देखती रहकर क्षीण स्वर से बोली, "बबुआ जी!"

सतीश ने प्रणाम करके पाँवों की धूल सिर पर चढ़ाकर कहा, "हाँ भाभी, मैं ही हूँ। लेकिन बात क्या है, बताओ तो। जैसा पहनावा है वैसा ही घर-द्वार है, वैसी ही शरीर की शोभा है—कौन कहेगा कि यही है सतीश की दीदी! मानो कहीं की एक अनाथ पगली है। लड़कपन तो बहुत किया, अब कल के जहाज से घर चलो।" स्त्रियों की ओर देखकर कहा, "अब तुम लोग अपने-अपने घर जाओ!"

किरणमयी पत्थर की मूर्ति के समान मुँह झुकाए देखती रही। उसके हृदय की बात भगवान् ही जाने। लेकिन बाहर से कुछ भी प्रकट नहीं हुआ।

स्त्रियों के बाहर चले जाने पर सतीश ने कहा, "वह सुअर कहाँ है भाभी!"

किरणमयी ने मुँह ऊपर उठाए बिना ही कहा, "इतने दिनों तक वह यहीं था, कल रात को दूसरी जगह चला गया है।"

"क्यों?"

"मैंने चले जाने को कहा था, इसलिए।"

"लेकिन बुलाने से क्या एक बार आएगा नहीं?"

"बुलाकर देखती हूँ।" यह कहकर किरणमयी बाहर जाकर घर के नौकर को कालीबाड़ी भेजकर फिर लौट आई। बोली, "तुम आओगे, यह बात मेरे स्वप्न में भी न आई थी बबुआ।"

सतीश ने कहा, "मेरा आना क्या मेरे लिए भी स्वप्न से बाहर की बात नहीं है भाभी?"

किरणमयी फिर सिर झुकाए बैठी रही। उसको बहुत-सी बातें जानने की आवश्यकता थी।

सतीश उसके घर की दासी से पता लगाकर आया है, यह समझना कठिन नहीं है; लेकिन एकाएक इतने दिनों के बाद पता लगाकर लौटा ले जाने के लिए इतनी दूर आने का यथार्थ कारण अनुमान करना सचमुच ही कठिन था। लेकिन आने का कारण सतीश ने स्वयं ही प्रकट कर दिया।

बोला, "कल जहाज छूटेगा। मैं तुम लोगों को लिवा ले जाने के लिए आया हूँ भाभी।"

किरणमयी ने मुँह ऊपर उठाकर कहा, "उपेन बबुआ ने भेजा है? बहुत अच्छा, दिवाकर को ले जाओ। मैं प्रार्थना करती हूँ, वह चला जाय तो अच्छा है।"

सतीश ने कहा, "केवल दूसरों की आज्ञा पूरी करने के लिए ही इतनी दूर नहीं आया हूँ, अपनी ओर से भी मुझे इसकी आवश्यकता है। सोचती हो, तो फिर इतने दिनों के बाद क्यों? मुझे कोई पता ही नहीं मिलता था। उसके बाद बाबूजी मर गए, स्वयं मैं भी जाने ही वाला था, सम्भवतः कभी भेंट ही न हो पाती!"

किरणमयी ने मुँह ऊपर उठाकर देखा। उसकी दोनों आँखों से संसार का समस्त प्रेम मानो सतीश के शरीर पर बरस पड़ा।

क्षणभर के बाद वह करुण कण्ठ से बोली, "मैं किसके पास जाऊँगी बबुआ, मेरा अपना कौन है?"

"मेरे पास चलोगी भाभी, मैं हूँ।"

"लेकिन मुझे आश्रय देना क्या तुम्हारे लिए अच्छा होगा!"

सतीश ने कहा, "तुमको याद नहीं है भाभी? बहुत दिन पहले इस भले-बुरे का सदा के लिए निश्चय हो चुका था, जिस दिन तुमने मुझे छोटा भाई कहकर पुकारा था। यदि तुमने कोई अन्याय किया होगा, तो उसका उत्तर तुम दोगी, लेकिन मेरी जबावदेही यही है कि मैं हूँ तुम्हारा छोटा भाई। तुम्हारा विचार करने का मुझे अधिकार नहीं है।"

ये बातें सुनकर किरणमयी का मन करने लगा कि कहीं भागकर एक बार जी भरकर रो लूँ, लेकिन अपने को सँभालकर कहा, "लेकिन बबुआ जी, समाज तो है?"

सतीश ने बीच में ही रोककर कहा, "ना, वह भी नहीं है। जिसके पास रुपया है, जिसके शरीर में शक्ति है, उसके विरुद्ध समाज नहीं रह सकता। ये दोनों वस्तुएँ मुझे कुछ परिमाण में मिल गई हैं भाभी।"

उसके कहने के ढंग से किरणमयी को हँसी आ गई। फिर कुछ चुप रहकर बोली, "बबुआ, रुपया और शरीर के बल से तुम समाज को भले

ही न मानो, लेकिन अपनी अश्रद्धा के हाथ से इस पापिनी को किसी प्रकार बचा सकोगे?"

सतीश अधीर होकर बोला, "मैंने लिखना-पढ़ना नहीं सीखा है। मैं हूँ गँवार-मूर्ख आदमी भाभी, इतने तर्कों का उत्तर भी मैं नहीं दे सकता। इतनी छानबीन करके भले-बुरे का लेखा-जोखा भी करना नहीं जानता। और यह क्या सतयुग है कि दुनिया-भर के सभी लोग उपेन भैया के समान युधिष्ठिर बन जाएँगे? यह तो है कलिकाल। अन्याय, कुकर्म तो लोग करेंगे ही, इनका लेखा-जोखा लिखकर कौन बैठा हुआ है! मेरा विचार उल्टा है? उसे चाहे तुम अच्छा ही कहो या बुरा कहो भाभी, मैं देखता हूँ कि कौन क्या काम करता है। हारान भैया की मृत्यु के समय तुम्हारी वह पतिसेवा तो मैंने अपनी आँखों से देखी थी। वही तुम अव असती हो सकोगी? उसका तो मैं मर जाने पर भी विश्वास न कर सकूँगा। चाहे जो कुछ भी हो, मैं तुमको ले ही जाऊँगा। बीमारी ने मुझे जरा सुस्त तो अवश्य बना दिया है, फिर भी इस मुहल्ले के लोगों में इतनी शक्ति नहीं है कि तुमको सहायता देकर मेरे हाथ से तुम्हें छीन लें। कल तुमको कन्धे पर उठाकर मैं जहाज पर अवश्य चढ़ाऊँगा, चाहे तुम कितनी ही आपत्ति क्यों न करो।"

किरणमयी की अपराध की सब कालिमा धुल गई। सरल-स्निग्ध हँसी की आभा से समूचा मुँह खिल उठा।

क्षणभर के लिए उसे जान पड़ा, मानो कोई भी निन्दनीय कार्य उसने नहीं किया, केवल रुष्ट होकर दो दिन के लिए ससुराल से अपने मैके चली आई थी। स्नेहमय देवर लौटा ले जाने के लिए प्रार्थना कर रहा है।

उसी समय दिवाकर कमरे में आया। उसने कहा, "मुझे तुमने बुलवाया था?" यह कहने के साथ ही खटिया पर उसकी दृष्टि पड़ी।

वह इस प्रकार चौंक पड़ा जैसे भूत देखने से कोई चौंक पड़ता है। बाहर के प्रकाश से कमरे के अन्धकार में प्रवेश करके उसने पहले सतीश को नहीं देखा था। अब पहचानकर उसका चेहरा पीला हो गया।

सतीश ने हँसकर कहा, "मैं उपेन भैया नहीं हूँ, मैं सतीश भैया हूँ—कुकर्मों का राजा। बैठ, उपेन भैया का परवाना लेकर आया हूँ, कल प्रातः ही साढ़े छः बजे के पहले ही जहाज छूटेगा, यह याद रखना।"

दिवाकर वहीं बैठ गया, दोनों घुटनों के बीच मुँह छिपाकर, बड़ी देर के वाद उसने कहा, "मैं न जाऊँगा, सतीश भैया।"

सतीश ने कहा, "तेरा सिर जाएगा। उपेन भैया की आज्ञा है—जीवित या मृत, विद्रोही का उन्हें सिर चाहिए ही।"

दिवाकर ने कहा, "तो उसका सिर ही ले जाना सतीश भैया। उसे मैं सवेरे छः बजे के भीतर ही तुमको लाकर दे दूँगा।"

सतीश ने कहा, "अरे बाप रे! लड़के का क्रोध तो देखो! लेकिन तू जाएगा क्यों नहीं?"

दिवाकर ने कहा, "तुम क्या पागल हो सतीश भैया! संसार में क्या मेरा कोई है जिसके पास मैं जाकर सिर ऊँचा करके खड़ा हो सकूँ?"

सतीश ने कहा, "ठीक है। सिर ऊँचा करने में आपत्ति हो तो झुकाकर ही खड़ा रहना। लेकिन तुझे जाना तो होगा ही। अरे तूने ऐसा कौन-सा बहुत बुरा काम किया है कि लज्जा से मरता जा रहा है? इतने दिनों में जो सब विचित्र कर्म मैंने कर डाले हैं, वहाँ चलकर, उन सबका हाल सुन लेना। पंचमकार तक सब। भूत सिद्धि, बैताल सिद्धि इन सबका नाम तुमने सुना है कभी? चल, उपेन भैया अब वह उपेन भैया नहीं हैं। हम पाँच आदमियों ने मिलकर उनको एक प्रकार से ठीक बना दिया है। भाभी, जो कुछ ले चलना है, ले लो, मैं टिकट खरीदने जा रहा हूँ।"

उसकी अन्तिम बात किरणमयी के कानों में खटक गई। उसने पूछा, "ठीक बना देने का क्या अर्थ है बबुआ?"

सतीश ने हँसकर कहा, "चलने पर ही देख सकोगी भाभी।"

क्षणभर चुप रहकर किरणमयी ने कहा, "लेकिन मैंने तो तुमसे कह दिया बबुआ, मैं जा न सकूँगी।"

दिवाकर ने भी दृढ़ स्वर से कहा, "मैं भी किसी प्रकार न जाऊँगा सतीश भैया। तुम व्यर्थ ही मेरे लिए रुपया नष्ट मत करो।"

सतीश उठने जा रहा था, हताश भाव से बैठ गया।

उपेन्द्र की बीमारी की बात अब तक उसने छिपा रखी थी, लेकिन अब छिपा रखना सम्भव नहीं रहा।

उसने कहा, "मैं बड़े गर्व के साथ कह आया हूँ कि उन लोगों को लेकर

आऊँगा। मेरी बात तुम लोग भले न रखो, लेकिन उन्होंने क्या तुम लोगों के प्रति कोई ऐसा बड़ा अपराध किया है कि उनको यह दुःख तुम लोगों को देना पड़ेगा। मेरे अकेले लौट जाने से उनको कितना दुःख होगा, यह मैं अपनी आँखों से देख आया हूँ। दिवाकर, ऐसा अधर्म मत कर रे! तुझे देखने के लिए ही उनका प्राण अभी तक अटका हुआ है, नहीं तो बहुत पहले ही चला गया होता!"

दोनों सुनने वाले एक ही साथ धीरे से चीख उठे।

सतीश कहने लगा, "इसी मास के अन्त में यक्ष्मा रोग से जब पशु भाभी स्वर्ग को सिधार गईं, तभी समझा गया कि उपेन भैया भी चले जाएँगे। लेकिन उनके जाने की इतनी शीघ्रता की बात हम लोगों में से कोई भी नहीं जानता था। वे उसी दिन से कम बातें करते हैं—स्वर्ग का रथ बिल्कुल ही दरवाजे पर न आने तक उन्होंने एक बार पता नहीं दिया कि उनका सब कुछ तैयार है। तुझे भय नहीं है रे दिवाकर, निर्भय होकर तू चल। हमारा उपेन भैया अब वह नहीं है। अब सहस्रों अपराधों को भी वे अपराध नहीं मानते, केवल मुसकराते रहते हैं। छिः! छिः! इस धूल-बालू पर इस प्रकार तुम मत लेटो भाभी। अच्छा, हम लोग बाहर जा रहे हैं, तुम लेटो, उठो मत।" यह कहकर झटपट उठकर सतीश उसके पाँव को जोर से छूकर ही समझ गया कि किरणमयी बेहोश होकर पड़ी हुई है, स्वेच्छा से भूमि पर लेटी हुई नहीं है।

कुछ देर के बाद सतीश ने धीरे से कहा, "ठीक यही भय था मुझे दिवाकर। मैं जानता था यह समाचार ये सह न सकेंगी।" दिवाकर ने चकित होकर सतीश के मुँह की ओर देखा।

सतीश ने आश्चर्य में पड़कर कहा, "इतने निकट रहकर भी तुझे मालूम नहीं हुआ दिवाकर? और भय होता है कि सम्भवतः भाभी को मार डालने के ही लिए ले जा रहा हूँ। लेकिन तो भी ले जाना ही पड़ेगा। इस संसार में दो आदमी इस शोक को सह न सकेंगे। लेकिन एक तो स्वर्ग में है और दूसरी···लेकिन जा तू पानी ले आ दिवाकर। मैं हवा करता हूँ—यह क्या रे! तू कुछ बोलता क्यों नहीं?"

एकाएक दिवाकर सिर से पैर तक काँप उठा। दूसरे ही क्षण वह बेहोश

किरणमयी के पैरों पर औंधा होकर गिरकर कहने लगा, "मैं अब समझ गया हूँ भाभी, तुम मेरी पूजनीया गुरुजन हो। तो फिर क्यों इतने दिन छिपाकर तुमने मुझे नरक में डुबाया। मैं इस महापाप से कैसे छुटकारा पा सकूँगा भाभी !"

चवालीस

उपेन्द्र ने कहा था, "सावित्री, मेरी इन हड्डियों को कब गंगा में बहाओगी ? कितनी ही ज्वालाओं से मैं झुलसा जा रहा हूँ, गंगा में कुछ तो ठंडा हो सकूँगा।"

आजकल उपेन्द्र सावित्री को 'तुम' या 'तू' जो कुछ मुँह में आता, कहते थे।

सावित्री ने उनकी उस शेष इच्छा और शेष इलाज के लिए कुछ दिन हुए कलकत्ते के जोड़ासांखू मुहल्ले में एक मकान किराए पर ले लिया था।

आज शाम को हल्की बूँदा-बाँदी हो गई है, पर अब भी आकाश स्वच्छ नहीं हुआ है।

उपेन्द्र कुछ क्षण के बाद सुस्त आँखों को मलकर धीरे-धीरे बोले, "बहन, जरा सामने की खिड़की तो खोल दे, उस बड़े तारे को जरा एक बार देख लूँ।"

सावित्री उनके सिर के बालों को धीरे-धीरे एक ओर हटाती हुई मृदु स्वर से बोली, "शरीर में ठंडी हवा लगेगी।"

"लगने दो बहन, अब उससे भय ही क्या है ?"

आज ही क्यों ? अपने शरीर के प्रति अत्याचारों की परवाह तो उसी दिन चली गई जिस दिन सुरबाला का वियोग हुआ। किन्तु सावित्री का भय तो नहीं गया है। जब तक साँस है, उसे तब तक आस है, इसी से मृत्यु जब सिरहाने आकर आसन जमाकर बैठ गई है, तब भी उसे ठंडी हवा को भीतर आने देने का साहस नहीं होता।

उसने अनिच्छा का भाव दिखाते हुए कहा, "नक्षत्र-तारे तो दिखाई

नहीं देते, आकाश में बादल घिरे हुए हैं।"

उपेन्द्र ने मलिन नेत्रों को उत्साह के साथ खोलकर कहा, "बादल ! आहा ! असमय का बादल ! बहन, खिड़की खोल दे, एक बार देख लँ— फिर तो ये देखने को न मिलेंगे।"

बाहर ठंडी वायु वेग से चल रही थी।

सावित्री ने माथे और छाती पर हाथ रखकर देखा कि ज्वर बढ़ रहा है। अतः उसने विनती करके कहा, "भैया ! अच्छे हो जाओगे, तो कितने ही बादल देखोगे, बाहर बड़े वेग की वायु चल रही है, आज मैं खिड़की न खोल सकूँगी।"

उसके हाथ को अपने हाथ में लेकर उपेन्द्र ने रूठकर कहा, "भला चाहती है तो खोल दे सावित्री, नहीं तो बरसात में जब बादल उठेंगे, तब रो-रोकर मरेगी, इस बात को याद कर ले। मुझे फिर इन्हें देखने का अवसर नहीं मिलेगा।"

सावित्री ने इसके आगे विवाद नहीं किया। उसने आँखों के आँसू पोंछ, उठकर खिड़की खोल दी।

उस खुली खिड़की के बाहर की ओर उपेन्द्र टकटकी लगाए देखते रहे।

शून्य आकाश में क्षण-क्षण में बिजली चमक उठती थी, उसकी चमक में सामने काले बादल झलक उठते थे। उपेन्द्र की उन्हें देखने की प्यास किसी भी प्रकार मिटती न मालूम पड़ी।

सावित्री स्वयं भी उस ओर देखती हुई चुपचाप खिड़की के पास खड़ी थी। उस पर दृष्टि पड़ते ही मन-ही-मन हँसकर उपेन्द्र सहसा बोल उठे, "अच्छा नहीं। जरा भी हवा शरीर से लगने देना नहीं चाहती, किन्तु मेरे इस संसार को त्यागकर चले जाने पर क्या करोगी?"

सावित्री खिड़की बन्द कर पास जाकर बैठ गई, बोली, "क्यों? तुमने तो कहा था कि मैं तुझे काम दे जाऊँगा ! सारा जीवन मैं उसी काम को करूँगी। तुम मेरी आँखों के सामने दिन-रात रहोगे?"

"कर सकोगी?"

सावित्री ने धीरे-धीरे कहा, "क्यों न कर सकूँगी ? तुम्हारे कार्य के लिए तो वे कभी भी मना न करेंगे?"

उपेन्द्र ने हँसते हुए कहा, "वे कौन, सतीश ?"

सावित्री सिर नीचा कर मौन हो गई।

उपेन्द्र ने उसके सलज्ज मौन मुख की ओर देखकर लम्बी साँस भरकर कहा, "सावित्री ! सतीश मेरा कौन है, यह समझना दूसरों के लिए कठिन है। बाहर से जो कुछ दिखाई देता है, उससे वह मेरा साथी है, मेरा जन्म का सखा है, किन्तु जो सम्बन्ध दिखाई नहीं देता, उससे सतीश मेरा छोटा भाई है, मेरा शिष्य है, मेरा सदा का अनुगत सेवक है। उसी रात को यदि तू अपना परिचय देकर हम लोगों को लौटा ले जाती तो शायद मेरा शेष जीवन इतने दुःख से न कटता और दिवाकर भी शायद मुझे इतना दुःख पहुँचाने का अवसर न पाता।"

सावित्री ने डबडबाई आँखों से कहा, "भैया ! तुमको लौटाना चाहा था, किन्तु उन्होंने किसी प्रकार भी जाने न दिया। वे दरवाजा रोककर खड़े हो गए और बोले, 'तेरा जाना उन लोगों का और भी अपमान करना होगा'।"

'उनकी इच्छा' कहकर उपेन्द्र ने ऊपर की ओर देखकर एक लम्बी साँस ली और चुप हो रहा।

घर पर उपेन्द्र के पिता शिवप्रसाद वात-रोग से ग्रसित होकर शय्या पर पड़े थे। उनको तथा घर-द्वार को छोड़कर माहेश्वरी उनके साथ न आ सकी थी, किन्तु मझला भाई सेवा-सुश्रूषा के लिए उपेन्द्र के साथ ही था। उसके और एक और मनुष्य के पैरों की आवाज सीढ़ी पर सुनाई पड़ी।

वह तत्क्षण कविराज को साथ लिए कमरे के भीतर पहुँचा। कविराज ने नाड़ी देखी। ज्वर की परीक्षा कर दवा बदलने का प्रस्ताव किया। यह सुनकर उपेन्द्र ने हाथ जोड़कर कहा, "वैद्यजी, मुझे क्षमा करना होगा। आपको तो सब कुछ मालूम ही है, फिर विदा होते समय व्यर्थ ही क्यों दुःख देंगे ?"

बूढ़े चिकित्सक की आँखें सजल हो आईं। बोले, "हम लोग चिकित्सक हैं, अन्त समय तक निराश नहीं होते भाई ! इसके सिवा भगवान् यदि सब आशा-भरोसा दूर कर दे तो भी कष्टों को कम करने के लिए दवा देना उचित है।"

उपेन्द्र अधिक प्रतिवाद न कर चुप ही रहे।

तब दवा बदलकर, अनुपात और व्यवस्था बताकर, चतुर चिकित्सक चला गया। उनको भरोसा तो तिलमात्र भी न था, बल्कि आज अच्छी तरह जान गए कि मृत्यु प्रतिक्षण निकट से निकटतर पहुँचती जा रही है।

तीन दिन बाद।

सोमवार को सवेरे सावित्री ने एक तार हाथ में लिए कमरे के भीतर प्रवेश किया। सावित्री के हाथ में तार देखकर उपेन्द्र ने व्यग्रता के साथ पूछा, "सतीश ने भेजा है? क्या लिखा है?"

सावित्री ने कहा, "कल सवेरे वे लोग जहाज पर चढ़ चुके हैं।"

"सतीश ने किसी का नाम नहीं लिखा है? कहाँ है देखूँ?"

"ना, नाम नहीं है।" कहकर सावित्री ने उपेन्द्र के बढ़ाए हुए हाथ पर तार का कागज रख दिया।

कागज को उपेन्द्र ने उलट-पुलटकर देखा और सावित्री को लौटाकर एक आह भरकर चुप हो रहे। उनके इस भाव को सावित्री अच्छी प्रकार समझ गई।

सतीश एकान्त में उससे कह गया था कि किरणमयी से यदि भेंट हो जाएगी तो वह जैसे बनेगा, वैसे उसे लौटा लाएगा। वह अपना भाई-बहन का सम्बन्ध भी बताकर ही गया था।

इस परम अद्‌भुत रमणी को देखने के लिए सावित्री की बहुत दिनों से इच्छा थी, किन्तु सतीश कभी उसे घर पर न ले आवे, यह भय भी उसके मन में पूर्ण रूप से था। बोली, "वे सब कुछ विचारकर काम नहीं करते। मुझे भय होता है भैया, कि कहीं किरणमयी को वे सीधे यहाँ ही न ले आवें।"

उपेन्द्र के पीले होंठों पर दुःख की सूखी हँसी दिखाई पड़ी।

उन्होंने कहा, "इस घर में वह क्यों आएगी बहन? यदि वह इस देश में लौट भी आए तो समझ लेना कि उसका कोई और ही कारण है। किन्तु वह तो सावित्री नहीं है। वह बड़ी मूर्ख है। तेरे समान वह इस लोक और परलोक को समान बनाकर नहीं बैठी है! वह क्यों जान-बूझकर इस भयानक दुःख के अहाते में पैर रखने आएँगी?" कहते-कहते सावित्री के प्रति

उमड़ आने वाले प्रेम, श्रद्धा, करुणा और दुःख से उनका स्वर काँप उठा।

सावित्री ने आँखें नीची कर कठिनाई से आँसू रोके।

जरा सँभलकर फिर उपेन्द्र ने कहा, "एक और आश्चर्य की बात जानती है, सावित्री। ज्ञात होता है कि एक समय उसने सचमुच ही मुझसे प्रेम किया था।"

यह सुनकर सावित्री को बड़ा ही आश्चर्य हुआ। कारण, यह बात उसने सतीश के मुँह से कभी भी सुनी न थी। बोली, "पर मैंने उनसे उसकी स्वामी-सेवा की बात सुनी थी—क्या वह बात सच न थी?"

उपेन्द्र ने कहा, "यह बात भी सच थी, किन्तु यह विचित्र विषय है, तेरे और सुरबाला के अलावा मुझे मालूम होता है कि वैसी सेवा भी कोई स्त्री नहीं कर सकती—अपने स्वामी को शायद कोई स्त्री उतना प्यार भी नहीं कर सकती!"

सावित्री ने कहा, "यह बात कभी भी मिथ्या नहीं हो सकती।"

उपेन्द्र ने तुरन्त उसके स्वर में स्वर मिलाकर कहा, "हाँ, कभी भी झूठ नहीं हो सकती। उसने तो कभी किसी को दिखाना तक भी नहीं चाहा, कभी किसी से प्रकट भी नहीं किया। उसकी पति-सेवा के गवाह केवल भगवान् ही थे, और थे हम दो आदमी—सतीश और मैं।"

थोड़ी देर के बाद उनको डॉक्टर अनंगमोहन की बात याद आई।

थोड़ा स्थिर होकर बोले, "आज तो किसी पर मेरा रौब नहीं, विद्वेष नहीं, घृणा नहीं, प्रेम नहीं। आज बड़े दुःख के साथ मेरे मन में यह बात उठ रही है कि वह जीवन-भर केवल इधर-उधर व्यर्थ भटकती फिरी, कुछ भी उसके हाथ न लगा। उसने मुझे भी प्यार नहीं किया। यदि जरा भी प्यार करती तो क्या इतनी पीड़ा पहुँचा सकती? दिवाकर हम लोगों का कौन है, यह तो वह जानती थी। उसी के हाथ तो उसे सौंप आया था। सोचा था, मेरे प्रेम की वस्तु को वह भी प्रेम की दृष्टि से देखेगी। परन्तु वह! कैसी भयानक भूल हुई थी!"

थोड़ी देर चुप रहकर वे फिर कहने लगे, "सावित्री, उसके पति विद्यमान थे। ऐसी अवस्था में मुझसे प्रेम करना उसका अन्याय ही होता किन्तु तो भी उससे वह अधःपतन के ऐसे गहरे गढ़े में शायद न गिरती, जिसमें वह

गिरी है।"

सावित्री चुपचाप बैठी रही, जिसने पति पाया है, जिसे जी भरकर स्वामी की अन्तिम सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उसकी ऐसी दुर्गति ! वास्तव में उसके सब व्यवहार छल से पूर्ण थे। इस कृतघ्नता के इतिहास को याद कर किरणमयी के प्रति उसका मन क्रोध से भर गया।

उपेन्द्र ने कहा, "इसी से सोचता हूँ, कि कहीं सतीश आगे-पीछे सोचे बिना ही सबको लिए ही यहीं न आ पहुँचे।"

सावित्री ने जोर से सिर हिलाकर कहा, "ना, ऐसा किसी प्रकार न हो सकेगा। अपनी वहन के रहने की व्यवस्था वे आप ही करें। मेरे यहाँ उनको एक मिनट भी ठहरने के लिए स्थान नहीं मिल पाएगा और तुम्हारा यह कहना भी सच है भैया कि बीमारी का नाम सुनकर वे आप स्वयं भी यहाँ आना न चाहेंगी।"

उपेन्द्र कुछ कहना चाहते थे, किन्तु मुँह की बात मुँह में ही रह गई। कारण, इसी समय अघोरमयी किसी प्रकार बीमारी की सूचना पाकर उपेन्द्र के गुणों की प्रशंसा करती और रोती-रोती घर के भीतर आ उपस्थित हुई।

अघोरमयी को यह अच्छी प्रकार मालूम न था कि उपेन्द्र की बीमारी कहाँ तक बढ़ चुकी है, फिर भी वे यह कहकर विलाप करने लगीं, "जब इस अभागिनी के लिए काला मुँह लेकर किसी के यहाँ भीख माँगने जाने का भी मार्ग बन्द हो गया है, और मुट्ठी-भर अन्न तक का कोई प्रबन्ध न होने के कारण उपवास पर उपवास करके मरना ही अनिवार्य हो गया है, तब उपेन्द्र की सब विपत्तियों को लेकर मैं ही क्यों नहीं मर जाती ?"

उपेन्द्र ने इतने दुःख पर भी हँसकर कहा, "खाने-पीने का प्रबन्ध क्यों न होगा, मौसी ?"

फिर सावित्री की ओर देखकर उन्होंने कहा, "मैं चला भी जाऊँगा, तो भी अपनी इस वहन को यहाँ छोड़ जाऊँगा, तुम्हें कोई भी कष्ट न होगा।"

अघोरमयी ने सावित्री को इससे पहले कभी भी देखा नहीं था। इस-लिए कठोर परिश्रम और मानसिक दुःख से मुरझाई हुई इस बिलकुल

अपरिचित बहन की ओर देखकर उनके आश्चर्य की सीमा न रही। अपना आश्चर्य दूर करने के लिए वे कुछ पूछना भी चाहती थीं कि सावित्री काम का बहाना कर जल्दी से वहाँ से कहीं और चली गई।

जब वीरवार को दिन के दस-ग्यारह बजे के करीब सतीश जहाज घाट पर उतर, किराए पर गाड़ी ले रहा था, उसी समय उसकी दृष्टि बिहारी पर पड़ी।

स्वामी को देख बिहारी ने पास आकर प्रणाम किया।

किरणमयी पास ही खड़ी थी। बिहारी को संदेह हुआ कि यह शायद वही स्त्री है जिसकी बात कही गई है। उसने पहले कभी उसे देखा न था, केवल सुना था कि वह असाधारण रूपवती है, किन्तु रूप की कुछ भी विशेषता इस मलिनवस्त्र में साधारण स्त्री में न देखकर, उसने समझा कि यह कोई दूसरी ही स्त्री है, अतः धीरे से बोला, "उपेन बाबू ने कहा है कि यदि वह बहू आई हों तो उसे और कहीं ठहरा, आप दोनों आदमी वहाँ चलिए। उसे साथ न ले चलिए।" सतीश भूख-प्यास और थकावट से वैसे ही दुःखी हो रहा था, उस पर बिहारी ने यह अपमानसूचक प्रस्ताव किरण-मयी के सामने ही पेश कर दिया। इससे वह एकदम जल उठा, बोला, "क्यों इनको हम कहाँ छोड़ दें? जा, कह दे कि हम लोगों में से कोई भी वहाँ जाना नहीं चाहता।"

बिहारी का मुँह पीला पड़ गया।

किरणमयी पास आकर रूखी हँसी हँसकर बोली, "यह तो ठीक ही बात कह रहा है बबुआ, इसमें अप्रसन्न होने की तो कोई बात नहीं। बिहारी, अब बाबू कैसे हैं?"

बिहारी के उत्तर देने के पहले सतीश और अधिक क्रुद्ध होकर बोल उठा, "किसने तुझे यह बात कहने को भेजा है, सावित्री ने? देखता हूँ कि उसका दिमाग बहुत चढ़ गया है।"

सावित्री के प्रति ऐसी कठोर बात सुनकर बिहारी किरणमयी के मुँह की ओर देखकर बोला, "आप ठीक ही कहती हैं बहू···बाबू बिना समझे ही अप्रसन्न हो जाते हैं। ऐसी भयंकर वीमारी में भला कोई क्यों रोगी के घर जाना चाहेगा? उपेन्द्र वाबू ने कल रात को माई जी को बुलाकर

स्वयं कहा था—'भय नहीं, किरण भाभी मेरी बीमारी का नाम सुनकर इस मकान में क्या, पड़ोस में भी न आएँगी। माई जी समान सबका तो मरने-जीने का···।"

किरणमयी का मुरझाया हुआ मुह, दुःख से एक साथ ही पीला हो गया।

उसने पूछा, "यह बात बाबू ने कही थी बिहारी ?"

बिहारी सिर हिलाकर बड़े उत्साह से कुछ कहना चाहता था कि इतने में सतीश ने धमकाकर कहा, "चुप भी रह गधे !"

डाँट सुनकर बिहारी सहम गया।

किरणमयी ने कहा, "इस बेचारे पर क्रुद्ध होने से क्या होगा बबुआ ?" इसके बाद बिहारी की ओर देखकर उसने कहा, "अपने बाबू से कहना कि भय करने की कोई बात नहीं—बिना उनकी आज्ञा के मैं वहाँ न जाऊँगी।" सतीश से कहा, "बबुआ, आज मुझे किसी होटल में रख दो। क्या कोई छोटा-सा मकान किराए पर नहीं मिल जाएगा ?"

सतीश ने उत्तेजित भाव से कहा, "कलकत्ता जैसे शहर में मकान की क्या चिन्ता है, भाभी ! घण्टे-भर के भीतर मैं सब ठीक किए देता हूँ। अरे दिवाकर, जरा पैर बढ़ाए चल !" कहकर किरणमयी को पुकारकर उसने गाड़ी में बिठा दिया और आप कोच-बक्स पर जा बैठा।

गाड़ी के रवाना हो जाने पर बिहारी क्षुब्ध और लज्जित होकर उदास चेहरा लिए मकान की ओर चला गया।

कभी-कभी समय निकालकर सावित्री सवेरे गंगा-स्नान कर आती थी। सतीश के लौट जाने के बाद से इधर कई दिनों से वह प्रायः नित्य ही गंगा-स्नान करने जाती है।

चार-पाँच दिन बाद एक दिन सवेरे स्नान-ध्यान कर चुकने पर उसने देखा कि घाट पर एक ओर कुछ शोरगुल हो रहा है। एक बूढ़े ब्राह्मण स्नान करके गोमुखी में हाथ डाले, मंत्र जपते-जपते घर जा रहे थे। कहीं से एक पगली ने आकर उसका मार्ग रोक लिया। कहीं वह छूकर गंगास्नान का सब पुण्य मिट्टी में न मिला दे, इस भय से वृद्ध ब्राह्मण घबड़ा उठा था—पगली प्रश्न-पर-प्रश्न करती जाती थी, "महाराज, आप भगवान् पर

विश्वास करते हैं। उनको पुकारने पर वे आते हैं? आप लोग कैसे पुकारते हैं? मैं क्यों नहीं पुकार सकती? मुझे विश्वास क्यों नहीं होता?"

ब्राह्मण देवता छू जाने के भय से संकुचित होकर कह रहे थे, "देख, पहरे वाले को पुकारता हूँ, मार्ग छोड़ दे, नहीं तो···"

दो-चार प्रौढ़ स्त्रियाँ भी आस-पास खड़ी तमाशा देख रही थीं, उनमें से एक ने कहा, "पागल नहीं है, पागल नहीं है। देखती नहीं, इसने रात-भर शराब पी है।"

यह सुनकर पगली ने रोकर कहा, "नहीं, नहीं, मैं भले आदमी की लड़की हूँ, शराब नहीं पीती। यहीं उसी स्थान पर रहती हूँ, मैं केवल तुम लोगों से हाथ जोड़कर पूछती हूँ कि क्या सचमुच भगवान् हैं। तुम लोग क्या उनका चिन्तन कर सकती हो? भक्ति कर सकती हो? मैं क्यों नहीं कर सकती? मैं बरसों से उनको कितना पुकारती हूँ?" कहते-कहते उसकी दोनों आँखों से टपटप आँसू गिरने लगे।

सावित्री ने भी पागल समझा तो भी इस अपरिचित रोती-कलपती मतवाली के अश्रु-गद्‌गद कंठ से निकलती हुई अनोखी व्यग्रता-भरी प्रार्थना उसके सैकड़ों दुःखों से जर्जर हृदय से टकराकर मानो हाहाकार कर उठी और उसी क्षण उसकी दोनों आँखों में आँसू उमड़ आए। पगली की दृष्टि इस ओर पड़ते ही उसने बेचारे बूढ़े ब्राह्मण का मार्ग छोड़ दिया और सावित्री के पास आकर कहा, "तुम भी तो ध्यान-पूजा करती हो। क्या तुम मुझे बता सकती हो?"

चारों ओर भीड़ इकट्‌ठी हो रही है, यह देखकर सावित्री ने झट उसका हाथ पकड़ लिया। हाथ पकड़ते ही वह चौंक उठी, बोली, "अरे, आपने मुझे छू लिया!"

सावित्री ने कहा, "इसमें कोई दोष नहीं। आप घर चलिए। मार्ग में चलते-चलते मैं आपकी सब बातों का उत्तर दूंगी। यहाँ लोगों की बड़ी भीड़ इकट्‌ठी हो गई है।" कहकर उस पगली का हाथ पकड़े वह सड़क पर आ गई।

दो-चार बातें करके ही सावित्री समझ गई कि वह पागल नहीं है किन्तु उसकी ऐसी दशा भी नहीं है कि किसी ओर मन लगा सके। बात करते-

करते पगली बीच में सहसा बोल उठी, "मैं भगवान् से दिन-रात प्रार्थना करती हूँ कि उनके निकट मैंने अनेक अपराध किए है, इसी से उनकी बीमारी मुझको देकर उन्हें अच्छा कर दे। क्यों बहन, क्या ऐसा हो सकता है? उपवास करके दिन-रात पुकारने से क्या सचमुच ही उनको दया आती है, तुम जानती हो?" कहकर उसने सावित्री के मुँह की ओर आँखें गड़ाकर देखा।

उसे क्या उत्तर दे, यह सावित्री की समझ में नहीं आया, किन्तु अधिक देर तक उसे सोचना न पड़ा। उसी समय उसने सावित्री का हाथ छोड़कर कहा, "जाती हूँ, गंगास्नान करके आती हूँ। गंगास्नान करने से अनेक पाप कट जाते हैं न?" इतना कहकर वह उत्तर पाने की प्रतीक्षा न कर जिस मार्ग से आई थी, उसी मार्ग से जल्दी-जल्दी चली गई।

पैंतालीस

सावित्री की आँखों से निरन्तर आँसुओं की धारा बहकर उसकी छाती को भिगो रही थी। आज उसी की गोद पर उपेन्द्र ने मृत्यु-शय्या बिछाई है। उनके दोनों दुबले, ठंडे पाँवों के ऊपर मुँह रखकर दिवाकर भीतर-ही-भीतर रोकर हृदय का दुःख बता रहा था। उसका दुःख, उसकी व्यथा भगवान् के अलावा और कोई नहीं जान सकता। उधर वाले कमरे में माहेश्वरी पृथ्वी पर पड़ी गला फाड़-फाड़कर रो रही थी। इस महान् शोक के समय केवल सतीश ही अकेला स्थिर बैठा था।

आज सवेरे से उपेन्द्र के मुँह से खून गिरना शुरू हुआ, लाख प्रयत्न करने पर भी यह रोका न जा सका है। साँस क्रमशः भारी और कठिन होती जा रही थी। वह कठिन दुःख सहन कर उपेन्द्र आँखें बन्द किए चुपचाप पड़े थे।

एक बार आँखें खोल, सावित्री की ओर देख, अस्फुट स्वर से धीरे-धीरे बोले, "रात कितनी है बहू!"

सावित्री ने उनके होंठ पर के खून की रेखा को आँचल से पोंछकर कहा,

"अब अधिक रात नहीं है ! क्या बहुत कष्ट है ?"

उपेन्द्र ने कहा, "ना, सबको जैसा होता है, वैसा ही हो रहा है, अधिक क्यों होगा ?"

जरा चुप रहकर उसी भाव से कहा, "सतीश ! क्या भाभी का पता नहीं लगा सका ?"

आज चार दिनों से किरणमयी बिल्कुल ही लापता है। कलकत्ते पहुँचने के दिन सतीश ही एक घर किराए पर ले, एक दाई रख, सब आवश्यक प्रबन्ध कर-कराके चला आया था, किन्तु उपेन्द्र की बीमारी बहुत बढ़ जाने के कारण उसने देखा कि किरणमयी ने किसी चीज को छुआ तक नहीं है। नई हाँड़ी खरीदकर जिस स्थान पर रख आया था, वह उसी स्थान पर उसी दशा में पड़ी हुई है। चूल्हे में कालिख का दाग तक नहीं है।

दासी ने आकर कहा, "काम किसका करूँ बाबू ? बहू जिस समय से आईं उस समय से खिड़की की छड़ पकड़े मार्ग की ओर देखती बैठी रहीं। वे न तो वहाँ से उठीं, न मुँह में पानी ही डाला। बिस्तर बिछा ही पड़ा रह गया, जरा सोई तक भी नहीं। इसके बाद कल सवेरे से उनको देखती भी नहीं हूँ। चीज-वस्तु का जो करना हो, करो बाबू ! मैं ऐसे सूने घर की रख-वाली न कर सकूँगी।"

यह समाचार सुनकर सतीश माथे पर हाथ रख, कुछ देर बैठा रहा, फिर नौकरानी के हाथ में पाँच रुपए देकर लौट आया। उस कमरे से उसने लोगों के द्वारा उसकी खोज करने में कमी न की, किन्तु फल कुछ न हुआ।

ये सब बातें उपेन्द्र सुन चुके थे।

सावित्री के मन में बड़े दुःख के साथ बीच-बीच में यह बात उठ खड़ी होती थी कि उस दिन सुबह गंगाघाट पर उसने जिसे देखा था, कहीं वह किरणमयी तो न थी ? किन्तु किरणमयी तो असाधारण सुन्दरी है ! वह पगली भी यद्यपि रूपवती थी, किन्तु वह अतुल सुन्दरी तो नहीं कही जा सकती। जो हो, वह क्यों चली गई, कहाँ चली गई और किस कारण चली गई।

सतीश ने सिर हिलाकर कहा, "ना।"

फिर उपेन्द्र ने कोई प्रश्न नहीं किया, उनको गम्भीर तन्द्रा आ गई। शेष रात बीत गई।।

दिन के प्रायः दस बजे के बाद उपेन्द्र ने एक बार आँखें खोलकर स्थिर दृष्टि से देखा, मानो पहचानकर क्षीण कंठ से बोल उठे, "यह कौन सरोजिनी है ?"

सरोजिनी घुटनों के वल जमीन पर बैठ, बिस्तर पर मुँह छिपा, सिसक-सिसककर रोने लगी। उपेन्द्र ने धीरे-धीरे दाहिना हाथ उठा, उसके सिर पर रखकर कहा, "आई हो बहन ! तुमको मैंने मन-ही-मन ढूँढ़ा था; किन्तु किसी प्रकार याद नहीं कर सका था। आज न आतीं तो शायद भेंट भी न होती।" कहकर वे कुछ देर तक मानो कोई चिन्ता करने लगे। स्पष्ट ही मालूम हो रहा था कि आज सब बातें करने की उनमें शक्ति नहीं रह गई थी। अचानक मानो याद आते ही उन्होंने पुकारा, "सतीश कहाँ है ?"

सतीश उधर की खिड़की के निकट खड़ा होकर बाहर की ओर चुप-चाप देख रहा था, पास आते ही उपेन्द्र ने कहा, "तुम लोगों का ब्याह अपनी आँखों से देख न सका सतीश, किन्तु मेरी इस लक्ष्मीस्वरुपा बहन को तू कभी दुःख न देना। तू जरा अपना दाहिना हाथ तो एक बार दे, आज मैं ही पुरोहित का काम कर जाऊँ।" कहकर उन्होंने अपने सूखे निर्बल हाथ को ऊपर की ओर उठाया।

सावित्री की ओर देखकर सतीश की छाती कुछ देर के लिए धड़क उठी। परन्तु उसने झट अपना सबल हाथ बढ़ाकर उपेन्द्र के काँपते हुए हाथ पर रख दिया।

उपेन्द्र मन-ही-मन जगत्तारिणी की बात याद कर बोला, "सतीश, तू सरोजिनी को तो जानता है। केवल तेरे ही बल पर मैंने उसे वचन दिया था कि मैं अपने भाई सतीश को तुम्हारे हाथ सौंप दूँगा। देखना, मेरी मृत्यु के बाद कोई यह न कहने पाए कि उपेन्द्र ने केवल मौखिक अव्यवहार चर्चा की थी।"

सतीश आँखों के उमड़ते हुए आँसुओं को रोक न सका। रोकर बोला, "ना उपेन्द्र दा, ना, यह बात मैं प्राण रहते किसी को कहने न दूँगा कि तुम्हारे उपस्थित न रहने से तुम्हारी बात का पालन नहीं हुआ, किन्तु मुझे

तो सब बातें बता देने की अब आवश्यकता है। मैं चरित्रहीन हूँ, उन्मादी हूँ, जिस अपराध से सरोजिनी ने मेरा अपमान कर मुझे विदा किया था, वह कारण तो आज भी उपस्थित है। फिर ये कैसे मुझे स्वीकार करेंगी ? बल्कि आज तुम मुझे आशीर्वाद देते जाओ, उपेन्द्र भैया कि किसी भय, किसी अभि-मान, किसी लोभ या किसी दुर्बलता के मोह से मैं उसका त्याग न करूँ जिसने मुझे प्रेम करना सिखाकर मनुष्य बनना सिखाया है।" कहकर उसने सावित्री के मुँह की ओर देखा।

सहसा दोनों की आँखें चार हो गईं। फिर पलक मारते ही दोनों ने आँखें नीची कर लीं।

उपेन्द्र मुस्कराए, बोले, "क्यों, आज भी ये सब बातें मुझे बताना शेष हैं पागल ? मैं सब जानता हूँ। सब समझकर ही मैं तुम लोगों को एक करके जाना चाहता हूँ।"

सतीश बोल उठा, "किन्तु मेरे साथ क्या ये सुखी हो सकेंगी दादा ?"

उत्तर देने की इच्छा कर उपेन्द्र ने सावित्री के मुँह की ओर देखा। देखते ही सावित्री अत्यन्त वेग के साथ बोल उठी, "यह भार मैंने लिया, दादा ! तुम निश्चिन्त रहो।"

उपेन्द्र ने कोई बात न कही। केवल उसके मुँह की ओर एकटक देखते रहे। उनकी आँखों से आँसुओं की बड़ी-बड़ी बूंदें टपकने लगीं।

कुछ देर बाद सावित्री ने अपने आँचल से उपेन्द्र की आँखें पोंछ दीं। फिर उपेन्द्र ने धीरे-धीरे कहा, "यह आसक्ति-निरासक्ति तुमको नहीं है। तुम उसके ऊपर हो। यदि कुल के बाहर आई हो बहन तो उसके भीतर न जाना। हमेशा बाहर ही रह उसे छाती से लगाए रहना, यह मेरी शेष इच्छा है।" यह कहकर उन्होंने सरोजिनी का हाथ पकड़, सतीश के हाथ के ऊपर रखकर कहा, "अपनी इस छोटी बहन को हमेशा के लिए तुझे सौंप जाता हूँ। सतीश, आशीर्वाद देता हूँ, जैसी मुझे मिली थी, वैसी ही तुझे भी मिले। इसकी अपेक्षा और कोई बड़ा आशीर्वाद मेरे पास नहीं है, सतीश !"

सतीश ने कठिनाई से आँसू रोके, किन्तु सरोजिनी आँचल में मुँह छिपा सिसक-सिसककर रोने लगी।

सावित्री पत्थर की मूर्ति के समान चुपचाप आँखें नीची किए उन लोगों के पास बैठी रही।

आज से सतीश दूसरे का है। अब उस पर उसका कुछ भी अधिकार नहीं रहा। आज उसकी चिन्ता की, उसकी वासना की, उसके परमसुख की, चरम दुःख की, उसकी कठिन वेदना की आँखों के आगे ही समाप्ति हो गई, किन्तु उसने गहरी साँस तक निकलने न दी। दुःख से छाती के भीतर ऐंठन पैदा होने लगी, किन्तु जिस प्रकार वसुन्धरा अपने भीतर की दुर्जय अग्नि-ज्वाला को प्रसन्न मुख से सहन करती है, ठीक उसी प्रकार सावित्री शान्त मुख से सब सहकर स्थिर बैठी रही।

उसके झुके हुए मुख की ओर देखकर उपेन्द्र ने धीरे-धीरे कहा, "मैं सब समझता हूँ बहन, किन्तु यह दुःख यदि तुम न सह सकतीं, तो क्या मेरी बहन हो सकती थीं ?"

सावित्री ने केवल उनके मुँह पर के बिखरे बालों को एक ओर हटा दिया।

अचानक सतीश सरोजिनी का हाथ छोड़कर चिल्ला उठा, "ऐं ! भाभी !"

सावित्री ने चौंककर देखा कि गंगा-घाट पर की वही पगली बहुत धीरे-धीरे पाँव रखती हुई कमरे के भीतर आ रही है।

क्षणभर में कमरे के भीतर बैठे हुए सब लोग चकित हो गए।

किरणमयी के लम्बे, रूखे बाल, मुँह पर, ललाट पर, पीठ पर चारों ओर बिखरे हुए थे, साड़ी फटी हुई थी, और सब अंगों पर गिलट के गहने थे, उसकी दृष्टि अद्भुत तथा बहुत तीव्र थी—उसे देखकर यही जान पड़ा, मानो उग्र शोक स्वयं ही मूर्तिमान हो, घर के भीतर आ खड़ा हुआ।

किरणमयी ने सतीश की ओर देखकर धीरे से कहा, "मकान खोजती-खोजती थक गई, कहीं पता न लगा। कितने ही लोगों से पूछा, किन्तु कोई भी पता न बता सका। आज काली माई के मन्दिर से आ रही थी, सौभाग्य से रास्ते में बिहारी से भेंट हो गई—उसी के पीछे-पीछे यहाँ तक आ सकी हूँ।"

उपेन्द्र की ओर देखकर पूछा, "कैसे हो देवर ?"

उपेन्द्र ने हाथ हिलाकर बतलाया कि अन्तिम समय बहुत ही निकट है।

किरणमयी ने अत्यन्त दुःख-भरे स्वर में कहा, "आह! मैं मर जाऊँ! सुरबाला का मरना सुनकर मेरे आँसू नहीं रुकते। वही तो मेरी गुरुआनी थी। उसी ने तो मुझसे कहा था कि भगवान् है। अहा! उस समय यदि इस पर विश्वास हो गया होता तो···"

अचानक उसकी आँखें दिवाकर के पीले चेहरे पर जा पड़ीं तो वह बोल उठी, "अहा हा! तुम ऐसे क्यों लजाते हो भाई? क्या ये लोग तुम्हें लजवाते हैं?" कहकर उपेन्द्र की ओर तीव्र दृष्टि से देखकर बोली, "इनको तुम दुःख न देना देवर? ये किसी से गिरे हुए नहीं है। तुमने इनको मेरे साथ जिस विश्वास के साथ सौंप दिया था, उसमें मैंने एक दिन भी आघात नहीं पहुँचाया है। मैं प्राणपण से इनकी रक्षा करती आ रही हूँ। किन्तु अब मेरे लिए देखने-सुनने का समय नहीं रह गया है। इसकी सँभाल अब स्वयं तुम लोग करो।"

"मेरे आँचल में काली माई का प्रसाद बँधा हुआ है, देवर, जरा खाओगे! आह! कितनी रोई, कितनी तुम्हारे लिए प्रार्थनाएँ कीं, कहा—माँ काली! देवर का रोग दूर कर मुझे दे दो। मेरे जीते रहने से क्या लाभ? क्यों देवर, मेरी यह बात सच नहीं है?"

एक दिन जिस रमणी के रूप की सीमा न थी, ज्ञान, विद्या या बुद्धि का अन्त न था, यह क्या उसी किरणमयी की बात है? आज वह क्या कह रही है; यह स्वयं भी वह नहीं जानती।

सतीश और अधिक सहन न कर सका। वह 'ओह!' कहकर बाहर चला गया। इतने दिनों के बाद उपेन्द्र की आँखों से किरणमयी के लिए आँसू टपक पड़े।

किरणमयी झुककर आँचल से उनके आँसू पोंछकर बोली, "ओह, रोओ मत मेरे अच्छे देवर, तुम अच्छे हो जाओगे।"

इस बार सावित्री पर उसकी दृष्टि पड़ी।

उसे स्थिर दृष्टि से देखकर वह बोली, "उस दिन तुम्हीं से गंगा-घाट पर भेंट हुई थी न? क्या तुम ही सावित्री हो? जरा कुछ हटो तो बहन, मैं

भी जरा देवर के पास बैठूँ।"

सरोजिनी ने उसका हाथ पकड़कर पूछा, "मुझे पहचानती हो भाभी ?"

किरणमयी ने स्वाभाविक स्वर में कहा, "पहचानती क्यों नहीं हूँ ? तुम सरोजिनी हो।"

सरोजिनी ने कहा, "चलो भाभी, हम लोग उस कमरे में चलकर बातें करें।" कहकर, वह एक प्रकार से बलपूर्वक उसे पास के कमरे में घसीट ले गई।

उसके कमरे से बाहर होते-न-होते उपेन्द्र अचेत हो गए। शायद उत्तेजना और परिश्रम उन्हें सहन न हुआ।

सावित्री उनके मस्तक को उसी प्रकार गोद में लिए बैठी रही। आज मुह में एक बूंद पानी तक डालने के लिए न उठी थी।

सारा दिन बेहोशी की दशा में ही व्यतीत हो गया, किन्तु शाम के बाद ज्वर बढ़ने के साथ-साथ उपेन्द्र को चेत हो आया।

आँखें खोलते ही सावित्री पर उनकी नजर पड़ी। उन्होंने मन्द-मन्द स्वर में कहा, "तू बैठी है बहन ! तुझे छोड़ जाने की बात मन में आते ही मेरी आँखों में आँसू आ जाते हैं। सावित्री, चलोगी मेरे साथ ?"

सावित्री ने कहा, "चलूँगी भैया ! मुझे भी लेते चलो।"

उपेन्द्र कुछ समय चुप रहकर बोले, "किन्तु तेरे जाने से इतने अभागे-अभागिनों की देख-रेख कौन करेगा ? ना बहन, जब समय होगा, जाना, हम दोनों वहाँ तेरे आने की प्रतीक्षा करते रहेंगे। सतीश कहाँ है ?"

दिवाकर चुपचाप उपेन्द्र के पाँवों के पास बैठा था, वह नीचे जाकर सतीश को बुला लाया।

उपेन्द्र ने कहा, "सतीश, उस बक्सा में ऊपर ही एक लिफाफा रखा है, जरा ले तो आ।" वह सन्दूक खोलकर लिफाफा निकाल लाया।

उपेन्द्र ने कहा, "उसके भीतर मेरा वसीयतनामा है, दिवाकर को दो, वह सबको पढ़कर सुनावे।"

वसीयतनामा बहुत थोड़े में लिखा था और पक्का था। उपेन्द्र ने अपना पच्चीस हजार रुपया सावित्री को दिया है, उसमें कोई शर्त नहीं, कोई अनुरोध नहीं। पढ़ना समाप्त हो जाने पर सब चुप बैठे रहे।

उपेन्द्र ने ही फिर कहा, "भाभी कहाँ हैं, सतीश ?"

सतीश बोला, "नीचे के कमरे में सो रही हैं। उनको मैंने दृष्टि में ही रखा है।"

उपेन्द्र ने कहा, "सावित्री, तेरे हाथों में जो अपना काम सौंप जाने की बात थी वह आज सौंप दूं ?"

उपेन्द्र की दशा किसी से छिपी न थी, इसी से यह सुनते ही सावित्री रो उठी, बोली, "आज ही क्यों भैया ?"

"यह क्या तू नहीं समझती बहन ? आज की रात यदि किसी प्रकार कट भी जाए तो सवेरा भी क्या कट जाएगा ? दिवाकर, पास आ। इस बहन के हाथ में तुझे सदा के लिए सौंप जाऊँ। सतीश, तू भी आ।" सावित्री के मुँह की ओर देखकर और जरा कुछ चुप रहकर कहा, "अधिक मुझे कहना नहीं। इन दो अभागे भाइयों को तेरे एक हाथ में सौंप जाता हूँ, और दूसरे हाथ में अपनी दोनों बहनों को दिए जाता हूँ। यदि तुझसे हो सके तो दिवाकर को मनुष्य बना, शची से ब्याह कर देना। सुरबाला की यही अन्तिम इच्छा थी, इसके बाद जो उचित समझो, करना।"

फिर सतीश और दिवाकर के हाथ खींच, सावित्री के दाहिने हाथ के ऊपर रखकर कहा, "तुम दोनों मेरी इस बात को याद रखना वंधु ! मैं यहाँ से विदा हो जाने पर भी इस बहन के शरीर में सदा जीवित रहूँगा। इसका तुम लोग भूलकर भी अपमान नहीं करना।"

सतीश आँखें पोंछकर बोला, "उपेन्द्र दा, दिवाकर का भार मैंने लिया। इसके अलावा तुम्हारा सब बोझ आज से मेरे सिर पर रहा, तुम स्वर्ग से केवल यह आशीर्वाद करना कि मैं तुम्हारे चरणों की धूल के योग्य हो सकूं।" यह कहकर उसने उपेन्द्र के पैरों की धूल माथे पर चढ़ाई।

सावित्री ने उनके दोनों पाँवों के पास लोटकर रोते-रोते कहा, "मुझे इस प्रकार बाँधकर मत छोड़ जाओ भैया ! मुझे मुक्त कर जाओ—मैं इतना भार न उठा सकूंगी।"

"वहन, तू न उठा सकेगी तो और कौन उठाएगा ?" कहकर उन्होंने मृत्यु के समय मलीन होंठों पर अन्तिम मुस्कराहट लाकर कहा, "यदि यही बात थी तो फिर इतने दिन जान लड़ाकर मेरी सेवा क्यों की थी ? जानती

नहीं, यह कलिकाल है, इसमें इतनी सुगमता से छुटकारा नहीं मिलता। इन पगलों और पगलियों की भी कुछ सेवा कर ले। तभी तो इस सेवा का पूरा पुरस्कार मिलेगा!" कहकर हँसने का प्रयत्न करते ही उनके मुँह से खून का एक भारी लौंदा गिर गया, मानो उनका कलेजा ही फटकर गिर पड़ा हो।

सभी हाहाकार कर उठे, नीचे से मंझला भाई दौड़ आया, माहेश्वरी भी आई। सावित्री ने आँचल से खून दबा रखा, किन्तु उपेन्द्र ने जो आँखें बन्द कीं सो फिर खोलीं नहीं और कुछ बोले नहीं।

सभी उन्हें उठाकर झटपट नीचे ले आए। आधे घंटे के अन्दर ही उपेन्द्र के निष्पाप, निष्कलंक, विरह-व्याकुल प्राण अपनी सुरबाला की खोज में उड़ गए।

तब सभी विदीर्ण-स्वर में रोने लगे। उन लोगों के गगनभेदी करुण क्रन्दन से सारा क्षेत्र काँप उठा, किन्तु नीचे के कमरे में किरणमयी निश्चिन्त हो, गहन-निद्रा में निमग्न थी।



पूजा के फूल कितने पवित्र होते हैं! उनसे भी अधिक पवित्र हैं शरत् के उपन्यास। तुलसी की पवित्रता सूख सकती है, मगर शरत् के उपन्यासों की हरियाली पवित्रता अमर है। पढ़ते-पढ़ते लगता है जैसे गंगा की धारा में मन-प्राण निर्मल हो रहे हों। पढ़ने पर दिमाग में दीवालियां झिलमिला उठती हैं।

जो लोग कहते हैं कि आज की पीढ़ी को उपन्यासों ने बिगाड़ दिया है, उन्हें हम अपनी शरत्-उपन्यास-माला से अपनी मनपसन्द के फूल चुनने की दावत देते हैं। हमें विश्वास है कि धीरे-धीरे आप पूरी माला खरीदने पर मजबूर हो जायेंगे।

याद रहे, यह 'सुबोध'-प्रकाशन है!

सुबोध पब्लिकेशन्स